आर्थिक विचारों का इतिहास

History of Economic Thought

विभिन्न विश्वविद्यालयों की
स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए

आर्थिक विचारों का इतिहास

History of Economic Thought

अवध किशोर सक्सेना

एम० ए०, पी० एच० डी०

अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग

मानकचन्द (पोस्ट ग्रेजुएट) कालिज, मेरठ।

भूतपूर्व प्राध्यापक

बी० एस० एस० डी० कालिज कानपुर।

हमारे अन्य लोकप्रिय प्रकाशन

- राजनीतिक निबंध
  लेखक: डा० दया प्रकाश रस्तोगी
- हिन्दू राज्य शास्त्र
  लेखक: प्रिंसिपल महावीर सिंह त्यागी
- ऐतिहासिक निबंध
  लेखक: डा० दया प्रकाश रस्तोगी
- आधुनिक इंगलैण्ड
  लेखक: डा० रमेश चन्द वर्मा
- ग्रामीण अर्थशास्त्र
  लेखक: उषा रस्तोगी

- प्रथम संस्करण १९६७
- मूल्य ११,५०

प्रकाशक: संजीव प्रकाशन, लालकुर्ती, मेरठ कैंट। (उ० प्र०)
मुद्रक : सर्वोदय प्रेस, रामनगर, मेरठ। फो० ४३५२ (उ० प्र०)

अपने पूज्य पिता
स्वर्गीय श्री जुगल किशोर जी सक्सेना
की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

भूमिका

"आर्थिक विचारधारा" की धारणा का सम्बन्ध किसी निश्चित समय या अवधि में आर्थिक तथ्यों एवं शक्तियों से सम्बन्धित विचारों अथवा आर्थिक सिद्धांतों के विकास के अध्ययन से है। प्रो० हैने के शब्दों में, "आर्थिक विचारों के इतिहास को आर्थिक विचारों के विकास इनके उदगम एवं अन्तसम्बन्धों की खोज करते हुए, आलोचनात्मक अभिलेख के रूप में परिभाषित किया जा सकता है"।

आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन की दो रीतियां हैं— (क) वस्तुगत रीति (Objective Method) और (ख) विषयगत रीति (Subjective Method) अध्ययन की वस्तुगत रीति के अन्तर्गत हम आर्थिक सिद्धान्तों के एक निकाय का अध्ययन इनके उद्गम के समय और परिस्थितियों को अधिक महत्व दिए बिना ही, करते हैं। अध्ययन की यह रीति आर्थिक विचारों की सार्वभौमिकता तथा भाववाचक विचारशीलता पर आधारित है। जब तक किसी सिद्धान्त विशेष की उपस्थिति या अनुपस्थिति को पूरी तरह से समझने के हेतु ही आवश्यक न हो, इस रीति के अन्तर्गत वास्तविक आर्थिक तथ्यों और संस्थाओं के अध्ययन को अलग ही रक्खा जाता है। इस प्रकार विषय के वस्तुगत दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी देश के आर्थिक इतिहास के अध्ययन को विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। इस विषय पर पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखी गई अनेक पुस्तकों में हम वस्तुगत दृष्टिकोण का ही दर्शन पाते हैं। जिन आर्थिक सिद्धान्तों का एक बार विकास हो जाता है वे सार्वभौमिक हो जाते हैं तथा किसी देश विशेष से सम्बन्धित नहीं रह जाते हैं।

अध्ययन की विषयगत रीति के अंतर्गत हम किसी देश के एक निश्चित समय अथवा अवधि की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशाओं के सम्बन्ध में, आर्थिक विचारों का अध्ययन करते हैं। इस रीति के अन्तर्गत आर्थिक विचारों पर आर्थिक इतिहास के महत्वपूर्ण प्रभाव की झलक दिखाई देती है। मनुष्य अपने पर्यावरण की उत्पत्ति है और इस कारण उसके विचार उसके समय की परिवर्तित परिस्थितियों से निर्देशित एवं परिमित होते हैं। यदि हम उसके विचारों का अध्ययन उसके पर्यावरण से विलग करके करते हैं तो हमारे द्वारा निकाले गए निष्कर्ष गलत साबित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लाभार्थ लिखी गई है। पुस्तक में पाठ्य-सामग्री का विवेचन अत्यन्त सरल, सुबोधगम्य एवं प्रवाहमयी भाषा में किया गया है तथा पाश्चात्य विचारकों के आर्थिक विचारों एवं सिद्धान्तों के विस्तृत विश्लेषण के साथ-साथ भारतीय विचारकों (रानाडे, दादा भाई नौरोजी, आर० सी० दत्त, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी आदि) के आर्थिक विचारों का भी विस्तृत एवं गहन विवेचन किया गया है। मुझे आशा है कि मेरा यह प्रयास विद्यार्थियों एवं सुविज्ञ प्राध्यापकों के के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

पुस्तक के निष्पादन में मुझे अपने प्रिय शिष्य प्रो० रमेश चन्द्र शर्मा का जो सहयोग मिला है उसके लिए में आभार प्रकट करूँगा।

सुविज्ञ पाठकों के सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

२८, मिशन कम्पाउन्ड
मेरठ (यू० पी०)
फोन ४४१०

— अवध किशोर सक्सेना

विषय तालिका

१

आर्थिक विचारों के इतिहास का अर्थ, महत्व, उद्भव एवं विकास

(Meaning, Importance, Origin and Development of History of Economic Thought)

आर्थिक विचारों के इतिहास का अर्थ एव परिभाषा (Meaning and Definition of History of Economic Thought) .—अन्य दूसरे सामाजिक शास्त्रों की तरह राजनैतिक अर्थशास्त्र और इससे सम्बन्धित विचारों का उद्भव एवं विकास भी शताब्दियों की एक लम्बी प्रक्रिया मे गुथा हुआ है। साधारणतया 'इतिहास' मे मानव जगत को सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक क्रियाओ परिस्थितियों एवं उनके परिणामो का क्रमबद्ध विवेचन होता है। 'आर्थिक विचारो के इतिहास' में मानव-जगत के आर्थिक विचारो का, जिनका उद्भव एव विकास शताब्दियों की लम्बी शृंखला मे व्याप्त है क्रमबद्ध विवेचन किया जाता है। 'अर्थशास्त्र' और 'इतिहास' इन दोनों शब्दो का प्रयोग विभिन्न विद्वानों द्वारा तीन रूपो मे किया गया है— (क) आर्थिक इतिहास अथवा औद्योगिक इतिहास (Econmic History or Industrial History), (ख) अर्थशास्त्र का इतिहास (History of Economics), और (ग) आर्थिक विचारों का इतिहास (History of Economic Thought)। प्रो० हेने (Prof Haney) ने इसी मत को इन शब्दों मे व्यक्त किया है, "इतिहास और अर्थशास्त्र शब्दो का प्रयोग अध्ययन की तीन विभिन्न शाखाओं के अन्तर्गत किया जाता है। एक ओर है—आर्थिक इतिहास या औद्योगिक इतिहास, जैसा कि इसे नि.संकोच पुकारा जाता है, तथा दूसरी ओर परस्पर सम्बन्धित विषय है—अर्थशास्त्र का इतिहास तथा आर्थिक विचारो का इतिहास।*"

आर्थिक इतिहास अथवा औद्योगिक इतिहास मानव-जाति की आर्थिक क्षेत्र मे की गई प्रगति का क्रमबद्ध अध्ययन है। मानव-जाति द्वारा अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु जिन विभिन्न आर्थिक संस्थाओं (Economic

* "The words History and Economics are found in the names of at least three different branches of study. There is on the one hand Economic History or Industrial History as it is frequently called, and on the other, there are the closely related subjects, History of Economics and History of Economic Thought."
—Prof. Haney.

Institutions), यथा-उद्योग, यातायात, बैंकिंग, श्रम-विभाजन, मुद्रा साख आदि की स्थापना की है, इन सभी का क्रमिक अध्ययन आर्थिक इतिहास अथवा औद्योगिक इतिहास की विषय-सामग्री है। दूसरे शब्दों में आर्थिक इतिहास या औद्योगिक इतिहास आर्थिक घटनाओं का क्रमबद्ध विवेचन है, यह नवीन सिद्धांतों के हेतु उचित पृष्ठ-भूमि तैयार करता है तथा अतीत के अनुभव के आधार पर भावी सम्भावित घटनाओं पर विचार करता है। प्रो० हेने के शब्दों में, "प्रथम (आर्थिक इतिहास या औद्योगिक इतिहास) वाणिज्य, उद्योग तथा अन्य आर्थिक दशाओं जो कि मानव द्वारा जीविका उपार्जन के साथ विषयगत रूप से सम्बन्धित हैं, से सम्बद्ध है।"* दूसरी ओर अर्थशास्त्र के इतिहास को परिभाषित करते हुए प्रो० हेने ने लिखा है, "अर्थशास्त्र का इतिहास आर्थिक जीवन के विशिष्ट एकरूपत्वों की संरचना पर आधारित अथवा दिए हुए कारणों से निश्चित परिणामों के प्रवाह की प्रकृति पर आधारित एक विज्ञान-क्रमबद्ध ज्ञान के एक निकाय से सम्बन्धित है। यह उन कालों तक परिमित है जिनमें कि आर्थिक विचारों का विभेदीकरण, एकीकरण एवं संगठन किया गया, यह आर्थिक विचार की पद्धतियों का एक इतिहास है।"‡ इस तरह संक्षेप में कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र का इतिहास विशिष्ट एकरूपत्व को प्राप्त आर्थिक क्रियाओं पर आधारित विभिन्न कालीन प्रचलित प्रवृत्तियों का परिणाम है अथवा आर्थिक विचारों की पद्धतियों का इतिहास (A History of Systems of Economic Thought) है।

इस प्रकार जहां एक ओर आर्थिक या औद्योगिक इतिहास मानव-जाति की आर्थिक क्षेत्र में की गई प्रगति का क्रमबद्ध विवेचन है और दूसरी ओर अर्थशास्त्र का इतिहास विशिष्ट एकरूपत्व को प्राप्त आर्थिक क्रियाओं पर आधारित विभिन्न कालीन प्रचलित आर्थिक प्रवृत्तियों एवं पद्धतियों का विवेचन है, वहां तीसरी ओर, आर्थिक विचारों का इतिहास केवल मात्र आर्थिक विचारों के उद्भव एवं विकास का आलोचनात्मक विवेचन है। मानव-जगत के विभिन्न कालीन विकसित आर्थिक विचारों चाहे ये वैज्ञानिक हों अथवा अवैज्ञानिक, की क्रमबद्ध एवं आलोचनात्मक व्याख्या करना तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों एवं स्पष्टता की खोज करना 'आर्थिक विचारों के इतिहास' का काम है। प्रो० हेने के मतानुसार "आर्थिक विचारों के इतिहास के विषय की व्याख्या आर्थिक विचारों के विकास के

---

* 'The first (Economic History or Industrial History) concerns itself with the History of Commerce, manufactures, and other economic phenomena, dealing objectively with the ways in which men get their living." —Haney.

‡ "The History of Economics deals with a science, with a body of classified knowledge based upon the establishment of certain uniformities in economic life, or the tendency of certain results to flow from given causes. It is limited to times in which economic ideas have become distinct, unified and organized, it is a history of systems of economic thought." —Prof Haney.

आलोचनात्मक अभिलेख के रूप में, उनके उद्गम, पारस्परिक सम्बन्धों एवं स्पष्टता को खोजते हुये, की जा सकती है।"* अर्थशास्त्र का इतिहास तो केवल दो सौ वर्ष पुराना है क्योंकि यह एडम स्मिथ द्वारा रचित ग्रन्थ 'राष्ट्रों की सम्पत्ति' (Wealth of Nations) से ही प्रारम्भ होता है, परन्तु आर्थिक विचारों का इतिहास काफी पुराना है यद्यपि प्राचीन एवं मध्यकालीन विचारकों के आर्थिक विचारों को अधिक वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके विचार आर्थिक क्षेत्र को ग्रहण करते हुए भी नीति, धर्म, दर्शन आदि से सम्बद्ध रहे हैं।

प्रो० हेने ने आर्थिक विचारों के इतिहास और आर्थिक इतिहास का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि, "आर्थिक विचारों का इतिहास, सामान्य इतिहास का एक आवश्यक अंग है, दोनों ही इसकी व्याख्या करते हैं और दोनों की ही इसके द्वारा व्याख्या की जाती है।"‡ दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आर्थिक विचारों का इतिहास स्वयं सामान्य इतिहास की व्याख्या करता है तथा उसके द्वारा स्वयं अपनी व्याख्या कराता है अर्थात् आर्थिक इतिहास की व्याख्या करने के हेतु आर्थिक विचारों के इतिहास का सहारा लेना आवश्यक है और आर्थिक इतिहास का ज्ञान स्वयं आर्थिक विचारों के इतिहास को समझने में मदद करता है।

आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन का महत्व (Importance of the Study of History of Economic Thought) :— व्यावहारिक दृष्टि से आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान युग में प्रचलित आर्थिक प्रवृत्तियों, योजनाओं, सिद्धांतों एवं विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने से पूर्व उनके उद्भव एवं विकास का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। प्रो० हेने (Prof Haney) ने आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन के निम्नोक्त महत्व पूर्ण लाभ गिनाए हैं :—

(क) आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन द्वारा कोई भी व्यक्ति आदिकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक के आर्थिक विचारों के उद्भव, विकास, उनके पारस्परिक सम्बन्धों का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

(ख) आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन अर्थशास्त्र के क्षेत्र एवं प्रकृति सम्बन्धी मत-भेद (Dispute relating to the Scope & Nature of Economics) का निराकरण करता है। इस प्रकार आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन का

---

* "The subject, the History of Economic Thought, may be defined as a critical account of the development of economic ideas, searching into there origins, inter-relations and manifestations."

—Prof. Haney.

‡ "The history of economic thought, then, is an essential part of general history, both explaining it and being explained by it."

—Prof. Haney.

महत्व बताते हुए प्रो० हेने ने लिखा है कि, "किसी विज्ञान की उत्पत्ति को समझना और विशेषकर अर्थशास्त्र जैसे विज्ञान के उद्‌भव को समझना, जिसकी प्रकृति और क्षेत्र मत-भेद का विषय रहे हैं, बहुत महत्वपूर्ण है ।"* प्रचीन विचारकों के आर्थिक विचारों से इस बात की भली भांति पुष्टि हो जाती है कि अर्थशास्त्र का दूसरे सामाजिक शास्त्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी तथ्य का स्पष्टीकरण प्रो० हेने ने इन शब्दों में किया है, "व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते अर्थशास्त्रज्ञों को यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि अर्थशास्त्र के निष्कर्ष दूसरे सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों से सहयोग अथवा संघर्ष रखते हैं और यह एक ऐसा तथ्य है जोकि अर्थशास्त्र के क्षेत्र को सीमित करता है। इसलिए अर्थशास्त्र के विद्यार्थी को सामाजिक विज्ञानों के विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन करने के हेतु आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन करना बहुत वांछनीय है क्योंकि प्रारम्भ में सामाजिक मूल्य एक ही थे। प्राचीन विद्वानों के विचारों में हम विशुद्ध आर्थिक विचारों की खोज कर सकते हैं परन्तु उन विद्वानों ने अपने आर्थिक विचारों को अन्य विचारों से पृथक् नहीं किया था।"‡

(ग) अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री में अनेक ऐसे विचार निहित हैं जिन्हें कि हम आधुनिक शब्द की संज्ञा देते हैं जबकि वास्तविक रूप में उनका विकास अति प्राचीन युग से होता आया है और वे अब आकर अपने वर्तमान स्वरूप में पहुँचे है। आर्थिक विचारों का इतिहास हमें इन विचारों का क्रमिक विकास प्रस्तुत करके इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण बन जाता है। समाजवाद, मुद्रा, व्याज, लगान, मजदूरी आदि के विचार इसी तरह के आर्थिक विचार हैं जिनका उद्‌भव अति प्राचीन काल में हुआ और जो विभिन्न कालीन विचारकों द्वारा परिष्कृत एवं परिमार्जित होते-होते अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुए हैं।

(घ) आर्थिक विचारों का इतिहास अन्यापेक्षा की धारणा (Concept of Relativity) उत्पन्न करता है जिसके कारण आर्थिक विचारों की निराधार

---

* "There is a great value in understanding the origin of a science, especially one like Economics, the nature and scope of which have been under dispute."
—Prof. Haney.

‡ "Economists, as practical men, must realize that the sanctions of Economics cooperate or conflict with the sanctions of other social sciences, a fact which limits its application. There is, therefore, no better way for a student grounded in economics to find himself in the wider field of social science than to study the history of economic thought. For in the begining social values were one. In the thought of the ancients, purely economic ideas may be apparent to us, but the men who had them did not differentiate."
—Prof. Haney'

आलोचना न करके उनके उद्भव के समय, स्थान एवं परिस्थितियों के संदर्भ में उनकी वास्तविकता जानने की प्रेरणा मिलती है। प्रो० हेने के शब्दों में, "अन्यापेक्षा की धारणा अर्थात् विचार का वह दृष्टिकोण जिसके आधार पर विचारों की जांच निराधार निरंकुशतावाद के द्वारा न होकर उन कालों और स्थानों के सदर्भ में होती है जिनमें कि इन विचारों का निर्माण हुआ है, बहुत कुछ सत्य बन जाती है।"‡

(ङ) आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन अर्थशास्त्रियों के पारस्परिक मतभेदों को दूर करके सरलता का दिग्दर्शन कराता है क्योंकि यह बताता है कि कोई आर्थिक विचार किस विचारधारा से प्रवाहित है तथा उसका उद्भव किस युग में हुआ है और उसमें वास्तविक सत्यता कितनी है। इस तरह आर्थिक विचारों का इतिहास अर्थशास्त्र के विचारों को अव्यक्तिगत, वैज्ञानिक एवं विषयगत (Impersonal, Scientific and Objective) बनाता है।

(च) आर्थिक विचारों का इतिहास इस तथ्य का स्पष्टीकरण करता है कि अर्थविज्ञान के सामान्य नियम एवं विचार किसी एक अर्थशास्त्री की धरोहर न होकर सम्पूर्ण मानव समाज की धरोहर है और ये किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों पर आधारित न होकर सामान्य परिस्थितियों पर आधारित हैं। दूसरे शब्दों में आर्थिक विचारों का इतिहास अर्थशास्त्र एवं अर्थशास्त्री का स्पष्टीकरण कर देता है। प्रो० हेने के मतानुसार, "आर्थिक विचारों के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण प्राप्य लाभ इस जानकारी में निहित है कि अर्थशास्त्र एक वस्तु है तथा अर्थशास्त्री दूसरी।"*

आर्थिक विचारों के इतिहास का उद्भव एवं विकास (Oregin and Development of Hisotry of Economic Thought)—अन्य दूसरे सामाजिक विज्ञानों की तरह अर्थविज्ञान और इससे सम्बन्धित विचारों को हम उद्भव एवं विकास की विभिन्न शताब्दियों में फैली एक विस्तृत प्रक्रिया में पाते हैं वैसे हमें अर्थशास्त्र का वैज्ञानिक रूप अठारहवीं शताब्दी में ही देखने को मिलता है जबकि एडम स्मिथ (Adam Smitn) ने अपनी पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Natioans) की रचना की। आर्थिक विचारों का इतिहास अपने उद्भव में अनेक कारणों से प्रभावित हुआ है जिनमें से मनुष्य के सामाजिक पर्यावरण ने उसकी आर्थिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। राजनैतिक सिद्धान्त और व्यवहार ने भी विभिन्न चरणों

‡ "The concept of relativty, the point of view according to which ideas are not judged with dogmatic absolutism, but are critically examined in the light of the times and places in which they were formed, becomes very real." —Prof. Haney.

* "It seems that one of the most important benefits to be gained by studying economic thought lies in the realization that Economics is one thing and economists are another."

—Prof. Haney.

में आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि अठारहवीं शताब्दी से पूर्व के बिखरे और अपरिपक्व विचारों का अध्ययन करना युक्तिसंगत नहीं है। इस मत के विद्वानों में प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide and Rist), कैनन (Cannan), डहरिंग (Dubring), शुम्पीटर (Schumpeter) तथा जे० बी० से (J. B. Say) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने अपनी पुस्तक "आर्थिक सिद्धान्तों का इतिहास" (A History of Economic Doctrines) की आरम्भना अठारहवीं शताब्दी के निर्बाधवादियों से की है। कैनन ने अपनी पुस्तक "आर्थिक सिद्धान्त पर विचार" (Review of Economic Theory) में लिखा है कि "यदि हम ग्रीक दार्शनिकों के लेखों में आर्थिक विचार पाने की आशा करते हैं तो यह हमारी भूल है।* इसी तरह डहरिंग ने अपनी पुस्तक "Kritische Geschichteder National Okonomie unddes Sozialismus" में यह दावा किया है कि न तो प्राचीन और न ही मध्यकालीन विचारकों ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कुछ भी स्थिर योगदान नहीं किया है। शुम्पीटर ने भी ग्रीक दार्शनिकों के परोक्ष प्रभाव को स्वीकार करते हुए उनके विस्तृत योगदान को कम बताया है। जे० बी० से का भी यह मत है कि त्रुटियों के इतिहास (History of Error) से कोई लाभदायक सिद्धी नहीं होती है।† वस्तुतः इन विद्वानों की ऐसी धारणा सत्य नहीं है क्योंकि यह आवश्यक है कि एक व्यक्ति जो कि सत्य की खोज में कुछ प्रगति करना चाहता है वह अपने सदृश्य अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई गलतियों का भी अध्ययन करे। प्रो० हेने के मतानुसार भी, "यद्यपि ये विचार जिनसे कि बाद के सिद्धांत अंशतः निर्मित हुए, अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से वैज्ञानिक युग से पूर्व के माने जाते हैं, तथापि विज्ञान की गति को निर्धारित करने के संदर्भ में इनके महत्व की अवहेलना नहीं की जा सकती।"‡

---

* "We should be disappointed, if we expected to find interesting economic speculation in the writings of the Greek philosophers."—Cannan : Reviw of Economic theory, P. 2.

† "What useful purpose can be served by the study of absurd opinions and doctrines that have long ago been exploded and observed to be ? It is meve useless pedantry to attempt to revive them. The more perfect a science becomes the shorter becomes its history. Alembert truely remarks that the more light we have on any subject the less need is there to occupy ourselves with the false or doubtful opinions to which it may have given rise. Our duty with regard to errors is not to revive them, but simply to forget them." —J. B. Say : Traite Pratique, Vol II, P. 40

‡ "Yet these thoughts are the stuff of which the later economic theories were partly made, and although from the point of view of Economics they hail from a prescientific period, their importance as a factor in determining the course of the science may not safely be overlooked." —Prof Haney.

अन्य दूसरे सामाजिक विज्ञानों की तरह आर्थिक विचारों का उद्भव भी ग्रीक दार्शनिकों से माना जाता है, यद्यपि ग्रीक दार्शनिकों से पूर्व भी हिब्रू (Hebrews) और यहूदी (Jewish) समाज के व्यक्तियों के आर्थिक विचार देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार प्राचीन भारत में मनु, बृहस्पति शुक्राचार्य, चाणक्य आदि विभिन्न विचारकों के आर्थिक विचार देखने को मिलते हैं। आचार्य चाणक्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "अर्थशास्त्र" में भौतिक सम्पदा की प्रकृति एवं उद्देश्य, कृषि के महत्व तथा सार्वजनिक वित्त आदि अनेक विषयों पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। प्रो० हेने का मत है कि पूर्वी विचारकों ने जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण की ओर अथवा औद्योगिक विकास की ओर कम प्रवृत्ति दिखाई है तथा उनके विचारों को नैतिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण ने अधिक प्रभावित किया है। हिब्रू समाज के विचार भारतीय विचारों से बड़ी सीमा तक मेल खाते हैं, दोनों ही में पुरातन सभ्यता, कृषि अर्थव्यवस्था एवं धार्मिकता पर बल डाला गया है।

यूनानी दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) और प्लेटो (Plato) ने अनेक ऐसे आर्थिक विचार प्रदान किये हैं जिनके आधार पर अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का स्वरूप सुधर सका है। प्लेटो के मतानुसार राज्य का उद्भव मानव-जीवन को अधिक सुरक्षित रूप देने के हेतु हुआ है। उन्हीं के शब्दों में, "जैसा कि मैं समझता हूं, कोई भी व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं है जबकि हम सब अनेक आवश्यकतायें रखते हैं......तथा अनेक व्यक्ति उनको पूरा करना चाहते हैं। एक व्यक्ति एक उद्देश्य के हेतु, एक मददगार लेता है तथा दूसरा व्यक्ति दूसरे उद्देश्य को पूरा करने के हेतु और जब ये सहभागी और मददगार एक प्रवृत्ति में एकत्रित होते हैं तो इनके निकाय को राज्य की संज्ञा दी जाती है......और वे परस्पर विनिमय करते हैं अर्थात् एक देता है और दूसरा प्राप्त करता है और उनके सम्मुख यह विचार रहता है कि यह विनिमय उनकी भलाई के लिए होगा।* प्लेटो ने अपनी पुस्तक "रिपब्लिक" में श्रम-विभाजन सम्बन्धी विचार भी प्रस्तुत किए हैं। उनका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा वही कार्य किया जाना चाहिए जो कि उसकी रुचि के अनुकूल हो तथा दूसरे कामों को उसे दूसरे व्यक्तियों के लिये छोड़ देना चाहिए। इस तरह प्लेटो का श्रम-विभाजन आवश्यकताओं के विश्लेषण पर आधारित था। अपने वंशानुगत अधिकार सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करते हुए प्लेटो ने कहा है कि हर एक व्यक्ति अपनी सम्पदा को केवल

---

* "A State arisers, as I conceive, out of the needs of mankind, no one is self sufficing, but all of us have many wants...and many persons needed to supply them, one takes a helper for one purpose, another for another purpose, and when these partners and helpers are gathered together in one hab t tion the body of inhabitants is termed a State...and they exchange with another, and one gives, and other receives, under the idea that exchange will be for their good," —Plato

एक ही उत्तराधिकारी को दे सकेगा। प्लेटो का यह विचार इंगलैंड में प्रचलित वर्तमान ज्येष्ठत्वाधिकार के सदृश्य है। ताकि राज्य की जनसंख्या आवश्यकता से अधिक न हो जाए, इसलिए प्लेटो ने जनसंख्या पर प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया है।

प्रो० एरिक रोल (Eric Roll) के मतानुसार यदि प्लेटों प्रथम सुधारक था तो उसका शिष्य अरस्तु प्रथम विश्लेषणात्मक अर्थशास्त्री था (If Plato was the first of a longlive of reformers, his pupil, Aristotle, was the first analytical economist.)। अरस्तु के विश्लेषणात्मक विचारों को तीन वर्गों में रक्खा जा सकता है अर्थात् अर्थशास्त्र के क्षेत्र की परिभाषा (Definition of the Scope of Fconcmics), विनिमय का विश्लेषण (Analysis of Exchange) तथा द्रव्य का सिद्धांत (Theory of money)। अरस्तु के मतानुसार अर्थव्यवस्था दो भागों में विभाजित है। मूल अर्थव्यवस्था (Economy Proper) जो कि घरेलू व्यवस्था की विज्ञान है तथा पूर्ति का विज्ञान (Science of Supply) जोकि प्राप्ति की कला से सम्बन्धित है। आपूर्ति के विज्ञान की व्याख्या के संदर्भ में अरस्तु ने विनिमय कला का विवेचन किया है। उसने विनिमय को प्राकृतिक और अप्राकृतिक दो स्वरूपों में विभाजित किया है। अरस्तु ने लिखा है, "जो वस्तु हमारे पास है उसके दो उपयोग होते हैं: दोनों ही उस वस्तु से सम्बन्धित होते हैं परन्तु एक रूप में नहीं क्योंकि एक पूर्ण है और दूसरा अपूर्ण अथवा इसका द्वैतीयक उपयोग। उदाहरणार्थ, एक जुता पहिनने के उपयोग में भी आता है और विनिमय के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है; दोनों ही जूते के उपयोग हैं"* इन शब्दों में अरस्तु ने उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य के बीच अन्तर स्पष्ट कर दिया। द्रव्य के सिद्धांत के संबंध में अरस्तु ने भी प्लेटों के मत को स्वीकार करते हुए कहा है कि द्रव्य विनिमय के हेतु एक तरह का प्रतीक है। उसने द्रव्य को धन का संचय करने का माध्यम, मूल्य का मापक तथा भुगतान का प्रमाण बताया है।

प्लेटों और अस्तु की तरह यूनानी दार्शनिक जीनफन (Zenophon) के आर्थिक विचार भी काफी महत्व पूर्ण है। उसने कृषि-व्यवस्था को विशेष महत्व प्रदान किया और उसे हरएक दृष्टिकोण से समाज के लिए हितकर ठहराया। प्लेटों की तरह जीनफन निश्चित जनसंख्या का पक्षपाती नहीं था क्योंकि उसका मत था कि जनसंख्या की वृद्धि होने से प्राकृतिक साधनों का अधिकतम शोषण सम्भव हों सकेगा

---

* "Of every thing which we possess there are two uses : both belong to the thing as such, but not in the same manner, for one is the proper, the other in improper or secondary use of it. For example, a shoe is used for wear, and is used for exchange, both are uses of the shoe." —Aristotle : Politics, Book I, Chapter IX.

जिसके द्वारा समाज अधिक सुख-सम्पन्न हो सकेगा। जीनफन के श्रम-विभाजन सम्बन्धी विचार तथा द्रव्य और धन का स्पष्टीकरण भी काफी महत्वपूर्ण है।

प्राचीन यूनानी आर्थिक विचारों के साथ साथ प्राचीन रोम के आर्थिक विचारों का विश्लेषण भी आवश्यक हो जाता है, यद्यपि वे इतने अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। न्यायशास्त्र के विचारों के अतिरिक्त रोम के प्राचीन आर्थिक विचारों मे नवीनता के दर्शन नहीं होते और उन पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसी मत को व्यक्त करते हुए प्रो० हेने (Prof Haney) ने लिखा है कि," यह कहना पर्याप्त है कि न्यायशास्त्र को अलग रखते हुए, रोम के व्यक्तियों के मुख्य लेख ग्रीक विचार मे प्रभाव के अन्तर्गत उद्भूत हुए तथा उनकी कला के मामले मे ताजगी और मौलिकता का दृष्टव्य अभाव सर्वत्र दिखाई देता है।"* रोम के आर्थिक विचारो के सम्बन्ध के मुख्य बात यह है कि जिस समय रोम मे आर्थिक विचारो का उद्भव हुआ उस समय रोम की सभ्यता अपनी पतनावस्था को प्राप्त कर चुकी थी। अतएव अतीत की सुखद स्मृति और तात्कालिक विडम्बना ने उनके विचारो को कुछ बोझिल सा बना दिया है।†

प्राचीन रोम मे आर्थिक विचारो का निरूपण करने वालो मे वहाँ के न्यायशास्त्रियो, दार्शनिकों तथा कृषि-लेखको का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रोम के न्यायशास्त्रियों ने मानवीय नियम (Human Law) और प्राकृतिक नियम (Natural Law) के बीच अन्तर बताया तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति एव प्रसंविदा सम्बन्धी विचारो का विश्लेषण किया। प्राचीन रोम के आर्थिक विचारो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिलती है कि उनमे व्यक्तिगत तत्वों को अव्यक्तिगत तत्वो से पृथक किया गया और अव्यक्तिगत तत्वों को अधिक महत्व प्रदान किया गया। प्रो० हेने के मतानुसार अव्यक्तिगत तत्वों पर आधारित करके रोम वालो ने अर्थशास्त्र को विनिमय-विज्ञान बनाने का प्रयास किया। यूनानी और रोमन विचारकों के आर्थिक विचारो मे सर्वाधिक समानता कृषि सम्बन्धी विचारों

* "Suffice is to say that aside from jurisprudence, the chief writings of the Romans were produced under the influence of Greek thought, and, as in the case of their art, a notable lack of freshness and originality is apparent."

—Prof. Haney, History of Economic Thought, P. 73.

† "It is, therefore, mixed up with a good deal of head shaking over evil times and lamentations, doubtless sincere, over the departure of the primitive simplicity. It thus becomes on one side a criticism of the weakness of the times, and the praise of agriculture a common feature of ancient thought, is in part also sign for a vanished simplicity and a censure of prevailing obstentation and greed"

—Prof. Grey : The Development of Economic Thought, P. 33.

इस तरह मध्य कालीन युग में अनेक आर्थिक सिद्धान्तों का निरूपण हुआ। इस काल में नैतिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का बोल बाला रहा जिसके कारण अनेक आर्थिक क्रियाओं को महान पाप के रूप मे अवरुद्ध होना पड़ा। इस युग मे धार्मिक व्यक्तियों द्वारा व्यापार को अप्राकृतिक, ब्याज को बुराई तथा आर्थिक क्रियाओं को मानव की लालची प्रवृत्ति बताया गया। परन्तु इस तरह के धार्मिक नियमों में भी त्रुटियां थी जिसके कारण व्याणिज्यिक पूंजीवाद का तेजी से विकास हुआ जिसके आगे चर्च ठहर नही सका। मध्यकालीन आर्थिक विकास तथा आर्थिक विचारों के इतिहास को किये गये योगदान को बताते हुए फ्रैंक नेफ (Frank Neff) ने लिखा है कि, "मध्ययुगीय शताब्दियों की प्रगति के साथ-साथ व्यापार का विस्तार हुआ, नगरों का तीव्रता से विकास हुआ, तथा स्थानीय उद्योग एवं सरकार मे संघो ने एक अधिकार मुक्त-स्थिति प्राप्त की, समाज मे महत्वपूर्ण परिवर्तनों के प्रभाव ने कीमत और विनिमय के माध्यम की व्याख्या की। उचित-मूल्य तथा मौद्रिक नीति, जो कि आजकल भी अधिक प्रभाव शील हैं, के समर्थक सिद्धान्तों का विकास हुआ।"*

---

* "As the centuries of Middle Ages progressed, trade expanded, towns began a vigorous growth and the guilds assumed an authoritative position in local industry and government, the influence of the significant changes in society promted the discussion of price and the medium of exchange. Theories were evolved supporting the principles of just price and monetary policy which are still influential today."
—Frank Neff.

में देखने को मिलती है क्योंकि दोनों ही देशों के विचारकों ने कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया है। रोमन दार्शनिक सिसरो (Cicero) के शब्दों में "लाभ प्राप्ति के सभी साधनों में से कृषि के समान अन्य कोई उत्तम नहीं है; उत्पादक नहीं है, अधिक सुखकर नहीं है, स्वतन्त्र मस्तिष्कीय व्यक्ति के अधिक योग्य नहीं है"*। रोमन न्यायशास्त्रियों के अतिरिक्त रोमन दार्शनिकों एवं कृषि-लेखकों के विचारों में सर्वत्र यूनानी विचारों का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

पांचवी शताब्दी में रोमन सम्राज्य के पतन के पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मानव-जाति की आर्थिक-क्रियाओं एवं आर्थिक विचारों में किसी विशेष प्रकार की उथल-पुथल नहीं हुई और वे पूर्ववत् बने रहे। इसी कारण कुछ आलोचकों ने इस लम्बी अवधि को 'शांत-युग' कहकर सम्बोधित किया है, जब कि कुछ दूसरे आलोचकों ने इसे अन्धकार का युग कहा है। पांचवी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक की अवधि में ईसाई धर्म ने विशेष कर रोम की संस्थाओं का विरोध किया तथा जर्मन रीति-रिवाजों ने अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। बारहवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक की अवधि में सामन्तवाद (Feudalism) और स्कालेस्टिजम का जन्म हुआ। स्कालेस्टिजम का जन्म ईसाई धर्म, चर्च एवं अरस्तू के विचारों को मिलकर हुआ। इस वाद का जन्मदाता टॉमस आकिनास (Thomas Aquinos) था जिसने अपने विचारों में इस बात को सिद्ध करने का प्रयास कि आर्थिक संस्थाओं में अर्थात व्यक्तिगत सम्पत्ति, मुद्रा, व्यापार एवं मजदूरी आदि में ईसाइसियों का न्याय सिद्धांत (Christian Idea of Justice) कार्य शील है। उसका मत था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति शांति को स्थापित करने, उत्पादन को बढ़ाने और व्यक्तियों में सद्भावना उत्पन्न करने के हेतु वांछनीय है। उचित-मूल्य की धारणा का स्पष्टीकरण करते हुये टॉमस आकिनास ने कहा कि हर एक वस्तु में एक अन्तर्निहित मूल्य (उचित-मूल्य) होता है जो कि उसकी लागत-व्यय द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। प्रो० हेने (Haney) ने स्कालेस्टिजम के उचित मूल्य के विचार का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है।" उचित मूल्य का सिद्धान्त यह था कि हर एक वस्तु एक वास्तविक मूल्य रखती है जो कि निरंकुश है और जो कि लागत-व्यय के सामान्य अनुमान, जो कि मुख्यतः श्रम पर आधारित है, के आधार पर निर्धारित होता है तथा विषयगत बनता है।"†

---

* "But of all means of acquiring gain, nothing is better than agriculture, nothing more productive, nothing more pleasant, nothing more worthy of a man of liberal mind."　　　—Cicero.

† "The doctrine 'just price' was that every commodity has some one true value which is absolute, and is to be determined and be made objective on the basis of common estimation of the cost of production. which usually covers labaur."

—Prof. Heney. : History of Economic Thought, P. 99.

इस तरह मध्य कालीन युग में ग्रनेक ग्रार्थिक सिद्धान्तों का निरूपण हुग्रा। इस काल मे नैतिक ग्रौर धार्मिक प्रवृत्तियो का बोल बाला रहा जिसके कारण ग्रनेक ग्रार्थिक क्रियाग्रों को महान पाप के रूप में ग्रवरूद्ध होना पडा। इस युग मे धार्मिक व्यक्तियो द्वारा व्यापार को ग्रप्राकृतिक, ब्याज को बुराई तथा ग्रार्थिक क्रियाग्रों को मानव की लालची प्रवृत्ति बताया गया। परन्तु इस तरह के धार्मिक नियमो मे भी त्रुटियां थी जिसके कारण व्याणिज्यिक पूजीवाद का तेजी से विकास हुग्रा जिसके ग्रागे चर्च ठहर नही सका। मध्यकालीन ग्रार्थिक विकास तथा ग्रार्थिक विचारो के इतिहास को किये गये योगदान को बताते हुए फ्रैन्क नैफ (Frank Neff) ने लिखा है कि, "मध्ययुगीय शताब्दियो की प्रगति के साथ-साथ व्यापार का विस्तार हुग्रा, नगरों का तीव्रता से विकास हुग्रा, तथा स्थानीय उद्योग एव सरकार में सघो ने एक ग्रधिकार युक्त–स्थिति प्राप्त की, समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तनो के प्रभाव ने कीमत ग्रौर विनिमय के माध्यम की व्याख्या की। उचित–मूल्य तथा मौद्रिक नीति, जो कि ग्राजकल भी ग्रधिक प्रभाव शील हैं, के समर्थक सिद्धान्तो का विकास हुग्रा।"*

---

* "As the centuries of Middle Ages progressed, trade expanded, towns began a vigorous growth and the guilds assumed an authoritative position in local industry and government, the influence of the significant changes in society promted the discussion of price and the medium of exchange. Theories were evolved supporting the principles of just price and monetary policy which are still influential today."
—Frank Neff.

में देखने को मिलती है क्योंकि दोनों ही देशों के विचारकों ने कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया है। रोमन दार्शनिक सिसरो (Cicero) के शब्दों में "लाभ प्राप्ति के सभी साधनों में से कृषि के समान अन्य कोई उत्तम नहीं है; उत्पादक नहीं है, अधिक सुखकर नहीं है, स्वतन्त्र मस्तिष्कीय व्यक्ति के अधिक योग्य नहीं है"*। रोमन न्याय-शास्त्रियों के अतिरिक्त रोमन दार्शनिकों एवं कृषि-लेखकों के विचारों में सर्वत्र यूनानी विचारों का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

पांचवी शताब्दी में रोमन सम्राज्य के पतन के पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मानव-जाति की आर्थिक-क्रियाओं एवं आर्थिक विचारों में किसी विशेष प्रकार की उथल-पुथल नहीं हुई और वे पूर्ववत् बने रहे। इसी कारण कुछ आलोचकों ने इस लम्बी अवधि को 'शांत-युग' कहकर सम्बोधित किया है, जब कि कुछ दूसरे आलोचकों ने इसे अन्धकार का युग कहा है। पांचवी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक की अवधि में ईसाई धर्म ने विशेष कर रोम की संस्थाओं का विरोध किया तथा जर्मन रीति-रिवाजों ने अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। बारहवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक की अवधि में सामन्तवाद (Feudalism) और स्कालेस्टिजम का जन्म हुआ। स्कालेस्टिजम का जन्म ईसाई धर्म, चर्च एवं अरस्तू के विचारों को मिलकर हुआ। इस वाद का जन्मदाता टॉमस आकिनास (Thomas Aquinos) था जिसने अपने विचारों में इस बात को सिद्ध करने का प्रयास कि आर्थिक संस्थाओं में अर्थात व्यक्तिगत सम्पत्ति, मुद्रा, व्यापार एवं मजदूरी आदि में ईसाइसियों का न्याय सिद्धांत (Christian Idea of Justice) कार्य शोल है। उसका मत था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति शांति को स्थापित करने, उत्पादन को बढ़ाने और व्यक्तियों में सद्भावना उत्पन्न करने के हेतु वांछनीय है। उचित-मूल्य की धारणा का स्पष्टीकरण करते हुये टॉमस आकिनास ने कहा कि हर एक वस्तु में एक अन्तर्निहित मूल्य (उचित-मूल्य) होता है जो कि उसकी लागत-व्यय द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। प्रो० हेने (Haney) ने स्कालेस्टिजम के उचित मूल्य के विचार का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है।" उचित मूल्य का सिद्धान्त यह था कि हर एक वस्तु एक वास्तविक मूल्य रखती है जो कि निरंकुश है और जो कि लागत-व्यय के सामान्य अनुमान, जो कि मुख्यत: श्रम पर आधारित है, के आधार पर निर्धारित होता है तथा विषयगत बनता हैं।"†

---

* "But of all means of acquiring gain, nothing is better than agriculture, nothing more productive, nothing more pleasant, nothing more worthy of a man of liberal mind." —Cicero.

† "The doctrine 'just price' was that every commodity has some one true value which is absolute, and is to be determined and be made objective on the basis of common estimation of the cost of production. which usually covers labaur."
—Prof. Heney. : History of Economic Thought, P. 99.

इस तरह मध्य कालीन युग मे अनेक आर्थिक सिद्धान्तों का निरूपण हुआ। इस काल में नैतिक और धार्मिक प्रवृत्तियो का बोल बाला रहा जिसके कारण अनेक आर्थिक क्रियाओं को महान पाप के रूप मे अवरुद्ध होना पड़ा। इस युग मे धार्मिक व्यक्तियों द्वारा व्यापार को अप्राकृतिक, ब्याज को बुराई तथा आर्थिक क्रियाओं को मानव की लालची प्रवृत्ति बताया गया। परन्तु इस तरह के धार्मिक नियमो मे भी त्रुटियां थी जिसके कारण व्याणिज्यिक पूंजीवाद का तेजी से विकास हुआ जिसके आगे चर्च ठहर नही सका। मध्यकालीन आर्थिक विकास तथा आर्थिक विचारो के इतिहास को किये गये योगदान को बताते हुए फ्रैन्क नेफ (Frank Neff) ने लिखा है कि, "मध्ययुगीय शताब्दियो की प्रगति के साथ-साथ व्यापार का विस्तार हुआ, नगरो का तीव्रता से विकास हुआ, तथा स्थानीय उद्योग एवं सरकार मे संघो ने एक अधिकार युक्त-स्थिति प्राप्त की, समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के प्रभाव ने कीमत और विनिमय के माध्यम की व्याख्या की। उचित-मूल्य तथा मौद्रिक नीति, जो कि आजकल भी अधिक प्रभाव शील हैं, के समर्थक सिद्धान्तो का विकास हुआ।"*

---

* "As the centuries of Middle Ages progressed, trade expanded, towns began a vigorous growth and the guilds assumed an authoritative position in local industry and government, the influence of the significant changes in society promted the discussion of price and the *medium of exchange. Theories were evolved supporting the principles* of just price and monetary policy which are still influential today." —Frank Neff.

२

वणिकवाद
(Mercantilism)

प्राक्कथन— मध्यकालीन जगत अनेक कारकों द्वारा जो कि इसकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संरचना के पीछे कार्यशील थे, हटा दिया गया तथा चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान में विश्व महान संक्रमण में प्रविष्ट हुआ। राष्ट्रीय राज्यों के विकास ने पूर्व शताब्दी के विशेपतावाद (Particularism) और सामन्तवाद (Feudalism) को समाप्त कर दिया तथा आर्थिक क्रियाओं की धार्मिक एवं नैतिक प्रकृति को पूर्णतया ठुकरा दिया गया। प्राकृतिक नियम की धारण के विस्तार तथा राजनैतिक विचारधारा के विकास के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं के समाधान के हेतु बौद्धिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। इसी तरह आर्थिक आविष्कार नैतिकता एवं धर्म की तानाशाही से मुक्त हो गये। सामन्तवाद के पतन के फलस्वरूप कृषि-उत्पादन-प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये जिन्होंने आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के बन्धनों को मुक्त कर दिया। इंगलैण्ड में वाणिज्य के विकास के फलस्वरूप जीविका-निर्वाह खेती के नए प्रतिस्थापक का जन्म हुआ। उद्योग के क्षेत्र में भी इसी तरह की प्रगति हुई जिसके फलस्वरूप व्यापारी-पूंजीपतियों का विकास हुआ जिन्होंने उत्पत्ति की प्रक्रिया पर आधिपत्य जमा लिया। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस दौरान में व्यापारी वर्ग का महत्व बढ़ता गया जिसे राष्ट्रीय सरकार से सहायता मिली औरजिसकी शक्ति प्रगति के दौरान में प्राप्त की गई धन की मात्रा से निर्धारित मानी जाती थी। आर्थिक-क्रियाओं के क्षेत्र में व्यापारी वर्ग ने एकाधिकारी की स्थिति प्राप्त कर ली जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप उस समय के कुछ विचारकों ने गैर-एकाधिकारी आन्दोलन (Anti-monoply compaign) चलाया फिर भी व्यापारी वर्ग की एकाधिकारी स्थिति आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में (विशेषकर विदेशी व्यापार के क्षेत्र में) पूर्ववत् रही जिसके प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप उपनिवेशवादी-क्रियाओं तथा उपनिवेशीय एकाधिकारी संघों को जन्म मिला। इन सब बातों से सामाजिक विचारधारा भी प्रभावित हुई जिसके फलस्वरूप एक ऐसी विचारधारा को जन्म मिला जिसके अन्तर्गत तत्कालिक प्रवृत्तियों का समर्थन किया गया तथा पूर्व-कालिक प्रवृत्तियों एवं विश्वासों की तीव्र आलोचना की गई। इसी विचारधारा को वणिकवाद (Mercantilism) के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इस प्रकार वाणिकवाद १६वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोपिय देशों में प्रचलित आर्थिक विचारधारा का नाम है। प्रो० एराह्म के मतानुसार, "वाणीकवाद लेखकों की एक लम्बी श्रृंखला के योगदान से उद्भूत एक

नवीन सिद्धांत को दी गई संज्ञा थी" ।* इस तरह स्पष्ट है कि यह आर्थिक विचार-धारा किसी एक लेखक के मस्तिष्क की उत्पत्ति नहीं थी और यह किसी निश्चित दिशा एवं नीति पर भी आधारित नहीं थी । वाणिकवादी विचार-धारा के समर्थक इंगलैंड, फ्रांस आस्ट्रिया और इटली आदि अनेक देशों में फैले हुए थे और ये व्यक्ति भी कुशल विचारक न होकर व्यापारी, राजनीतिज्ञ और प्रबन्धक ही थे । इन विभिन्न देशीय व्यक्तियों ने अपने-अपने विचारों को तत्कालिक अर्थव्यवस्था को समुन्नत करने की दिशा में व्यक्त किया । आर्थिक विचारधारा की इस पद्धति को विभिन्न नामों से पुकारा गया । कुछ विचारकों ने इसे 'धातुवाद' (Bullionism) कहना अधिक उचित समझा क्योंकि वणिकवादी विचारक स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति पर अधिक महत्व देते थे । दूसरे विद्वानों ने इस विचारधारा को 'प्रतिबन्ध मुक्त व्यवस्था' (Restrictivesystem) कहना अधिक तर्कसंगत समझा है क्योंकि उनके विचार में विणिकवादियों के अनुकूल व्यापारिक सतुलन बनाये रखने के हेतु प्रतिरोध अथवा प्रतिबन्धों पर अधिक महत्व दिया था । कुछ अन्य लेखकों ने इस विचारधारा को 'वाणिज्य पद्धति' (Commercial System) की संज्ञा दी है क्योंकि उनकी राय में वणिकवादियों ने व्यापार-वाणिज्य पर विशेष बल दिया था । इस विचारधारा को 'कालबर्टवाद' (Colbertism) की सज्ञा भी दी जाती है क्योंकि फ्रांसीसी वित्त-मंत्री मि० कालबर्ट (Colbert) ने तात्कालिक फ्रांस की आर्थिक नीति में अनेक संशोधन किये थे जिनके फलस्वरूप तात्कालिक विचारों को एक नया मोड़ प्राप्त हुआ । वस्तुतः इस विचारधारा को 'वाणिकवाद' की सज्ञा देना ही अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है क्योंकि इसमें उस काल की सभी प्रमुख आर्थिक नीतियों, पद्धतियों एवं विचारधाराओं का बोध होता है । प्रो० हैने (*Prof Haney*) का अपना मत भी कुछ इसी तरह का है । उन्हीं के शब्दों में "इस प्रथम उत्तर मध्यकालीन युग के आर्थिक विचारों एवं तत्सम्बन्धी नीतियों को वाणिज्य-पद्धति, कालबर्टवाद, प्रतिबन्धक पद्धति, व्यापारिक-पद्धति और वाणिकवाद आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया । चूंकि ये समस्त विचारक पूर्णतया किसी पद्धति का निर्माण नहीं करते और ये विचार किसी एक व्यक्ति के भी नहीं है और न ही किसी एक केन्द्रीय आर्थिक विचार की ओर उन्मुख हैं, इसलिये इस विचारधारा को वणिकवाद की संज्ञा देना ही अधिक युक्तियुक्त है ।"†

---

* "Mercantilism was the term that was applied to the new doctrine [illegible] writers."

† [illegible] cteristics [illegible] have been variously style[illegible] [illegible] system, Co[illegible]tism, Restictive system, Commercial system and Mercantalism. As they do not properly form a [illegible] 'ateal

प्रमुख वणिकवादी विचारको में एन्टोनियो सीरा (Antonio Serra), टॉमस मन (Sir Thomas Mun), सर जोशिया चाइल्ड, (Sir Josiah Child), रिचार्ड कैण्टिलन (Richard Cantillion), जे० बी० कालबर्ट (J.B, Colbert), हार्निक (Harnigk) तथा जेम्स स्टुआर्ट (James Stuart) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब विचारकों में से प्राथमिक महत्व इटली के व्यापारी एन्टोनियो सीरा को दिया जाता है जिसकी प्रसिद्ध पुस्तक "The causes which can make Gold and Silver abound Kingdom" वणिकवादी विचारों की परिकाष्ठा है। एन्टोनियो सीरा ने निर्माण-उद्योग को कृषि से ऊंचा ठहराया तथा निर्माण-उद्योग की वस्तुओं के व्यापार द्वारा धन एकत्रित करने पर बल डाला। उन्हीं के शब्दों में," जबकि किसी देश अथवा नगर में विभिन्न प्रकार के आवश्यक और सुविधाजनक तथा मानवीय उपयोग के हेतु सुखदायक व्यापारों का विकास होगा जिनसे देश की आवश्यकताओं से अतिरिक्त उत्पत्ति होगी तो इस तरह उद्योगों की मात्रा एक राज्य या नगर को द्रव्य से भरपूर कर देगी।"* यह स्मरणीय है कि वणिकवाद सिद्धांत की अपेक्षा व्यवहार अधिक था क्योंकि इसके सिद्धांतों को दार्शनिकों द्वारा फैलाया नहीं गया वरन् उनमें व्यापारिक नेताओं, सरकारी कर्मचारियों और सम्पादकों द्वारा घटौती ही की गई। यहां तक कि नीतियों में भी एकता नहीं थी तथा धातुवादियों एवं वणिकवादियों ने दो विभिन्न लक्ष्यों एवं नीनियों का प्रतिनिधित्व किया।

वणिकवाद के उद्भव एवं विकास के कारण (Factors of Origin and Progress of mercantilism):—वणिकवादी विचारधारा का जन्म कब हुआ और और कब इसका अन्त हुआ, यह बताना बहुत कठिन है जैसा कि प्रो० हेने ने भी लिखा है कि, "यह बताना अभी कठिन है कि वणिकवाद कब राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धांत में रूप में आया और कब इसका अन्त हुआ। सत्यता यह है कि वणिकवादी विचारको की विशेषताएं न्यूनाधिक रूप में हरएक युग में पायी जाती है"। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि सैद्धाँतिक रूप में इस विचारधारा का प्रादुर्भाव सन् १६१६ में एन्टोनियो सीरा की "The Causes which can make Gold and silver abound in Kingdom" नामक पुस्तक प्रकाशित होने पर हुआ,

---

† "The quantity of industry will make a kingdom or city abound in money, when many and varied trades, necessary or convenient or pleasant for human use, are carried on there, in quantities inexcess of the needs of the country." —Antonio Serra.

* "It is different to tell just when mercantilism came to be the guiding principle of state-policy or when it sway ended. The truth is that the ideas which are most characteristic of the mercantalists have always existed to a greater or lesser extent." —Haney.

यद्यपि वणिकवादी विचारधारा व्यवहार में १६ वी शताब्दी से विद्यमान थी। वणिकवादी विचारधारा को जन्म देने के हेतु निम्नोक्त तात्कालिक राजनैतिक, सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक दशाएं उत्तरदाई है.—

(क) सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक दशाएं (Social, Economical and Political conditions)—तात्कालिक यूरोप की सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक दशाएं एवं उनमें होने वाले परिवर्तन वणिकवादी विचारधारा के उद्भव एवं विकास के हेतु काफी सीमा तक उत्तरदाई है। पन्द्रहवी शताब्दी के अंतिम चरण मे सामन्त वाद का पतन होने लगा तथा औद्योगिक क्षेत्र मे क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे जिसके फलस्वरूप तात्कालिक आर्थिक एवं सामाजिक संगठन भी कालातीत हो गए। सामन्तवादी युग मे कृषि और उद्योग अपनी प्रारंभिक अवस्था मे थे। सम्पूर्ण समाज सामन्त और कृषक दो विरोधी वर्गो मे विभाजित था। सामन्तों का भूमि पर एकाधिकार था और किसानों की स्थिति दास तुल्य थी क्योंकि वे अपने उत्पत्ति का एक बड़ा भाग तो सामन्तों को देते थे परन्तु साथ ही साथ उन्हें सामन्तों की बेगार भी करनी पड़ती थी। यद्यपि सामन्तों के ऊपर (जोकि ग्राम्य समुदायों के सर्वोच्च पदाधिकारी होते थे) एक राजा होता था। परन्तु उसकी शासन व्यवस्था, आर्थिक सुधार, न्याय एवं शांति की स्थापना की ओर कोई कोई रुचि न होकर भोग विलास की ओर अधिक रुचि थी और उसका एक मात्र कार्य करो की वसूली कर देना था परिणामस्वरूप परम्परावादी सामन्तवादी भूस्वामियो के बीच एक ओर तथा श्रेणियों अथवा नगरपालिकाओं के बीच दूसरी ओर परस्पर संघर्ष हुआ करते थे। इस समय तक राष्ट्रीय भावना का विकास नही हो पाया था। कानूनो के स्थान पर परम्परागत रूढ़िया एव रीतिरिवाज ही कार्यशील थे। इस तरह तात्कालिक यूरोपिय देशों की सामाजिक-राजनैतिक संरचना अत्यन्त दोषपूर्ण एवं शोचनीय थी और सर्वत्र परिवर्तन की मांग होने लगी।

तत्कालिक यूरोपिय देशो की आर्थिक-संरचना भी अधिक सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित नहीं थी। सामन्तवादी युग में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था प्रचलित थी। समस्त भूमि पर सामन्तवादी युग के भूस्वामियो का एकाधिकार था। इस समय तक उपभोग्य वस्तुओं का ही उत्पादन किया जाता था तथा व्यापारिक फसलो की खेती नही की जाती थी। उत्पादन का स्वभाव स्थानीय था जिसके कारण बाजार का क्षेत्र भी बहुत सकुचित था। औद्योगिक क्षेत्र मे स्थानीय बाजार की मांग को दृष्टिगत करते हुए छोटे पैमाने पर उत्पादन किया जाता था। इस समय तक द्रव्य का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था जिसके कारण विनिमय अपनी प्रारम्भिक-अवस्था (अदल-बदल) मे ही था। इस तरह सामन्तवादी युग में आर्थिक दशायें शोचनीय थी। कुछ लेखकों का विचार है कि वणिकवाद मकियावली (Machiavelli) और जीन बोदा (Jean Bodin) की राजनैतिक विचारधाराओं का ही प्रतिरूप है। प्रो० एब्राहम (Abraham) के शब्दों मे, "मैकियावली वणिकवादी दर्शन का अगुवा बन गया क्योंकि उसने राज्य

की आर्थिक क्रियाओं के नियमन एवं नियन्त्रण का अनुमोदन किया था। उसका यह अटट् विश्वास था कि इस तरह का नियमन और नियन्त्रण राज्य की शक्ति को बढ़ायेगा।"* इसी तरह जीन वोदां ने विदेशी व्यापार के लाभों, अनुकूल व्यापार-संतुलन एवं संरक्षण, स्वतन्त्र-व्यापार आदि पर वृहत प्रकाश डाला।

शनैः शनैः सामन्तवाद के पतन के साथ-साथ तात्कालिक सामाजिक–आर्थिक एवं राजनैतिक दशाओं में भी परिवर्तन होने लगे। राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये एक शक्तिशाली राजनैतिक संगठन की स्थापना के प्रयास किये जाने लगे जिसके फलस्वरूप सामान्तवादी भूस्वामियों के संगठित शासन-प्रबन्ध का अन्त होने लगा। रूढ़ियों (Mores) और रीति-रिवाजों (Traditions) के स्थान पर राजनैतिक नियम बनाए गये और हर तरह से केन्द्रीय शासन सत्ता को शक्तिशाली बनाया गया। आर्थिक-क्षेत्र में उत्पादन-व्यवस्था परिवर्तित होने लगी तथा उत्पादन की तकनीक में नवीन आविष्कार हुए। इसी समय नाविक के दिशायन्त्र (Compass) का आविष्कार हुआ जिसने नाविक को नए-नए देशों एवं महाद्वीपों की खोज करने की प्रेरणा प्रदान की। अतएव शनैः शनैः व्यापार का क्षेत्र स्थानीय से विस्तृत होकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय होता गया। इन सब आविष्कारों ने कृषि के स्वरूप को भी परिवर्तित किया उत्पत्ति के पैमाने में वृद्धि हुई, कृषि का उद्देश्य स्थानीय बाजार की माँग को पूरा न करके अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की माँग को पूरा करना हो गया तथा खाद्य–फसलों (Food Crops) के साथ-साथ व्यापारिक फसलें (Commercial Crops का उत्पादन भी होने लगा। अदल–बदल की कठिनाइयों के कारण मुद्रा का आविष्कार हुआ जिससे विनिमय कार्य बहुत सुविधापूर्ण हो गया। इस समय राष्ट्रीय निर्माण-उद्योगों को बढ़ावा मिला तथा कच्चे माल की पूर्ति व पक्के माल के विक्रय के हेतु नवीन उपनिवेशों की खोज की गई। देश के उत्पादन एवं व्यापार को नियन्त्रित करने के हेतु देश की अर्थ-व्यवस्था में राजकीय हस्तक्षेप वांछनीय हो गया जिसके फलस्वरूप राज्य के अधिकार-कर्त्तव्यों में अभिवृद्धि हुई। इस तरह स्थानीय अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप ग्रहण किया।

(ख) धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशायें (Religiouss Cultural Conditions)–तात्कालिक यूरोप की धार्मिक एवं साँस्कृतिक दशाओं में हुए परिवर्तन भी बड़ी सीमा तक वणिवादी विचारधारा के प्रादुर्भाव के हेतु उत्तराई रहे हैं। सामान्तवादी यूरोप में पोप की सत्ता निरंकुश थी जिसकी आज्ञा के बिना साधारण नागरिक से लेकर

* "Machiavelli became the herald of the mercantilist philosophy, as he advocated a policy of regulation and control of the economic activities of the state. It was his strong belief that such regulations and control would iscrease the power of the Prince."
—Prof. Abraham : History of Economic Thought, P. 26.

राजा तक कोई भी काम नहीं कर सकता था। सुधारवादी आन्दोलन ने पोप की इस निरंकुश सत्ता का विरोध किया तथा रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध क्रान्ति करके प्रोटेस्टेंट धर्म के रूप में ईसाई धर्म की नवीन व्याख्या की जो कि परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल थी। रोमन कैथोलिक चर्च के अनुसार भौतिक पदार्थ एवं द्रव्य आदि अवांछनीय वस्तुयें थीं जिनका त्याग करना ही उचित था। सुधारवाद ने इन विचारों का खण्डन करते हुए द्रव्य एवं द्रव्य-प्राप्ति की क्रियाओं को मनुष्य के लिए आवश्यक ठहराया जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद को प्रेरणा मिली जिसका मुख्य ध्येय वाणिज्य एवं स्वतन्त्र-विनिमय पद्धति को सुगम बनाना था। सुधारवाद ने राजकीय गिरजाघर स्थापित किए तथा राजा को इनका सर्वोच्च अधिकारी ठहराया। प्रो० हेने के शब्दों में, "जैसे ही चर्च ने अपनी निर्णायक-तत्व के रूप में स्थिति को खो दिया और विशेषकर हेनरी अष्टम के पश्चात् तब सर्वसाधारण में सामाजिक संस्थाओं और राज्य की बौद्धिक धारणा के लिए स्थान बनाया गया और यद्यपि 'दैवी अधिकारों' की बात प्रचलित रही तथापि व्यक्ति प्रमाण के आधार पर प्रश्न उठाने लगे तथा आर्थिक जीवन के विषय में तर्क के हेतु तैयार हो गए।"*

(ग) पुनर्जागरण आन्दोलन (Renaissance) :—सामन्तवादी युग में नागरिकों के आर्थिक विचारों और आर्थिक क्रियाओं पर रूढ़िवादी धार्मिक अन्धविश्वासों (यथा-ब्याज लेना पाप है, व्यापार करना उचित नहीं है आदि) तथा नैतिक नियमों का अधिक प्रभाव था जिसके फलस्वरूप इस युग में आर्थिक विचारधारा तथा आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई, परन्तु पुनर्जागरण आन्दोलन ने (जोकि एक सांस्कृतिक आंदोलन था) इस रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास का खण्डन करके नवीन मार्ग का प्रशस्तीकरण किया। नवीन विचारकों ने मानव के ऐहिलौकिक जीवन को सुखी व सम्पन्न बनाने पर अधिक जोर दिया तथा पारलौकिक जीवन के सुख की अवहेलना की। इस विचारधारा को कार्यरूप में परिणित करने के हेतु सम्पूर्ण यूरोप में सभ्यता व संस्कृति के सृजनशील तत्वों में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे। पुनर्जागरण आन्दोलन के विचारकों में एमर्सन, बेकन तथा रैवाइनस आदि दार्शनिक, कोपरनिकस, ब्रूनों, न्यूटन और गैलीलियो आदि वैज्ञानिक तथा विंची एवं ऐन्जलो आदि कलाकार सम्मिलित थे जिन्होंने अपने लेखों, आविष्कारों विचारों एवं कला से अज्ञान रूपी अन्धकार का अन्त करके नागरिकों में नवीन

---

* "As the church lost its position as the dominant factor—and particularly after Henry VIII seized church authority room was made for a more rational concept of the state and of social institution in general, and while talk of 'divine rights' continued men began to raise question as to the basis of authority, and became ... to reason about economic life."

—Prof. Heney : History of Economic Thought,

जागरण का संचार किया। संक्षेप में पुनर्जागरण आन्दोलन ने व्यापारिक-पूजीवाद (Commercial Capitalism) की स्थापना को प्रवृत्त किया। इस प्रकार की नवीन विचारधारा स्थापित करने वाले विचारकों को ही वाणिकवादी कहा जाता है।

वणिकवाद के प्रमुख सिद्धाँत एवं नीतियां (Main Theories and Policies of Mercantilism) :—यह उपरोक्त में लिखा जा चुका है कि वाणिकवादियों के सिद्धान्तों एवं नीतियों में एकरूपता एवं समानता का सर्वथा अभाव था क्योंकि इन विचारकों की अपनी कोई संगठित संस्था नहीं थी वरन् ये यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न समयान्तर में उत्पन्न हुए थे। यही कारण है कि वणिकवाद तथा वणिकवादी की कोई निश्चित परिभाषा देना बहुत कठिनप्रद है। फिर वणिकवाद एक सिद्धान्त के स्थान पर व्यावहारिक पद्धति थी जिसका यूरोप के विभिन्न देशों (इंगलैंड, फ्रांस, इटली, आस्ट्रिया आदि) में प्रयोग किया गया था। यह सब कुछ कहते हुए भी यह निर्विवाद सत्य है कि वणिकवादी पद्धति की कुछ आधार भूत बातें ऐसी थीं जिनसे लगभग सभी वणिकवादी सहमत थे। वणिकवाद के प्रमुख आधारभूत सिद्धान्त एवं नीतियां निम्नोक्त थीं :—

(१) स्वर्ण एवं रजत को महत्व (Importance to Gold and Silver)–वाणिकवादियों की दृष्टि में धन का सर्वोत्तम स्वरूप स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थ था। प्रसिद्ध इटैलियन वणिकवादी विचारक एन्टोनियो सीरा जिसने कि वणिकवादी सिद्धान्तों का सर्वप्रथम विकास किया, ने किसी देश में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों की उपस्थिति को विशेष महत्व दिया और इसीलिए उसने अपनी पुस्तक का नामकरण "A brief treat'se on the course which make gold and silver abundant in the kingdoms where there are no mines" किया। वाणिकवादियों का विचार था कि किसी देश की समुन्नति एवं सुरक्षा के हेतु स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों की उपलब्धि आवश्यक है। श्री जे० चाइल्ड (J. Child) का मत था कि किसी देश की समृद्धि की माप का स्तर उस देश में पाया जाने वाला स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों का परिमाण ही है। इस प्रकार वाणिकवादियों के अनुसार कोई देश उतना ही उन्नत, शक्ति-सम्पन्न, समृद्ध एवं खुशहाल माना जाएगा जितना अधिक उनके पास स्वर्ण-रजत का परिमाण होगा। स्पष्ट है कि वाणिकवादियों का धन संबंधी दृष्टिकोण बहुत संकुचित था। वाणिकवादी विचारकों का एकमात्र नारा था "अधिक स्वर्ण, अधिक सम्पत्ति, अधिक शक्ति" (More Gold, More Wealth, More Power)। सर विलियम पेटी (Sir William Petty) के मतानुसार, 'व्यापार का सबसे बड़ा अन्तरिम प्रभाव धन की वृद्धि करना नहीं है वरन् विशेष रूप से स्वर्ण-रजत एवं जवाहरात आदि की अभिवृद्धि करना जोकि दूसरी वस्तुओं की तरह न क्षयशील है और न तो परिवर्तनशील ही है वरन्

सब स्थानों और समयों पर सम्पत्ति होते हैं।"* इसी तरह टामस मन (Thomas Mun) का यह विचार था कि, "उन सब राष्ट्रों को, जिनके पास अपनी निजी खानें नहीं हैं, किसी एक समान दूसरे साधन से स्वर्ण रजत प्राप्त करना चाहिए।"‡

यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वाणिज्यवादियों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को इतना अधिक महत्व क्यों दिया ? वस्तुतः वणिक-वादियों द्वारा बहुमूल्य पदार्थों के एकत्रीकरण पर इतना अधिक बल दिये जाने के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार थे, सर्व प्रथम, इस काल तक वस्तु विनिमय का स्थान द्रव्य-विनिमय ने ले लिया था। अतएव वस्तु विनिमय के समाप्त होने की प्रक्रिया, मजदूरी प्रथा के प्रारम्भ, व्यापार के विकास आदि अनेक कारणों से द्रव्य की मांग अत्यधिक व्यापक हो गई थी और इसीलिए वणिकवादियों ने बहुमूल्य धातुओं पर विशेष बल दिया क्योंकि धात्विक मान की मुद्रा से दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं की अपेक्षा विनिमय अधिक सुविधापूर्वक किया जा सकता है और इसमें स्थिरता भी अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। प्रो हेने (Prof. Haney) के मतानुसार, "यद्यपि वणिकवाद को प्रत्यक्ष रूप से द्रव्य अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ नहीं कहा जा सकता, तथापि व्यापार के विकास, युद्ध की प्रणाली में परिवर्तन तथा मजदूरी प्रथा की प्रारम्भता ने द्रव्य को एक नया महत्व प्रदान किया।"† वाणिज्यवादी विचारकों द्वारा स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों पर विशेष बल दिये जाने का दूसरा कारण यह था कि उस काल में पूंजी विनियोजन की वर्तमानकालीन सुविधाएं उपलब्ध नहीं थी। अतएव इस बात की आवश्यकता हुई कि बची हुई सम्पत्ति का संचय किस तरह किया जाए। इस दशा में व्यक्तियों द्वारा अपनी कमाई सम्पत्ति को गाड़कर रखना स्वाभाविक था और इस दृष्टि से स्वर्ण-रजत आदि अक्षयशील पदार्थों का महत्व बढ़ जाना स्वाभाविक था। फिर सामन्तवाद के पतन के पश्चात् सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना हुई जिसके व्यय की पूर्ति सार्वजनिक करारोपण द्वारा ही सम्भव थी और चूंकि वस्तुओं के रूप में बड़े परिमाण में करों का एक भी कारण सुगम्य नहीं था, इसलिये धातु-मुद्रा के वाणिज्यवादियों द्वारा स्वर्ण-रजत को महत्व दिया जाना वांछनीय था।

---

† "The great and ultimate effect of trade is not wealth at large, but particularly abundance of silver, gold and jewels, which are not perishable, nor mutable as other commodities, but are wealth at all times and all places." —Sir William Petty.

‡ "All nations who have no mines of their own, are enriched with gold and silver by one and the same means." —Josiah Child.

* "Though mercantilism is not to be attributed directly to the rise of a money economy, still the growth of commerce, the changes in methods of warfare, and the introduction of system gave money a new importance."

(२) विदेशी व्यापार को महत्व (Importance to Foreign trade):— स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थो को महत्व दिए जाने के पश्चात् यह एक स्वाभाविक प्रश्न था कि जिन देशों में इन बहुमूल्य पदार्थों की खाने नहीं हैं वे इन बहुमूल्य पदार्थो को किस तरह से प्राप्त करें। इस समस्या के समाधान में वणिकवादी विचारकों ने विदेशी व्यापार के विकास का सुझाव दिया। थॉमस मन (Thomas Mun) के इन शब्दों से इसी बात की पुष्टि होती है "अपनी सम्पदा एवं कोश को बढ़ाने का साधारण साधन विदेशी व्यापार है···इसको प्रोत्साहित करना वांछनीय है क्योंकि इसके ऊपर राजा की बड़ी आय, राज्य का सम्मान, व्यापारियों का व्यवसाय, हमारी कला की संस्था, निर्धनों की आपूर्ति, भूमियों की समुन्नति, नाविक की शिक्षा, साम्राज्य की दीवारें, युद्ध की शक्ति तथा दुश्मनों में भय की उत्पत्ति निर्भर करते हैं।"‡ इस तरह वाणिकवादियों ने सब व्यवसायों में व्यापार को सर्वोत्तम बताया। सर जोशिया चाइल्ड (Sir Josian Child) ने बताया कि उन उद्योगों को सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिनमें जहाजरानी का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। वणिकवादियों के इस मत का समर्थन प्रो० हेने (*Haliey*) ने इन शब्दों में किया है," एक नाविक एक ही साथ कारीगर एक सिपाही तथा एक कुशल व्यापारी था और वे देश जहां कि स्वर्ण-रजत की खाने नहीं थीं विदेशी व्यापार के द्वारा ही बहुमूल्य पदार्थो को प्राप्त कर सकते थे।"*

वणिकवादियों ने इस संदर्भ में बताया कि कोई देश जिसमें स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थो की खाने नहीं हैं विदेशी व्यापार द्वारा स्वर्ण-रजत का एकत्रीकरण केवल उसी दशा में कर सकता है जबकि वह विदेशों को निर्यात अधिक मात्रा में करे और विदेशों से आयात कम मात्रा में करें अर्थात उसका व्यापाराशेष अनुकूल (Favourable Balance of Trade) रहे। इसलिए वणिकवादियों ने यह सुझाव दिया कि आयात को कम करने के हेतु विदेश निर्मित वस्तुओं का उपभोग अपने देश में घटाना चाहिये तथा निर्यात बढ़ाने के हेतु निर्यात वस्तुओं के उद्योग धन्धों को

---

‡ "The ordinary means...to increase our wealth and treasure is by Foreign trade...this ought to be encouraged, for upon it hangs the great revenue of the king, the honour of the kingdom, the notable profession of the merchant, the school of our arts, the supply of our poor, the improvements of our lands, the nursery of our mariners, the walls of the kingdom, the means of our treasure, the sinews of our wars, the terror of our enemies."

—Thomas Mun,

* "The sailor was at once an artisan, a soldier, and a potential merchant, that, fleets were valuable for defence, and that only through foreign commerce could countries having no mines obtain the coveted treasure in gold and silver." —Prof. Hanay.

प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में सर जोशिया चाइल्ड के ये शब्द महत्वपूर्ण हैं कि, "यह एक सामान्य प्राप्य मत है कि यदि निर्यात आयातों से अधिक हो जायें हैं तो इसका नतीजा यह होता है कि इस देश को विदेश से धातु की आमात होगी जिससे राज्य का कोष बढ़ेगा, स्वर्ण-रजत माध्यम के रूप में अपनाये जायेंगे तथा जीवन स्तर में वृद्धि होगी।"* प्रो० हेन के मतानुसार वणिकवादी विचारकों द्वारा अनूकूल व्यापारोधान की धारणा का अनुमोदन किये जाने के मुख्य कारण इस तरह थे –(अ) इसके द्वारा देश के बहुमूल्य धातुओं के कोष में वृद्धि सम्भव थी, (ब) इस नीति के द्वारा विदेशों का शोषण करके उन्हें निर्धन बनाया जा सकता है, (स) स्वदेश की स्थिति सुदृढ हो सकती थी तथा (द) विदेशी व्यापार द्वारा प्राप्य स्वर्ण-रजत का परिणाम उस देश के व्यापार का मापदण्ड था। प्रो० एब्राहम (Prof Abrahan) के मतानुसार, "व्यापारशेष को अनुकूल बनाये रखने के हेतु वणिकवादी विचारकों ने श्रमिकों की सख्या को बढ़ाने (अर्थात् बढती हुई जनसख्या) पूंजी के परिमाण को बढाने व्यापार को सरल बनाने और ऐसी दशाएं उत्पन्न करने का सुझाव दिया जिससे कि दूसरे देश इस देश के साथ व्यापार करने को आकर्षित हों" ।‡

(३) औद्योगिक एवं व्यापारिक नियंत्रण (Industrial and Commercial Restrictions)—वणिकवादी विचारकों का एक मात्र ध्येय था– देश में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों के एकत्रीकरण द्वारा उसे समृद्ध और शक्ति सम्पन्न बनाना। इस लक्ष्य तक पहुचने का उन्होंने एकमात्र साधन 'विदेशी" व्यापार को खोज निकाला और इस संदर्भ में भी उन्होंने अनुकूल व्यापारशेष का अनुमोदन किया। परन्तु व्यापारशेष को अनूकूल बनाये रखने के हेतु आयात एव निर्यात-व्यापार को नियमित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। अतएव वणिकवादियों ने औद्योगिक एव व्यापारिक नियंत्रण का पक्षानुमोदन किया। इस सम्बन्ध में वणिकवादियों ने जनसंख्या की वृद्धि को आवश्यक बताया क्योंकि उनके विचार से जनसंख्या के अधिक

* "It is the most general received opinion......if the exports exceed the imports, it is concluded the nation gets by the general course of its trade, it being supposed that the overplus is imported in bullion and so adds to the treasure of the kingdom, gold and silver being taken for the measare and strandard of riches."

—Sir Josioh Child.

‡ "To bring such a favourable balance they would advocate such policies as would help in increasing the number of labourers—a large population-increasing the amount of capital, making trade easy and creating such circumstance as to attract other countries to trade with their own countries."

—V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 29.

बढ़ने से अधिक संख्या में सैनिक और श्रमिक मिल सकेंगे, श्रम की उत्पत्ति लागत कम हो जाएगी जिससे उद्योग व्यापार को प्रोत्साहन मिल सकेगा। वणिकवादी विचारकों ने खाद्यान्न की आयात पर कड़े प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया। उनकी राय में आत्मनिर्भरता के उद्देश्य से कच्चे माल का तो स्वतन्त्रतापूर्वक आयात किया जा सकता था परन्तु खाद्य सामग्री और पक्के माल का नहीं। इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त वणिकवादियों ने कुछ व्यापारिक प्रतिबन्धों का भी सुझाव रखा: सर्वप्रथम उन्होंने व्यापारिक एवं औद्योगिक उन्नति के हेतु सरकार द्वारा नीची व्याज की दर निर्धारित करना (ताकि पूंजी अधिक मात्रा में और सस्ती दर पर उपलब्ध हो सके) आवश्यक ठहराया, द्वितीय उन्होंने अपने ही राष्ट्र के जहाजों द्वारा विदेशी व्यापार करने का सुझाव दिया क्योंकि इससे एक तो यातायात व्यय कम पड़ेगा और फिर अपने राष्ट्र का स्वर्ण रजत जोकि विदेशी जहाजों के प्रयोग के कारण विदेशों में जाता अपने ही राष्ट्र में रह जाएगा, तृतीय वणिकवादियों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमुल्य पदार्थों के आयात को तो स्वीकार किया परन्तु इनके निर्यात को सर्वथा त्याज्य बताया. चतुर्थ उन्होंने निर्यात-वस्तुओं के उद्योगों को सरकार द्वारा आर्थिक एवं तकनीकी सहायता तथा संरक्षण प्रदान करने का समर्थन किया, पंचम् वाणिकवादियों ने व्यापारिक संविदा को वैधानिक स्वरूप देने के हेतु रेहन एवं विक्री का पंजीकरण करने की राय प्रस्तुत की, षष्ठम ताकि परतन्त्र देशों से उन्मुक्त रूप में स्वर्ण-रजत प्राप्त हो सके इसके लिए वणिकवादियों ने इन देशों से कच्चा-माल प्राप्त करने और इन देशों को अपने पक्के--माल का बाजार बनाने की नीति अपनाई अन्त में, उन्होंने व्यापारिक एवं राजनैतिक संधियां करने तथा राष्ट्र के व्यापारिक जहाजों की संख्या बढ़ाने का सुझाव दिया। इस तरह वणिकवादी व्यवस्था सरकारी नियमों एवं प्रतिबंधों द्वारा नियंत्रित थी।

(४) **सरकार के कार्य** (Functions of the Government)-वणिकवादियों की सभी नीतियों में राजनैतिक एकता तथा राष्ट्रीय शक्ति को विशेष महत्व दिया गया जैसा कि प्रो० एरिक रोल (Eric Roll) ने कहा है कि, "वणिकवादियों के सम्मुख राष्ट्रीय-राज्य की स्थापना का लक्ष्य था तथा मौद्रिक, संरक्षणवादी और आर्थिक नीतियां सब इस लक्ष्य को पाने के साधन थे। वणिकवादी सिद्धांत का एक मुख्य अंग राजकीय-हस्तक्षेप था"। * वणिकवादियों द्वारा राज्य को शक्तिशाली बनाने का कारण यह था कि इससे राज्य की आंतरिक एवं बाह्य आर्थिक क्रियाओं के विकास को अनुकूल दशाएं उपलब्ध हो सकें। इस तरह सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राज्य को आर्थिक-कल्याण का यंत्र समझा गया। इस प्रवृत्ति ने स्वमेव ही राज्य को

* "The building up of nation-state is put in the fare front add monetary, protectionist, and other economic devices are regarded merely as instruments to this end. State intervention was an essential part of mercantilist doctrive." —*Prof. Eric Roll.*

सुदृढ़ बनाने की नीति के विकास को प्रभावित किया ताकि आर्थिक विकास की सहायता के हेतु उपयुक्त दशाओं की स्थापना हो सके। वणिकवादियों ने व्यक्तिगत हित की अपेक्षा राज्य के हित को अधिक महत्व दिया। उनका विचार था कि व्यक्ति को राज्य के हित के सम्मुख अपने व्यक्तिगत हित का बलिदान कर देना चाहिए क्योंकि देश का अधिकाधिक कल्याण राज्य द्वारा ही सम्भव है। इस तरह वणिकवादी राज्य की शक्तिशाली सत्ता में विश्वास करते थे। वस्तुतः जिन परिस्थितियों में वणिकवाद का प्रादुर्भाव हुआ था उनको दृष्टिगत करते हुए एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता की आवश्यकता थी और यह सत्ता राजा ही हो सकता था।

(५) मूल्य सम्बन्धी दृष्टिकोण (Vewpoint Relating Value)—प्राचीनकाल के विचारक मूल्य को किसी वस्तु का आन्तरिक गुण समझते थे। मध्यकालीन विचारकों ने मूल्य और कीमत शब्दों का भेद स्पष्ट करते हुए बताया कि मूल्य ही उचित कीमत है (Value is just price) वस्तुत. मध्यकालीन विचारकों की उचित कीमत सम्बन्धी यही धारणा अर्वाचीन विचारकों की उपयोगिता सम्बन्धी धारणा बन गई है। प्रो० हेने के अनुसार वणिकवाद के अन्तिम चरण में मूल्य को बाह्य-बाजार-दृष्टि-विषय (Extrinsic Market Phenomenod) माना जाने लगा था जो कि विनिमय के ऊपर निर्भर था। विलियम पेटी (William Petty) ने उत्पत्ति-लागत (Cost of Production) में श्रम एवं भूमि सम्बन्धी व्यय को शामिल करते हुये बताया कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी उत्पत्ति-लागत पर निर्भर करता है। पेटी के शब्दों में, "श्रम सम्पत्ति का पिता और साश्रय कारक है जबकि भूमि उसकी माता है।" * लॉक (Locke) ने मूल्य सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट करते हुए बताया कि, "यह श्रम ही है जोकि हरएक वस्तु के मूल्य में अन्तर पैदा करता है।"‡ प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार सर विलियम पेटी और लॉक प्रमुख वणिकवादियों के प्रतिनिधि थे जिनके मूल्य सम्बन्धी विचारों के ही आधार पर परम्परावादी और बाद के अर्थशास्त्रियों ने अपने मूल्य सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए। वणिकवादियों के मूल्य सम्बन्धी विचार वह कच्चा-माल सिद्ध हुई जिनके आधार पर क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने पक्के माल (मूल्य सम्बन्धी सिद्धान्त) का निर्माण किया।

प्रसिद्ध वणिकवादी विचारक थोमस मन (Thomas Mun) ने विदेशी विनिमय की क्रियाशीलता तथा इसके मूल्य पर प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उसने बताया कि स्वर्ण-रजत की बड़ी मात्रा में पूर्ति विदेशी विनिमय में अवमूल्यन (Under-valuation) तथा स्वर्ण-रजत की कमी विदेशी विनिमय में अधिमूल्यन (Over-valuation) की समस्या उत्पन्न कर देती है। थामस मन का

* "Labour is the father and active principle of wealth, as lands are the mother." —Sir William Petty.

‡ "It is the laboulr indeed that puts the difference of value on everything."

विश्वास था कि देश में बड़ी मात्रा में द्रव्य रखने से अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी क्योंकि इससे वस्तुएं सस्ती हो जायेंगी जिससे कुछ प्राइवेट व्यक्तियों को उनकी आय का तो लाभ होगा परन्तु यह व्यापार की मात्रा के रूप सार्वजनिक हित के विरुद्ध होगा क्योंकि वस्तुओं का मूल्य कम हो जाने से उनकी उपयोगिता और उपभोग कम हो जाएगा। इसका व्यापाराशेष पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।*

(६) ब्याज सम्बन्धी दृष्टिकोण (Viewpoint relating Intrest)—वणिकवादी विचारक नीची ब्याज की दर के पक्ष में थे। सर जोशिया चाइल्ड (Sir Josiah Child) का मत था कि ब्याज की नीची दर व्यापारियों को व्यापार के क्षेत्र में प्रविष्ट करने के हेतु प्रेरित करती है तथा ब्याज की ऊंची दर व्यापारियों को हतोत्साहित करती है। डैवेनैन्ट (Davenant) ने इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए कहा कि ऊंची ब्याज की दर लेने वालों पर सरकार द्वारा करारोपण किया जाना चाहिए। थौमस मैनले (Thomas Manley) ने द्रव्य की पूर्ति की कमी या अधिकता को ब्याज की दर की कमी या अधिकता का कारण बताते हुए लिखा है कि, "जिस तरह द्रव्य की कमी और उधारकर्ताओं की अधिकता ब्याज की दर को ऊंचा करती है उसी प्रकार द्रव्य की अधिकता तथा उधारकर्ताओं की कमी ब्याज की दर को नीचा कर देती है।"* प्रो० हेने (Haney) का कथन है कि वणिकवादियों को पूंजी की उत्पादकता एवं ब्याज के सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान नहीं था। उन्हीं के शब्दों में, "इनमें से अनेक व्यक्तियों ने यह सोचा कि ब्याज की दर को घटाने वाला एक नियम प्रभाव युक्त होगा जोकि द्रव्य को सस्ता बनाएगा। स्पष्टतः उन्होंने गाड़ी को घोड़े के सामने लाकर खड़ा कर दिया तथा प्रभाव को कारण बना दिया, उनमें से सभी को पूंजी और द्रव्य के कार्यों का ज्ञान नहीं था।"[2]

---

† "He was aware that a large amount of money kept in the conutry would lead to difficulties as it would make the native commodities dearer, which as it is to the profi t of some private men in their revenues, so it is directly against the benefit of the public in the quantity of the trade, for as plenty of money makes wares ...er, so dear wares declinve their use and consumption. It would ... an adverse effect on the balance of trade also."

—V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 31.

"As it is the scarcity of money (and plenty of money borro-... that maketh the high rates of interest, so the plenty of money ...w borrowers will make the rates low."—Thomas Mauley.

* "Most of these men thought that a law reducing the interest would be effective and make money cheap. Evidently they got ...art before the horse and made the effect the cause, all of which ...ates a lack of understanding of functions of capital and money."

—Prof. Haney.

(७) विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता (Productivity of Differet Occupations):—वणिकवादी विचारक भूमि और श्रम को उत्पत्ति के साधन मानते थे। तथा उन्होने श्रम को भूमि से भी अधिक महत्व प्रदान किया था।* वणिकवादी विचारक केवल व्यापार और उद्योग को ही उत्पादक व्यवसाय स्वीकार करते थे तथा कृषि को "मौसमी जूआ" कहकर अनुत्पादक कहते थे। एन्टोनियो सीरा (Antoino Serra) का मत था कि कृषि मौसम पर निर्भर है और यदि मौसम प्रतिकूल रहता है तो इसमे हानि ही उठानी पडती है जबकि उद्योग मे श्रम सदैव लाभ प्रदान करता है। इसलिए उसने राज्य द्वारा व्यापार एवं उद्योग को इस प्रकार नियमित, नियंत्रित एवं संरक्षित करने का सुझाव दिया कि जिसमे देश मे अधिक मात्रा में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थ आ सके। वणिकवादियो ने श्रम को उत्पादक एवं अनुत्पादक दो वर्गों में विभाजित करते हुए व्यापारी, दस्तकार और कृषक को उत्पादक वर्ग मे रखा क्योकि वे विदेशो से द्रव्य लाते हैं तथा इसके अतिरिक्त अध्यापक, दुकानदार, डाक्टर आदि को अनुत्पादक वर्ग मे रखा। सर जोशिया चाइल्ड (Sir Josiah Child) के शब्दो मे, "यह सर्व स्वीकार्य है (मैं सोचता हूं) कि व्यापारी, दस्तकार, भूमि के किसान तथा उन पर निर्भर रहने वाले ये तीन प्रकार के व्यक्ति ऐसे है जो कि अपने अध्ययन और परिश्रम द्वारा मुख्यत: विदेशों से धन अपने देश मे लाते हैं; दूसरी प्रकार के व्यक्ति, यथा—कुलीन, वकील, चिकित्सक, अध्यापक तथा दुकानदार आदि केवल घर पर ही सम्पत्ति को एक हाथ से दूसरे हाथ को अन्तरित करते रहते हैं।"‡

(८) करारोपण सम्बन्धी विचार,—(Viewpoint relating taxation) करारोपण के सम्बन्ध मे वणिकवादियो का विचार था कि हर एक व्यक्ति से उतना ही कर लिया जाना चाहिए जितनी मात्रा मे उसे राज्य से सुविधाएं प्राप्त हैं। किसी व्यक्ति से कितना कर लियाजाए अर्थात् उसने कितनी मात्रा मे सरकार सुविधाएं प्राप्त की हैं इसका मापदण्ड हाब्स (Hobbes) ने किसी व्यक्ति द्वारा किए व्यय (Expenditure) को बताया। कुछ दूसरे वणिजवादी लेखको का यह विचार था (जिनमें सर विलियम पेटी का नाम प्रमुख है) कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार सरकारी कोष में कर देना चाहिये। इस तरह वणिकवादी विचारको ने

* "Labour is the father and active principle of wealth as lands are the mother." —Sir William Petty.

‡ "It is (as I think) agreed by all that merchants, artificers, farmers of land such as depend on them......are three sorts of people which by their study and labour do principally, if not only, bring in wealth to a nation from abroad, other kinds of people, viz: nobility, gentry, lawyers, physicians, scholars of all sorts and shopkeepers, do only hand it from one to another at home."

—Sir Josiah Child.

विश्वास था कि देश में बड़ी मात्रा में द्रव्य रखने से अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी क्योंकि इससे वस्तुएं सस्ती हो जायेंगी जिससे कुछ प्राइवेट व्यक्तियों को उनकी आय का तो लाभ होगा परन्तु यह व्यापार की मात्रा के रूप सार्वजनिक हित के विरुद्ध होगा क्योंकि वस्तुओं का मूल्य कम हो जाने से उनकी उपयोगिता और उपभोग कम हो जाएगा। इसका व्यापाराशेष पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।*

(६) व्याज सम्बन्धी दृष्टिकोण (Viewpoint relating Intrest)—वणिकवादी विचारक नीची व्याज की दर के पक्ष में थे। सर जोशिया चाइल्ड (Sir Josiah Child) का मत था कि व्याज की नीची दर व्यापारियों को व्यापार के क्षेत्र में प्रविष्ट करने के हेतु प्रेरित करती है तथा व्याज की ऊंची दर व्यापारियों को हतोत्साहित करती है। डैवेनैन्ट (Davenant) ने इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए कहा कि ऊंची व्याज की दर लेने वालों पर सरकार द्वारा करारोपण किया जाना चाहिए। थौमस मैनले (Thomas Manley) ने द्रव्य की पूर्ति की कमी या अधिकता को व्याज की दर की कमी या अधिकता का कारण बताते हुए लिखा है कि, "जिस तरह द्रव्य की कमी और उधारकर्ताओं की अधिकता व्याज की दर को ऊंचा करती है उसी प्रकार द्रव्य की अधिकता तथा उधारकर्ताओं की कमी व्याज की दर को नीचा कर देती है।"‡ प्रो० हेने (Haney) का कथन है कि वणिकवादियों को पूंजी की उत्पादकता एवं व्याज के सम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान नहीं था। उन्हीं के शब्दों में, "इनमें से अनेक व्यक्तियों ने यह सोचा कि व्याज की दर को घटाने वाला एक नियम प्रभाव युक्त होगा जोकि द्रव्य को सस्ता बनाएगा। स्पष्टतः उन्होंने गाड़ी को घोड़े के सामने लाकर खड़ा कर दिया तथा प्रभाव को कारण बना दिया, उनमें से सभी को पूंजी और द्रव्य के कार्यों का ज्ञान नहीं था।"*

† "He was aware that a large amount of money kept in the conutry would lead to difficulties as it would make the native commodities dearer, which as it is to the profit of some private men in their revenues, so it is directly against the benefit of the public in the quantity of the trade, for as plenty of money makes wares dearer, so dear wares declinve their use and consumption. It would create an adverse effect on the balance of trade also."

—V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 31.

‡ "As it is the scarcity of money (and plenty of money borrowers) that maketh the high rates of interest, so the plenty of money and few borrowers will make the rates low."—Thomas Mauley.

* "Most of these men thought that a law reduc... rate would be effective and make money cheap. ... the cart before the horse and made the effect ... indicates a lack of understanding of functio...

(७) विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता (Productivity of Different Occupations):—वणिकवादी विचारक भूमि और श्रम को उत्पत्ति के साधन मानते थे। तथा उन्होंने श्रम को भूमि से भी अधिक महत्व प्रदान किया था।* वणिकवादी विचारक केवल व्यापार और उद्योग को ही उत्पादक व्यवसाय स्वीकार करते थे तथा कृषि को "मौसमी जूआ" कहकर अनुत्पादक कहते थे। एन्टोनियो सीरा (Antoino Serra) का मत था कि कृषि मौसम पर निर्भर है और यदि मौसम प्रतिकूल रहता है तो इसमें हानि ही उठानी पड़ती है जबकि उद्योग में श्रम सदैव लाभ प्रदान करता है। इसलिए उसने राज्य द्वारा व्यापार एवं उद्योग को इस प्रकार नियमित, नियन्त्रित एवं संरक्षित करने का सुझाव दिया कि जिससे देश में अधिक मात्रा में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थ आ सके। वणिकवादियों ने श्रम को उत्पादक एवं अनुत्पादक दो वर्गों में विभाजित करते हुए व्यापारी, दस्तकार और कृषक को उत्पादक वर्ग में रक्खा क्योंकि वे विदेशों से द्रव्य लाते हैं तथा इसके अतिरिक्त अध्यापक, दुकानदार, डाक्टर आदि को अनुत्पादक वर्ग में रक्खा। सर जोशिया चाइल्ड (Sir Josiah Child) के शब्दों में, "यह सर्व स्वीकार्य है (मैं सोचता हूं) कि व्यापारी, दस्तकार, भूमि के किसान तथा उन पर निर्भर रहने वाले ये तीन प्रकार के व्यक्ति ऐसे है जो कि अपने अध्ययन और परिश्रम द्वारा मुख्यतः विदेशों से धन अपने देश मे लाते हैं; दूसरी प्रकार के व्यक्ति, यथा—कुलीन, वकील, चिकित्सक, अध्यापक तथा दुकानदार आदि केवल घर पर ही सम्पत्ति को एक हाथ से दूसरे हाथ को अन्तरित करते रहते हैं।"‡

(८) करारोपण सम्बन्धी विचार,—(Viewpoint relating taxation) करारोपण के सम्बन्ध मे वणिकवादियों का विचार था कि हर एक व्यक्ति से उतना ही कर लिया जाना चाहिए जितनी मात्रा मे उसे राज्य से सुविधाएं प्राप्त हैं। किसी व्यक्ति से कितना कर लिया जाए अर्थात् उसने कितनी मात्रा मे सरकार सुविधाएं प्राप्त की हैं इसका मापदण्ड हाब्स (Hobbes) ने किसी व्यक्ति द्वारा किए व्यय (Expenditure) को बताया। कुछ दूसरे वणिकवादी लेखकों का यह विचार था (जिनमें सर विलियम पेटी का नाम प्रमुख है) कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार सरकारी कोष मे कर देना चाहिये। इस तरह वणिकवादी विचारकों ने

* "Labour is the father and active principle of wealth as lands are the mother."
—Sir William Petty.

‡ "It is (as I think) agreed by all that merchants, artificers, farmers of land such as depend on them......are three sorts of people which by their study and labour do principally, if not only, bring in wealth to a nation from abroad, other kinds of people, viz: nobility, gentry, lawyers, physicians, scholars of all sorts and shopkeepers, do only hand it from one to another at home."
—Sir Josiah Child.

करारोपण में समानता (Equity) के सिद्धान्त पर विशेष बल डाला।

वणिकवादी विचारधारा का मूल्यांकन (Evaluation of Mercantalistic viewpoint):—वणिकवादियों के लगभग सभी विचारों की कटु आलोचना की गई हैं जो कि निम्नोक्त है:—

(१) वणिवादी विचारकों ने स्वर्ण-रजत आदि भौतिक पदार्थों को ही मानव–जीवन का एकमात्र ध्येय बना दिया जब कि मानव-जगत का वास्तविक ध्येय मानव-कल्याण (Humau Welfare) है तथा भौतिक पदार्थ इस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन मात्र हैं। परन्तु वणिकवादी विचारकों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को महत्व प्रदान करने में इतना लम्बा कदम बढ़ाया कि साध्य साधन बन गया। विद्वानों का मत है कि वाणिकवादियों की इस धारणा को किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता।

(२) अन्य सभी व्यवसायों की अपेक्षा वाणिकवादियों ने व्यापार-विशेषकर विदेशी व्यापार पर अधिक महत्व दिया जब कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दृष्टि से सभी व्यवसायों का समान महत्व होता है। फिर वणिकवादियों ने आंतरिक व्यापार के महत्व को भुलाकर केवल विदेशी व्यापार को ही सर्वोपरि ठहराया। आलोचकों का मत है कि आन्तरिक-व्यापार को नींव पर ही विदेशी व्यापार रूपी भव्य-भवन का निर्माण किया जा सकता है।

(३) वाणिकवादियों का अनुकूल व्यापाशेष का विचार भी अनुपयुक्त, दोष-पूर्ण एवं अव्यावहारिक प्रतीत होता है। व्यापाराशेष को अनुकूल बनाने के हेतु वणिकवादियों ने यह सुझाव दिया है कि आयत–व्यापार को घटाया जाए तथा निर्यात व्यापार को बढ़ाया जाए। इस संदर्भ में इन विचारकों ने सरकारी प्रतिबन्ध एवं नियंत्रण का भी निष्कर्ष दिया है। परन्तु यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि सभी देश इस नीति का पालन करने लगें तब क्या स्थिति होगी? स्पष्ट है कि इस दशा में विदेशी व्यापार ही हतोत्साहित हो जायगा तथा व्यापारा-शेष को अनुकूल बनाने का विचार भी स्वप्न मात्र रह जाएगा।

(४) आलोचकों का कथन है कि वाणिकवादियों ने जनसंख्या, भूमि, व्यापार पर जिन विभिन्न प्रतिबन्धों की विवेचना की है उससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में भी वणिकवादियों का यह विचार कि राज्य ामने व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हित का त्याग कर देना चाहिए, व्यक्ति- का स्पष्ट प्रमाण है।

ॉट (Scott) का मत है कि, "यदि उस समय की समस्याओं के संदर्भ में, णकवाद का प्रादुर्भाव हुआ था, इस विचारधारा पर विचार किया जाये द्धति के साथ दोषों को खोज निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन

अवश्य है।"* हरएक विचारधारा परिस्थितियों तथा समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती है। अतएव वणिकवादी विचारधारा भी तत्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर विकसित हुई तथा वणिकवादियों की धारणायें अपनी परिस्थितियों के अनुकूल थीं। वणिकवादियों द्वारा स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को महत्व दिये जाने का जहाँ तक प्रश्न है उनका यह विचार भी तत्कालिक समस्याओं एवं परिस्थितयों के अनुकूल था—एक तो इस काल तक वस्तु-विनिमय (Commodity Exchange) का स्थान द्रव्य-विनिमय (Money Exchange) ने ग्रहण कर लिया था जिसके कारण विनिमय को सुगम एवं सुचारु बनाने के हेतु स्वर्ण-रजत आदि अक्षयशील धातुओं को महत्व दिया जाना अनिवार्य था। दूसरे, इस काल में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव होने के कारण जनता के सम्मुख अपनी गई आय को संचित करने की समस्या थी और जिसका एकमात्र समाधान यही था कि जनता स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य एवं अक्षयशील धातुओं के रूप में अपनी बचत को गाड़ कर रखे। इस कारण भी वणिकवादियों द्वारा स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को महत्व दिया जाना स्वाभाविक था। तीसरे, सामान्तवाद के पतन होने के पश्चात स्थानीय संगठित राज्यों के स्थान पर सुदृढ़ केन्द्रीय शासनों की स्थापना हो गई जिनको आन्तरिक शासन-प्रबन्ध तथा सुरक्षा के हेतु विशाल मात्रा में आय (Reuen) की आवश्यकता हुई जिसकी प्राप्ति जनता पर करारोपण द्वारा ही सम्भव थी। चूंकि वस्तुओं के रूप में बड़े परिमाण के करों को एकत्रित कर पाना सम्भव नहीं था, इसलिए धात्विक मुद्रा और स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं के महत्व में वृद्धि होना स्वाभाविक था। इस तरह स्पष्ट है कि उक्त समस्याओं के संदर्भ में समाधान के रूप में वणिकवादियों द्वारा स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों पर महत्व दिया जाना समयानुकूल था।

जहाँ तक वणिकवादियों द्वारा विदेशी व्यापार को महत्व दिये जाने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि उनकी यह धारणा भी समयानुकूल थी क्योंकि उनका मत था कि जिन देशों के पास स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों की अपनी खानें नहीं है वे देश इन पदार्थों को केवल विदेशी व्यापार द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। फिर उस समय तक अन्तर्राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था जिसके कारण वणिकवादी विचारों में राष्ट्रवाद पर अधिक महत्व दिया हुआ प्रतीत होता है। इस संदर्भ में वणिकवादियों का अनुकूल व्यापाराशेष का विचार भी समयानुकूल था क्योंकि जिस देश के पास स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों का अभाव है वह केवल अपने आयात व्यापार की मात्रा को घटाकर और निर्यात-व्यापार की मात्रा को बढ़ाकर ही अपने ध्येय तक पहुँच सकता है। यह अवश्य है कि वणिकवादियों ने अनुकूल व्यापाराशेष की स्थाई नीति में विश्वास किया जो कि उनकी सरासर भूल थी, परन्तु इस भूल के कारण वणिकवादियों के महत्व को ठुकराया नहीं जा सकता।

* "When considered with reference to the problems of the time in which Mercantilism flourished, it if difficult, is not impossible, to find fault with the system."
—Scott.

करारोपण में समानता (Equity) के सिद्धान्त पर विशेष बल डाला।

वणिकवादी विचारधारा का मूल्यांकन (Evaluation of Mercantalistic viewpoint):—वणिकवादियों के लगभग सभी विचारों की कटु आलोचना की गई हैं जो कि निम्नोक्त है:—

(१) वणिवादी विचारकों ने स्वर्ण-रजत आदि भौतिक पदार्थों को ही मानव-जीवन का एकमात्र ध्येय बना दिया जब कि मानव-जगत का वास्तविक ध्येय मानव-कल्याण (Humau Welfare) है तथा भौतिक पदार्थ इस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन मात्र हैं। परन्तु वणिकवादी विचारकों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को महत्व प्रदान करने में इतना लम्बा कदम बढ़ाया कि साध्य साधन बन गया। विद्वानों का मत है कि वाणिकवादियों की इस धारणा को किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता।

(२) अन्य सभी व्यवसायों की अपेक्षा वाणिकवादियों ने व्यापार-विशेषकर विदेशी व्यापार पर अधिक महत्व दिया जब कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दृष्टि से सभी व्यवसायों का समान महत्व होता है। फिर वणिकवादियों ने आंतरिक व्यापार के महत्व को भुलाकर केवल विदेशी व्यापार को ही सर्वोपरि ठहराया। आलोचकों का मत है कि आन्तरिक-व्यापार को नींव पर ही विदेशी व्यापार रूपी भव्य-भवन का निर्माण किया जा सकता है।

(३) वाणिकवादियों का अनुकूल व्यापाशेष का विचार भी अनुपयुक्त, दोषपूर्ण एवं अव्यावहारिक प्रतीत होता है। व्यापाराशेष को अनुकूल बनाने के हेतु वणिकवादियों ने यह सुझाव दिया है कि आयत—व्यापार को घटाया जाए तथा निर्यात व्यापार को बढ़ाया जाए। इस संदर्भ में इन विचारकों ने सरकारी प्रतिबन्ध एवं नियंत्रण का भी निष्कर्ष दिया है। परन्तु यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि सभी देश इस नीति का पालन करने लगें तब क्या स्थिति होगी? स्पष्ट है कि इस दशा में विदेशी व्यापार ही हतोत्साहित हो जायगा तथा व्यापाराशेष को अनुकूल बनाने का विचार भी स्वप्न मात्र रह जाएगा।

(४) आलोचकों का कथन है कि वाणिकवादियों ने जनसंख्या, भूमि, व्यापार पर जिन विभिन्न प्रतिबन्धों की विवेचना की है उससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन होता है। राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में भी वणिकवादियों का यह विचार कि राज्य ...त के सामने व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हित का त्याग कर देना चाहिए, व्यक्ति- के हनन का स्पष्ट प्रमाण है।

स्कॉट (Scott) का मत है कि, "यदि उस समय की समस्याओं के संदर्भ में, ; वणिकवाद का प्रादुर्भाव हुआ था, इस विचारधारा पर विचार किया जाये ...स पद्धति के साथ दोषों को खोज निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन

व्यापारिक-औद्योगिक संरक्षण-नियंत्रण एवं प्रतिरोध भी प्रस्तुत किये जो कि आयात-व्यापार को कम करने तथा निर्यात-व्यापार को बढ़ाने के हेतु आवश्यक समझे गये। इस तरह हम कह सकते हैं कि वणिकवादी पद्धति नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप था, यद्यपि इसके अन्तर्गत संकुचित राष्ट्र-हित के दृष्टिकोण को अपनाया गया था।

वणिकवाद का पतन (Decay of Mercantalism)—वणिकवादी विचारधारा सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक खूब फली-फूली परन्तु इसके जीवन काल में ही कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी जो कि इसके पतन का कारण बनीं। वणिकवादी विचारधारा की कुछ आधारभूत कठिनाइयों एवं बुराइयों के कारण इसके जीवन काल में ही आलोचनायें पनपने लगी जो कि अन्त में आकर वणिकवाद के पतन में सहायक हुईं। संक्षेप में। वणिकवादी पद्धति के पतन के मुख्य कारण निम्नोक्त हैं—

(a) वाणिकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों के कोष को बढ़ाने के उद्देश्य से विदेशी व्यापार और निर्यात वस्तुओं के उद्योगों ने तो पर्याप्त प्रगति की परन्तु आन्तरिक-व्यापार, कृषि तथा अन्य अनुत्पादक ठहराए गए व्यवसायों की स्थिति बिगड़ती ही चली गई। अठारहवीं शताब्दी के अति-अति कृषक-समुदाय की दशा बहुत शोचनीय हो गई थी परन्तु उसको सुधारने की ओर राज्य का कोई ध्यान नहीं था। फलस्वरूप कृषि एवं कृषक समुदाय का पक्ष लेकर वाणिकवादी व्यवस्था के विरुद्ध नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ।

(b) कुछ विद्वानों ने वणिकवादियों की अनुकूल व्यापाराधेय की नीति की आलोचना करते हुए यह प्रचार किया कि इस तरह की व्यापारिक नीति सदैव ही किसी देश के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि इस नीति के द्वारा एक देश का लाभ दूसरे देश की हानि पर निर्भर है और यदि दूसरे देश भी इसी नीति को अपना लें तो उस दशा में किसी भी देश को अपने ध्येय में सफलता नहीं मिल सकती। अतएव वणिकवादी व्यवस्था की अनुकूल व्यापाराधेय की नीति अस्थाई प्रकृति की थी जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप नई व्यवस्था का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी था।

(c) वणिकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत जिन व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गई थी उनको लेकर विद्वानों में विरोध उत्पन्न हो गया। आलोचकों ने बताया कि इन नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास नहीं हो पाता। चूंकि कोई भी व्यक्ति सरलता से अपनी स्वतन्त्रता का हनन नहीं देख सकता, इसलिए इन व्यापारिक-औद्योगिक नियन्त्रणों का विरोध आरम्भ हो गया।

(d) प्रसिद्ध आलोचक मेलन (Melon) ने वणिकवादियों द्वारा

अन्त में, जहां तक वणिकवादियों द्वारा औद्योगिक-व्यापारिक नियंत्रण एवं प्रतिरोध प्रस्तुत करने का प्रश्न है उनकी यह धारणा भी तत्कालिक परिस्थितियों के अनुकूल थी क्योंकि स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को प्राप्त करने के हेतु जिस अनुकूल व्यापाराशेष के यंत्र की कल्पना की गई थी उसके सुचारु रूप से कार्यान्वियन के हेतु आन्तरिक व्यापार, उद्योग, उपभोग, उत्पादन आदि पर नियंत्रण लगाना आवश्यक हो गया था।

क्या वणिकवाद नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप था ? (Was mercantilism a early form of planned economy):—नियोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ एक ऐसी अर्थव्यवस्था से लिया जाता है जिसमें कि किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा राष्ट्र के समस्त भौतिक एवं मानवीय साधनों को इस प्रकार जुटाया जाता है कि भौतिक साधनों का अधिकतम शोषण हो सके, बेरोजगारी-निर्धनता-निरक्षता समाप्त हो जाए तथा नागरिकों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो सके। इस तरह एक नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अधिकतम मानवीय कल्याण का लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त करने के हेतु समस्त साधनों को नियोजित ढंग से जुटाया जाता है। इस दृष्टि से यदि वणिकवाद को नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वणिकवादी विचारकों का एक मात्र ध्येय था-राज्य को सुख-सम्पन्न एवं शक्तिशाली बनाना जिसके हेतु किसी देश के पास भौतिक एवं मानवीय सम्पत्ति का होना आवश्यक है। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के हेतु वणिक-वादियों ने जनसंख्या की वृद्धि को आवश्यक ठहराया तथा देश के स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों के कोष में वृद्धि करने का सुझाव रक्खा था। वणिकवादियों का एकमात्र नारा था—"अधिक स्वर्ण, अधिक सम्पत्ति, अधिक शक्ति" (More Gold, More Wealth, More Power). इस तरह संक्षेप में वणिकवादी व्यवस्था का मूल लक्ष्य अधिक स्वर्ण प्राप्त करके राष्ट्र को सम्पत्तिवान और शक्तिशाली बनाना था, यद्यपि उन्होंने स्वर्ण-रजत आदि भौतिक पदार्थों को मानव-कल्याण से अधिक महत्व कर दिया था। इस लक्ष्य को सामने रखकर वणिकवादी विचारकों के सम्मुख साधन जुटाने की समस्या उत्पन्न हुई और विशेषकर उन देशों के सम्बन्ध में जिनके पास बहुमूल्य धातुओं की अपनी खानें नहीं थीं। अतएव वणिकवादियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसे देशों को विदेशी व्यापार के द्वारा अपने देश में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं का कोष बढ़ाना चाहिये। इस संदर्भ में उन्होंने बताया कि विदेशी व्यापार के माध्यम से कोई देश केवल उसी दशा में अपने स्वर्ण-रजन-कोष में अभि-वृद्धि कर सकता है जबकि उसका व्यापाराशेष अनुकूल (Favourable Balance of Trade) रहे अर्थात् वह देश अपने आयात-व्यापार की मात्रा को न्यूनातिन्यून करके अपने निर्यात-व्यापार की मात्रा को अधिकाधिक करे क्योंकि केवल इसी दशा में उस देश को अतिरेक निर्यात का भुगतान विदेशों से स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं में हो सकेगा। नियोजन के इस चरण पर आकार वणिकवादी विचारकों ने कुछ

व्यापारिक-औद्योगिक संरक्षण-नियंत्रण एवं प्रतिरोध भी प्रस्तुत किये जो कि आयात-व्यापार को कम करने तथा निर्यात-व्यापार को बढ़ाने के हेतु आवश्यक समझे गये। इस तरह हम कह सकते हैं कि वणिकवादी पद्धति नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप था, यद्यपि इसके अन्तर्गत संकुचित राष्ट्र-हित के दृष्टिकोण को अपनाया गया था।

वणिकवाद का पतन (Decay of Mercantalism)—वणिकवादी विचार-धारा सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक खूब फली-फूली परन्तु इसके जीवन काल में ही कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं थी जो कि इसके पतन का कारण बनीं। वणिकवादी विचारधारा की कुछ आधारभूत कठिनाइयों एवं बुराइयों के कारण इसके जीवन काल में ही आलोचनायें पनपने लगी जो कि अन्त में आकर वणिकवाद के पतन मे सहायक हुई। संक्षेप में। वणिकवादी पद्धति के पतन के मुख्य कारण निम्नोक्त हैं—

(a) वाणिकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों के कोष को बढ़ाने के उद्देश्य से विदेशी व्यापार और निर्यात वस्तुओं के उद्योगों ने तो पर्याप्त प्रगति की परन्तु आन्तरिक-व्यापार, कृषि तथा अन्य अनुत्पादक ठहराए गए व्यवसायों की स्थिति बिगड़ती ही चली गई। अठारहवीं शताब्दी के आते-आते कृषक-समुदाय की दशा बहुत शोचनीय हो गई थी परन्तु उसको सुधारने की ओर राज्य का कोई ध्यान नहीं था। फलस्वरूप कृषि एवं कृषक समुदाय का पक्ष लेकर वाणिकवादी व्यवस्था के विरुद्ध नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ।

(b) कुछ विद्वानों ने वणिकवादियों की अनुकूल व्यापाराशेष की नीति की आलोचना करते हुए यह प्रचार किया कि इस तरह की व्यापारिक नीति सदैव ही किसी देश के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि इस नीति के द्वारा एक देश का लाभ दूसरे देश की हानि पर निर्भर है और यदि दूसरे देश भी इसी नीति को अपना लें तो उस दशा में किसी भी देश को अपने ध्येय में सफलता नहीं मिल सकती। अतएव वणिकवादी व्यवस्था की अनुकूल व्यापाराशेष की नीति अस्थाई प्रकृति की थी जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप नई व्यवस्था का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी था।

(c) वणिकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत जिन व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गई थी उनको लेकर विद्वानों में विरोध उत्पन्न हो गया। आलोचकों ने बताया कि इन नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास नहीं हो पाता। चूंकि कोई भी व्यक्ति सरलता से अपनी स्वतन्त्रता का हनन नहीं देख सकता, इसलिए इन व्यापारिक-औद्योगिक नियन्त्रणों का विरोध प्रारम्भ हो गया।

(d) प्रसिद्ध आलोचक मेलन (Melon) ने वणिकवादियों द्वारा प्रतिपादित

बहुमूल्य पदार्थों की अस्वाभाविक प्यास की कटु आलोचना की और बताया कि आवश्यकताओं की पूर्ति केवल मात्र स्वर्ण-रजत आदि की प्राप्ति के द्वारा ही सम्भव नहीं है वरन् उनकी पूर्ति के हेतु अन्य वस्तुओं को प्राप्त करना भी आवश्यक है। मैलन ने बताया कि व्यक्ति की भूख को शांत करने के हेतु रोटी चाहिए, सोना व चांदी नहीं। इस विचार से धातुओं का महत्व गिरने लगा जिससे शनैः शनैः वणिकवादियों के दूसरे विचार भी महत्वहीन होने लगे।

(e) यद्यपि औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में वणिकवादी विचारों का फलना-फूलना सम्भव था, तथापि औद्योगिक विकास के उच्च शिखर पर अर्थात् विशालस्तरीय उत्पादन और श्रम-विभाजन के अभ्युदय के पश्चात् सरकारी हस्तक्षेप द्वारा नवीन कठिनाइयों का अनुभव होने लगा और शनैः शनैः उत्पादन एवं उपभोग सम्बन्धी नियंत्रण ढीले पड़ते गए। इस दशा में चारों ओर अहस्तक्षेपवादी नीति (Laissez Faire Policy) का बोलबाला होने लगा और वणिकवाद को समाप्त करने की भावना का प्रादुर्भाव होने लगा। दूसरी ओर राजकीय नियमित कम्पनियों के स्थान पर व्यक्तिगत कम्पनियों की स्थापना होने लगी जिससे एकाधिकार के स्थान पर प्रतियोगिता का बोलबाला होने लगा।

उपरोक्त सभी कारणों के सामूहिक परिणामस्वरूप अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक वणिकवाद का पतन हो गया तथा उसके स्थान पर निर्बाधवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें सरकारी नियंत्रण को तिलांजलि देकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का जोरदार समर्थन किया गया।

नव-वणिकवाद (Neo-mercantilism) :—यद्यपि वणिकवादी विचारधारा अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पतन के गर्त में गिर चुकी थी परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में और विशेषकर प्रथम महायुद्ध के उपरान्त वणिकवादी विचारधारा पुनः प्रफुल्लित हो उठी। सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक चलने वाले वणिकवाद की प्रमुख विचारधारा आयात-निर्यात, कारारोपण, स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं का संग्रह और औद्योगिक एवं व्यापारिक सम्बन्धी प्रतिबन्धों पर आधारित थी तथा इन्हीं नीतियों का प्रादुर्भाव पुनः बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान में सभी युद्धग्रस्त देशों की अर्थ-व्यवस्थाएं डाँवाडोल हो गईं और हरएक देश की सरकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की बात सोचने लगी। अतएव राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ, स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करने के हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता होने लगी विदेशी व्यापार को नियंत्रित किया जाने लगा, निर्यात-व्यापार को [illegible]त्साहन देने के हेतु राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों का विकास किया जाने लगा तथा आयात-[illegible]पार को निरुत्साहित करने के हेतु अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जाने लगे तथा [illegible]ोग-धन्धों को आर्थिक सहायता एवं संरक्षण की नीति अपनाई जाने लगी। संक्षेप [illegible], वणिकवादी युग की सभी बातें अर्थात् बड़े-बड़े युद्ध, औद्योगिक एवं आर्थिक

परिवर्तन, मुद्रा तथा कीमतों की अस्थिरता, सोना-चादी प्राप्त करने के हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता तथा केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाने की प्रवृत्ति आदि प्रथम महा-युद्ध के उपरान्त भी दृष्टिगोचर होने लगी। अतएव बीसवीं शताब्दी मे वणिकवादी विचारधारा के पुनर्जन्म को ही "नव-वणिकवाद" (Neo-mercantalism) की संज्ञा दी जाती है।

आजकल लगभग सभी विकसित अथवा अविकसित देश इसी प्रयत्न में संलग्न हैं कि वे अपने व्यापाराशेष को अनुकूल रख सकें। इसके लिए हरएक देश अपने निर्यात-व्यापार को प्रोत्साहन प्रदान करता है तथा आयात व्यापार को निरुत्साहित करने के हेतु अनेक तरह के प्रतिबन्ध लगाता है तथा विनिमय दर पर कड़ी पाबन्दी लगाता है। आजकल लगभग सभी देशों के द्वारा परस्पर व्यापारिक समझौते किये जाते हैं जिनके अनुसार एक निश्चित परिणाम मे निश्चित देशों से और निश्चित वस्तुएं ही आयात की जाती हैं और इस समस्त व्यापारिक क्रिया का एक मात्र उद्देश्य अपने व्यापाराशेष को अनुकूल रखकर बहुमूल्य धातुओं अथवा विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि करना होता है। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को बनाने से पूर्व अब इस बात को अधिक विचाराधीन रखा जाता है कि किस तरह राष्ट्र का हित सम्भव हो। प्रो० हेने के शब्दों में, "सन् १९३० मे वणिकवादी नीतियों के उत्तराधिकार की एक श्रेणी कुछ निश्चित राष्ट्रों मे तानाशाही और सामाजिक नियोजन के साधन से एकता की स्थापना को मूलभूत प्रकृति रखते हुए तथा व्यापार एवं मौद्रिक नियमन द्वारा राष्ट्र के आर्थिक जीवन की सुरक्षा का सामूहिक प्रयत्न रखते हुए पूर्ण विकसित अवस्था में प्रस्फुटित हुई।"*

ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल अबन्ध-व्यापार की नीति का लगभग पूर्णतया अन्त हो गया है। आजकल हरएक राष्ट्र आत्मनिर्भर, स्वभरित एवं आत्म-पर्याप्त होने के प्रयास मे संलग्न है। अतएव कच्चे माल की प्राप्ति एवं पक्के माल की खपत के हेतु उपनिवेशवादी विचारधारा अब पुनः पाई जा रही है। विभिन्न राष्ट्रों द्वारा उद्योग धन्धों एवं वाणिज्य आदि का जो राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है वह वणिकवादी युग की मूल प्रवृत्ति से पूर्णतया मेल खाता है। रूस आदि कुछ देश तो इस क्षेत्र में इतने आगे बढ गए है कि उन्होंने देश मे चलने वाली समस्त आर्थिक संस्थाओं पर सार्वजनिक नियंत्रण स्थापित कर दिया है। भारतीय सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत समाजवादी नमूने के समाज (Socialistic pattern of society) की स्थापना का ध्येय भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

* "30 there became fully developed in the 19.0's a sort of reversion to mercantilistic policies having as a promivent feature the establishment of unity within certain rations, through dictatorship and 'social planning' and a correlated effort to protect the national economic life against others by trade and monetary

आजकल हरएक राष्ट्र अनुकूल व्यापाराशेष बनाए रखने के हेतु प्रयत्नशील है। इस लिए वह एक ओर अपने निर्यात-व्यापार को बढ़ाने के हेतु विभिन्न प्रकार की सहायता एवं छूटें प्रदान करता है तथा दूसरी ओर आयात-व्यापार को घटाने के हेतु विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आजकल हरएक राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील है और अब स्वतन्त्रतावाद एवं अहस्तक्षेपवादी नीति का अन्त होकर सर्वत्र प्रतिबन्धों एवं नियंत्रणों का साम्राज्य छा गया है। इसीलिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि, "आधुनिक जगत वणिकवाद की ओर पीछे लौट रहा है" (The modern world is going back to mercantalism)।

इतना सब कुछ होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी की वणिकवादी विचारधारा प्राचीन वणिकवादी विचारधारा से अनेक अर्थों में भिन्न है, यद्यपि प्राचीन एवं अर्वाचीन वणिकवाद का अंतिम ध्येय एक वादी तत्वज्ञान रहता है। आज की वणिकवादी विचारधारा का एकमात्र उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना हैं। नव-वणिकवादी अपनी समस्त आर्थिक नीतियों को आर्थिक नियोजन पर आधारित करता है जिसके अन्तर्गत किसी नीति को क्रियान्वित करने से पूर्व उस पर भली भांति मनन किया जाता है और यह विचारा जाता है कि इस नीति का अंतिम उद्देश्य राष्ट्रीय कलयाण है अथवा नहीं वर्तमान युग में प्रत्येक आर्थिक नीति का कार्यान्विन जनतंत्रीय सरकार के द्वारा किया जाता है जबकि प्राचीन वणिकवादी युग मे ये सब बातें नहीं पाई जाती थी। आज के वणिकवादी युग में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास सम्बन्धी जितनी भी योजनाएं बनाई जाती है उनमें सांख्यिकी का अधिक प्रयोग किया जाता। है यद्यपि प्राचीन णिकवादी युग में भी सर विलियम पेटी ने साँख्यिकी का प्रयोग किया परन्तु उसका ग अत्यन्त सीमित था। वर्तमान वणिकवादी युग में केवल सांख्यिकी का ही किया जाता वरन् उसका विश्लेषण एवं व्याख्या करके सही निष्कर्ष जाते हैं। इस तरह नव वणिकवादी युग में सांख्यिकी का प्रयोग वणिक- युग के प्रयोग की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और पूर्ण है।

इसी प्रकार आज के वणिकवादी युग में औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास जितनी भी योजनाएं बनाई जाती हैं उनका एक निश्चित ध्येय एवं आदर्श । है जिसकी प्राप्ति के पश्चात् तत्सम्बन्धित नीति का परित्याग कर दिया जाता है, परन्तु प्राचीन वणिकवादी युग में देश की अर्थव्यवस्था सम्बन्धी जितनी भी नीतियों का निर्माण किया जाता था उनका स्वभाव स्थाई होता था। उदाहरण के हेतु प्राचीन वणिकवादियों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करने हेतु अनुकूल व्यापार सन्तुलन की नीति का स्थाई रूप से पालन करने का सुझाव दिया था। नव-वणिकवादी युग में भी अनुकूल व्यापाराशेष की नीति का बोलबाला दिखाई देता है परन्तु इसका एकमात्र उद्देश्य स्वर्ण प्राप्त करना न होकर राष्ट्र के

आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना भी है ताकि देश के नागरिकों का अधिकतम कल्याण हो सके। नव-वणिकवादी युग मे व्यापार सम्बन्धी जितने भी नियन्त्रण एव प्रतिबंध लगाए जाते हैं उनका उद्देश्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का स्थिर करना होता है और वे अस्थाई काल के लिए ही लगाए जाते है जबकि प्राचीन वणिकवादी युग मे उद्योग-व्यापार सम्बन्धी नियन्त्रण और प्रतिबंध अनिश्चित काल के हेतु स्थाई तौर पर लगाये जाते थे तथा उनका उद्देश्य परतन्त्र देशों का शोषण करके राष्ट्रीय सत्ता को शक्तिशाली बनाना था। प्राचीन वणिकवादी युग मे स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति को साध्य मानकर मानव-कल्याण को ठुकरा दिया गया, जबकि नव-वणिकवादी युग में मानव-कल्याण को साध्य मानकर बहुमूल्य धातुओं को साधन-मात्र माना गया है। इस प्रकार प्राचीन वणिकवादी विचारधारा की तुलना मे नवीन वणिकवादी विचारधारा का दृष्टिकोण अधिक व्यापक प्रतीत होता है। नव-वणिक-वादी युग में विभिन्न देशों के साथ जो व्यापारिक समझौते किये जाते हैं उनका उद्देश्य व्यापारिक-प्रतिबन्धों को कम करना होता है। इस तरह वर्तमान युग में प्राचीन वणिकवादी विचारधारा की पुनरावृत्ति होते हुए भी दोनो युग की वणिक-वादी विचारधाराओं के ध्येय, आदर्श, दृष्टिकोण एवं कार्य प्रणाली मे मौलिक अन्तर पाया जाता है।

प्राचीन वणिकवादी विचाराधारा की तुलना नव-वणिकवादी विचाराधारा से करते हुये प्रो० हेने ने लिखा है, "युद्धोत्तरकाल का यह नव-वणिकवाद प्राकृतिक रूप से अनेक बातो मे प्राचीन वणिकवाद से भिन्न है और विशेषकर इसमे कि इसने एक अधिक आदर्शवादी तत्वज्ञान की अपील की है। यह आर्थिक जीवन के अधिक प्रभावयुक्त सामाजिक आयोजन पर, या तो तानाशाही के अन्तर्गत पूर्णतः केन्द्रीय-करण के माध्यम से अथवा जनतन्त्रीय शासन पद्धति के अन्तर्गत सामूहिक क्रिया के माध्यम से, आधारित है। इसके अतिरिक्त यह सांख्यिकी की सही जानकारी पर भी अवलम्बित है।"*

---

* "This Neo-mercantilism of the post war period naturally differed in several respect from the older Mercantalism, and especially in that it appealed to a more idealistic philosophy. It depended more upon effective social planning of economic life, either through complete centralization under a dictatorship or through mass action under a democratic form of regimentation. And it was backed by much greater and more precise statistical information."

—Prof. Haney.

आजकल हरएक राष्ट्र अनुकूल व्यापाराशेष बनाए रखने के हेतु प्रयत्नशील है। इस लिए वह एक ओर अपने निर्यात-व्यापार को बढ़ाने के हेतु विभिन्न प्रकार की सहायता एवं छूटें प्रदान करता है तथा दूसरी ओर आयात-व्यापार को घटाने के हेतु विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आजकल हरएक राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील है और अब स्वतन्त्रतावाद एवं अहस्तक्षेपवादी नीति का अन्त होकर सर्वत्र प्रतिबन्धों एवं नियंत्रणों का साम्राज्य छा गया है। इसीलिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि, "आधुनिक जगत वणिकवाद की ओर पीछे लौट रहा है" (The modern world is going back to mercantalism) ।

इतना सब कुछ होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बीसवी शताब्दी की वणिकवादी विचारधारा प्राचीन वणिकवादी विचारधारा से अनेक अर्थों में भिन्न है, यद्यपि प्राचीन एव अर्वाचीन वणिकवाद का अंतिम ध्येय एक वादी तत्वज्ञान रहता है। आज की वणिकवादी विचारधारा का एकमात्र उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना हैं। नव-वणिकवादी अपनी समस्त आर्थिक नीतियों को आर्थिक नियोजन पर आधारित करता है जिसके अन्तर्गत किसी नीति को क्रियान्वित करने से पूर्व उस पर भली भांति मनन किया जाता है और यह विचारा जाता है कि इस नीति का अंतिम उद्देश्य राष्ट्रीय कलयाण है अथवा नहीं वर्तमान युग में प्रत्येक आर्थिक नीति का कार्यान्विन जनतंत्रीय सरकार के द्वारा किया जाता है जबकि प्राचीन वणिकवादी युग मे ये सब बातें नहीं पाई जाती थी। आज के वणिकवादी युग में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास सम्बन्धी जितनी भी योजनाएं ाई जाती है उनमें सांख्यिकी का अधिक प्रयोग किया जाता। है यद्यपि प्राचीन वणिकवादी युग में भी सर विलियम पेटी ने सांख्यिकी का प्रयोग किया परन्तु उसका योग अत्यन्त सीमित था। वर्तमान वणिकवादी युग में केवल सांख्यिकी का ही नही किया जाता वरन् उसका विश्लेषण एवं व्याख्या करके सही निष्कर्ष काले जाते हैं। इस तरह नव वणिकवादी युग में सांख्यिकी का प्रयोग वणिक-युग के प्रयोग की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और पूर्ण है।

इसी प्रकार आज के वणिकवादी युग में औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास की जितनी भी योजनाएं बनाई जाती हैं उनका एक निश्चित ध्येय एवं आदर्श है जिसकी प्राप्ति के पश्चात् तत्सम्बन्धित नीति का परित्याग कर दिया जाता रन्तु प्राचीन वणिकवादी युग में देश की अर्थव्यवस्था सम्बन्धी जितनी भी यों का निर्माण किया जाता था उनका स्वभाव स्थाई होता था। उदाहरण के प्राचीन वणिकवादियों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करने हेतु अनुकूल व्यापार सन्तुलन की नीति का स्थाई रूप से पालन करने का सुझाव दिया था। नव-वणिकवादी युग में भी अनुकूल व्यापाराशेष की नीति का बोलबाला दिखाई देता है परन्तु इसका एकमात्र उद्देश्य स्वर्ण प्राप्त करना न होकर राष्ट्र के

आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाना भी है ताकि देश के नागरिकों का अधिकतम कल्याण हो सके। नव-वणिकवादी युग मे व्यापार सम्बन्धी जितने भी नियन्त्रण एवं प्रतिबंध लगाए जाते हैं उनका उद्देश्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का स्थिर करना होता है और वे अस्थाई काल के लिए ही लगाए जाते है जबकि प्राचीन वणिकवादी युग मे उद्योग-व्यापार सम्बन्धी नियन्त्रण और प्रतिबंध अनिश्चित काल के हेतु स्थाई तौर पर लगाये जाते थे तथा उनका उद्देश्य परतन्त्र देशों का शोषण करके राष्ट्रीय सत्ता को शक्तिशाली बनाना था। प्राचीन वणिकवादी युग में स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति को साध्य मानकर मानव-कल्याण को ठुकरा दिया गया, जबकि नव-वणिकवादी युग मे मानव-कल्याण को साध्य मानकर बहुमूल्य धातुओं को साधन-मात्र माना गया है। इस प्रकार प्राचीन वणिकवादी विचारधारा की तुलना मे नवीन वणिकवादी विचारधारा का दृष्टिकोण अधिक व्यापक प्रतीत होता है। नव-वणिक-वादी युग में विभिन्न देशों के साथ जो व्यापारिक समझौते किये जाते हैं उनका उद्देश्य व्यापारिक-प्रतिबन्धों को कम करना होता है। इस तरह वर्तमान युग में प्राचीन वणिकवादी विचारधारा की पुनरावृत्ति होते हुए भी दोनों युग की वणिक-वादी विचारधाराओं के ध्येय, आदर्श, दृष्टिकोण एवं कार्य प्रणाली मे मौलिक अन्तर पाया जाता है।

प्राचीन वणिकवादी विचाराधारा की तुलना नव-वणिकवादी विचाराधारा से करते हुये प्रो० हेने ने लिखा है, "युद्धोत्तरकाल का यह नव-वणिकवाद प्राकृतिक रूप से अनेक बातो में प्राचीन वणिकवाद से भिन्न है और विशेषकर इसमे कि इसने एक अधिक आदर्शवादी तत्त्वज्ञान की अपील की है। यह आर्थिक जीवन के अधिक प्रभावयुक्त सामाजिक आयोजन पर, या तो तानाशाही के अन्तर्गत पूर्णत: केन्द्रीय-करण के माध्यम से अथवा जनतन्त्रीय शासन पद्धति के अन्तर्गत सामूहिक क्रिया के माध्यम से, आधारित है। इसके अतिरिक्त यह सांख्यिकी की सही जानकारी पर भी अवलम्बित है।"*

---

* "This Neo-mercantilism of the post war period naturally differed in several respect from the older Mercantalism, and especially in that it appealed to a more idealistic philosphy. It depended more upon effective social planning of economic life, either through complete centralization under a dictatorship or through mass action under a democratic form of regimentation. And it was backed by much greater and more precise statistical information."

—Prof. Haney.

३
निर्बाधवाद
(Physiocracy)

प्राक्कथन—वणिकवादी विचारधारा के पतन के उपरांत अठारहवीं शताब्दी के मध्य से जिस नवीन आर्थिक विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ वह आर्थिक विचारधारा के इतिहास में 'निर्बाधवाद' (Physiocracy) के नाम से प्रसिद्ध है। अंग्रेजी भाषा का शब्द "Physiocracy" फ्रांसीसी भाषा के शब्द "Physiocratie" की उपज है जिसका निर्माण स्वयं ग्रीक भाषा के दो शब्दों "फिजिसियस" और "क्रैटस" के मेल से हुआ है और जिनका अर्थ है—"प्रकृति का शासन" (Rule of Nature)। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में कुछ ऐसे विचारक हुए जिन्होंने भौतिक जगत को नियंत्रित करने वाले कुछ प्रकृति नियमों की प्रतिस्थापना की तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था के नियमों को भी इन्हीं प्राकृतिक नियमों से शासित बताया। इसीलिये निर्बाधवाद को प्रकृतिवाद (Naturalism) की संज्ञा भी दी जाती है तथा इस विचारधारा के प्रतिपादकों एवं समर्थकों को निर्बाधवादी अथवा प्रकृतिवादी कहा जाता है। प्रकृतिवादी ही वे प्रथम विचारक थे जिन्होंने इस विशेष सामाजिक विज्ञान का नाम "राजनैतिक अर्थव्यवस्था" (Political Economy) रखा तथा इसका पूर्ण श्रेय एन्टोनी डी मोनचिरेटिन (Antoine de Montchretien) को है जिसने सर्वप्रथम सन् १६१५ में इस शब्द का प्रयोग किया था। उस काल से लेकर बाद के लेखकों के हाथों में पड़कर इस शब्द (Term) के अर्थ और क्षेत्र का विस्तार होता गया। जिन विचारकों ने तत्काल ही मोनचिरेटिन का अनुगमन किया उन्होंने एक पृथक आर्थिक दृष्टिकोण एवं आर्थिक विश्लेषण के सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व किया। इन विचारकों ने वणिकवादी सिद्धान्तों की आलोचना प्रस्तुत करके अपने विचारों का अभिव्यक्तिकरण अठारहवीं शताब्दी के मध्य में किया। वणिकवादी सिद्धांतों का खण्डन करने की एक ऐसी ही [illegible] में भी [illegible] हुई तथा इस क्षेत्र में फ्रांसीसी विचारकों ने अधिक [illegible]। इस तरह निर्बाधवाद का जन्म वणिकवाद की आलोचना के [illegible] हुआ।

कारक के महत्व का अन्तरण दूसरे कारक को हो गया है। आर्थिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में उनका व्यवहार इतना विस्तृत एवं क्रमबद्ध था कि प्रो० एरिक रोल (Eric roll) ने तो यहाँ तक कहा है कि "निर्बाधवादियों के साथ हम आर्थिक विचारधारा में सम्प्रदायों एवं पद्धतियों के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं; और यह खोजना कोई आश्चर्यजनक नहीं है कि अनेक विस्तृत अध्ययनों का विषय रहे हैं।"* निर्बाधवादियों के महत्व का विवेचन करते हुए प्रो० जीड एण्ड रिस्ट (Gide and Rist) ने कहा है" क्विजने और उसके अनुयायी विज्ञान के वास्तविक संस्थापक माने जाने चाहियें। यह सत्य है कि उनके सीधे वंशानुगतों ने—फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों ने—बिना विचार किये ही इस शीर्षक का हस्तान्तरण एडम स्मिथ को कर दिया परन्तु विदेशी अर्थशास्त्रियों ने पुन. इसे फ्रांस पर प्रतिस्थापित किया है। लेकिन जैसा कि अनेक विज्ञानों का मामला है इसकी निश्चित जन्म तिथि का पता लगाना या उस स्टॉक का निश्चय करना जिससे इसकी उत्पत्ति हुई है बहुत कठिन है, तथापि हम इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि निर्बाधवादी निश्चित तौर से प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने समाज के एक एकीकृत विज्ञान की धारणा को समझा। दूसरे शब्दों में, वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने यह समझा कि सभी सामाजिक तथ्य स्वाभाविक नियमों के साथ परस्पर सम्बद्ध हैं जिनको यदि एक बार व्यक्ति अथवा सरकार को बता दिया जाए तो वे उनका पालन करेंगे ....यह भी स्वीकार्य है कि स्मिथ के अन्दर निरीक्षण की महान् शक्ति भी और उसमें अभिव्यक्ति का गुण भी अधिक था जिसके कारण उसने विज्ञान को महत्वपूर्ण योगदान किया। फिर भी यह निर्बाधवादी ही थे जिन्होंने उस मार्ग का निर्माण किया जिस पर स्मिथ और अगले सौ वर्ष के लेखकों ने पयान किया।"* आगे चलकर प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने लिखा है,

---

* "With the physiocrats we enter the era of schools and systems in economic thought, and it is not surprising to find that they have been the subject of a great many studies." —Eric Roll

† "Quesnay and his disciples must be considered the real founders of the science. ...

... not very much to mark the date of its birth or to determine the stock from which it sprang, all that we can confidently say is that the physiocrats were certainly the first to grasp the conception of a unified science of society. In other words they were the first to realize that all social facts are linked together in the bonds of in cirtable laws, which individuals and Governments would obey if they were once made known to them......It must also be ... powers of observation, as well ... and altogether made a more ... Still, it was the Physiocrats who constructed the way along with Smith and the writers of the ... which follow have all marched."

Gide & Rist : The History of Economic Doctries, P. 22.

"निर्बाधवादियों को शब्दावली की पूर्ण चेतना के रूप में अर्थशास्त्रियों के प्रारम्भिक सम्प्रदाय के संस्थापक का श्रेय भी दिया जाना चाहिए। व्यक्तियों के इस लघु सम्प्रदाय का आर्थिक विचारधारा के इतिहास में प्रवेश बहुत महत्व का है। उनके बीच सिद्धान्तों की एकरूपता इतनी पूर्ण थी कि उनके नाम तथा व्यक्तिगत चरित्रों को एक सामूहिक नाम के रूप में व्यक्त किया जाता है।"*

प्रमुख निर्बाधवादी विचारकों में फ्रांसिस क्विजने (Froncis Quesnay) डूपो डी नीमूर्स (Dupont de Nemours), रोबर्ट तारगो (Robert Turgot), गुर्ने (Gowrnay), मीराब्यू (Mirabeau), ली ट्राजेन (Le Trosue), रिवेर (Riviere) आदि को सम्मिलित किया जाता है। निर्बाधवादी विचारकों को तीन विभिन्न नामों अर्थात् प्रकृतिवादी (क्योंकि इन विचारकों के लगभग सभी आर्थिक सिद्धान्त प्राकृतिक–नियमों पर आधारित थे), कृषि–शाखा के विचारक (क्योंकि इन विचारकों ने कृषि–व्यवसाय को महत्व की दृष्टि से प्रथम स्थान दिया था इसलिये एडम स्मिथ ने उनके विचारों की पद्धति को कृषि-पद्धति तथा उन विचारकों को कृषिगत-सम्प्रदाय की संज्ञा प्रदान की) तथा अर्थशास्त्री से पुकारा गया है।

निर्बाधवाद के प्रादुर्भाव के कारण (Factors responsible for Origin of Physiocracy):—निर्बाधवाद का प्रादुर्भाव वणिकवादी विचारधारा की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ।† निर्बाधवादी विचारधारा वणिकवादी विचारधारा के अन्तिम चरण में ही अंकुरित हो गई थी तथा वणिवाद के पतन के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निर्बाधवादी विचारधारा पल्लवित और पुष्पित हुई) संक्षेप में निर्बाधवादी विचारधारा के प्रादुर्भाव के निम्नोक्त कारण थे:—

(१) वणिकवादी विचारधारा के अन्तर्गत जो दोष निहित थे उनको लेकर आलोचकों का एक दल खड़ा हो गया जिसने इस विचारधारा के सिद्धान्तों के दूषित परिणामों एवं अव्यावहारिकता को जनता के सामने स्पष्ट खोलकर रखा। वणिकवादी विचारधारा के आलोचकों में मैलन (Melon), बोइसक्यूलिबर्ट (Bois-...ert), फेन्कलन (Fenclon) तथा रिचार्ड कैंटिलन (Richard Cantillon)

* "The Physiocrats must also be credited with the foundation ... earliest school of economists in the fullest sense of the term. ... entrance of this small group of men into the arena of history is a ... touching and significant spectacle. So complete was the unani...ity of doctrine among them that their very names and even their ...onal characteristics are for ever enshrouded by the anonymirty of collective name."

—Prof. Gide and Rist : History of Economic Doctrines. P. 23.

† "Physiocracy, though it meant much more, might almost be defined as the revolt of the french against tilism." —Haney mercan

प्रादि के नाम प्रमुख हैं। मैलन ने वणिकवादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित बहुमूल्य धातुओं की अस्वाभाविक प्यास की कड़ी आलोचना की और बताया कि जन-साधारण के लिये बहुमूल्य धातुओं की अपेक्षा भोजन और वस्त्र की आवश्यकता अधिक है। इसी प्रकार दूसरे आलोचकों मे से किसी ने भूमि को उत्पत्ति का प्रमुख साधन बताया और इस दृष्टि से कृषि व्यवसाय को प्रथम स्थान दिया तो दूसरों ने स्वतन्त्र अन्तराष्ट्रीय व्यापार पर बल दिया तथा विदेशी व्यापार के साथ-साथ अन्तर्देशीय के महत्व की वकालत की। प्रो० एब्राहम में के मतानुसार, "जिन्होंने तत्काल ही मोनचरेटिन का अनुगमन किया था उन्होंने आर्थिक विश्लेषण एवं आर्थिक दृष्टिकोण के पृथक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने अपने विचारों का प्रकाशन अठारवी शताब्दी के उत्तार्द्ध मे एक आलोचना के साथ जो कि वणिकवादी सिद्धांतों के विरूद्ध ठहरती थी, किया। वाणिकवाद को उखाड़ फेंकने और आलोचना करने की ऐसी ही समान प्रवृति इगलैण्ड मे भी विकसित होती हुई पाई गई परन्तु फ्रांसीसी विचारक प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस क्षेत्र में गहन प्रभाव छोड़ा। सम्पूर्ण रूप में निर्वाधवाद ने वणिकवाद की आलोचना से जन्म पाया।"* इस तरह आलोचकों ने एक ओर जहाँ वाणिकवादी विचारधारा को जर्जरित बनाया वहाँ उन्होंने दूसरी ओर निर्वाधवादी विचारधारा को जीवन प्रदान करने मे पर्याप्त योगदान भी किया।

(२) वणिकवादी विचारधारा की सार्वाधिक कटु आलोचना फ्रांस में ही क्यों हुई इसका मुख्य कारण फ्रांस की तत्कालीन राजनैतिक-आर्थिक दशा थी। वणिक-वादियो द्वारा उद्योग-व्यापार पर अधिक बल डालने का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि कृषि और कृषक समुदाय की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। राजा द्वारा अपनी फिजूलखर्ची को पूरा करने के हेतु भारी मात्रा मे जनता पर करारोपण किया गया। पदारियों, किसानों और निम्न वर्गों का शोषण भारी करारोपण तथा उसकी अनुचित ढंग से वसूली के द्वारा किया जा रहा था जिसने फ्रांस को राज्य के लिये एक नई नीति अपनाने को प्रेरित किया। फ्रांस में आन्तरिक और विदेशी व्यापार पर जो कर तथा टैरिफ लगाये गए थे उसने फ्रांस के आर्थिक विकास को पूर्णतया अवरुद्ध कर दिया। प्रो० हेने के मतानुसार "संक्षेप में, फ्रांस एक बड़ी रेलवे या फैक्ट्री के समान था जिसमें ह्रास एवं क्षय के हेतु कोई व्यवस्था नहीं थी, जिसकी उत्पादन शक्ति समाप्त हो चुकी थी और जिस

* "Those who immediately followed Montchretion represented a separate school of economic out-look and economic analysis. They made their appearance in the latter half of the eighteenth century with a criticism that was lavelled against the Mercantist doctrines. Similar tendency to criticise and set aside Mercantalism was found developing in England also but the French thinkers were the first to make a deep impression in this field. On the ... [illegible] ... tracy took its origin from a cri[illegible]

की साख-पद्धति हिल चुकी थी ।"* कहने का अभिप्राय यह है कि लुई पंचदस (Louis XV) और लुई लोडस (Louis XVI) के राज्य काल में फ्रांस में व्यभिचार, भुखमरी आदि का साम्राज्य रहा । एक ओर किसान और मजदूर दिन-रात अपना खून-पसीना एक करके भी अपनी भोजन वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहे थे परन्तु दूसरी ओर शासक वर्ग की विलासता पर भारी व्यय हो रहा था । जनता के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में पग पग पर इतना कठोर सरकारी नियंत्रण हो गया था कि कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक सांस नहीं ले सकता था । फ्रांस की ऐसी सामाजिक-आर्थिक दशा की प्रतिक्रियास्वरूप विरोधी विचारधारा का जन्म स्वाभाविक था ।

(iii) इंगलैंड की कृषि–क्रान्ति ने भी फ्रांस आदि देशों को प्रभावित किया तथा इसकी जनता में कृषि के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करके निर्वाधवादी विचारधारा को फैलाने में महत्वपूर्ण योगदान किया । वणिकवादी विचारधारा के अन्तर्गत व्यवसायिक दृष्टि से कृषि को निम्नतम स्थान प्रदान किया गया था जिसके कारण फ्रांस आदि देशों के कृषि व्यवसाय की दशा शनैः शनैः बहुत शोचनीय हो गई । यह स्मरण रहे कि इंगलैंड के निवासियों ने वणिकवादियों के इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया था जिसके कारण इंगलैंड में कृषि व्यवसाय की दशा काफी अच्छी हो गई जिसका प्रभाव फ्रांस आदि देशों पर भी पड़े बिना नहीं रह सका । फ्राँस में फ्रांसिस क्विज़ने (Francis Quesnay) ने इंगलैंड में प्रचलित खेती के नए साधनों का प्रयोग किया और उनका अच्छा प्रभाव देखकर उसने फ्रांस की जनता को कृषि-क्षेत्र के इन नवीन सुधारों एवं आविष्कारों को अपनाने की सलाह दी । इसके अतिरिक्त न्यूटन (Newton), ह्यूम (Hume) और लॉक (Locke) आदि विचारकों को भी, जिनके सम्पर्क में फ्रांसीसी आये थे, फ्रांसीसी जनता में कृषि-व्यवसाय के प्रति अभिरुचि जागृत करने का काफी श्रेय है जैसा कि प्रो० हेने ने लिखा है, "न्यूटन का कार्य जनप्रिय हो गया, लॉक का दर्शन विस्तृत रूप में स्वीकार किया गया तथा ह्यूम एवं सेफ्टसबरी के विचारों ने उचित अनुमति का कार्य किया । इससे भी अधिक बात हुई कि आर्थिक विषय की अनेक इंगलिश पुस्तकों का फ्रेन्च में अनुवाद किया ...नमें मुख्य पुस्तकें गी (Gee), चाइल्ड (Child), कलपीपर (Culpeper) ... (King) की थीं ।"*

---

* "In short, Fance was like agreat railway or factory which ...ade no all...wance for depreciation or depletion her productive ...r was impaired and her credit shaken."

Prof. Haney : History of Economic Thought, P. 176,

* "The work of Newton was popularized, the philosophy of ...ock became widely accepted, and the thought of Hume and Shaftes...ury worked as a suitable leaven. Even more dirictly to the point, several English books on Economic subject were translated into French, among these being works by Gee, Child, Culpeper and King.'

—Haney : History of Economic Thought, P. 177.'

(iv) इस काल में वैज्ञानिक क्षेत्र में हुए विभिन्न आविष्कारों ने भी जनता के मानसिक दृष्टिकोण को परिवर्तित किया। न्यूटन ने अपने महत्वपूर्ण सिद्धान्त "भूमि के गुरुत्वाकर्षण नियम" (Law of Gravitation) का आविष्कार किया तथा फ्रांसिस विडजने ने मानव शरीर की सरचना सम्बन्धी नियमों की खोज की। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधानों ने जनता के सम्मुख प्रकृति के महत्व को रक्खा जिनको आधार बनाकर हॉब्स, लॉक आदि विचारकों ने जनता को यह समझाया कि प्रकृति जिन निश्चित एवं निर्धारित नियमों के आधार पर कार्यशील है वे नियम सभी व्यक्तियों के लिए हितकर हैं। इस तरह प्रकृति के नियमों के प्रति जनता की बढ़ती हुई आस्था ने एक ओर तो उन वणिकवादी सिद्धान्तों से जो कि प्राकृतिक नियमों से मेल नहीं खाते थे, विश्वास हटा दिया और दूसरी ओर निर्बाधवाद (प्रकृतिवाद) के विकास में पूर्ण सहयोग दिया।

उक्त विभिन्न कारणों ने शनैः शनैः वणिकवादी विचारधारा के विरुद्ध क्रान्ति ने जन्म लिया जिसकी बढ़ती हुई, उग्रता ने वणिकवाद को समाप्त करके एक नवीन विचारधारा (निर्बाधवाद) को जन्म दिया। प्रो० हेने ने निर्बाधवादी विचारधारा के प्रादुर्भाव के विभिन्न कारणों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए लिखा है कि वणिकवादी युग में फ्रांस में पाई जाने वाली आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दशायें ही निर्बाधवाद के प्रादुर्भाव के लिए उत्तरदाई हैं। उस समय की करारोपण एवं द्रव्य सम्बन्धी सरकार की नीतियाँ समाज के आन्तरिक संगठन एवं विकास के हेतु अत्यन्त हानिकर थीं। अर्थशास्त्रियों ने जनता की निर्धनता को अपनी कटु आलोचना का आधार बनाकर यह नारा लगाया "निर्धन कृषक–निर्धन राज्य, निर्धन राज्य–निर्धन राजा" (अर्थात् जिस देश के किसान निर्धनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं उस देश में प्रचलित राज्य को खुशहाल नहीं कहा जा सकता और जब राज्य ही निर्धन है तो फिर राजा को शक्ति सम्पन्न कैसे कहा जा सकता है)।*

निर्बाधवाद के महत्वपूर्ण सिद्धांत (The Essential Doctrines of Physiocracy)—निर्बाधवादी विचारधारा के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का क्रमशः निम्नोच्य में विवेचन किया गया है। प्रमुख निर्बाधवादी सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(१) प्राकृतिक व्यवस्था (The Natural Order)—निर्बाधवादियों के आर्थिक सिद्धान्तों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनका समस्त विश्लेषण प्राकृतिक व्यवस्था के पक्के विश्वास पर आश्रित है। ड्यूपो डी नमूर्स (Dupont de Nemours) ने निर्बाधवाद को प्राकृतिक व्यवस्था के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया है।

* "With such an underlying social philosophy the Physiocrats sought to find the causes for the economic evils which afflicted France. Their predecesors, the financiers, had been content to experiment with taxation and money. "The Economists, however, found a critical symptom in the poverty of the people, as is indicated in their celebrated axim, "poor peasants, poor kingdom . dom, poor —Prof.

(Physiocracy is the science of the natural order)। यह कहना तो बहुत कठिन है कि "प्राकृतिक व्यवस्था" की धारणा का अर्थ सामाजिक संविदा के आधार पर ऐच्छिक रूप से निर्मित कृत्रिम सामाजिक व्यवस्था और इसके बीच का अन्तर है। वस्तुत: प्राकृतिक व्यवस्था को अनेक रूपों में परिभाषित किया जाता है। सर्वप्रथम प्राकृतिक व्यवस्था का अर्थ प्रकृति की एक दशा से लगाया जाता है जोकि कृत्रिम रूप से निर्मित सभ्य दशा से बिल्कुल विपरीत होती है। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक व्यवस्था का अर्थ उस प्राचीन व्यवस्था से लगाया जाता है जिसमें मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में न रहकर एक पशु के समान जीवन व्यतीत करता था। डूपो डी नमूर्स के मतानुसार, "एक तरह का प्राकृतिक समाज होता है जिसका अस्तित्व अन्य सभी मानवीय संगठनों से प्रथम था" (There is a natural society whose existence is prior to every other human association)। दूसरे रूप में प्राकृतिक व्यवस्था का अर्थ इस प्रकार लगाया जाता है कि मनुष्य-समाज पर भी प्राकृतिक नियम उसी तरह लागू होते हैं जिस तरह वे पशु-समाज एवं वनस्पतियों अथवा भौतिक पदार्थों पर लागू होते हैं। प्राकृतिक व्यवस्था की यह व्याख्या अधिक उचित प्रतीत होती है क्योंकि डा० क्विजने भी रक्त-परिभ्रमण तथा पशु-अर्थ-व्यवस्था के अपने अध्ययन के द्वारा इन्हीं विचारों से प्रसिद्ध हुये हैं। क्विजने का मत है कि "प्राकृतिक व्यवस्था एक तरह का भौतिक विधान है जिसे स्वयं ईश्वर ने सृष्टि को प्रदान किया है" (The natural order is merely the physical Constitution which God himself given the universe.)। क्विजने ने बताया कि, "समाज में प्रवेश करते हुये तथा अपने पारस्परिक लाभार्थ कन्वैन्शन्स का निर्माण करते हुए मनुष्यों ने अपनी स्वतन्त्रताओं पर कोई प्रतिबन्ध लगाए बिना ही, प्राकृतिक अधिकार के क्षेत्र को बढ़ाया" (By entering society and making Conventions for their mutual advantage men incrvease the scope of natural right without incurring any restiiction of their liberties)। इस तरह नवाधिवादियों ने समस्त सामाजिक वर्गों की पारस्परिक निर्भरता के विचार को प्रदान किया तथा उनको प्रकृति पर अंतिम रूप से निर्भर बताया।

वाधिवादी विचारधारा के एक अन्य लेखक रिवेरी (Riviesre) ने बताया व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसकी स्थापना ईश्वर के द्वारा होती है तथा की स्थापना ईश्वर भौतिक व्यवस्था की दूसरी शाखाओं की तरह (The social order is not the work of man, but is on the ry is stituted by the Author of all nature himself, as all the branches of the physical order.)। आगे उन्होंने लिखा है कि तिक अधिकार का निर्धारण प्रकृति की दशा में ही होता है। यह अधिकार तभी प्रकट होता है जबकि न्याय और श्रम की स्थापना हो जाती है" (Natural right is indeterminate in a state of nature. The right only

appears when justice and labour have been established) । इसी मत का समर्थन करते हुए प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है कि यह कृत्रिम व्यवस्था से विपरीत है क्योंकि कृत्रिम व्यवस्था मानवीय नियमों, प्रयत्नों एवं आदेशों द्वारा संचालित होती है।*

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट के मतानुसार "वस्तुत: न तो निर्बाधवादी इस बात मे विश्वास करते थे कि प्राकृतिक व्यवस्था गुरुत्वाकर्षण की तरह स्वमेव लागू होती है और न ही उन्होंने यह कल्पना की कि प्राकृतिक व्यवस्था मधुमक्खियों तथा चींटियो के समुदाय की तरह मानव समुदाय मे लागू होगी... .....प्राकृतिक व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसे ईश्वर ने मानव जाति की खुशहाली के हेतु बनाया। यह एक दूरदर्शी व्यवस्था है.........सारांश रूप में हम कह सकते है कि प्राकृतिक व्यवस्था वह व्यवस्था थी जो कि केवल किसी व्यक्ति विशेष को उत्तम प्रतीत न होकर निर्बाधवादियों जैसे सभ्य, बुद्धिमान एवं उदार-मस्तिष्कीय व्यक्तियों को उत्तम प्रतीत हुई। यह बाह्य तथ्यों के निरीक्षण की उपज नही थी, यह अपने अन्तग्रस्त सिद्धान्त का प्रकाशन थी। और यही एक कारण है कि निर्बाधवादियों ने सम्पत्ति और अधिकार के प्रति इतना सम्मान दिखाया। उन्हें यह दिखाई देता था कि इससे प्राकृतिक व्यवस्था के आधार का निर्माण होगा।'* प्राकृतिक व्यवस्था की सार्वभौमिकता के विषय में लिखते हुए रोबर्ट तारगो (Robert Targot) ने कहा है कि "जो राजनैतिक दशाओं की पारस्परिक पृथकता को छिपाने मे असमर्थ है अथवा उनकी विविध संस्थाओं को भुलाने में असमर्थ है, वह राजनैतिक अर्थव्यवस्था

* "It stood opposed to the order positive whose laws are human made and whose arrangemecnts are the imperfect ones of existing governments, in this resenbling the distinction made by thomas Aquivas and ancient philosophers before him."

—Prf. Haney : History of Economic Thought, P. 178.

† "As a matter of fact, they neither believed that the natural order imposed its lf like gravitation nor imagined that it could ever be realized in human society as it is in the hive or the antihill .... The natural order is the order which God has ordaiued for the happiness of mankind. It is the providential order... .to sum up we may say that the natural order was that order which seewed obviously the best not to any individual whom so ever, but to rational, cultured liberal-minded men like the Physiocrats. It was not the product of the observation of external facts, it was the revelation of a principle within. And this is one reason why the Physiocrats showed respect for property and authority. It seemed to them that this formed the very basis of the natural order."

—Gide and Rist : History of Economic Doctrine, P. 28-29.

के प्रश्न को उचित ढंग से नहीं सुलझा सकता।...... केवल यह जानना पर्याप्त नहीं है कि क्या है अथवा क्या हो रहा है वरन् यह भी जानना चाहिए कि क्या होना है। मनुष्य के अधिकार इतिहास पर नहीं पाये जाते वरन् वे तो उसकी प्रकृति के मूल में हैं।"* इस तरह निर्बाधवादियों के मतानुसार प्राकृतिक व्यवस्था वह व्यवस्था है जो कि मानव समाज के हेतु प्रकृतिदत्त है जो कि विश्व व्यापी तथा चिरस्थाई है। प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रकृति अपने कल्याणकारी शाश्वत नियमों द्वारा संसार का नियंत्रण करती है।

निर्बाधवादियों का मत था कि मानव समाज में पाई जाने वाली अव्यवस्था, यातनाओं, पीड़ाओं आदि का एकमात्र कारण यह है कि मानव समाज का संगठन प्राकृतिक व्यवस्था के विपरीत है। उनके मतानुसार मानव समाज में व्याप्त आपदाओं को समाप्त करने का एकमात्र उपाय यही है कि समाज का संगठन प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप किया जाए। निर्बाधवादियों के इस मत की अभिव्यक्ति प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने इन शब्दों में की है, "सभी आर्थिक प्रयासों का उद्देश्य न्यूनतम व्यय द्वारा अधिकतम समृद्धि प्राप्त करना होना चाहिए। प्राकृतिक व्यवस्था का उद्देश्य भी यही है। जब हर कोई इस नीति को अपनाएगा तो प्राकृतिक व्यवस्था सर्वोत्तम ढंग से निश्चित होगी। इस व्यवस्था का सार यह कि किसी व्यक्ति का कोई विशेष हित सभी व्यक्तियों के सामान्य हित से पृथक नहीं किया जा सकता, परन्तु यह केवल एक स्वतंत्र पद्धति में ही सम्भव है।"† प्राकृतिक व्यवस्था को प्राप्त करने का मार्ग बताते हुए डा० विवजने लिखा है कि मनुष्य को उस शिक्षा तथा संस्कृति को ग्रहण करना चाहिए जो कि ईश्वरीय ज्योति को पहिचानने में सहायक होती है। निर्बाधवादियों के मतानुसार शाँति, व्यक्तिगत सम्पत्ति, अधिकार, स्वतन्त्रता आदि प्राकृतिक व्यवस्था के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। डा० विवजने के शब्दों में, "प्राकृतिक व्यवस्था के नियम किसी भी तरह मानव जाति की स्वतन्त्रता को कम नहीं करते बल्कि इससे मिलने वाला एक बड़ा लाभ यह है

---

* "Whoever is unable to over look the accidental separation ·olitical states one from another, or to forget their diverse insti- will never treat a question of political economy satisfactorily enough to know what is or what has been, we must what ought to be the rights of man are not founded upon ·ey are rooted in his nature," —Turgot.

† "To secure the greatest amount of pleasure with least possi- t lay should be the aim of all economic efforts. And this was the 'Order' aimed at. When every one does this the natural er, instead of being endangered, will be all the better assured. It of the very essence of that order that the particular interest of individual can never be separated from the common interest of all, but this happens only under a free system." —Prof. Gide & Rist.

कि वे और अधिक स्वतंत्र बन जाते हैं।"* इस प्रकार निर्बाधवादियों द्वारा कल्पित प्राकृतिक व्यवस्था पर आधारित मानव-समाज में पारस्परिक विरोध अथवा वर्ग-संघर्ष का कोई स्थान नहीं है। सारांश रूप में निर्बाधवादियों का यह मत था कि यदि मानव-समाज की व्यवस्था प्राकृतिक नियमों (यथा-स्वतन्त्रता, परस्पर निर्भरता, शांति, प्रेम) के अनुरूप हो तो मानव-समाज में अन्तर्निहित समस्त अव्यवस्थाएं समाप्त हो जायेंगी।

निर्बाधवादियों की प्राकृतिक व्यवस्था सम्बन्धी धारणा की विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक आलोचनाएं प्रस्तुत की गई हैं। प्रो० हैने (Prof Haney) का कथन है कि निर्बाधवादियों का यह समझना सर्वथा भ्रांतिमूलक है कि समाज के सदस्य अपने हितों व अहितों को तथा दूसरों के साथ सहयोग करने के महत्व को भली तरह से जानते हैं तथा सरकार की अपेक्षा प्रकृति के नियमों के अनुसार अधिक काम करते है। इसी तरह प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने भी लिखा है, "उनके सामाजिक तत्व ज्ञान पर विशेषकर इसकी सादगी आदि पर हंसना आसान है और यह दिखाना भी सरल है कि मनुष्यों के बीच में हितों की ऐसी एकता कहीं भी नहीं पाई जाती कि व्यक्ति विशेष के हित सदैव ही समुदाय के हितो के अनुरूप नहीं होते कि व्यक्तिगत नागरिक निजी हितों के सम्बन्ध में भी सर्वोत्तम निर्णायक नहीं है।"† वस्तुतः निर्बाधवादियों का यह कथन युक्तियुक्त नहीं है कि समाज के सदस्यों के हितो मे परस्पर कोई विरोध नहीं होता और हरएक सदस्य दूसरो के हित को समझता है क्योंकि यदि उनका यह विचार सत्य होता तो वर्तमान समाज के रंगमंच पर वर्गभेद (Class Difference) और वर्ग-संघर्ष (Class Conflict) के दृश्य दिखाई नहीं पड़ते। समाज के कुछ ही उदार व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कि दूसरो के हितों को ध्यान में रखते हुए कोई कार्य करते हों, नहीं तो समाज के सभी सदस्य स्वार्थी प्रवृति के ही होते हैं। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने निर्बाधवादियों द्वारा कल्पित प्राकृतिक व्यवस्था के आधार पर संगठित मानव समाज की समालोचना करते हुए लिखा है कि, 'यह सत्य है कि इस समाज में सरकार के लिए अधिक काम नहीं होगा परन्तु उस निकाय का कार्य किसी भी तरह से हल्का बताना भी ठीक नहीं और विशेषकर जबकि यह निर्बाधवादियों के कार्यक्रम को पूर्णतया लागू करें। इसको व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वतन्त्रता के अधिकारो को समस्त कृत्रिम बाधाओं को हटा कर बनाये रखने तथा उनको सजा देने जोकि इन अधिकारों को ठुकराते हैं का कार्य

* "The laws of natural order do not in any way restrain the liberty of mankind, for the great advantage which they possess is, that they make for greater liberty."
—Queshay.

† "It is easy to laugh at their social philosophy, to mock at ... such supposed harmony ... coincide with those of the ... not alwas the best j...

Gide & Rist : History of Economic Doctrines. P

संभालना होगा और इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण उसका यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक व्यवस्था के नियमों के रूप में जनता को आवश्यक निर्देश दे'†।

आलोचकों का तो यहां तक कहना है कि निर्बाधवादी विचारक प्राकृतिक व्यवस्था के स्वभाव एवं नियमों को भी भली प्रकार नहीं समझ पाए हैं तथा इस सम्बन्ध में प्रत्येक निर्बाधवादी विचारक की धारणा भी पृथक है। डा० क्विजने (Dr. Quosnay) ने अपनी प्राकृतिक व्यवस्था सम्बन्धी धारणा को भौतिक शास्त्र के रक्त-परिभ्रमण के सिद्धान्त पर आधारित किया है परन्तु क्योंकि उस काल तक भौतिक विज्ञान का इतना अधिक विकास नहीं होने पाया था, इसलिये क्विजने प्राकृतिक व्यवस्था सम्बन्धी धारणा का सही तौर पर स्पष्टीकरण नहीं कर पाया है। प्रो० हेने के शब्दों में, "यदि भौतिक विज्ञान और विशेषकर जीव विज्ञान का अधिक विकास हुआ होता तो एक दूसरी ही कहानी कही जाती क्योंकि निर्बाधवादियों ने भौतिक और सामाजिक संसारों के बीच में स्पष्ट अन्तर्सम्बन्ध बताया है तथा भौतिक तत्वों पर अधिक बल डाला है। परन्तु उस काल तक जीव विज्ञान मुश्किल से अपने शैशव काल में था, और वे सनातन एवं नित्य विचारों, ईश्वरीय मस्तिष्क और इसी तरह की सम्बन्धित आध्यात्मिक धारणाओं से शासित हुए।"[2]

यद्यपि आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने निर्बाधवादियों द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक व्यवस्था की धारणा को पूर्णरूपेण अस्पष्ट एवं निर्मूल मान लिया है, तथापि उनकी इस धारणा की महत्ताएं इस प्रकार हैं—(क) निर्बाधवादियों ने अपनी इस धारणा के द्वारा सामाजिक व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों के विषय में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं जो कि समाज शास्त्र (Sociology) की अमूल्यनिधि हैं। (ख)

---

† "It is true that there will not be much work for the Government, but the task of that body will by no means be a light one, especially if it intends carrying out the Physiocratic programme. This included upholding the rights of private property and individual 'berty by removing all artificial barriers, and punishing all those who atened the eixstence of any these rights, while most important ere was the duty of giving instructions in the laws of the der."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrives, P. 31.

ad the physical sciences and especially biology, been more eloped, a different story could doubtless be told, for the ts clearly saw the interrelation between the physical and orlds, and were in clined to emphasize material factors. But cience of biology was hardly even in its infancy, and they were inated by metaphysical conceptions concerning innate and eteral ideas, the mind of God, and the like."

Prof. Haney ; History of Economic Thought, P. 180.

निर्बाधवादियों की इस धारणा से वणिकवादी युग में विलुप्त व्यक्तिगत सम्पत्ति, स्वतन्त्रता आदि के विचारों को नव-जीवन प्राप्त हुआ। (ग) निर्बाधवादियों ने आर्थिक स्वतन्त्रता (Laissez-Faire) का महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया जिसके आधार पर एडम स्मिथ और उसके अनुयाइयों ने आर्थिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।

(२) विशुद्ध उत्पादन (The Net Product)—निर्बाधवादियों की प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक तथ्य का एक स्थान है। इस तरह का विस्तृत सामान्यीकरण उन्हें अर्थशास्त्र के संस्थापक की अपेक्षा समाजशास्त्र के संस्थापक होने का अधिक श्रेय प्रदान करता है। परन्तु उनके द्वारा एक विशुद्ध आर्थिक तत्व का भी समावेश किया गया जिसने उनका ध्यान प्रारम्भिक चरण में आकर्षित किया और उनकी कल्पनाओं को पूर्णतया एक कृत्रिम अनुसंधान पर लगाया। विशेष स्थिति यह थी कि उन्होंने भूमि को उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया जो कि उस समय का बहुत अद्भुत और सम्पूर्ण निर्बाधवादी पद्धति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त था।* इस तरह निर्बाधवादियों का दूसरा महत्वपूर्ण आर्थिक विचार विशुद्ध-उत्पादन से सम्बन्धित है जिसके महत्व को बताते हुये डूपो डी नमूर्स ने लिखा *जाति की समृद्धि विशुद्ध उत्पादन की अधिकतम मात्रा से आबद्ध है"* (The है कि, "मानव prosperity of mankine is boumd up with a maxinum Net-product.)।

विशुद्ध-उत्पादन से निर्बाधवादियों का क्या अभिप्राय था इसका स्पष्टीकरण प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने इन शब्दों में किया है, "हरएक आवश्यक उत्पादन कार्य में कुछ व्यय अथवा हानि निहित होती है। दूसरे शब्दों में, नई सम्पत्ति के उत्पादन में सम्पत्ति की कुछ मात्रा का क्षय होता है और यह मात्रा नई उत्पादित सम्पत्ति में से घटाई जानी चाहिए। यह अन्तर जोकि एक के ऊपर दूसरे के अतिरिक्त का माप है धन की विशुद्ध-वृद्धि की संरचना करता है जोकि निर्बाध वादियों के समय से 'विशुद्ध-उत्पादन'

---

* "Every social fact had a place with in the 'natural order' of the Physiocrats. Such a wide generalization would have entitled them to be regarded as the founders of sociology rather than of economics. But there was included one purely economic phenomenon which attracted their attentio.i at an early stage, and so completely captivated their imaginations as to lead them on a false quest. This was the predominart position which land occupied as an agent of production—the most erroneous and at the same time the most characteristic doctrine in the whole Physiocrate system."

—Prof, Gide & Rist : A History of Economic Doctrines. P. 31—

के रूप में जाना जाता है।''† इस तरह निर्बाधवादियों के मतानुसार प्रत्येक नवीन उत्पादन की मात्रा में से उसके लागत-व्यय को घटाने पर जो कुछ शेष रहता है वही सम्पत्ति की वृद्धि अथवा विशुद्ध-उत्पादन कहलाता है। अतएव विशुद्ध-उत्पादन एक तरह का अतिरिक्त (Surplus) ही है जोकि उत्पादक को प्राप्त होता है। यह स्मरण रहे कि निर्बाधवादियों ने अपनी विशुद्ध-उत्पत्ति सम्बन्धी धारणा में 'उपयोगिता' (Utility) तत्व को महत्व प्रदान नहीं किया है क्योंकि उनके मतानुसार किसी वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाने से विशुद्ध-उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती वरन् यह तो केवल वस्तुओं के परिमाण की अभिवृद्धि पर ही निर्भर है।

निर्बाधवादियों का मत है कि विशुद्ध उत्पत्ति केवल उन्हीं क्षेत्रों से प्राप्त होती है जिनमें मनुष्य और प्रकृति मिलकर काम करते हैं। उनका मत था कि मनुष्य न तो किसी पदार्थ का निर्माण कर सकता है और न उसे नष्ट ही कर सकता है वरन् यह शक्ति तो केवल कृषि प्रकृति को ही प्राप्त है। निर्बाधवादियों के मतानुसार केवल ही विशुद्ध-उत्पत्ति का एकमात्र क्षेत्र है क्योंकि केवल इसी क्षेत्र में उत्पादित सम्पत्ति अधिक ठहरती है। प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार निर्बाधवादियों ने विशुद्ध-उत्पादन की धारणा मे दो तत्व निकाले अर्थात् दूसरे उत्पादन-क्षेत्रों की अपेक्षा भूमि का उत्पादन-क्षेत्र भिन्न प्रकार का होता है तथा भूमि का उत्पादन लाभ को सम्मिलित करते हुए लागत-व्यय से अधिक होता है। इस तरह निर्बाधवादियों के मतानुसार भूमि ही विशुद्ध-उत्पत्ति का एक मात्र क्षेत्र है। ली ट्रोजन (Le Trosne) के शब्दों में, "यह सत्य कि भूमि ही सब वस्तुओं की उत्पत्ति का एकमात्र साधन है, इतना स्पष्ट है कि हममें से कोई भी इसमें सन्देह नहीं कर सकता।" राबर्ट तारगो (Robert Turgot) के शब्दों में, "भूमि का उत्पादन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ... जो कुछ ऊपर रहता है वह स्वतन्त्र एवं व्यवस्था योग्य है, कृषक को उसकी लागत व्यय तथा श्रम के पारिश्रमिक के अतिरिक्त एक विशुद्ध पारितोषक दिया है''* इसी तरह ली ट्रोजन ने लिखा है कि, "भूमि के अतिरिक्त अन्य कहीं

---

† "Every productive undertaking of necessity involves certain [illegible]ings—a certain loss. In other words, some amount of wealth [illegible]ed in the production of new wealth an amount that ought [illegible]racted from the amount of new wealth produced. This [illegible], measuring as it does the excess of the one over the other, [illegible] the net increase of wealth, known since the time of the

भी लगा हुआ श्रम पूर्णतया अनुत्पादक है क्योंकि मनुष्य उत्पादक नहीं है ।[1] सारांश यह है कि निर्बाधवादियों ने भूमि के अतिरिक्त परिवहन, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग आदि को अनुत्पादक ठहराया । डा० क्विजने ने तो उद्योग एवं वाणिज्य को कृषि के आधीन ठहराते हुए यह कहा है कि, "कृषि और वाणिज्य हमारी सम्पत्ति के दो साधन समझे जाते हैं, उद्योग की तरह वाणिज्य भी कृषि की ही एक शाखा है। यह कृषि ही है जोकि उद्योग और वाणिज्य के लिए कच्चा माल तैयार करती है और ये दोनों शाखाएं अपना लाभ कृषि को ही लौटा देती हैं जो कि सम्पत्ति का नवीनीकरण करती है, जिसको प्रतिवर्ष खर्च किया जाता है तथा उपभोग किया जाता है।"[2] इस तरह यद्यपि शिल्पकार द्वारा कच्ची सामग्री को सुन्दर एवं उपयोगी वस्तुओं मे परिणित किया जाता है परन्तु उसे अपना काम आरम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक है कि दूसरे कच्चे माल की पूर्ति करें तथा आवश्यक सामान उपलब्ध करें। जब उनका भाग पूर्ण हो जाता है तो दूसरों को उन्हें पुनः क्षति पूर्ति करनी पड़ती है तथा उनकी कठिनाई के हेतु भुगतान करना पड़ता है। दूसरी ओर कृषक अपना निजी कच्चा माल पैदा करते हैं या तो उपयोग के हेतु या उपभोग के हेतु तथा हरएक वस्तु दूसरों के द्वारा उपभोग की जाती है। उत्पादक एवं अनुत्पादक वर्गों के बीच अन्तर करने का यही एक न्यायपूर्ण उपाय है ।[3] इसी तरह रिवेरी (Riviere) का मत है कि, "उद्योग तो केवल मूल्य-वृद्धि कर पाता है, उस वस्तु का निर्माण नहीं कर पाता जोकि पहले से विद्यमान नहीं थी ।"[4] निर्बाधवादियों के

1 "Labour applied any where except to land is absolutely strile, for man is not a creator." —Lrosne.

2 "Agriculture and commerce are constantly regarded as the two sources of our wealth. Commerce, like indurstory is merely a branch of agriculture. It is agriculture which furnishes the material for industry and commerce and which pays both, but these two branches give back their gain to agriculture, which renews the wealth which is spent and consumed each year." —Quesnay.

3 "Raw material is transformed into beautiful and useful objects through the diligence of the artisan, but before his task begivs it is necessary that others should supply the raw material and provide the necessary substance. When their part is completed others should receompense them and pay them for their trouble. The culti vators, on the other hand, produce their own raw material, whether for use or for consumption, as well as every thing that is consumed by others. This is just where the difference between a productive and a sterile class comes in." —Baudean.

4 "Industry merely superimposes value, but does not create any thing which did not previously exist," —Riviere.

मतानुसार उद्योग किसी वस्तु के मूल्य में उतनी ही वृद्धि कर पाता है जोकि इसके रूपान्तरण में उपभोग किया गया है क्योंकि मानवीय श्रम की कीमत सदैव ही कार्य-कर्त्ता द्वारा आवश्यक वस्तुओं के उपभोग की लागत के बराबर होती है। यह स्मरण रहे कि निर्वाधवादियों द्वारा भूमि को इतना अधिक महत्व दिए जाने का अभिप्राय यह नहीं था कि वे उद्योग एवं वाणिज्य को समाप्त करना चाहते थे वरन् उनका अभि-प्राय तो केवल इतना था कि वे उद्योग-वाणिज्य की अपेक्षा कृषि को अधिक महत्व महत्व प्रदान करना चाहते थे। बोदाँ (Baudean) के शब्दों में, "अनुपयोगी होना तो दूर की बात है, ये वे कलाएं हैं जो कि जीवन की आवश्यकताओं एवं विलासताओं की पूर्ति करती हैं तथा इनके ऊपर मानव जाति अपनी समृद्धि एवं सुरक्षा के हेतु निर्भर है।"[1] वे केवल इस अर्थ में अनुत्पादक है कि वे कि वे किसी अतिरिक्त (Extra) सम्पत्ति का उत्पादन नहीं करते।

निर्वाधवादियों के मतानुसार उद्योग एवं वाणिज्य से जो लाभ (Gain) होता है वह अभौतिक होता है तथा उत्पादन नहीं होता। इस तरह का 'लाभ' धन का कृषि-वर्ग से औद्योगिक वर्ग को हस्तान्तरण का ही प्रतिनिधत्व करता है। डूपो डी नमूर्स (Dupont de Nemours) के शब्दों में, "उन व्यक्तियों में जोकि दूसरों को देते हैं तथा अपनी सम्पत्ति का अर्जन प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति से करते हैं तथा जिनको दिया जाता है और जो इसे प्रथम वर्ग को प्रदत्त उपयोगी सेवा प्रदान करने के बदले में प्राप्त करते हैं, भेद करना आवश्यक, सरल और स्वाभाविक है।"[2] कृषक वर्ग शिल्पकारों को केवल कच्चा माल ही प्रदान नहीं करता वरन् उन्हें जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएं भी प्रदान करता है। निर्वाधवादियों के मतानुसार शिल्पकार केवल मात्र कृषक वर्ग के घरेलू सेवक थे। निर्वाधवादियों के विचार से अनुत्पादक वर्ग वह था जो कि अपने आय दूसरे वर्ग से प्राप्त करता है। यह भी एक वाद-विवाद का विषय है कि निर्वाधवादियों ने केवल मात्र कृषि को ही विशुद्ध उत्पादन का क्षेत्र बताया अथवा उन्होंने इसे खान और मछली-पालन आदि उद्योगों में भी लागू किया। एक साधारण रूप से शुद्ध उत्पत्ति के विचार को खान उद्योग में लागू करते [illegible] देते हैं, परन्तु बहुत कम। इस सम्बन्ध में उनकी द्विविधा को हम इस तरह [illegible] सकते हैं कि एक ओर खानें निःसन्देह कच्चे माल के रूप में हमें नई सम्पत्ति

1 "Far from being useless, these are the arts that supply the luxuries as well the necessaries of life, and upon these mankind is dependent both for its preservation and for its well being."

—Baudean.

2 "It seems necessary as well as simple and natural to distinguish the men, who pay others and draw their wealth directly from nature, from the paid men, who can only obtain it as a reward for useful and agreeable serives which they rendered to the former class."

—Dupont.

प्रदान करती है जिस तरह कि पृथ्वी या समुद्र, परन्तु दूसरी ओर भूमि के फल तथा समुद्र का खजाना निकालना, खानो से कच्चा माल निकालने की तरह सरल नही है जैसा कि राबर्ट तारगो (Robert Turgot) ने कहा है कि, "भूमि प्रत्येक वर्ष फलो का उत्पादन करती है लेकिन खान किसी फल का उत्पादन करती है। खान स्वय ही एक फल है। औद्योगिक उपक्रमों की तरह कोई विशुद्ध उत्पादन प्रदान नही दावा करती और यदि कोई उस उत्पत्ति का करता है तो यह भूमि का ही अधिकार होगा, परन्तु किसी भी तरह यह अतिरिक्त बहुधा महत्वहीन होगा।[1]"

कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन के बीच जो अन्तर निर्वाधवादियो ने बताया वह निम्न स्तर पर आध्यात्मवादी था। उनके मतानुसार भूमि के फल ईश्वर द्वारा प्रदान किए जाते हैं जबकि शिल्प कला की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा होती है जोकि स्वयं इनको बनाने में शक्तिहीन है ली ट्राजेन के शब्दो मे, "भूमि अपनी उर्वरता इसके निर्माणकर्त्ता से प्राप्त करती है तथा उसकी दया दृष्टि से ही अशोषित धन से परि-पूर्ण है। यह शक्ति केवल भूमि मे ही है तथा मनुष्य तो केवल मात्र इसका उपयोग करता है।"[2] निर्वाधवादियों ने इस तरह यह बताया कि मनुष्य किसी नई वस्तु का उत्पादन नही करता वरन् वह तो प्रकृतिदत्त वस्तुओं का ही रूपान्तर करता है। आलोचकों ने निर्वाधवादियों के इस विचार को दोषपूर्ण बताते हुए कहा है कि भूमि पर खेती करना भी रूपान्तरण की एक प्रक्रिया ही है फिर केवल कृषि को ही उत्पादक व्यवसाय मानना कहां तक ठीक हो सकता है। आलोचको का कथन है कि प्रकृति न तो कभी किसी वस्तु का निर्माण करती है और न कभी इसे नष्ट ही करती है। फिर निर्वाधवादियो का यह कथन कि भूमि से सदैव ही विशुद्ध उत्पादन प्राप्त होता है, सत्य नही है क्योंकि यदि भूमि की उपज का मूल्य गिर जाए तो स्थिति विपरीत भी हो सकती है। ऐसी दशा मे यह कैसे कहा जा सकता है कि भूमि ही वास्तविक मूल्य का उत्पादन करती है तथा इसका उत्पादन किसी विशेष दशा मे उद्योग के उत्पादन से भिन्न होता है। इस सम्बन्ध मे निर्वाधवादियों का यह विचार था कि कीमत जोकि लागत व्यय को घटाकर अतिरिक्त उत्पादन से प्राप्त होती है, प्राकृतिक व्यवस्था का सामान्य प्रभाव है और यदि कभी कीमत लागत व्यय के स्तर तक गिर जाती है तो यह प्राकृति व्यवस्था की समाप्ति का चिन्ह होगा और यदि

---

1 "The land produces fruits annually, but a mine produce no *fruit. The mine itself is the garnered fruit, Mines, like industrial* undertakings, give not net product that if any one had any claim to that product it would be the owner of the soil, but that in any case the surplus would be almost insignificant." —Turgot.

2 "Land owes its fertility to the might of the Creator, and out of his blessings flow its inexhaustible riches. This power is already there, and man simply makes use of it." —Le Trosne.

कीमत को उत्पत्ति के मूल्य और लागत व्यय के अन्तर का माप मान भी लिया जाए तो यह उत्पत्ति की दूसरी विधियों की अपेक्षा कृषि में अधिक सामान्य नहीं होगा।

निर्वाधवादियों की विशुद्ध-उत्पत्ति सम्बन्धी धारणा दोषपूर्ण होते हुए भी महत्वहीन नहीं है। यह वणिकवादियों के सिद्धांतों के लिए एक खुली चुनौती थी। वणिकवादियों का विचार था कि सम्पत्ति को बढ़ाने का एकमात्र तरीका विदेशी व्यापार के अन्तर्गत अनुकूल व्यापार संतुलन की नीति अपना कर पड़ोसी देशों तथा उपनिवेशों का शोषण करना था, परन्तु निर्वाधवादियों ने बताया कि धन के परिमाण में वृद्धि करने के कृषि-वाणिज्य सतोष प्रद तरीके हैं। निर्वाधवादियों का प्रभाव तत्कालिक राजनीति पर भी पड़ा जबकि फ्रेन्च मंत्री सली (Sully) ने यह स्वीकार किया कि भूमि और श्रम केवल दो ही राष्ट्रीय सम्पत्ति के साधन हैं। वस्तुतः निर्वाधवादियों ने कृषि को जैसा महत्व प्रदान कि वैसा ही महत्व आज तक कृषि व्यवसाय को प्राप्त है। निर्वाधवादियों की विशुद्ध-उत्पादन की धारणा ने आर्थिक विश्लेषण के विकास में भी महत्वपूर्ण कार्य किया क्योंकि इसी आधार पर आगे चलकर उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) आदि सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए। फिर निर्वाधवादियों द्वारा कृषि एवं उद्योग के बीच किया गया विभेद भी महत्वपूर्ण है। प्रो० जीड् एन्ड रिस्ट के शब्दों में, "यद्यपि कृषि और उद्योग के बीच किया गया निर्वाधवादी विभेदीकरण बहुत कुछ सीमा तक काल्पनिक था, तथापि यह सत्य है कि कृषि कुछ निश्चित विशेषताएँ रखती है ... कुछ दशाओं में कृषि तुच्छ दिखाई अवश्य पड़ती है क्योंकि इसकी उत्पत्ति समय और स्थान से परिमित होती है लेकिन बहुधा यह उत्तम पड़ती है क्योंकि अकेली कृषि ही जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कर सकती है।"[1]

(६) धन का परिभ्रमण (The Circulation of wealth)– निर्वाधवादी ही वे प्रथम विचारक थे जिन्होंने वितरण सम्बन्धी विश्लेषण करने का प्रयास किया चारक यह जानने के हेतु उत्सुक थे कि समाज में एक वर्ग से दूसरे वर्ग को धन रण किस तरह होता है और यह समान मार्गों का अनुसरण क्यों करता है में धन का परिभ्रमण बताने के हेतु डा० क्विज़ने ने आर्थिक सारिणी का किया जोकि शरीर में रक्त-परिभ्रमण सम्बन्धी विचार पर आधारित है।

1 "Although the physiocratic distinction between agriculture nd industry was largely imsgivary, it is neve the less true that agriulture does possess certain special features......At some moments agriculture seems inferior because its returns are limited by the exigencies of time and place, but more often superior because agriculture alone can produce the necessaries of life."

Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrives, P. 37.

डा० क्विज्ने द्वारा प्रतिपादित आर्थिक सारिणी (Tableau Economique) की प्रशंसा करते हुए मीराब्यू (Nirabeau) ने लिखा है कि 'विश्व की आरम्भता से लेकर तीन बड़े आविष्कार हुए हैं जिन्होंने मुख्यतया राजनैतिक समुदायों को स्थिरता प्रदान की है, जोकि अन्य आविष्कारों से स्वतंत्र हैं और जिन्होंने उन्हें समृद्ध एवं आधुनिक बनाया है। प्रथम लेखन का आविष्कार है जोकि अकेला ही मानवी प्रकृति को, बिना इसके नियमों समझौतों तथा खोजों में परिवर्तन किए, दूरस्थ भेजने की शक्ति प्रदान करता है दूसरा मुद्रा का आविष्कार है जोकि सभ्य समाजों के सभी सम्बन्धों को आबद्ध करता है। तीसरा आर्थिक सारिणी का आविष्कार है जो कि दो आविष्कारों का परिणाम है और जोकि उन्हें पूर्ण बनाता है यह हमारे युग की महान खोज है जिससे हमारी समृद्धि लाभान्वित होगी।"[1] आर्थिक सारिणी के अन्तर्गत डा० क्विज्ने ने रक्त-परिभ्रमण के सिद्धांत के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि जिस तरह शरीर में रक्त का परिभ्रमण होता है उसी तरह मानव समाज में प्रकृति के नियमों के अनुसार धन का परिभ्रमण होता है।

समाज में धन के परिभ्रमण सम्बन्धी सिद्धांत का विश्लेषण करने से पूर्व डा० क्विज्ने (Dr, Quesney) ने मानव-समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया—(क) उत्पादक वर्ग (Prodctive class) जिसके अन्तर्गत उसने कृषकों, मछुवों तथा खान खोदने वालों को सम्मिलित किया। (ख) सम्पत्ति स्वामी वर्ग (Proprietary Class) जिसके अन्तर्गत उसने भूस्वामियों तथा अन्य प्रभुत्व प्राप्त व्यक्तियों को सम्मिलित किया। (ग) अनुत्पादक वर्ग (S'erile class) जिसके अन्तर्गत उसने व्यापारियों, उद्योगपतियों शिल्पकारों तथा अन्य साधारण पेशा करने वाले व्यक्तियों को सम्मिलित किया।

निर्बाधवादियों ने बताया कि विशुद्ध उत्पत्ति का उद्गम स्थान प्रथम उत्पादक वर्ग ही है जहां से वह दूसरे वर्गों में परिभ्रमण करता है (मान लिया किसी देश में एक वर्ष के अन्तर्गत कुल १० करोड़ रु० की विशुद्ध उत्पत्ति होती है। इसमें से ४ करोड़ रु० के मूल्य की सम्पत्ति उत्पादक वर्ग द्वारा अपने भरण-पोषण, हल-बैल,

---

1 "There have been since the world began three great inventions which have principally given stability to political societies, independent of many other inventions which have ensiched and advanced them. The first is the invention of writing, which alone gives human nature the power of tramsmitting without alteration its laws, its contracts its annals, and its discoveries. The second is the invention of money, which binds together all the relations between civilized societies. The third is the Economic Table, the result of the other two, which completes them both by perfecting their object, the great discovery of our age, but of which our prosperity will rean the bevefit." —Mirabeau

बीज-सिंचाई आदि की व्यवस्था के हेतु रख ली जायगी तथा इसका परिभ्रमण नहीं होगा। चूंकि कृषक वर्ग को खाद्यान्न के अतिरिक्त जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की भी आवश्यकता होगी जिन्हें प्राप्त करने के हेतु वह औद्योगिक वर्ग को २ करोड़ रु० देगा। अब कृषक वर्ग के पास ४ करोड़ रु० के मूल्य की विशुद्ध उत्पत्ति शेष रही जिसको उसे भूस्वामियों और सरकार को लगान व करों के रूप में देना होगा। इस तरह अब उत्पादक वर्ग के पास ऐसी कोई राशि शेष नहीं रहेगी जिसका परिभ्रमण निर्वाधवादियों के मतानुसार उत्पादक वर्ग ने दूसरे वर्गों को जो कुछ प्रदान किया होना चाहिये। परन्तु है वह पुनः घूमता फिरता इसी वर्ग के पास आ जायेगा।

सम्पत्ति स्वामी वर्ग को जो ४ करोड़ रू० प्राप्त हुए है उनमें से वह दो करोड़ रु० की खाद्य सामग्री खरीदेगा और स्पष्टतः यह राशि पुनः कृषक वर्ग के पास चली जायेगी। अब यह वर्ग शेप दो करोड़ रुपये से जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीदेगा और यह वर्ग राशि औद्योगिक वर्ग के पास चली जाएगी इस दशा मेंअ नुत्पादक के पास (दो करोड़ रू० सम्पत्ति स्वामी वर्ग से + दो करोड़ रु० उत्पादक वर्ग से) ४ करोड़ रु० हो जाते हैं जिनमें से वह दो करोड़ रु० की राशि के अपने उद्योगों के निमित्त कच्चा-माल खरीदेगा तथा शेष दो करोड़ रु० की राशि से खाद्य-सामग्री प्राप्त करेगा। इस तरह स्पष्टतः अनुत्पादक वर्ग की ४ करोड़ रू० की राशि पुनः उत्पादक वर्ग के पास पहुंच जाएगी। इस तरह डा० विवजने के मतानुसार धन का परिभ्रमण अपने उद्गम स्थान से होकर पुनः वहीं पहुंच जाता है।

यद्यपि निर्वाधवादियों ने धन के वितरण एवं परिभ्रमण को समझाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास किया है तथापि इसमें अनेक क्षेत्र दिखाई पड़ते हैं जिनके कारण उनके इस विचार की कटु आलोचना की गई है। आलोचकों का मत है कि निर्वाधवादियों का यह विचार केवल मात्र काल्पनिक है। वे इस बात को भूल गए क अपनी गणना के अन्त में उनके पास वही रहा जोकि उन्होंने प्रारम्भ में प्राप्त था। उनकी आर्थिक सारिणी इस बात को भी स्पष्ट नहीं करती कि उत्पादक ादक वर्ग वास्तव में होते हैं। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के मतानुसार निर्वाध- क धन परिभ्रमण के सिद्धान्त में इस बात पर अधिक डाला गया है कि ं धन का परिभ्रमण कुछ निश्चित प्राकृतिक नियमों के आधार पर होता है इन विचारकों ने समाज के विभिन्न वर्गों की आय के निर्धारण का जो मार्ग या है वह भी असन्तोषजनक है। उन्हीं के शब्दों में, "निर्वाधवादियों की वितरण पद्धति में सर्वाधिक त्रुटिपूर्ण बात कोई विशेष प्रमाण नहीं है जिसे उन्होंने इसे प्रदान क्या, परन्तु उन्होंने विशेष बल इस तथ्य पर डाला कि धन का परिभ्रमण कुछ निश्चित नियमों के आधार पर होता है तथा उस मार्ग को बताया जिसमें इस परिभ्रमण के द्वारा प्रत्येक वर्ग की आय का निर्धारण होता है। सम्पत्ति स्वामियों ने समाज के इस त्रिपक्षीय विभाजन में जो अकेला स्थान प्राप्त किया है, वह इस पद्धति

की सर्वाधिक मनोती विशेषता है।"[1] निर्बाधवादियों द्वारा प्रतिपादित प्राथिक सारिणी में उस वर्ग को राष्ट्रीय माय का २/५वां भाग प्रदान किया गया है जोकि इसके बदले में कुछ भी नहीं करता। सर्वाधिक प्राश्चर्य की बात यह है कि निर्बाधवादियों ने सम्पत्तिस्वामी वर्ग को मनुत्पादक न बताकर उद्योगपति और शिल्पकारों को मनुत्पादक ठहराया है जोकि सर्वथा मन्यायपूर्ण है।

निर्बाधवादियों के मपने निजी विचार के मनुसार प्राथमिक स्थिति उत्पादक वर्ग मर्थात् कृषकों को प्राप्त है। यह सत्य है कि भूमि का निर्माण उन्होंने स्वयं नहीं किया और इसे उन्होंने सम्पत्तिस्वामियों से प्राप्त किया है। सम्पत्तिस्वामी वर्ग इस प्रमाण को लेता है कि यह ईश्वरीय इच्छा है कि यह समस्त धन का प्रथम वितरक होना चाहिए। इस तरह निर्बाधवादियों ने सम्पत्तिस्वामी वर्ग को ईश्वर का दूत कहा है जोकि ईश्वर की इच्छा को पूरा करने के हेतु धन का वितरण कर रहा है और इसीलिए विशुद्ध-उत्पादन में से उनका भाग मवश्य मिलना चाहिए। उनके तर्क का यह एक बौद्धिक निर्णय था। यह स्मरणीय है कि निर्बाधवादी सभी तरह के वास्तविक श्रम के महत्व को समझने में विफल रहे क्योंकि उनके मतानुसार श्रम धन का निर्माणकर्त्ता नहीं है। वस्तुतः उनकी यह धारणा कृषि-श्रमिक और औद्योगिक-कर्मचारी दोनों पर समान रूप से लागू होनी चाहिये परन्तु उन्होंने कृषि-श्रमक को उत्पादक ठहराया क्योंकि वह प्रकृति के सहयोग के साथ कार्य करता है। इस तरह निर्बाधवादियों का यह विचार कि धन का उत्पादन केवल प्रकृति करती है श्रमिक नहीं; भ्रमपूर्ण है।

इस सम्बन्ध में निर्बाधवादियों द्वारा एक ठोस तर्क यह दिया जाता है कि इन सम्पत्तिस्वामियों ने भूमि को साफ करके अथवा सुखाकर कृषि योग्य बनाया है और इसलिये भूमि के उत्पादन में से उन्हें भी भाग मिलना चाहिए। एक वास्तविक स्वामी तथा कृषक से बड़ा होने के नाते उनका भाग न्यायपूर्ण है क्योंकि यद्यपि कृषक उत्पादन में सहयोग देते हैं परन्तु सम्पत्तिस्वामी भूमि को बनाने में सहयोग देते हैं। इस तरह निर्बाधवादी पद्धति के तीन सामाजिक वर्ग उन तीन व्यक्तियों से जोड़े जा सकते हैं जिन्होंने एक ही कुएं से पानी प्राप्त किया है। यह पानी उत्पादक वर्ग द्वारा कुएं से खींचा गया है जोकि सम्पत्तिस्वामियों को दे दिया जाता है परन्तु यह वर्ग इसके बदले में कुछ भी नहीं देता क्योंकि कुएं का निर्माण इसी वर्ग ने

1 The most interesting thin in the Physiocratic scheme of distribution is not the particular demoustration which they gave of it, but the emphasis which they laid upon the fact of the circulation of wealth taking place in accordance with certainl aws, and the way in which the reveme of each class was determineb by this circulation. The singular position which the proprietors hold in this tripartite division of sozieto is one of the most curious features of the system."
—Prof. Gide and Rist : A History of Economic Dectrines. P. 40.

किया है। इसके अतिरिक्त तीसरा अनुत्पादक वर्ग अपने श्रम के विनिमय से पानी प्राप्त करता है।[1] यहां निर्बाधवादियों के विचार में एक विरोधाभास दिखाई देता है। यदि सम्पत्ति स्वामी वर्ग द्वारा प्राप्य आय उसके द्वारा भूमि पर किए गए व्यय का पुरस्कार है तो फिर उसे प्रकृति का उपहार नहीं कहा जा सकता तथा इसे विशुद्ध-उत्पत्ति की परिभाषा के भी बाहर निकालना होगा क्योंकि उनका यह भाग तो कुल उत्पादन (Gross Produc.ion) में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यदि इन तथ्यों को स्वीकार कर लेते हैं तो फिर वितरण के हेतु कुछ भी अतिरेक नहीं रहेगा तथा सम्पत्ति स्वामी वर्ग ईश्वरीय प्रतिनिधि न रहकर पक्के पूंजीपति रह जायेंगे जोकि भूमि से लगान वसूल कर रहे हैं।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के संरक्षण के पक्ष में निर्बाधवादियों ने एक अन्य तर्क प्रदान किया कि यदि सम्पत्ति स्वामी वर्ग को उचित भाग प्रदान नहीं किया गया तो यह वर्ग किसानों को खेती नहीं करने देगा। वस्तुतः निर्बाधवादियों का यह तर्क पहले का विरोधाभासी है। पहली दशा में भूमि इसलिये अपनाई गई क्योंकि इस पर खेती की गई जबकि दूसरी दशा में भूमि पर खेती से पूर्व ही यह अपनाई जानी चाहिए। प्रथम दशा में श्रम को कार्यकुशल समझा गया।[2] इस तरह निर्बाधवादी प्रत्यक्ष रूप में व्यक्तिगत सम्पत्ति के संरक्षण के पक्षपाती थे। क्विज़ने के शब्दों में, "व्यविगत सम्पति का संरक्षण समाज की आर्थिक व्यवस्था का वास्तविक आधार है।"[3] इसी विचार की अभिव्यक्ति रिवेरी ने इन शब्दों में की है "सम्पत्ति को एक ऐसा वृक्ष समझना चाहिए जिसके तने से सामाजिक संस्थाओं रूपी शाखाओं का

---

1 "Their portion is optimo jure, in virtue of a right prior and superior even to that of the cultivators, for although the cultivators help to make the product, the proprietors help to *make the land*. The three social classes of the Physiocratic system may be linked to three persons who get their water from the same well. It is drawn from the well by *members* of the productive class in bucket fuls, ·h are paossed *on to* the propritors, but the latter class gives g in return for it, for the well is of their making. As a res- ..e distance comes the steribe class, obiliged to buy water in ..ge for its labour,"

—Gide & Rist : A History of economic Doctorives, P. 42.

2 "The new argument is a contra*diction* of the old. In the .. case land was appropriated because *it* had been cultivated. . the presant case land *must* be appropriated before *it can* be *culti-* ..ted. In the former labour is treated as the efficient cause, in the latter as the find cause of production."

—Gide & Rist : A History of Eco*nomic* Doctrines P. 43.

3 "The safety of private property is the *real* basis of the economic order of society. —*Quesnay*.

जन्म हुआ है ।"[1] इस तरह जहां एक ओर निर्बाधवादियों ने भूस्वामियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा की वकालात की वहां उन्होंने दूसरी ओर कुछ उनके कर्त्तव्य भी निश्चित किए जो कि निम्नोक्त हैं—

(i) उन्हें बेकार भूमि को साफ करके कृषि योग्य बनाने के अपने कार्य को जारी रखना चाहिए।[2]

(ii) राष्ट्र ने जिस सम्पत्ति का उत्पादन किया है उन्हें उसका वितरण इस तरीके से करना चाहिये कि जनसाधारण के हितों की पूर्ति हो सके।

(iii) उन्हे अपने फालतू समय मे समाज की वे सेवाएं प्रदान करनी चाहियें जिनकी समाज को आवश्यकता है अथवा जो उनकी सामर्थ्य के अनुसार हैं।

(iv) उन्हें सम्पूर्ण करारोपण का भार वहन करना चाहिये।

(v) उन्हें अपने किसानों, कृषि-श्रमिकों का संरक्षण करना चाहिये तथा उन्हें विशुद्ध-उत्पत्ति से अधिक माँग नहीं करनी चाहिये। यद्यपि निर्बाधवादियों ने भूस्वामियों को यह सलाह नहीं दी कि वे विशुद्ध उत्पत्ति का एक भाग कृषि-श्रमिकों को प्रदान करें, तथापि उन्होंने इस बात पर बल डाला कि वे उन्हें उनके वार्षिक खर्च के बराबर अवश्य प्रदान करें तथा उनके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करें।

(४) व्यापार (Trade)—निर्बाधवादियों ने विनिमय कार्य को अनुत्पादक ठहराया क्योंकि उनके मतानुसार विनिमय तो केवल दो समान मूल्यों का अन्तरण ही है। इस कार्य मे यदि हरएक पार्टी उसके ही बराबर प्राप्त करती है जितनी कि वह प्रदान करे तो इस दशा मे किसी नवीन सम्पत्ति का उत्पादन नहीं होता। उनके मतानुसार एक रोटी को एक प्याला चाय से बदलने मे सम्पत्ति का दोहरा अन्तरण ही होता है जिससे कि दोनों ही पार्टियों को पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त होती है परन्तु इससे किसी नई सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता क्योंकि ये दोनों विनिमित वस्तुएं समान मूल्य की हैं। ली ट्रोजन (Le Trosne) के शब्दों मे, "विनिमय समानता का संविदा है समान मूल्य के बदले में समान मूल्य दिया जाता है। फलतः यह धन की वृद्धि का साधन नहीं है क्योंकि एक पार्टी उतना ही देती है जितना कि वह प्राप्त करती है, परन्तु यह आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने तथा आनन्द को बढाने का साधन अवश्य है।[3] स्पष्ट है कि निर्बाधवादियों की विनिमय सम्बन्धी धारणा आधुनिक धारणा से

---

1 "Property may be regarded as a tree of which social institutions are branches growing out of the trunk." —Mercier de Riviere.

2 "A proprietor who keeps up the avance foncieres without fail is performing the noblest service that any one can perform on this earth." —Budean.

3 "Exchange is a contract of equility, equal value being given in exchange for equal value. Consequently it is not a meause of increasing wealth, for one gives as much as other receives, but it is a means of satisfying wants and of varying enjoyments."

—Le Trosne.

एकदम भिन्न है क्योंकि आधुनिक धारणा के अनुसार विनिमय कार्य से उपयोगिता का लाभ होता है जो कि धन की वास्तविक वृद्धि है। अतएव निर्बाधवादियों के मतानुसार व्यापार भी एक अनुत्पादक क्रिया है। वस्तुतः निर्बाधवादियों की यह धारणा वणिकवादी विचारों को खुली चुनौती थी जिसमें कि विदेशी व्यापार को ही किसी देश की धन-वृद्धि का एकमात्र साधन बताया गया था। प्रो० जीड ने निर्बाधवादियों की व्यापार सम्बन्धी धारणा को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "घरेलू व्यापार की तरह विदेशी व्यापार भी किसी वास्तविक धन का उत्पादन नहीं करता, इसका एकमात्र परिणाम सम्भावित लाभ हो सकता है परन्तु एक व्यक्ति का लाभ दूसरे व्यक्ति की हानि होती है।"[1] कहने का अभिप्राय यह है कि निर्बाधवादियों के मतानुसार घरेलू अथवा विदेशी व्यापार से कोई यथार्थ लाभ प्राप्त नहीं होता। उनका मत था कि एक देश को विदेशों से उन वस्तुओं को प्राप्त करना चाहिये वह स्वयं उत्पादन नहीं कर सकता तथा इनके बदले में वे वस्तुएं देनी चाहियें जिनका वह स्वयं उपभोग नहीं कर सकता। निर्बाधवादी विचारक रिवेरी (Riviere) ने विदेशी व्यापार को आवश्यक बुराई कहकर (Foreign Trade is a Necessary evil) सम्बोधित किया। डा० क्विजने (Dr. Quesnay) ने उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच प्रत्यक्ष व्यापार होने का पक्ष लेते हुए कहा कि विनिमय का वास्तविक उपयोग केवल यही है कि कृषि उपज प्रत्यक्ष रूप से उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक जाये। यदि कृषि उपज को व्यापारियों द्वारा खरीदकर इसे पुनः उपभोक्ताओं को बेचा जाता है तो इससे धन की वृद्धि की अपेक्षा हानि ही होगी क्योंकि इसका एक भाग व्यापारियों द्वारा हड़प लिया जाएगा।[2] रिवेरी (Riviere) ने ऐसे व्यापारियों की तुलना उन शीशों से की है जो कि इस ढंग से व्यवस्थित हैं कि वे एक ही समय अनेक वस्तुओं को विभिन्न दशाओं में दर्शाते हों।[3] डा० क्विजने ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय ऋण समझौतों को "Pis Alles" कहकर

---

1 "And foreign trade, like domestic, produced no real wealth : result was a possible gain, and one man's gains is another s."

—Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 46.

"After all merchants are only trafficers, and the trafficer is person who employs his ability in appropriating a part of other ...'s wealth (Riviere) "Merchant's gains are not a species of ofit."

—Quesnay.

3 "Like mirrors, too, the trade. seem to multiply commodities, but they only deceive the superficial."

—Riviere.

सम्बोधित किया है।[1]

इस तरह स्पष्ट रूप से निर्बाधवादियों ने वणिकवादी एवं कॉलबर्टवादी व्यापार-पद्धति का बहिष्कार किया जिनके अन्तर्गत अनुकूल व्यापार सन्तुलन का उद्देश्य अपनाया गया था जिसको कि निर्बाधवादियों ने छलपूर्ण घोषित किया। वास्तव में निर्बाधवादियों ने स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समर्थन किया। वर्तमान कालीन अर्थशास्त्रियों की तरह निर्बाधवादियों का यह तो मत नहीं था कि स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत विनिमय करने वाले देश धनी हो जायेंगे। प्रो० जीड एन्ड रिस्ट के शब्दों में, "यह एक विचारने योग्य तथ्य है कि वे स्वतन्त्र व्यापार के संस्थापक कहलाने योग्य हैं, इसलिये नहीं कि उन्होंने इस तरह के व्यापार का पक्ष लिया हो वरन् इसलिये कि इसकी ओर उनकी प्रवृत्ति अवहेलनापूर्ण अबन्धनवादी (Disdainful Laissez Faire) थी। वे सम्भवतः इस विश्वास से स्वतन्त्र नहीं थे कि अबन्ध-व्यापार की नीति स्वमेव ही वाणिज्य को अदृश्य कर देगी। वे मुख्य रूप से इस कारण स्वतन्त्र व्यापारी थे क्योंकि उन्होंने घरेलू व्यापार की स्वतन्त्रता की इच्छा की।"[2]

निर्बाधवादियों की प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार भी हर किसी को देश के अन्दर अथवा बाहर से इच्छित वस्तुएँ खरीदने और बेचने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। क्विजने के शब्दों में, "विदेशी व्यापारियों से स्वतन्त्र प्रतियोगिता के द्वारा ही सर्वोत्तम सम्भावित कीमत प्राप्त की जा सकती है और केवल ऊंची कीमत ही हमें हमारे धन के स्टॉक मे वृद्धि करने योग्य तथा कृषि के द्वारा जन-संख्या को जीवित रखने योग्य बनाएगी।"[3] निर्बाधवादियों द्वारा स्वतन्त्र व्यापार

1 "The settlement of international indebtedness by payment of money is a mere pis aller of foreign trade, adopted by those nations which are unable to give commodities in return for commodities according to custom. And foreign trade itself is a mere pis aller adopted by those nations whose home trade is insufficient to enable them to make the best use of their own productions. It is very strange that any one should have laid such stress upon a mere pis aller of commerce." —Quesney.

2 "It is a note worthy fact that they are to be regarded as the founders of Free Trade, not because of any desire to favour trade as such, but because their attitude towards it was one of disdairful laissez faire. They were not, perhaps, altogether free from the belief that laissez faire would lead to the disappearance of commerce altogether. They were Free Traders primarily because they desired the freedom of domestic trade."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 47.

3 "Erce competition with foreign merchants can alone secure the best possible price and only the highest price will enable us to increase our stock of wealth and to maintain our population by agriculture." —Quesnay.

पद्धति को अपनाने का एक दूसरा कारण वणिकवादियों की व्यापारिक नीति का खण्डन करना था जिसके अन्तर्गत निर्यात व्यापार को संरक्षण प्रदान किया गया था तथा आयात व्यापार पर अनेक अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए थे। वालरस (Walras) के शब्दों में, "स्वतन्त्र प्रतियोगिता प्रत्येक को अधिकतम अन्तिम उपयोगिता प्रदान करती है अथवा अधिकतम संतुष्टि प्रदान करती है।"[1] वणिकवादियों ने अन्तराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा रक्खे थे जिनसे कृषि-व्यवसाय को भारी क्षति पहुंची थी। चूंकि निर्बाधवादियों ने कृषि को राष्ट्र का प्राण बताया, इसलिए उन्होंने वणिकवादियों द्वारा लगाए गए विदेशी व्यापार पर प्रतिबन्धों को समाप्त करना ही उचित समझा। फिर निर्बाधवादी विचारक अनुकूल व्यापार संतुलन की नीति के भी पक्षपाती नहीं थे। अतएव संतुलित व्यापार की स्थापना के हेतु भी उन्होंने स्वतन्त्र व्यापार पद्धति को महत्वपूर्ण ठहराया। उपभोक्ताओं के हित की दृष्टि से भी इन विचारकों ने स्वतंत्र व्यापार पद्धति को उचित ठहराया क्योंकि उनका मत था कि नियंत्रित व्यापार पद्धति के अन्तर्गत आयात पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं जिससे अन्ततः उपभोक्ताओं का ही अहित होता है। फिर सभी देशों द्वारा नियंत्रित व्यापार पद्धति अपनाने का एक परिणाम यह होगा कि इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ही शिथिल हो जाएगा।

निर्बाधवादियों की विदेशी व्यापार पद्धति की तात्कालिक एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की है जिनमें से गलियानी (Galiani) और निकर (Necker) के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि गलियानी ने निर्बाधवादियों स्वतंत्रता के विचार का खण्डन नहीं किया, तथापि उसने प्रकृति के सामने [illegible] करने की नीति का खण्डन अवश्य किया क्योंकि उसके मतानुसार [illegible] विशाल है कि वह हमारी छोटी-छोटी बातों से कोई सम्बन्ध नहीं [illegible] गलियानी ने आधुनिक लेखकों के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को होते [illegible] विचारा कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों को लागू करने से पूर्व [illegible] तथा परिस्थितियों का कुछ ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

[illegible] तक मौद्रिक मामलों का सम्बन्ध है और विशेषकर व्याज के सम्बंध [illegible] वादी अपत अहस्तक्षेपवादी सिद्धांत के एक अपवाद की स्वीकृति के इच्छुक

---

1 "Free competition secures for every one the maximum final [illegible]ity, or what comes to the same thing, gives the maximum satisfaction." —Walras.

2 "Liberty stands in no need of defence so long as it is at all possible. Whenever we can we ought to be on the side of liberty ......nature is two vast to be concerned about our pety trifles. —Galiani.

थे। मीराब्यू (Mirabea) ने बताया कि कृषि व्यवसाय की तरह जब कभी पूंजी के उपयोग से धन की वास्तविक वृद्धि होती है तो इस पर ब्याज की अदायगी न्यायपूर्ण है जो कि एक तरह की विशुद्ध उत्पत्ति का चिन्ह या प्रतीक है। परंतु व्यापार के सम्बंध में मीराब्यू ने ब्याज को सीमित करने का सुझाव रखा। इसी प्रकार क्विजने (Quesney) ने भी ब्याज को केवल उन्हीं मामलों में न्यायप्रद ठहराया जिनमें विशुद्ध-उत्पत्ति (Net Product) प्राप्त होती है। इस स्थल पर निर्बाधवादियों ने तर्कशास्त्र का आश्रय देते हुए कहा कि यदि औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्यमों में लगाई गई पूंजी से कोई आय प्राप्त नहीं होती तो इस पूंजी पर ब्याज नहीं लिया जाना चाहिए। यह स्मरणीय है कि निर्बाधवादी विचारकों में अकेले तारगो (Targot) ने ब्याज लेने को न्यायपूर्ण ठहराया। उसने बताया कि पूंजी का स्वामी यदि इस पूंजी को किसी दूसरे व्यक्ति को उधार न देकर स्वयं ही इसका विनियोग भूमि या दूसरे उत्पादक कार्य में करता है तो उससे उसे निश्चित रूप से आय प्राप्त होगी। अतएव जब वह इस पूंजी का विनियोग स्वयं न करके दूसरे को उधार देता है तो फिर उसे ब्याज क्यों नहीं मिलना चाहिए। इस तरह तारगो ने दूसरे निर्बाधवादियों की तरह उद्योग एवं वाणिज्य को पूर्णतः अनुत्पादक स्वीकार नहीं किया।

(५) सरकार के कार्य (The Functions of The Government)—यह पहले लिखा जा चुका है कि निर्बाधवादी विचारक ऐसे मानव समाज की स्थापना में विश्वास करते थे जो कि प्राकृतिक-व्यवस्था के सिद्धान्त से संचालित हो अर्थात् जिसके संचालन के हेतु किसी लिखित विधान की आवश्यकता न हो। उनका मत था कि प्रकृति की आवाज ही मनुष्य जाति के लिए समुचित निर्देशक है और इस तरह उनकी प्रवृत्ति समस्त विधानों एवं अधिकारों के प्रति निषेधात्मक थी अर्थात् निर्बाधवादी वैधानिक क्रिया को न्यूनतम स्तर तक कम करना चाहते थे। निर्बाधवादियों ने कहा कि विधायी निकाय सबसे उपयोगी कार्य यह कर सकती है कि वह अनुपयोगी कानूनों को समाप्त कर दे।[1] और यदि कभी नये कानूनों की आवश्यकता भी हो तो प्रकृति के अलिखित नियमों की नकल कर लेनी चाहिये। उनका मत था कि न तो व्यक्ति और न सरकार ही कानूनों का निर्माण कर सकते हैं क्योंकि उनमें इतनी अधिक योग्यता नहीं है। हर एक कानून उस दैवी विद्वत्ता का प्रकाशन होना चाहिए जो कि सम्पूर्ण जगत को शासित करती है। यह स्मरणीय है कि निर्बाधवादी किसी भी तरह अराजकतावादी (Anarchists) नहीं थे और उनकी एकमात्र इच्छा यही थी कि वे कानूनों को न्यूनतम करना चाहते थे और प्रभुत्व को अधिकतम करना चाहते थे। संक्षेप में, निर्बाधवादी ऐसे स्वेच्छाकारी निरंकुश शासन (Despotism) में

---

1 "Remove all useless, unjust, contradictory, and absurd laws and there will not be much legislative machinery left after that."

उन्होंने बताया कि करारोपण समाज के उसी वर्ग पर होना चाहिये जिसके अधिकार में विशुद्ध-उत्पादन रहता है (अर्थात् सम्पत्ति स्वामी वर्ग पर)। इसका कारण बताते हुये उन्होंने कहा कि यदि कर कृषक वर्ग पर लगाया गया तो वे इसका भुगतान अपनी पूंजी में से करेंगे या भूस्वामी को कम लगान देने को बाध्य होंगे और यदि करारोपण शिल्पकार पर किया गया तो इसका भार भी परोक्ष रूप से कृषक और भूस्वामी वर्गों पर पड़ेगा क्योंकि शिल्पकारों के भाग शुद्ध-उत्पत्ति का केवल उतना ही भाग आता है जितना कि वह अन्य वर्गों को देता है। इस तरह निर्वाधवादियों का विचार था कि भूस्वामियों पर कर लगाने से कर का भार किसी दूसरे वर्ग पर नहीं पड़ेगा और वह भूमि के मूल्य द्वारा ही वसूल हो जायेगा। इन विचारकों ने भूस्वामियों पर शुद्ध-उत्पत्ति की मात्रा के लगभग ३०% तक करारोपण करने का समर्थन किया। डुपो डी नमूर्स के शब्दों में, "कर एक तरह की अविपणेय सामान्य सम्पत्ति है। भूस्वामी भूमि का क्रय या विक्रय करते हैं तो वे कर का क्रय-विक्रय नहीं करते। वे कर की मात्रा को घटाने के बाद भूमि के उस भाग का ही वितरण कर सकते हैं जोकि वास्तव में उनकी अपनी है। यह कर किसी की सम्पत्ति पर एक भार के रूप में भूस्वामियों के अधिकार की अपेक्षा सम्पत्ति पर चार्ज अधिक है और इस तरह सार्वजनिक आय किसी के लिये भी भार नहीं है। इसकी लागत-व्यय शून्य है और इसका भुगतान किसी के द्वारा भी नहीं किया जाता। इस तरह यह किसी व्यक्ति की सम्पत्ति की मात्रा को घटाता नहीं है।"

निर्वाधवादी विचारकों ने अपनी राजकोषीय पद्धति (Fiscal System) को सर्वाधिक व्यावहारिक महत्व प्रदान किया और यह बताया कि जनता की गरीबी का एकमात्र कारण कराधान के भार का असमान वितरण है। निर्वाधवादियों ने [illegible] की एक बड़ी समस्या है। आजकल हम जनता की गरीबी [illegible] राजकोषीय प्रणाली की अपेक्षा धन के असमान वितरण [illegible] तरह निर्वाधवादी दृष्टिकोण हमें अतिवादी दिखाई देता है।

[illegible] द्वारा प्रतिपादित कर-प्रणाली की आलोचकों द्वारा कटु विरोध किये गये हैं। आलोचकों का कथन है कि समाज के केवल एक ही वर्ग पर करारोपण करना न्यायपूर्ण नहीं है तथा केवल एक कर से राज्य की समस्त आय की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकती। फिर[1] करारोपण का जो प्रतिशत निर्वाधवादियों ने निश्चित किया है वह भी केवल कल्पना पर आधारित है। इस प्रकार यद्यपि निर्वाध-

---

[1] "In some States it is said that a third a half, or even three fourths of the clear net revenue from all sources of production is [illegible] to meet the demands of the Treasury, and consequently [illegible] necessary!"
—Bandeau.

व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आक्रमण करते हैं आदि, है। समाज में किसी भी तरह की आज्ञा का पालन करना उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि सप्रभु की शक्ति के द्वारा समाज के सदस्यों के सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार की गारन्टी नहीं की जाती।[1]

(ii) निर्बाधवादियों ने सरकार का दूसरा कार्य प्राकृतिक-व्यवस्था की जानकारी के हेतु ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना बताया जिससे समस्त जनसमुदाय प्राकृतिक व्यवस्था की स्थापना में योगदान करे और किसी भी तरह से इस कार्य में बाधा न डालें।

(iii) निर्बाधवादियों ने सरकार का अंतिम कार्य यह नियत किया कि वह सार्वजनिक कार्य अर्थात् सड़कों का निर्माण करना, नहरें खुदवाना, शिक्षा का प्रबन्ध करना, कृषि-उत्पादन में वृद्धि करना करें।

(६) करारोपण (Taxation—अपनी आर्थिक सारिणी के विवेचन में क्विजने ने सम्पूर्ण मानव समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया था अर्थात् उत्पादक वर्ग, सम्पत्तिस्वामी वर्ग और अनुत्पादक वर्ग। इन तीनों वर्गों के अतिरिक्त उन्होंने एक निरंकुश राजा की कल्पना की जिसके कुछ कार्य नियत किए यथा-व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा करना, प्राकृतिक व्यवस्था को बनाए रखना तथा जन-कल्याण कार्य करना आदि। इन सब कार्यों को पूरा करने के हेतु राजा को द्रव्य की आवश्यकता अनिवार्य थी जिसके लिए निर्बाधवादियों ने करारोपण का समर्थन किया। डा० क्विजने (Quesnay) के शब्दों में, "सरकार को जनता की समृद्धि के हेतु आवश्यक कार्यों पर व्यय करने के कर्त्तव्य की अपेक्षा बचत करने के कार्य से कम संबंध कम रखना चाहिए। जब देश धनी हो जाए तो इस भारी व्यय को कम कर देना चाहिये।[2]

करारोपण का एकमात्र स्रोत प्रकृतिवादियों ने विशुद्ध-उत्पादन को बताया क्योंकि उनके मतानुसार यह नया धन ही वास्तविक रूप से वितरण योग्य है।

1 "As kings and governors you will find how easy it is to exercise your sacred functions, which simply consist in not interfering with the good that is already being done, and in punishing those few persons who occasionally attack private property." "No order of any king is possible in society unless the right of possession is guaranteed to the members of that society by the force of a sovereign authority." —Dupout de Nemours.

2 "The Government ought to be less concerned with the task of saving than with the duty of spending upon those operation that are necessary for the posperity of the realm. This heavy expenditure will cease when the country has become wealthy." —Dr. Quesnay.

निर्बाधवादी विचारकों ने अपनी राजकोषीय पद्धति (Fiscal System) को धक व्यावहारिक महत्व प्रदान किया और यह बताया कि जनता की गरीबी का ात्र कारण कराधान के भार का असमान वितरण है। निर्बाधवादियों ने ा कि यही समाज की एक बड़ी समस्या है। आजकल हम जनता की गरीबी रण किसी विशेष राजकोषीय प्रणाली की अपेक्षा धन के असमान वितरण ानते हैं और इस तरह निर्बाधवादी दृष्टिकोण हमें अतिवादी दिखाई देता है।

निर्बाधवादियों द्वारा प्रतिपादित कर-प्रणाली की आलोचकों द्वारा कटु विरोध किये गये हैं। आलोचकों का कथन है कि समाज के केवल एक ही वर्ग पर ारोपण करना न्यायपूर्ण नहीं है तथा केवल एक कर से राज्य की समस्त आय की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकती। फिर [1] करारोपण का जो प्रतिशत निर्बाधवादियों ने नियत किया है वह भी केवल कल्पना पर आधारित है। इस प्रकार यद्यपि निर्बाध-

---

1 "In some States it is said that a third a half, or even three fourths of the clear net revenue from all sources of production is insufficient to meet the demands of the Treasury, and consequently other forms of taxation are necessary." —Bandeau.

वादियों द्वारा प्रतिपादित कर-प्रणाली में अनेक दोष विद्यमान हैं, तथापि प्रत्यक्ष करारोपण की प्राथमिकता की विचारधारा का आधार निर्बाधवादियों द्वारा प्रतिपादित कर-प्रणाली ही है।

निर्बाधवादी और वणिकवादी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Physiocratic and Mercantilistic Ideas)—निर्बाधवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव वणिकवादी विचारधारा की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। वणिकवादी एवं निर्बाधवादी विचारों में पाया जाने वाला मुख्य अन्तर निम्नोक्त है—

(i) वणिकवादी विचारकों ने स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति पर अधिक बल डाला क्योंकि उनके मतानुसार "अधिक स्वर्ण, अधिक शक्ति एवं अधिक वैभव" का प्रतीक था। इसके विपरीत निर्बाधवादियों ने विशुद्ध-उत्पादन (जो कि केवल कृषि-क्षेत्र से ही प्राप्य हो सकता है) पर बल डालते हुए कहा कि देश का कल्याण विशुद्ध-उत्पत्ति की अधिकतम मात्रा पर निर्भर है तथा सोना-चाँदी आदि बहुमूल्य पदार्थों को प्राप्त करके मानव-समाज की भूख-प्यास सन्तुष्ट नहीं हो सकती।

(ii) स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को प्राप्त करने के हेतु (जिन देशों के पास इन धातुओं की निजी खानें नहीं हैं) वणिकवादियों ने विदेशी व्यापार पर बल डाला और इस सम्बन्ध में यथासम्भव सुविधायें प्रदान करने का समर्थन किया। इसके विपरीत निर्बाधवादियों ने विशुद्ध-उत्पत्ति की मात्रा को अधिकतम करने के हेतु कृषि-उत्पादन की विधियों में सुधार करने का सुझाव दिया तथा भूमि को ही समस्त वस्तुओं की प्राप्ति का एकमात्र स्रोत बताया।

(iii) विदेशी व्यापार के क्षेत्र में वणिकवादियों ने अनुकूल व्यापाराशेष की नीति अपनाने का सुझाव दिया तथा इस नीति के कार्यान्वयन के हेतु उन्होंने निर्यात व्यापार को प्रोत्साहित एवं सरक्षित करने और आयात-व्यापार को निरुत्साहित करने का समर्थन किया क्योंकि केवल इसी दशा में अतिरेक निर्यात के भुगतान के रूप में विदेशों से स्वर्ण-रजत आदि बहुमूल्य पदार्थों को प्राप्त किया जा सकेगा। इसके विपरीत निर्बाधवादियों ने विनिमय कार्य को अनुत्पादक ठहराते हुए स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली का समर्थन किया तथा विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सन्तुलित व्यापाराशेष की नीति अपनाने का सुझाव दिया।

(iv) वणिकवादी अर्थव्यवस्था नियन्त्रित एवं प्रतिबन्धित थी। इसमें विदेशी व्यापार के सन्तुलन को अपने देश के अनुकूल में रखने के हेतु उत्पादन, उपभोग आदि क्रियाओं पर कड़े प्रतिबन्धों का अवलम्बन किया गया था। इसके विपरीत निर्बाधवादियों ने प्राकृतिक-व्यवस्था पर आधारित ऐसी अर्थव्यवस्था की रचना की जिसमें नियन्त्रण एवं प्रतिबन्धों के विपरीत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत सम्पत्ति आदि के अधिकार जनसाधारण को प्रदान किए जाते थे।

(v) वणिकवादी . . . [illegible] हैं भूमि और श्रम को उत्पत्ति के दो प्रमुख

साधन स्वीकार किया और इनमें श्रम को अधिक महत्वपूर्ण बताया। इसके विपरीत निर्वाधवादियों ने केवल मात्र भूमि को ही उत्पत्ति का साधन स्वीकार किया तथा भूमि पर लगे श्रम के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्षेत्र में लगे हुए श्रम को अनुत्पादक घोषित किया।

(vi) वणिकवादी विचारकों ने व्यापारियों एवं व्यापार को प्रोत्साहन प्रदान करने की दृष्टि से नीची ब्याज की दर कर समर्थन किया। इसके विपरीत निर्वाधवादियों ने केवल ऐसी पूंजी पर ब्याज लेना उचित ठहराया जिसका विनियोग उत्पादक-उपयोग (कृषि-व्यवसाय) में किया गया है।

निर्वाधवादी विचारधारा की आर्थिक विज्ञान को देन [The physiocratic Contriliution to Economic Science]—प्रो० जीड एण्ड रिस्ट (Gide & Rist) के अनुसार निर्वाधवादी विचारधारा की आर्थिक विज्ञान को देन, सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्व पूर्ण है। **सैद्धांतिक दृष्टिकोण से**— (१) निर्वाधवादियों ने प्रथम विचार यह प्रदान किया कि समाज का हरएक परिवर्तन किसी नियम के अनुसार होता है तथा ऐसे नियमों की खोज करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य होना चाहिये। (२) उन्होंने दूसरा सैद्धांतिक विचार यह प्रदान किया कि व्यक्ति अपना हित-स्वयं जानता है तथा एक व्यक्ति के लिए जो अच्छा है वह समाज के हर एक सदस्य के लिए उत्तम होगा (३) उन्होंने तीसरा सैद्धांतिक विचार यह प्रदान किया कि विक्रेताओं और क्रेताओं के बीच स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होनी चाहिये क्योंकि इस दशा में उस मूल्य का निर्धारण सम्भव है जिससे दोनों ...ों को समान लाभ होगा। (४) निर्वाधवादियों ने उत्पादन, वितरण तथा पूंजी ...भन्न विभेदों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। यद्यपि उत्पादन सम्बन्धी उनका ... अधूरा एवं भ्रमात्मक है, तथापि उन्होंने आगामी अर्थशास्त्रियों को इस क्षेत्र ...ण करने का मार्ग प्रशस्त अवश्य किया।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से— (i) निर्वाधवादियों ने श्रम की स्वतन्त्रता का विचार प्रस्तुत किया, (ii) देशी और विदेशी व्यापार को स्वतन्त्र रखने पर ... डाला, (iii) राज्य के कार्यों की परिमितता निर्धारित की, तथा (iv) प्रत्यक्ष ... का विचार प्रस्तुत किया।

प्रो० वी० एम० एब्राहम (V.M. Abraham) ने आर्थिक विज्ञान के क्षेत्र में निर्वाधवादियों की देन का वर्णन करते हुए लिखा है कि "सारांश रूप में आर्थिक विचारधारा के विकास में निर्वाधवादियों का योगदान यह है 'राजनैतिक अर्थव्यवस्था, शब्द उन्हीं का आविष्कार है तथा उन्होने अर्थशास्त्र को एक प्रथक् विज्ञान का स्वरूप प्रदान किया। 'प्राकृतिक व्यवस्था' की धारणा तथा अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम, जोकि उनके द्वारा विकसित किए गये, आर्थिक विश्लेपण के क्षेत्र में सार्वभौमिक नियमों की तरह रहे। 'विशुद्ध-उत्पादन' सम्बन्धी विचार आगे चलकर मूल्य के श्रम सिद्धांत तथा अतिरेक मूल्य के ... आधार बन गया। अबन्ध-व्यापार

सम्बन्धी विचार भी दीर्घकाल तक प्रचलित रहा, एकाकी कर पद्धति और विशेषकर भूमि पर एक कर उनका अपना दृष्टिकोण था। उनका यह विचार कि वस्तुओं की कीमत का निर्धारण इसके उत्पादन में लगे सामान की कीमत तथा इसके निर्माण में काम आये श्रम के मूल्य से होना चाहिये मूल्य के सभी सिद्धांतों का आधार स्तम्भ बन गया। जहां तक राज्य के कर्त्तव्यों का सम्बन्ध है उनके दृष्टिकोण को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है "हस्तक्षेप मत करो, दुनिया अपनी परवाह स्वयं कर लेगी", परन्तु सार्वजनिक क्रियाओं के निर्माण एवं संचालन के हेतु राज्य के कुछ कर्त्तव्य अवश्य निर्धारित किये गये।"[1]

यद्यपि निर्बाधवादी विचारधारा में अनेक दोष आ गए तथापि यह मानना पड़ेगा कि आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र में निर्बाधवादी लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण है जिसके कारण प्रो० एरिक रौल (Eric Roll) और प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide & Rist) आदि अनेक आलोचकों ने उन्हें अर्थशास्त्र का संस्थापक (Founders of Economics) कहकर सम्बोधित किया है। वस्तुतः अर्थशास्त्र का ऐसा कोई भी क्षेत्र न रहा जोकि निर्बाधवादियों के विश्लेषण से अछूता रह गया हो। निर्बाधवादी ही वे प्रथम विचारक थे जिन्होंने "अर्थशास्त्रियों के सम्प्रदाय" (School of Ecom-

---

1 "To sum up the contriputions of the physiocrats to the development of economic thought : the term 'political economy' was of their invention and they gave economics the form of a separate science, The concept of 'natural Order' and the uncnangeable natural laws evolved by them were to remain in economic analysis as universally applicable laws. The 'Net product' became the basis of the labur theory of value and surplus value. "Laissez Faire' was to hold its way hence forward for long time. The single tax system, especilly on land, was their view. The price of goods would be determined by the price of the materials out of which the commodity was produced and the value of the labour used in making it, an idea which was to become the corner stone of all theories of value. As to the duty of the state, their view could be summarised as, 'Dont in terefere, the world will take care of its elf," but duties were assigned to it in the field of construction and maintenance of the public works."

—Prof. V. M. [illegible] .History of Economic Thought, P. 41

isls) को जन्म दिया। निर्बाधवादी विचारकों ने उस पथ का निर्माण किया जिसका एडम स्मिथ (Adam Smith) और आगमी शताब्दी के विचारकों ने अनुसरण किया प्रो० हैने (Haney) आदि कुछ विचारको ने एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक कहकर निर्बाधवादियों के महत्व को कुछ कम करने का प्रयास किया है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि निर्बाधवादी विचारकों ने आर्थिक विचारधारा की यह पृष्ठ भूमि नहीं बनाई होती तो शायद एडम स्मिथ इतने उत्कृष्ट विचार प्रकट नहीं कर पाता।

———

4
एडम स्मिथ
(Adam Smith)

प्राक्कथन—अर्थशास्त्र का वास्तविक जन्मदाता किस को स्वीकार किया जाए, इस प्रश्न पर सभी आलोचक-विद्वान मतैक्य नहीं हैं। फ्रांसीसी लेखकों के अनुसार अर्थशास्त्र के वास्तविक जन्मदाता वणिकवादी और निर्बाधवादी विचारक हैं। अपने मत के समर्थन में इन लेखकों का कहना है कि अर्थशास्त्र के जन्म का श्रेय वणिकवादियों को है तथा इसको नियमशास्त्र और नीतिशास्त्र से पृथक एक स्वतंत्र आधार प्रदान करने का श्रेय निर्बाधवादी विचारकों को है। विशुद्ध-उत्पत्ति (Net Product), धन का परिभ्रमण (Circulation of wealth) प्राकृतिक व्यवस्था (Natural order) आदि निर्बाधवादियों के ही मौलिक विचार थे जिनके आधार पर एडम स्मिथ ने अपने विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उनके द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धांत तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचार को समस्त परम्परावादियों ने मान्यता प्रदान की है तथा फ्रांस की राज्य क्रांति को भी निर्बाधवादियों के स्वतन्त्रता के विचार से अपूर्व प्रेरणा मिली है। निर्बाध-वादियों द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक-व्यवस्था का विचार भी अपने समय का एक महत्वपूर्ण विचार था। वस्तुतः निर्बाधवादी विचारकों द्वारा इतने मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किए जाने के बावजूद भी अनेक विद्वान एडम स्मिथ को ही अर्थशास्त्र का वास्तविक जनक स्वीकार करते है। अपने मत के समर्थन में इन आलोचकों का कथन है कि एडम स्मिथ के पूर्ववर्ती विचारकों ने जो विचार प्रतिपादित किए थे वे अत्यन्त गढ़े, अस्पष्ट, एकांगी और अवैज्ञानिक थे। एडम स्मिथ ने विभिन्न पूर्ववर्ती विचारकों के बिखरे हुए अस्पष्ट विचारों को एकत्रित किया तथा उन्हें स्पष्ट बनाकर वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। एडम स्मिथ द्वारा लिखित महत्वपूर्ण ग्रन्थ "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (The Wealth of Nations) भावी अर्थशास्त्रियों के लिए एक मार्ग का प्रशस्तीकरण करता है तथा साथ ही साथ उन्हें नवीन सिद्धांतों के प्रतिपादन के हेतु ठोस आधार प्रदान करता है। यही कारण है कि देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार अब तक अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धांतों में इतना भारी परिवर्तन हो गया है, तथापि कोई भी अर्थशास्त्री एडम स्मिथ के इस ग्रन्थ के महत्व की अवहेलना नहीं कर सका है। उन्हीं सब कारणों से स्मिथ को अर्थविज्ञान का वास्तविक संस्थापक (Founder of Economics) कहा जाता है ... ही वह प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने

व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया है। एन० डब्लू सीनियर (N. W. Senior) के शब्दों में "स्मिथ क्विजने से और सम्भवतया अरस्तू के समय से लेकर प्रत्येक लेखक से महान था, अपनी जानकारी की क्षमता और विस्तृतता के सम्बन्ध में वह एक मौलिक विचारक था......उसके आकर्षण में एक अद्भुत शैली निहित थी, वह अपने पूर्ववर्तियों से पूर्णतया आगे निकल गया।"[1]

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Prof. Gide & Rist) के शब्दों में, "निःसंदेह निर्बाधवादियों द्वारा मौलिकता एवं शक्ति का प्रदर्शन किया गया, इसके बावजूद भी उन्हें नवीन विज्ञान का पूर्व-कल्पक ही माना जा सकता है। एडम स्मिथ को ही अब सर्व सम्मति से वास्तविक प्रतिस्थापक स्वीकार कर लिया गया है। सन् १७७६ में "राष्ट्रों की सम्पत्ति" के रूप में अनेक महान कार्य के प्रदर्शन से उसके पूर्ववर्ती लेखकों के प्रयासों को ढांप लिया। अब निर्बाधवादी सिद्धाँत कठिनाई से ऐतिहासिक कौतुहल के प्रदर्शन का कार्य करते हैं जबकि स्मिथ का कार्य अर्थशास्त्रियों की सफल संतति के हेतु निर्देशक रहा है तथा उनके सिद्धांतों का प्रारम्भिक विन्दु रहा है। आज जबकि अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धांतों में काफी परिवर्तन आ गया है, कोई भी अर्थशास्त्री उसके विचारों को महत्वहीन और अवैज्ञानिक नहीं ठहरा सकता।"[2]

---

1 "Smith was superior to Quesnay and perhaps to every writer ince the time of Aristotle, in the extent and accurancy of his knowledge, he was on the whole, as original a thinker—...assisted by a tyle unequalled in its attractiveness, he has almost completely superded the labours of his predecessors." —Senior.

2 "Not with standing the originality and vigour displayed by he Physiocrats, they can only be regarded as the heralds of the new cience, Adam Smith, it is now unamimously agreed, is its true founder. The appearance of his great work on the Wealth of Nations in 1776 instantly eclipsed the tentetive efforts of his predecessors. To day the Physiocratic doctrines scarcely do more than arouse historical curiosity, while Smith's work has been the guide for successive generations of economists and the starting-point of all their speculation. Even at the present day, despite many changes in the fundamental principles of the science, no economist can afford to neglect the old scots anthor without unduly narrowing his scientific horizon."

Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 68-69.

एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का वास्तविक प्रतिष्ठापक स्वीकार करने के सम्बन्ध मे विद्वानों द्वारा निम्नोक्त तर्क प्रस्तुत किये जाते है[1]—

(क) एडम स्मिथ के महत्वपूर्ण ग्रन्थ "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Nations) का महत्व १८वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है तथा १९वीं शताब्दी को प्रभावित करते हुये यह किसी न किसी रूप में आज भी मौजूद है। स्मिथ ने अपने इस ग्रन्थ मे व्यापारिक कम्पनियों, वणिकवादी पद्धति, मौद्रिक प्रश्न तथा करारोपण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं।

(ख) स्मिथ अपने पूर्ववर्ती विचारकों के विचारो को ग्रहण करके उन्हे एक क्रमबद्ध रूप मे रखने मे सफल हुआ है। उनके खण्डित अध्ययनों को एक वास्तविक

1 "First is its supreme literary charm. It is above all an interesting book, bristling with facts and palpitating with life. The burning questions of the hour, such as the problems presented by the colonial regime, the trading companies, the mercantile system, the monetary question, and taxation, supply the author with congenial themes for his treatment. His discussion of these questions is marked by such mastery of detail and such balance of judgement that he convinces without effort. His facts are intermixed with reasoning, his illurtrations with argument. He is instructive as well as persuasive. With all there is no trace of pedantry, no monotonous reiteration in the work, and the reader is not burdened with the presence of a cumbersome logical apparatus. All is eligently simple. Neither is there the slighest suggestion of the cynic. Rather a passion of geneuinely human sympathy. Occasionalry bordering upon eloquence, breathes through the pages. Thanks to rare qualities such as these we can still feel something of the original freshness of this old book."

"In addition to this, Smith has been successful in borrowing from his predecessors all their more important ideas and welding them into a more general system. He superseded them because he rendered their work useless. A true social and economic philosophy was substituted for their agmentary studies and an entirely new value given to their contributions. Taken out of their isolation, they help to illustrate his geveral theory, becomming themselves illuminated in the process."

"Like most great writers Smith knows how to borrow without impa[illegible] ...ality. Over a hundred authors are quoted his [illegible] ...eir names are not always mentioned."

—Gide &

सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन से प्रतिस्थापित किया तथा उनके योगदान को नवीन मूल्य प्रदान किया गया।

(ग) महान लेखकों की तरह स्थिम दूसरे लेखकों के विचारों को अपनी मौलिकता के संदर्भ में व्यक्त करना जानता था। उसके ग्रन्थ में सौ से भी अधिक लेखकों के विचार निहित हैं लेकिन उनके नाम कहीं भी नहीं दिये गये।

(घ) जॉन रे (John Rae) के शब्दों में एडम स्मिथ ने आगामी अर्थ-शास्त्रियों के लिए मार्ग निर्देशक का कार्य किया है जिस पर कि वे सहज रूप में आगे बढ़ सके हैं (The auther will persuade the living generation and govern the next)।

संक्षिप्त जीवन परिचय:—एडम स्मिथ का जीवन किसी विचारणीय वस्तु को उपस्थित नहीं करता। उसके जीवन-चरित्र का विवेचन उसकी यात्राओं, व्यावसायिक क्रियाओं, उसकी मित्रता के रिकार्ड्स तथा डेविड ह्यूम के साथ उसकी घनिष्ठता की कहानी से किया जा सकता है। एडम स्मिथ का जन्म ५ जून, १७२३ में किरकैलडी (Kirkcaldy) नामक स्थान में स्कॉट में हुआ था। सन् १७३७ से लेकर १७४० तक उसने ग्लासगो विश्वविद्यालय में फ्रांसिस हचेसन (Francis Hutcheson) के अन्डर में विद्याध्यन किया तथा सन् १७४० से लेकर १७४६ तक उसने आक्सफोर्ड विश्यविद्यालय में अध्ययन किया। उस समय विश्वविद्यालय की बौद्धिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी और अधिकांश आचार्य कभी भी लैक्चर नहीं देते थे। स्कॉट लैण्ड लौटने पर उसने एलिनबर्ग (Ealinburg) में एक अंग्रेजी साहित्य और दूसरा राजनैतिक अर्थशास्त्र पर लैक्चर दिया जिसके द्वारा उसने ..क स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का किया। सन् १७५१ में वह ग्लासगो, जो कि ..लक यूरोप की सर्वोत्तम यूर्विसिटी थी, में लॉजिक का प्रोफेसर बन गया। वर्ष में वह नैतिक दर्शन (Moral Philosophy) का चेयरमैन नियुक्त किया ..सके करीकुलम के अन्तर्गत राजनीति, नीतिशास्त्र, प्राकृतिक अध्यात्मविद्या ..nral Theology) तथा धर्मशास्त्र का समावेश किया गया था। सन् १७५९ ..की पुस्तक "नैतिक कल्पनाओं के सिद्धांत" (Theory of Moral Sentiments) ..शत हुई जिसको व्यक्तियों ने बहुत पसन्द किया। सन् १७६४ में उसने ग्लासगो ..वश्वविद्यालय से इस्तीफा देकर उसने दो वर्प तक फ्रांस का परिभ्रमण किया। पेरिस में उसकी तारगोट (Targot) आदि निर्वाधवादी विचारकों से भेंट हुई और उसे प्रकृतिकवादी विचारों का ज्ञान हुआ। स्कॉटलैण्ड वापिस लौटने पर स्मिथ ने अपना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया जो कि सन १७७६ में प्रकाशित होने वाली अद्वितीय पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Nations) के रूप में मुखर हुआ। १७७८ में वह एडिनबर्ग में "कमिश्नर ऑफ कस्टमस" (Commissioner of Customs) के महत्वपूर्ण पद पर आसीन किया गया। सन् १७८० में एडम स्मिथ का दोहावसान हो गया।

प्रो० एरिक रोल (Eric Roll) के शब्दों में, "उसके जीवन के मुख्य तथा आर्थिक खोज के सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण की प्रणाली की कुछ व्याख्या उपलब्ध

करते हैं। एडम स्मिथ प्रथम साहित्यिक अर्थशास्त्री (Academic Economist) था तथा उसका वृत्त विगत डेढ़ सौ वर्ष के अर्थशास्त्रियों से पृथक नहीं है। उसके समय से लेकर आर्थिक विचारधारा की अधिकांश प्रगति विषय के साहित्यिक शिक्षकों के कार्य से आबद्ध है जिनमे से अनेक, उसकी तरह दार्शनिक रहे हैं। एडम स्मिथ पर साहित्यिक प्रभाव उसके क्रमबद्ध विचार की उस मात्रा मे दिखाई देता है जिसे कि वह अपने पूर्ववर्तियों की तुलना मे पाने के योग्य था। कार्य-व्यापारों से एक निश्चित पृथक्करण (उनके ज्ञान सहित), विषय को विज्ञान में तरिणित करने के कार्य को पूर्ण करने के हेतु, आर्थिक विचारधारा के विकास की उस स्थिति पर, सदैव आवश्यक दिखाई देता रहा। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि यह एक नैतिक दार्शनिक होना चाहिए जिसने उस पूर्णता को प्रभावित किया क्योंकि उस समय यह विषय विस्तृत रूप मे राजनैतिक दर्शन, राजनीति विज्ञान और धर्मशास्त्र तक व्याप्त था। अपने महान कार्य, नैतिक कल्पनाओं का सिद्धान्त, (१७५६) के अन्तर्गत एडम स्मिथ ने मानवीय व्यवहार की समस्याओं तथा व्यावहार सम्बन्धी पद्धतियों दोनों की ओर संकेत किया जो कि उसके बाद के कार्य से भिन्न था। ऐसा लगता है कि ग्लासगो मे नियुक्त होने के पूर्व ही आर्थिक विषयों पर उसके कुछ विचारों का निर्माण हो गया था।"[1]

---

[1] "These chief facts of his life may provide some explanation of his method of approach to economic inquiry. Adam smith was the first academic economist, and his career is not altogether different from that of many economists of the last hundred and fifty years. From his time onwards most of the progress of economic thought is bound up with the work of academic teachers of the subject, many of whom had, like him, been philosophers. The academic influence on Adam Smith isseen in the much higher degree of systematic thinking which he was able to achieve as compared with those who preceded him. A certain detachment from affairs (with aknowledge of them) would almost appear to have been necessary at stage of development of economic thought in order to complete the transformation of the subject into a science. Nor is it surprising that it should have been a moral philosopher who effected that completion, for at that time this subject consisted to a very large extent of political philosophy, political science and jurispurdence. And already in his great work, the theory of Moral Sentiments (1759), Adam Smith had indicated both some of his special interests in the problems of human conduct and the methods of treatment which were to distingnish his later work. It appears that some of his ideas on economic subjects were fomred even before he was appointed to achaivat Glasgow".

—Eric Roll : History of Economic thought, P.

जिस समय एडम स्मिथ के आर्थिक विचार परिपक्व हो रहे थे उस समय एडम स्मिथ पर प्रचलित विचारधाराओं का काफी प्रभाव पड़ा। यद्यपि उसके प्रसिद्ध ग्रन्थ "राष्ट्रों की सम्पत्ति" में पूर्ववर्ती लेखकों एवं उनसे प्राप्त विचारों का वर्णन बहुत कम है, तथापि यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि इसकी मुख्य विशेषताओं में से कोई भी मौलिक नहीं है। एडम स्मिथ ने अपने पूर्ववर्ती विचारकों के विचारों को परिष्कृत, क्रमबद्ध एवं सुन्दर ढंग से संवारा है तथा उन्हें उस रूप में प्रस्तुत किया है कि वे विद्वत समाज को स्मिथ के मौलिक विचार से प्रतीत होते हैं। सामाजिक दर्शन के सम्बन्ध में स्मिथ पर फ्रांसिस हचेशन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। हचेशन के सम्बन्ध में आकर ही स्मिथ का प्राकृतिक व्यवस्था में विश्वास उत्पन्न हुआ। एडम स्मिथ द्वारा रचित पुस्तक 'राष्ट्रों की सम्पत्ति" में हम उनके द्वारा प्रतिपादित श्रम-विभाजन, मूल्य-परिवर्तन, मुद्रा एवं करारोपण सम्बन्धी सिद्धांतों में हचेशन की स्पष्ट छाप देखते हैं। प्रो० जीड एन्ड रिस्ट के मतानुसार "हचेशन ने श्रम-विभाजन की महत्ता पर अपूर्व बल डाला तथा ऐसे प्रश्नों पर, यथा-द्रव्य के मूल्य का उद्भव एवं विभिन्नतायें तथा एक अधिक स्थिर मूल्य के प्रमाण सहित श्रम अथवा अन्न की सम्भावनाएं आदि उसके विचार" "राष्ट्रों की सम्पत्ति', में वर्णित विचारों से मेल खाते हैं।"[1]

फ्रांसिस हचेशन के अतिरिक्त स्मिथ के प्रभावकों में डेविड ह्यूम (David Hume) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसे स्मिथ ने "उस समय का महान दार्शनिक एवं ऐतिहासकार" (The most illustrious philosopher and historian of the present age) कह कर सम्बोधित किया है। ह्यूम ने मुद्रा, विदेशी व्यापार, व्याज की दर आदि अनेक आर्थिक प्रश्नों पर लेख लिखे जो सन १७५२ में "पॉलिटिकल डिसकोर्स" (Political Discourse) में प्रकाशित हुए। ह्यूम द्वारा रचित इन निबन्धों का स्मिथ पर गहन प्रभाव पड़ा। कुछ विद्वानों का तो यहां तक कथन है कि डेविड ह्यूम ने ही स्मिथ को आर्थिक स्वतंत्रता की विचारधारा प्रदान की। प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में, "जिस समय ह्यूम के निबन्ध प्रकाशित हुए थे यदि वह उस समय कोई क्रमबद्ध ग्रन्थ लिख देता तो "राष्ट्रों की सम्पत्ति" को वह महत्व प्राप्त नहीं होता जो कि उसे आज प्राप्य है।"[2]

---

1 "Hutcheson laid down great stress upon the supreme importance of division of labour, and his views on such questions as the origin and variations in the value of money and the possibility of corn or labour affording a more stable standard of value closely resemble those of the Wealth of Nations,"

—Gides Rist : History of Economic Doctrines, P. 70.

2 "If he had written a systematic treatise in 1752, when his essays appeared, the Wealth of Nations in all probablity would not have occupied the unique position it nowholds."

—Haney : History of Economic thought, P. 209.

फ्रांसिस हचेसन और डेविड ह्यूम के अतिरिक्त एडम स्मिथ पर जिन महान विभूतियों का प्रभाव पड़ा उनमें से बर्नार्ड डी मैण्डीविली (Beruard de Mandeville) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जोकि दार्शनिक विचारों से युक्त एक चिकित्सक और कवि था। सन् १७०५ में उन्होंने एक कविता प्रकाशित कराई जो कि अन्य रचनाओं के साथ १७१४ में "दी फेबिल ग्राफ दी बीज" या "प्राइवेट वाइसिस पब्लिक बेनि फिट्स" (The Fable of the Bees or Private Vices Public Benefits) नाम शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुई इस पुस्तक का मौलिक विचार यह था कि सभ्यता का जन्म एवं विकास मानवीय गुणों के कारण नहीं अपितु बुराइयों के कारण हुआ है। एडम स्मिथ ने अपनी रचना "नैतिक कल्पनाओं के सिद्धांत में मैण्डीविली के इन विचारों की कटु आलोचना की परन्तु बाद में चलकर उससे प्रभावित होकर स्मिथ ने इसके भावों को ग्रहण कर लिया था क्योंकि स्मिथ भी स्वयं इसी परिणाम पर पहुचा था कि यह केवल व्यक्तिगत स्वार्थ ही है (उसकी राय में कोई बुराई नहीं वरन् एक तुच्छ गुण) जो कि समाज को सुख एव समृद्धि के मार्ग की ओर प्रेरित करता है। स्मिथ और मैण्डीविली की राय मे एक राष्ट्र की सम्पत्ति यदि बुराई की नही तो कम से कम एक प्राकृतिक मनोवृत्ति (स्वार्थ) की परिणाम अवश्य है जो कि स्वयं मे कोई अच्छाई नही।"[1]

उच्च विद्वान लेखकों के अतिरिक्त, एडम स्मिथ के विचारों पर वणिकवादी विचारकों या उनके विरोधी दल के सदस्यों तथा निर्बाधवादी विचारकों की धारणाओं का भी प्रभाव पड़ा। वस्तुत: एडम स्मिथ वणिकवाद के पक्षपाती दल की अपेक्षा उसके विरोधी दल से अधिक प्रभावित हुआ क्योंकि वह नियंत्रित व्यापार की अपेक्षा स्वतंत्र-व्यापार का पक्षपाती था और उसने इगलैंड में प्रचलित संरक्षण की नीति की कटु आलोचना की थी। वणिकवादी विचारधारा के विरोधी विचारकों मे चाइल्ड (Child), पेटी (Pett) टकर Tucker डडले नार्थ (Dudley North) तथा ग्रेगोरी (Gregory King) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने एक बड़ी सीमा तक एडम स्मिथ को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त एडम स्मिथ पर निर्बाधवादी विचारकों के प्रभाव को सिद्ध कर देना एक अत्यन्त ही कठिन कार्य है। वह निर्बाधवादी समुदाय के अनेक नेताओं और उनके लेखों से परिचित था। उसकी पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति में" क्विजने और रिवेरी दो

1 "Smith is his turn was to reiterate the belief that it was personal interest (in his opinion no vice, but an inferior virtue) that unwithingly led society in the paths of well-being and prosperity. A nation's wealth for Smith as well as for mandaville is the result, if not of a voice, at least of natural instinct which is not it self virtous, but which is bestowed upon us by providence for the relization of ends that lie beyond our farthestken."

—Gide & Rist,

प्रमुख निर्वाधवादियों का वर्णन है तथा चौथे भाग के अन्तिम पाठ में नर्वाधवाद की आलोचना की गई है। इसके अतिरिक्त एडम स्मिथ के कुछ अपने विचार भी ऐसे थे जोकि निर्वाधवादियों के विचारों से मेल खाते हैं। उसके प्रकृतिवादी दृष्टि-कोण तथा अतिरेक भी सम्स्या के सम्बंध में उसका अपना पथ निर्वाधवादियों के पथ के समानान्तर है। दूसरी ओर यह सर्व विदित है कि इस विश्लेपण की मुख्य बातें उसके द्वारा निर्वाधवाद से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्ति से पूर्व ही तयार थीं। हम यह निष्कर्य निकाल सकते हैं कि फ्रेंच राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्रतिष्ठापकों का सामान्य दृष्टिकोण एडम स्मिथ के दृष्टिकोण से मूलतः भिन्न नहीं था और यह सब कुछ, उस सामान राजनैतिक एवं आर्थिक मौसम को दृष्टिगत करते हुए जिसमें उन्होंने कार्य किया, आश्चर्यजनक नहीं है।"[1] "स्मिथ द्वारा रचित "राष्ट्रों की सम्पत्ति" के अवलोकन से यह सिद्ध हो जाता है कि उसने निर्वाध-वादी विचारकों के आर्थिक स्वतन्त्रता के सिद्धांत एवं वितरण सम्बन्धी विचारों को बड़ी सीमा तक अपनाया है। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों में, "यह स्वीकार करते हुए कि उसने उनकी शिक्षा का सर्वाधिक विशेषतापूर्ण एवं सृजन-तापूर्ण भाग ग्रहण किया, उस भाग के अनेक जटिल पहलुओं पर उसका व्यावहार उनकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। निर्वाधवादी कृषि के महत्व से इतने अधिक प्रभावित हो गये थे कि वे समस्या को उसके वास्तविक रूप में देखने में निष्फल रहे। उन्होंने क्षेत्र का एकाँगी परीक्षण किया और उनकी आंखों का वृत्त संकीर्ण एवं सीमित रहा। दूसरी ओर स्मिथ ने आर्थिक क्रिया के सम्पूर्ण क्षेत्र को ग्रहण

---

1 "The influence of physiocratic economic doctrine on Smith is more difficult to establish. He was certainly acquainted both with the writihgs of the school and with mony of its leaders. The Wealth of Nations has references to at least two eminent physiocrats, Quesnay and Mercier de la Riviere, and the final chapter of the fourth book is devoted to a critique of physiocrats. Moreover, inspite of his own belief to the contary, Smith held many views which were very similar to those of the phisiocrats. Both in his adherence to naturalism and in his interest in the problem of the surpleus, his path is parallel to theirs. On the other hand, it is known that the main outline of this analysis was ready before he had an apportunity of acquiring any considerable knowledge of physiocracy. We must conclude that the general out look of the founders of French political economy were not fundamentally different from those of Adam Smith which is not surprising is view of the essntial similarity in the political and economic climate in which they worked."

—Eric Roll : History of Economic Thought, P. 144-45.

किया और उसका एक ऊंचाई से परीक्षण किया परन्तु वहा से आकृति सर्वाधिक स्पष्ट और विस्तृत दिखाई दी।"[1]

एडम स्मिथ ने आर्थिक जगत की तुलना श्रम-विभाजन द्वारा निर्मित एक विशाल कारखाने से की है। उसके मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था निर्माण अथवा कृषक अर्थात् किसी विशेष वर्ग के हित पर आधारित न होकर सम्पूर्ण समुदाय के सामान्य हित पर आधारित है। एडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति (Wealth of Nations) के पहले दो भागों मे धन के उत्पादन, विनिमय और वितरण पर अपने विचार व्यक्त किए हैं, पुस्तक के तीसरे भाग मे यूरोप के आर्थिक इतिहास का विवेचन किया है, चौथे भाग मे वणिकवाद एव निर्बाधवाद की आलोचना की है तथा पाचवें भाग मे राजस्व पर अपने विचार प्रस्तुत किए है। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट (Gide & Rist) ने स्मिथ के प्रमुख विचारों को निम्नोक्त तीन भागो मे विभक्त किया है—

(i) श्रम का विभाजन (Division of Labour)

(ii) व्यक्तिगत स्वार्थ के अन्तर्गत आर्थिक जगत का प्राकृतिक सगठन (The Natural organization of the economie world under the influnence of personal interest), तथा

(iii) स्वातंत्र्यवाद (Liberalism)।

प्रो० एरिक रौल (Erice Roll) ने स्मिथ के प्रमुख विचारो को दो भागों मे विभक्त किया है—(क) सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन और इससे उद्भुत आर्थिक नीति (Social and political philosophy and the preeepls of economic policy which are dersied from them), (ख) तकनीकी-आर्थिक सतोष (Technical-economic Content)। "राष्ट्रो की सम्पत्ति" के उन दो आधारभूत तत्वो के सापेक्षक महत्व का विवेचव करते हुये एरिक रौल ने कहा है कि इनसे बाद वाला तत्व अधिक महत्वपूर्ण है तथा पहला वाला तत्व कम महत्वपूर्ण है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से एडम स्मिथ के प्रमुख विचारों को निम्नोक्त भागों मे विभक्त कर सकते हैं—

(१) राजनैतिक दर्शन (The Political Philosophy),

1 "But admitting that he borrowed what was most characteristic and most suggestive in their teachings, his treatment of its many complicated aspects is altogether superior to theirs. The Physiocrats were so impressed by the importance of agriculture that they utterly faild to see the problem in its true prospective they scanned the field through a crevice and their vision was consequently narrow and limited. Smith, on the other hand, took the whole field of economic activity at hisprovince, and surve- yed the ground from an eminence where the view was clearast and most extensive. —Gide & Rist : History of Economic Doctrives, P. 73

[illegible] द्वारा निर्मित नहीं किए जा सकते।[1] इस तरह स्मिथ ने सरकार के कार्यों के अन्तर्गत घरेलू एवं वाह्य शांति, न्याय, शिक्षा तथा सड़क, पुल, नहरें आदि सार्वजनिक निर्माण कार्यों को सम्मिलित किया तथा अन्य सब क्रियाओं को अन्य व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किए जाने पर जोर दिया।

इस तरह आर्थिक मामलों में प्राकृतिक व्यस्था के नियमों को लागू करके, स्मिथ उद्योग एवं वाणिज्य के साधारण व्यवसायों में सरकारी हस्तक्षेप का पक्का विरोधी बन जाता है। उसके मतानुसार आर्थिक मामलों में मनोवृत्ति का प्राकृतिक सन्तुलन अधिक प्रभावशाली है और हरएक व्यक्ति अपना निजी लाभ प्राप्त करने के हेतु सर्वाधिक इच्छुक होता है। श्रम-विभाजन के द्वारा व्यक्ति अपने परिश्रम की उत्पादकता बढ़ाता है और वह दूसरों पर निर्भर बनता है। समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति दूसरों की मदद पाने और करने के अनेक अवसर पाता है। अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की अभिलाषा में व्यक्ति दूसरों के आत्म-प्रेम के साथ-साथ उनकी सहानुभूति भी प्राप्त करता है।[2] स्मिथ का मत है कि विनिमय दो व्यक्तिगत हितों की समकालिक संतुष्टि को सम्भव बनाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति या श्रम का अपने हित में उपयोग करते हुए विनिमय के उद्देश्य से उत्पादन करता है अर्थात् समुदाय के दूसरे सदस्यों द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के हेतु उत्पादन करता है। वह ऐसा करने का इच्छुक हो अथवा न हो, परन्तु वह सामाजिक व्यवस्था की अपनी सदस्यता के नाते, जो वस्तु वह प्राप्त करता है उसे विनिमय के हित में स्वीकार करने का आभारी होता है।[3] स्मिथ ने उद्योग और व्यापार सर्वाधिक उलझी हुई प्रक्रिया में भी वस्तु-विनिमय की साधारण क्रिया को शासित करने वाले

---

1 "The natural system knows only three proper duties of government which; though of great importance, are plain and intelligible to common understanding. The first is the duty of defence from foreign aggression, the second, the duty of establishing an exact admimistration of justic, and the third, the maintenance of such public works and institutions as would not be maintained by any individual or group of individuals for lack of adequate profit. Peace at home and abroad, justice, education, and a minimum of of other publc enterprises, like roads, bridges, canals, and harbours are all the benefits which government can confer."

Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, P, 147.

2 "It is not from the benevolence of the butcher, the brewer, or the baker, that we expect our dinner, but from their regard to their own interest." —Smith : Wealth of Nations, vol, I, P. 15.

3 "Every one is obliged to bring the results of his efforts into a common stock, where every man may purchase whatever part of the produce of other men's talents he has occasion for."

—Adam Smith : Wealh of Nations, vol. I, P, 17.

स्वाभाविक क्रम को देखा। उसने बताया कि घरेलू व्यापार की विभिन्न शाखाओं में, विदेशी वाणिज्य में, कृषि और उद्योग के सम्बन्ध में यही स्वाभाविक क्रम कार्यशील है और इसमें सरकारी हस्तक्षेप का अर्थ होगा-समाज के हित को कम करना।[1] स्मिथ का कथन है कि जिन वस्तुओं को अपने देश में बनाने की अपेक्षा विदेशों से कम मूल्य मे खरीदा जा सकता है, उन वस्तुओं की आयात पर सरकार द्वारा बाधा उपस्थित करना बुद्धिमानी नहीं है। इस तरह स्मिथ निर्बाधवादियों की हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez Faire Policy) का पक्का समर्थक बन गया। वैसे तो निर्बाधवादियों का भी यही मत था कि आर्थिक मामलों में राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, परन्तु स्मिथ ने इस विचार को अत्यन्त विस्तृत एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। वस्तुतः स्मिथ एक भावात्मक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के पक्ष में न था वरन् उसका उद्देश्य अहस्तक्षेपवादी नीति के सिद्धान्त में अन्तर्निहित संघर्षों को समाप्त करना था। आर्थिक नीति के अन्तर्गत प्रकृतिवाद (Naturalism) के सिद्धान्त को लागू करने का उसका उद्देश्य वणिकवादियों की व्यापारिक नीति के विरुद्ध संघर्ष करना, औद्योगिक नियमन के विरुद्ध आवाज उठाना तथा नवीन एकाधिकारी प्रयत्नों के विरुद्ध फैलाना था। जिन शक्तियों ने इंगलिश विदेशी व्यापार को नियमन से स्वतन्त्र कर दिया, अत्यधिक आयात करों तथा प्रतिबन्धित व्यापार ट्रीटाइज को समाप्त किया तथा निषेधों को दूर किया, उनमें एडम स्मिथ का कार्य एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि वणिकवादी विचारकों के विचारों का विश्लेषण स्मिथ सदैव ही ठीक नहीं कर पाया, तथापि उसने वणिक-वादी पद्धति के विरुद्ध ठोस एवं तर्कपूर्ण आलोचना प्रस्तुत की। उद्योग एवं व्यापार की तरह स्मिथ ने मजदूरी तथा उत्पत्ति के अन्य सभी क्षेत्रों में लगे प्रतिबंधों का बहिष्कार किया। उसने बताया कि सरकार को चाहिए कि वह किसी विशेष आर्थिक सर्वाधिकार की स्थापना को मनाही कर दे तथा पूंजी या श्रम के एकत्रण द्वारा प्रस्तुत सभी तरह के एकाधिकार को समाप्त करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। स्मिथ के मतानुसार राज्य की आर्थिक नीति का प्रमुख कर्तव्य स्वतन्त्र प्रतियोगिता की सुरक्षा करना होना चाहिए क्योंकि केवल स्वतन्त्र प्रतियोगिता ही प्राकृतिक स्वातन्त्र्य के साथ अनुकूल है और केवल पूर्ण प्रतियोगिता ही इस बात का बीमा कर सकती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयत्नों का पूरा इनाम मिलेगा और वह सामान्य हितार्थ अपना पूर्ण योगदान कर सकेगा।

प्राकृतिक नियम पर आर्थिक नीति को आधारित करते हुए, जोकि केवल

---

1 "It is the maxim of every prudent master of a family, never to attempt to make at home what it will cost him more to make than to buy......what is prudence in the conduct of every private family, can scarce be folly in that of a great kingdom."

Smith : Wealth of Nations : vol I, P, 457.

(२) श्रम-विभाज
(३) प्रकृतिवाद श्री
(४) स्वतन्त्र अन्तर
(५) मूल्य का सिद्धा
(६) पूंजी और वित
bution), तथा
(७) करारोपण के सिद्
निम्नोक्त में स्मिथ के
गया है—
(१) राजनैतिक दर्शन (Pc
विश्लेषण की ऊपरी सतह पर दार्श
"राष्ट्रों की सम्पत्ति" को पाँच भागों
विवरण, विनिमय और पूंजी की सम
विभिन्न राष्ट्रों में अपनाई गई आर्थिक
अंतिम भाग में सार्वजनिक वित्त का
भाग के द्वितीय अध्याय को अपवादस्व
व्यवहार के सम्बन्ध में आर्थिक खोज
कल्पना नहीं की गई है और न ही किसी दा
जिससे कि स्मिथ के आर्थिक सिद्धांत प्रस्फुटित
में विद्यमान है। स्मिथ ने प्राकृतिक-व्यवस्था की
प्रस्तुत किये हैं तथा मानवीय संस्थाओं
मतानुसार "प्राकृतिक स्वातंत्र्य की साधारण
ी तथा वस्तुओं की व्यवस्था जोकि आवश्यक
ाव द्वारा उद्यत है। मानवीय संस्थाएं केवल मात्र
आश्रित है" (The obvious and simple systen
establish itself. Again, that order of things whi
...is...prompted by the natural inclinations c
tutions only too often thwart these natural inclin.

यह स्मरण रहे कि "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Weath
लेखक" नैतिक कल्पनाओं के सिद्धांत' (Theory of Moral
भी लेखक था और हम एक के आर्थिक विचारों को दूसरी के
बिना नहीं समझ सकते। स्मिथ के अनुसार मानवीय व्यवहार इन
पर आधारित है—आत्म-प्रेम (Self-love), सहानुभूति (Sympa
रहने की अभिलाषा (The Desire to be Free), स्वामित्व की चेतना
Propriety), श्रम की आदत (Halit of Labour) और एक वस्तु को

से बदलने की प्रवृत्ति (Propensity to Truck, barter and exchange one Thing for another)। स्मिथ का मत था कि इन छः मनोवृत्तियों से चालित होने के कारण कोई व्यक्ति प्राकृतिक रूप से अपने हित का सर्वाधिक उत्तम निर्णायक होता है और इसलिए उसे अपना हित-मार्ग खोजने के हेतु स्वतन्त्र छोड़ दिया जाना चाहिए। इस तरह स्वतन्त्र छोड़ दिये जाने पर कोई व्यक्ति न केवल अपना सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करेगा वरन् वह सामान्य की भलाई के अनुकूल भी होगा। परन्तु ऐसा क्यों होगा अर्थात् एक व्यक्ति द्वारा अपनी भलाई का मार्ग खोजने से सभी की भलाई कैसे हो सकेगी, इसका कारण बताते हुए स्मिथ ने कहा है कि मानव-समाज प्राकृतिक-व्यवस्था पर आधारित है जिसके अन्तर्गत मानवीय क्रिया की विभिन्न मनोवृत्तियों का इस तरह संतुलन हो जाता है कि किसी एक व्यक्ति का लाभ सभी के लाभ के साथ संघर्ष नहीं करता। प्राकृतिक-व्यवस्था पर आधारित मानव-समाज में आत्म-प्रेम की प्रवृत्ति सहानुभूति आदि अन्य प्रवृत्तियों के साथ मिलकर किसी व्यक्ति की क्रियाओं को सार्वजनिक हितार्थ की ओर ले जाती है। मानवीय मनोवृत्तियों के प्राकृतिक संतुलन के सम्बन्ध में स्मिथ का ऐसा विश्वास था कि कोई व्यक्ति अपना नीजि हित प्राप्त करने में ऐसा कुछ नहीं करता जो कि दूसरों की हित-प्राप्ति के साथ संघर्ष करने लगे।

मानवीय-व्यवहार के सम्बन्ध में ऐसी धारणा बना लेने के बाद स्मिथ इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सरकार को मानवीय आर्थिक क्रियाओं में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए क्योंकि मानवीय क्रियाओं में सरकार का हस्तक्षेप हानिकारक होता है।[1] स्मिथ ने बताया कि सरकार को चाहिए कि वह समाज के हरएक सदस्य को अपना निजी हित अधिकतम करने के हेतु स्वतन्त्र छोड़ दे और इस तरह प्राकृतिक नियम से बाधित होकर वह सामान्य-हितार्थ को अधिकाधिक करने में सर्वोत्तम योगदान करेगा। प्राकृतिक पद्धति के अन्तर्गत उसने सरकार के केवल तीन महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निर्धारित किए—(i) समाज की वाह्य आक्रमणों से सुरक्षा करना, (ii) न्याय की व्यवस्था करना, तथा (iii) ऐसे सार्वजनिक कार्यों एवं संस्थाओं का निर्माण करना जो कि पर्याप्त लाभ के अभाव में व्यक्ति या व्यक्तियों

---

1 "Every man as long as he does not violate the laws of justice is left perfectly free to pursue his own interest in his own way, and to bring both his industry and capital into competition with those of any other man, or order of men." —Adam Smith

(२) श्रम-विभाजन (Division of Labour),

(३) प्रकृतिवाद और आशावाद (Naturalisms and Optimism),

(४) स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (Free Inter national trade),

(५) मूल्य का सिद्धान्त (Theroy of Value),

(६) पूंजी और वितरण का सिद्धांत (Theory of Capital and Distribution), तथा

(७) करारोपण के सिद्धांत (Principles of Taxation)।

निम्नोक्त में स्मिथ के इन्हीं प्रमुख विचारों का क्रमशः विवेचन किया गया है—

(१) राजनैतिक दर्शन (Political Philosophy)—स्मिथ द्वारा किए गए विश्लेषण की ऊपरी सतह पर दार्शनिक तत्व स्थित नहीं हैं, उसके द्वारा प्रतिपादित "राष्ट्रों की सम्पत्ति" को पाँच भागों में विभक्त किया गया है जिनसे क्रमशः उत्पादन, वितरण, विनिमय और पूंजी की समस्याओं का विश्लेषण विभिन्न राष्ट्रों द्वारा विभिन्न कालों में अपनाई गई आर्थिक नीतियों के संदर्भ में किया गया है और अंतिम भाग में सार्वजनिक वित्त का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक के प्रथम भाग के द्वितीय अध्याय को अपवादस्वरूप छोड़कर सामान्य रूप में मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध में आर्थिक खोज के विश्लेषण के हेतु किसी पृथक क्षेत्र की कल्पना नहीं की गई है और न ही किसी दार्शनिक पद्धति का विवेचन किया गया है जससे कि स्मिथ के आर्थिक सिद्धांत प्रस्फुटित हुए हैं। फिर यह पद्धति प्रमाण रूप में विद्यमान है। स्मिथ ने प्राकृतिक-व्यवस्था की लाभदायकता के सम्बन्ध में विशेष तर्क प्रस्तुत किये हैं तथा मानवीय संस्थाओं के अखंडनीय प्रभाव को दर्शाया है। उसके मतानुसार "प्राकृतिक स्वातंत्र्य की साधारण पद्धति की स्थापना स्वभेव हो जाएगी तथा वस्तुओं की व्यवस्था जोकि आवश्यक रूप से लागू है, मनुष्य के प्राकृतिक झुकाव द्वारा उद्यत है। मानवीय संस्थाएं केवल मात्र इन प्राकृतिक झुकावों पर आश्रित है" (The obvious and simple system of natural liberty will establish itself. Again, that order of things which necessity imposes ...is...prompted by the natural inclinations of man. Human institutions only too often thwart these natural inclinations.)।

यह स्मरण रहे कि "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Weath of Nations) का लेखक "नैतिक भावनाओं के सिद्धांत" (Theory of Moral Sentiments) का भी लेखक था और हम एक के आर्थिक विचारों को दूसरी के दार्शनिक ज्ञान के बिना नहीं समझ सकते। स्मिथ के अनुसार मानवीय व्यवहार इन छः मनोवृत्तियों पर आधारित है—आत्म-प्रेम (Self-love), सहानुभूति (Sympathy), स्वतन्त्र रहने की अभिलाषा (The Desire to be Free), स्वामित्व की चेतना (Sense of Propriety), श्रम की आदत (Halit of Labour) और एक वस्तु को दूसरी वस्तु

स्वाभाविक क्रम को देखा। उसने बताया कि घरेलू व्यापार की विभिन्न शाखाओं में, विदेशी वाणिज्य में, कृषि और उद्योग के सम्बन्ध में यही स्वाभाविक क्रम कार्यशील है और इनमें सरकारी हस्तक्षेप का अर्थ होगा-समाज के हित को कम करना।[1] स्मिथ का कथन है कि जिन वस्तुओं को अपने देश में बनाने की अपेक्षा विदेशों से कम मूल्य में खरीदा जा सकता है, उन वस्तुओं की आयात पर सरकार द्वारा बाधा उपस्थित करना बुद्धिमानी नहीं है। इस तरह स्मिथ निर्बाधवादियों की हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez Faire Policy) का पक्का समर्थक बन गया। वैसे तो निर्बाधवादियों का भी यही मत था कि आर्थिक मामलों में राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, परन्तु स्मिथ ने इस विचार को अत्यन्त विस्तृत एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। वस्तुतः स्मिथ एक भावात्मक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के पक्ष में न था वरन् उसका उद्देश्य प्रहस्तक्षेपवादी नीति के सिद्धान्त में अन्तर्निहित संघर्षों को समाप्त करना था। आर्थिक नीति के अन्तर्गत प्रकृतिवाद (Naturalism) के सिद्धान्त को लागू करने का उसका उद्देश्य वणिकवादियों की व्यापारिक नीति के विरुद्ध संघर्ष करना, औद्योगिक नियमन के विरुद्ध आवाज उठाना तथा नवीन एकाधिकारी प्रयत्नों के विरुद्ध फैलाना था। जिन शक्तियों ने इंगलिश विदेशी व्यापार को नियमन से स्वतन्त्र कर दिया, अत्यधिक आयात करों तथा प्रतिबन्धित व्यापार ट्रीटाइज को समाप्त किया तथा निषेधों को दूर किया, उनमें एडम स्मिथ का कार्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि वणिकवादी विचारकों के विचारों का विश्लेषण स्मिथ सदैव ही ठीक नहीं कर पाया, तथापि उसने वणिक-वादी पद्धति के विरुद्ध ठोस एवं तर्कपूर्ण आलोचना प्रस्तुत की। उद्योग एवं व्यापार की तरह स्मिथ ने मजदूरी तथा उत्पत्ति के अन्य सभी क्षेत्रों में लगे प्रतिबंधों का बहिष्कार किया। उसने बताया कि सरकार को चाहिए कि वह किसी विशेष आर्थिक सर्वाधिकार की स्थापना की मनाही कर दे तथा पूंजी या श्रम के एकत्रण द्वारा प्रस्तुत सभी तरह के एकाधिकार को समाप्त करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। स्मिथ के मतानुसार राज्य की आर्थिक नीति का प्रमुख कर्तव्य स्वतन्त्र प्रतियोगिता की सुरक्षा करना होना चाहिए क्योंकि केवल स्वतन्त्र प्रतियोगिता ही प्राकृतिक स्वातन्त्र्य के साथ अनुकूल है और केवल पूर्ण प्रतियोगिता ही इस बात का बीमा कर सकती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयत्नों का पूरा इनाम मिलेगा और वह सामान्य हितार्थ अपना पूर्ण योगदान कर सकेगा।

प्राकृतिक नियम पर आर्थिक नीति को आधारित करते हुए, जोकि केवल

---

1 "I is the maxim of every prudent master of a family, never to attempt to make at home what it will cost him more to make than to buy......what is prudence in the conduct of every private family, can scarce be folly in that of a great kingdom."

Smith · Wealth of Nations : vol I, P, 457

के समुदाय द्वारा निर्मित नहीं किए जा सकते ।[1] इस तरह स्मिथ ने सरकार के कार्यों के अन्तर्गत घरेलू एवं वाह्य शांति, न्याय, शिक्षा तथा सड़क, पुल, नहरें आदि सार्वजनिक निर्माण कार्यों को सम्मिलित किया तथा अन्य सब क्रियाओं को अन्य व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किए जाने पर जोर दिया ।

इस तरह आर्थिक मामलों में प्राकृतिक व्यस्था के नियमों को लागू करके, एडम स्मिथ उद्योग एवं वाणिज्य के साधारण व्यवसायों में सरकारी हस्तक्षेप का पक्का विरोधी बन जाता है । उसके मतानुसार आर्थिक मामलों में मनोवृत्ति का प्राकृतिक सन्तुलन अधिक प्रभावशाली है और हरएक व्यक्ति अपना निजी लाभ प्राप्त करने के हेतु सर्वाधिक इच्छुक होता है । श्रम-विभाजन के द्वारा व्यक्ति अपने परिश्रम की उत्पादकता बढ़ाता है और वह दूसरों पर निर्भर बनता है। समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति दूसरों की मदद पाने और करने के अनेक अवसर पाता है । अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की अभिलाषा में व्यक्ति दूसरों के आत्म-प्रेम के साथ-साथ उनकी सहानुभूति भी प्राप्त करता है ।[2] स्मिथ का मत है कि विनिमय दो व्यक्तिगत हितों की समकालिक संतुष्टि को सम्भव बनाता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति या श्रम का अपने हित में उपयोग करते हुए विनिमय के उद्देश्य से उत्पादन करता है अर्थात् समुदाय के दूसरे सदस्यों द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के हेतु उत्पादन करता है । वह ऐसा करने का इच्छुक हो अथवा न हो, परन्तु वह सामाजिक व्यवस्था की अपनी सदस्यता के नाते, जो वस्तु वह प्राप्त करता है उसे विनिमय के हित में [illegible] करने का आभारी होता है ।[3] स्मिथ ने उद्योग और व्यापार सर्वाधिक उलझी हुई प्रक्रिया में भी वस्तु-विनिमय की साधारण क्रिया को शासित करने वाले

---

1 "The natural system knows only three proper duties of [go]vernment which; though of great importance, are plain and intelli[gibl]e to common understanding. The first is the duty of defence [f]rom foreign aggression, the second, the duty of establishing an exact admimistration of justic, and the third, the maintenance of such public works and institutions as would not be maintained by any individual or group of individuals for lack of adequate profit. Peace at home and abroad, justice, education, and a minimum of of other public enterprises, like roads, bridges, canals, and harbours are all the benefits which government can confer."

Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, P, 147.

2 "It is not from the benevolence of the butcher, the brewer, or the baker, that we expect our dinner, but from their regard to their own interest." —Smith : Wealth of Nations, vol, I, P. 15.

3 "Every one is obliged to bring the results of his efforts into a common stock, where every man may purchase whatever part of the produce of other men's talents he has occasion for."

—Adam Smith : Wealh of Nations, vol. I, P, 17.

स्वाभाविक क्रम को देखा। उसने बताया कि घरेलू व्यापार की विभिन्न शाखाओं में, विदेशी वाणिज्य में, कृषि और उद्योग के सम्बन्ध में यही स्वाभाविक क्रम कार्यशील है और इनमें सरकारी हस्तक्षेप का अर्थ होगा-समाज के हित को कम करना।[1] स्मिथ का कथन है कि जिन वस्तुओं को अपने देश में बनाने की अपेक्षा विदेशों से कम मूल्य में खरीदा जा सकता है, उन वस्तुओं की आयात पर सरकार द्वारा बाधा उपस्थित करना बुद्धिमानी नहीं है। इस तरह स्मिथ निर्वाधवादियों की हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez Faire Policy) का पक्का समर्थक बन गया। वैसे तो निर्वाधवादियों का भी यही मत था कि आर्थिक मामलों में राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, परन्तु स्मिथ ने इस विचार को अत्यन्त विस्तृत एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। वस्तुतः स्मिथ एक भावात्मक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के पक्ष में न था वरन् उसका उद्देश्य अहस्तक्षेपवादी नीति के सिद्धान्त में अन्तर्निहित संघर्षों को समाप्त करना था। आर्थिक नीति के अन्तर्गत प्रकृतिवाद (Naturalism) के सिद्धान्त को लागू करने का उसका उद्देश्य वणिकवादियों की व्यापारिक नीति के विरुद्ध संघर्ष करना, औद्योगिक नियमन के विरुद्ध आवाज उठाना तथा नवीन एकाधिकारी प्रयत्नों के विरुद्ध फैलाना था। जिन शक्तियों ने इंगलिश विदेशी व्यापार को नियमन से स्वतन्त्र कर दिया, अत्यधिक आयात करों तथा प्रतिबन्धित व्यापार ट्रीटाइज को समाप्त किया तथा निषेधों को दूर किया, उनमें एडम स्मिथ का कार्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि वणिकवादी विचारकों के विचारों का विश्लेषण स्मिथ सदैव ही ठीक नहीं कर पाया, तथापि उसने वणिक-वादी पद्धति के विरुद्ध ठोस एवं तर्कपूर्ण आलोचना प्रस्तुत की। उद्योग एवं व्यापार की तरह स्मिथ ने मजदूरी तथा उत्पत्ति के अन्य सभी क्षेत्रों में लगे प्रतिबंधों का बहिष्कार किया। उसने बताया कि सरकार को चाहिए कि वह किसी विशेष आर्थिक सर्वाधिकार की स्थापना की मनाही कर दे तथा पूंजी या श्रम के एकत्रण द्वारा प्रस्तुत सभी तरह के एकाधिकार को समाप्त करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। स्मिथ के मतानुसार राज्य की आर्थिक नीति का प्रमुख कर्तव्य स्वतन्त्र प्रतियोगिता की सुरक्षा करना होना चाहिए क्योंकि केवल स्वतन्त्र प्रतियोगिता ही प्राकृतिक स्वातन्त्र्य के साथ अनुकूल है और केवल पूर्ण प्रतियोगिता ही इस बात का बीमा कर सकती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रयत्नों का पूरा इनाम मिलेगा और वह सामान्य हितार्थ अपना पूर्ण योगदान कर सकेगा।

प्राकृतिक नियम पर आर्थिक नीति को आधारित करते हुए, जोकि केवल

1 "I is the maxim of every prudent master of a family, never to attempt to make at home what it will cost him more to make than to buy......what is prudence in the conduct of every private family, can scarce be folly in that of a great kingdom."

Smith : Wealth of Nations : vol I, P, 457

राज्य द्वारा अहस्तक्षेपवादी नीति बरतने पर ही सम्भव है, स्मिथ ने व्यवसायी वर्ग के आवश्यक हितों का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है। उसने बताया कि सरकारी नियमन एवं एकाधिकार की समाप्ति समुदाय के सर्वाधिक प्रगतिशील वर्ग के हित में है और इस तरह पूर्ण समुदाय के हित में है। स्मिथ ने बताया कि वणिकवादी पद्धति के अन्तर्गत उपभोक्ता के हित का बलिदान किया जाता है और उत्पादन, न कि उपभोग सभी उद्योग एवं वाणिज्य का एकमात्र उद्देश्य होता है।[1] अतएव स्मिथ के मतानुसार प्रतियोगिता, राज्य या दूसरे अभिकरण द्वारा अप्रतिबंधित: प्रतियोगिता, आर्थिक-विस्तार की प्रथम आवश्यक दशा है तथा समुदाय के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि के हेतु भी अनिवार्य है। राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप को हानिकारक एवं घातक सिद्ध करने के हेतु स्मिथ ने निम्नोक्त तर्क प्रस्तुत किए—

(क) सरकारी कार्यों में मितव्ययिता का अभाव रहता है क्योंकि सरकार जो भी कुछ व्यय करती है वह उसका स्वयं का उपार्जित धन न होकर करदाताओं का धन होता है और इस धन को व्यय करते समय सरकार मितव्ययिता का कोई ध्यान नहीं रखती।

साहस का पक्षपाती है, परन्तु उसने निजि साहस को भी केवल उसी दशा में उचित ठहराया है। जबकि उससे समाज को लाभ हो और उसके मतानुसार यह केवल तभी सम्भव है जबकि निजि साहस की उत्पत्ति व्यक्तिगत स्वार्थ से हुई हो और उससे प्रतिस्पर्धा को उपयुक्त अवसर मिल सकता हो।

बहुधा यह कहा जाता है कि एडम स्मिथ ने एक अकेले वर्ग के हितो का प्रतिनिधित्व किया। नि.संदेह यह केवल ऐतिहासिक विचार से ही नहीं वरन् विषयगत रूप से भी सत्य है। स्मिथ ने समुदाय के अनुत्पादक सदस्यो के विरुद्ध भारी रोष प्रकट किया और यद्यपि उसने इस श्रेणी में अनेको को रक्खा तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उनका मुख्य आक्रमण उन व्यक्तियो की सर्वाधिकारी स्थिति के विरुद्ध था जोकि औद्योगिक पूंजीवाद के विकास में बाधक थे। स्मिथ द्वारा की गई एक विशेष हित की वकालात की सफलता इस तथ्य के कारण थी कि यह सामान्य हित की सुरक्षा के समान है जो कि सच्चाई का एक ठोस आधार रखती है कि आर्थिक प्रगति उद्योग पूंजीपति (Industrial Capitalist) की स्वतन्त्रता की स्थापना पर ही आधारित है। एक ऐसी आर्थिक संरचना का निर्माण करते हुए जिसके अन्तर्गत केवल मात्र साहसी की सर्वोच्चता सम्भव थी, स्मिथ ने यह दावा किया कि वह सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण को बढ़ा रहा है। यह कहने के हेतु पर्याप्त आधार है कि स्मिथ द्वारा प्रतिपादित आर्थिक स्वातंत्र्य के पूर्ण सिद्धान्त ने इंगलैंड की तरह दूसरे देशों में अधिक शीघ्रता से जड़ नहीं जमाई। जब स्मिथ ने आर्थिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर लिखा उस समय इंगलैंड विश्व का सर्वाधिक प्रगतिशील पूंजीवादी देश था। धन के विशाल एकत्रीकरण के साथ वह सम्पूर्ण विश्व के ऊपर औद्योगिक लीडरशिप प्राप्त करने की तैयारी में लगा हुआ था और वह अपने लिए उस स्थिति की स्थापना करने को तैयार था। परिणामतः स्मिथ द्वारा प्रतिपादित आर्थिक नीति इंगलैंड में काफी अंश तक अपनाई गई।

सामान्य एवं विशेष हितों की एकरूपता का एक सैद्धांतिक पद्धति के अन्तर्गत समावेश किया गया जिसके अन्तर्गत सार्वभौमिक अखण्डता का दावा किया गया तथा समाज और राज्य के एक विशेष दृष्टिकोण को अपनाया गया। विशेष दृष्टिकोण से यह कहा कहा गया कि व्यक्तियों और वर्गों के हितों में एकरूपता है और यह केवल सर्वाधिकार की प्राप्ति द्वारा भी समाप्त हो सकती है और यह सर्वाधिकार (Privilege) भी किसी सामाजिक संस्था द्वारा न होकर राजनैतिक हस्तक्षेप का परिणाम था। इस प्रकार राज्य को समाज से ऊपर और बाहर नियत किया गया। स्मिथ के अनुसार राज्य केवल मात्र एक तरह की मशीनरी थी जो कि सम्पूर्ण समुदाय के लिए आवश्यक हितो की प्राप्ति के हेतु थी। यह मशीनरी समुदाय के किसी एक वर्ग के हाथ में नहीं सौंपी जानी चाहिए, ऐसा एडम स्मिथ का अपना मत था। एडम [illegible] भी व्यक्तियों के लिए और विशेषकर व्यवसायी वर्ग के लिए [illegible] उत्पन्न करने की इच्छा के भ्रम में नहीं था, परन्तु वह

हितों की समरूपता में विश्वास करता था क्योंकि उसका विचार था कि इन सर्वाधिकारी स्थितियों को केवल राजकीय सहायता द्वारा ही स्थिर रक्खा जा सकता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अन्य उदार दार्शनिकों की तरह एडम स्मिथ आशावादी था। उसका मत था कि तात्कालिक समाज में जो बुराइयां विद्यमान हैं वे सब सरकार की विगत त्रुटियों के कारण हैं और यदि वर्तमान में उन त्रुटियों का निराकरण कर दिया जाए तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। स्मिथ का सम्पूर्ण कार्य राज्य को व्यक्तिगत या वर्गीय प्रभाव से मुक्त करने के दृढ़ विश्वास पर आधारित है।

(२) श्रम-विभाजन (Division of Labour)—वणिकवादी विचारकों ने बहुमूल्य धात्विक कोष को ही राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति स्वीकार किया और यह बताया कि जिन देशों के पास बहुमूल्य धातुओं की अपनी खानें नहीं हैं उन देशों को विदेशी व्यापार के द्वारा, अनुकूल व्यापार सन्तुलन की नीति (Policy of Fanourable Balance of Trade) अपनाकर बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करना चाहिए। इसके विपरीत निर्बाधवादी विचारकों ने कृषि-व्यवसाय को सर्वाधिक महत्व प्रदान करके उन विचारों को प्रस्तुत किया जिनके द्वारा कोई देश कृषि-उत्पादन को अधिकतम करके सम्पन्न बन सकता है। प्रसिद्ध निर्बाधवादी विचारक डा० क्विजने (Quesnay) का कथन था कि व्यक्तिगत अथवा राजकीय सभी प्रकार की सम्पत्तियों का एकमात्र स्रोत कृषि ही है (Agriculture is the source of all wealth, the States and The individual's)। एडम स्मिथ ने वणिकवादियों और निर्बाधवादियों द्वारा प्रस्तुत इन दोनों मतों का खण्डन करते हुए यह बताया कि श्रम ही सम्पत्ति का एकमात्र स्रोत है (Labour is The True Source of all wealth)। एडम स्मिथ के शब्दों में, "हरएक राष्ट्र का वार्षिक श्रम एक कोष है जो कि मौलिक रूप से उसे सभी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं की आपूर्ति करता है, जिनको वह वर्ष-पर्यन्त तक उपभोग करता है और जिसमें या तो सदैव उसी श्रम का तात्कालिक उत्पादन अथवा उस उत्पादन की सहायता से दूसरे राष्ट्रों से क्रय किया जाने वाला सामान सम्मिलित रहता है।"[1] इस तरह श्रम को सभी तरह की सम्पत्ति का स्रोत बताकर स्मिथ ने हमें एक नवीन वास्तविक सत्य बताया। कुछ विचारकों ने स्मिथ के इस कथन का भ्रमात्मक अर्थ लगाकर यह कहा है कि स्मिथ ने भूमि, पूंजी आदि को उत्पत्ति के साधन मानने से इन्कार कर दिया है, परन्तु वास्तविकता यह है कि स्मिथ अपने सिद्धांत को निर्बाधवादियों के सिद्धांत से पृथक रखने का इच्छुक था और उसके कथन का यह आशय कभी नहीं था कि उत्पत्ति के लिए भूमि और पूंजी

---

1 "Tre annual labour of every nation is the fund which originally supplies it with all the necessaries and conveniercces of life which it annually Consumes and which consist always either in the immedite produce of that labour or in what is purchased with that produce from other nations."

—Adam Smith.

जैसे साधनों की आवश्यकता नहीं है। उसने यह निश्चित तौर पर व्यक्त किया कि यह मानवीय श्रम ही है, प्राकृतिक शक्तियां नहीं, जो कि प्रतिवर्ष उपभोग की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन करता है। मानवीय श्रम के बिना प्राकृतिक शक्तियां व्यर्थ और फलहीन हैं।[1]

वणिकवादी विचारकों ने केवल व्यापारी वर्ग को और निर्बाधवादियों ने केवल कृषक वर्ग को उत्पादक बताया था। एडम स्मिथ ने वणिकवादियों एवं निर्बाधवादियों के इन मतों का खण्डन करके बताया कि विस्तृत रूप में कार्य, न कि प्रकृति, सम्पत्ति का जनक है और कार्य भी किसी वर्ग विशेष का नहीं वरन् सभी वर्गों का उत्पादन है और इस तरह सभी तरह का कार्य उत्पादक माना जाएगा। किसी राष्ट्र की वार्षिक आय सभी के सहयोग से उत्पन्न होती है। इस तरह अनुत्पादक एवं उत्पादक वर्गों के बीच भेद करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि केवल-निष्क्रिय व्यक्ति ही अनुत्पादक हैं। एक राष्ट्र, इस तरह, एक बड़ा कारखाना है जहां कि सभी तरह-तरह की प्रकृति का श्रम सभी की सम्पत्ति में योगदान करता है।[2]

एडम स्मिथ के मतानुसार श्रम-विभाजन सामाजिक अथवा सामूहिक सहयोग की प्रणाली है जिसके द्वारा उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है। (Dibrision of labour is eimplo the spontaneous realizatton of a porticular from of this social coperation.) । इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति वर्ग अन्य व्यक्तियों तथा वर्गों के साथ मिलकर कार्य करता है। पशु-समाज में तो हरएक पशु का बच्चा

1"Smith was anxious to emphasize the distinction between his doctrine and that of the Physiocrats. So he definitely affirms that it is human activity and not natural forces which produces the mass of commodities consumed every year. Without the formers directing energy the latter would for ever remain useless and fruitless."

—Gide & Rist. History of Economic Doctrines, P. 74.

2 "Work, employed in the widest sense, and not nature, is the parent of wealth—not the work of a single class like the agriculturists, but the work of all classes. Hence all work has a claim to be regarddd as productive· The nations annual income owes something to every one who toils. It is the result of their collaboration of their "Cooperation" as he calls it. There is no longer any need for the distinction between the sterile and the productive classes, for only the idle are sterile. A nation is just a vast workshop, where the labour of each, however diverse in character, adds to the wealth of all."

—Gide & Rist :Ibid, P. 74.

बड़ा होकर पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो जाता है और अपनी प्राकृतिक अवस्था में दूसरे जीव-जन्तुओं की सहायता पाने का कोई अवसर नहीं रखता।[1] श्रम-विभाजन राष्ट्रीय लाभांश के निभाणार्थ किये जाने वाले आर्थिक प्रयासों के साधारण एवं प्राकृतिक सहयोग को प्रभावित करता है। यद्यपि पशु अपनी निजी आवश्यकताओं की संतुष्टि स्वमेव प्रत्यक्ष रूप से कर लेता है, परन्तु मनुष्य समाज में पारस्परिक सहयोग द्वारा वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं तथा विनिमय द्वारा एक-दूसरे की आवश्यकता-पूर्ति में प्रयुक्त की जाती हैं। इस तरह श्रम-विभाजन एक दूसरे की इच्छाओं की संतुष्टि के हेतु सहयोग की स्थापना करके प्रगति और सम्पन्नता का वास्तविक स्रोत बन जाता है। श्रम-विभाजन की प्रक्रिया द्वारा कुल उत्पादन में वृद्धि होने की बात का स्पष्टीकरण करने के हेतु स्मिथ ने एक विशेष प्रकार के व्यवसाय में इसके प्रभाव का उदाहरण दिया है। "श्रम-विभाजन के समाज के साधारण व्यवसाय होने वाले प्रभावों को तब अच्छी तरह समझा जा सकता है जबकि किसी व्यवसाय विशेष में इसकी क्रियाशीलता के ढंग को समझ लिया जाए।"[2] श्रम-विभाजन द्वारा होने वाले लाभ को एडम स्मिथ ने पिन बनाने के व्यवसाय का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। इस उदाहरण के द्वारा स्मिथ ने यह बताया है कि वह व्यक्ति जो बिना श्रम-विभाजन की प्रणाली को अपनाए पिन बनाने का कार्य करता है, एक निश्चित समय में केवल एक ही पिन बनाएगा परन्तु श्रम-विभाजन की प्रणाली के अन्तर्गत वह उसी समय में काफी अधिक पिन बना सकता है।[3]

1"In almost every other race of animals each individual, when it is grown up to maturity, is entirely independent, and in its natural te has occasion for the assistance of no other living creature."
Adam Smith.

2"The effects of division of labour, in the general business of society, will be more easily understood by considering in what manner it operates in some particular manufactures."
—Adam Smith.

3"A workman not educated to this business (which the divtsion of labour has rendered a distinct trade), nor aequainted with the use of the machinery employed in it (to the invention of which the same division of labour has probably given occasion), could scarce, perhaps, with his utmost industry, make one pin in a day, and certainly could not make twenty. But in the way in which this business in now carried on, not only the whole work is a peculiar trade, but it is divided into a number of branches, of which the greater part are likewise peculiar trades, One man draws out the wire, another straight it, a third cuts it, a fourth points it, fifth grinds it at the top for receiving the head, to make the head requires two or three distinct operations, to put it on, is a peculiar business, to whitrne the

एडम स्मिथ ने श्रम-विभाजन के तीन लाभ बताए हैं—(i) श्रमिक की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, (ii) समय की बचत होती है, तथा (iii) आविष्कारों एवं सुधारों की संख्या में वृद्धि होती है। श्रम-विभाजन के लाभ बताने के साथ-साथ एडम स्मिथ ने उससे उत्पन्न होने वाली हानियों की ओर भी संकेत किया है। उनके मतानुसार इस प्रक्रिया में दो प्रकार की हानियों की सम्भावना की जा सकती है—(i) मानसिक नीरसता बढ़ती है, तथा (ii) श्रम की गतिशीलता में बाधा पड़ती है।[1] एडम स्मिथ ने श्रम-विभाजन की दो सीमाएं बताई हैं अर्थात् बाजार का विस्तार और प्राप्त पूंजी की मात्रा (Extnet of the market and the quantity of capital available)। स्मिथ के मतानुसार जब किसी वस्तु का बाजार बहुत छोटा होता है तो उस वस्तु का विनिमय क्षेत्र भी सकुचित होगा अर्थात् उस वस्तु की मांग कम होगी और उस वस्तु का उत्पादन भी सीमित मात्रा में किया जाएगा। इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुये एडम स्मिथ ने उपनिवेशों की खोज तथा विदेशी व्यापार पर पर्याप्त बल दिया है। इसके अतिरिक्त स्मिथ ने पूंजी की

---

pins is another, it is even a trade by itself to put them into the paper, and the important business of making a pin is, in this manner, divided into about eighteen distinct operations, which in some manufactureries, are all performed by distinct hands, though in others the same man will sometimes perform two or three of them. I have seen a small manufactory of this kind where ten men only were employed and where some of them consequently performed two or three distinct operations. But though they were very poor, and therefore but indifferently accommodated with the necessary machinery, they could, when they exerted themselves, make among them about twelve pounds of pins in a day."

—Adam Smith : Wealth of Nations, Vol I, P. 6-7

[1] "In the progress of division of labour, the employment of the for greater part of those who live by labour, that is, of the great body of the people, comes to be confined to a few very simple operations frequently to one or two. But the man whose whole life is spent in performing a few simple operations, of which the effects too are, perhaps, always the same, or every nearly the same, has no occasion to exert his understanding, or to exercise his invention in finding out expendients for removing difficulties when never occur. He naturally loses; therefore, the habit of such exertion, and generally becomes as stupid and ignorant as it is possible for a human creature to become."

—Adam Wealth of Nations, Vol. II, P. 267.

उपलब्ध मात्रा को श्रम-विभाजन की सीमा बताते हुए कहा है कि पूंजी की मात्रा कम होने से उत्पादन कम मात्रा में होगा जिससे श्रम-विभाजन भी कम सम्भव होगा। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कैनन (Cannou) ने स्मिथ के इस विचार का खण्डन करते हुये बताया है कि यह शर्त किसी व्यक्ति के साथ लागू हो सकती है कि यदि उसके पास अधिक पूंजी हो तो वह विशिष्ट श्रम-विभाजन का आकार बढ़ा सकेगा, परन्तु सम्पूर्ण समाज या उद्योग के सम्बन्ध के सम्बन्ध में स्मिथ का यह विचार अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में श्रम-विभाजन की प्रणाली के सहारे कम पूंजी के द्वारा भी अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सकता है।[1]

"एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित श्रम-विभाजन के सिद्धांत की रूप-रेखा इस प्रकार है—इस सिद्धांत से प्रतिदिन का परिचय रखते हुए भी प्रायः हम इसके महत्व को अनुभव करने में असमर्थ हो जाते हैं और इसकी मौलिकता की सराहना नहीं कर पाते।"[2] वैसे तो श्रम-विभाजन की विचारधारा एडम स्मिथ से पूर्व भी प्रचलित थी परन्तु वह अत्यन्त धुंधली और एकांगी थी। एडम स्मिथ ने इस विचारधारा को एक परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है जो इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखती है।

निर्बाधवादी विचारकों ने समस्त उत्पादन का श्रेय केवल कृषक वर्ग को दी प्रदान करते हुए कहा कि समाज के दूसरे वर्गों को भोजन प्रदान करने का दायित्व कृषक समुदाय के ही कन्धों पर है। इस तरह उन्होंने कृषक वर्ग को मौलिक महत्ता प्रदान करके सम्पूर्ण आर्थिक पद्धति को अनेक आधीन बना दिया। दूसरी ओर एडम स्मिथ ने सम्पूर्ण उत्पादन के सम्बन्ध में दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा कि यह
. के विभिन्न वर्गों के सामूहिक कार्य का परिणाम है और विभिन्न वर्गों का
विनिमय रूपी कड़ी के द्वारा परस्पर अबद्ध है। स्मिथ ने बताया कि समाज के
...क वर्ग की आर्थिक प्रगति दूसरे वर्गों पर निर्भर है, समाज का कोई अकेला वर्ग
नहीं है जिसके आधीन दूसरे वर्ग हों और इस तरह सभी वर्ग समान रूप से
...हैं। राष्ट्रीय आय की प्रगति समाज के किसी एक वर्ग के उत्पादन द्वारा
...ीं मापी जा सकती वरन् समाज के समस्त वर्गों द्वारा उत्पादित वस्तुओं द्वारा

1"It may be true of a private manufacturer that he will be able to push technical division of labour further than any of his rivals provided he has capital than they; but taking society as a whole it is clear that the existence of division of labour enables the same product to be produced with less capital than is necessary for the single producer."

Cannan.

2"Such as in outline of Adam Smith's theory of division of labour—a theory so familiar to every one today that we are often unable to realize its importance and to appreciate its originality."

—Gide & Rist; Ibid, P. 78.

ही मापी जा सकती है। इस तरह स्मिथ ने श्रम के प्रचलित अनुत्पादक एवं उत्पादक के भेद को समाप्त कर दिया। इसी आधार पर स्मिथ ने निर्बाधवादियों के इस इस निष्कर्ष का खण्डन किया कि कराधान का सम्पूर्ण भार समाज के केवल एक वर्ग को ही वहन करना चाहिये। स्मिथ ने बताया कि करारोपण का भार भूमि, पूंजी और श्रम सभी को समान रूप से वहन करना चाहिए। स्मिथ के शब्दों में, "राज्य के प्रत्येक सदस्य[1] को सरकार की सहायता के हेतु यथासम्भव अपनी क्रमशः सामर्थ्य के अनुसार अर्थात् उस आय के अनुपात से जो कि वे सरकार की सुरक्षा में प्राप्त करते हैं, धन देना चाहिये।"

विचित्र बात यह है कि स्मिथ अपने श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का सर्वोत्तम उपयोग करने में विफल रहे। उनके द्वारा प्रतिपादित अकेला श्रम-विभाजन का सिद्धान्त सम्पूर्ण निर्बाधवादी पद्धति का खण्डन करने के हुए पर्याप्त था, जबकि स्मिथ ने निर्बाधवादी पद्धति का खण्डन करने के हेतु दूसरे तर्कों का भी सहारा लिया है। अपने श्रम-विभाजन के सिद्धान्त को भुलाकर, वह निर्बाधवादियों द्वारा रचित प्रबन्ध के एक भाग को अपनाता है और स्वयं को उनके द्वारा किए गये उत्पादक एवं अनुत्पादक श्रमिकों के भेद के जाल में फंसा हुआ पाता है। अनुत्पादक श्रम की परिभाषा देते हुए स्मिथ कहता है कि, "वह सब कार्य जोकि उसकी पूर्णता के दौरान में ही विनष्ट हो जाता है और कदाचित ही अपने पीछे कोई खोज या मूल्य छोड़ता है जिसके लिए सेवा की समान मात्रा का बाद में उत्पादन किया जा सके।" इस तरह घरेलू नौकरों, सिपाहियों, मजिस्ट्रेट्स, एडमिनिस्ट्रेटर्स, कलाकारों और चिकित्सकों की सेवाओं को "अभौतिक उत्पादन" (Inmaterial Products) के वर्ग में रखता है और इस तरह उत्पादक श्रम की प्रकृति के बीच एक अनुपयोगी विरोधाभास उत्पन्न कर दिया है। वस्तुतः इन सब वर्गों की सेवायें भी राष्ट्र की वार्षिक आय में योगदान करती हैं और सामान्य दृष्टिकोण से उत्पादन केवल उसी दशा में कम होगा जबकि ये व्यक्ति अपनी सेवाओं को पूर्ण रूप से नहीं निभाते।

निर्बाधवादियों द्वारा प्रतिपादित उत्पादक एवं मजदूरी—कमाने वाले वर्गों के बीच भेद की आलोचना करने के पश्चात् स्मिथ ने यह स्वीकार किया है कि शिल्पकारों और व्यापारियों का श्रम कृषकों और कृषि-श्रमिकों के श्रम के समान उत्पादक नहीं है क्योंकि कृषक और कृषि-श्रमिक न केवल अपने ऊपर लगी हुई पूंजी को लाभ सहित लौटाते हैं वरन् वे लगान भी उत्पन्न करते हैं। स्मिथ के ही शब्दों में, "कृषक और ग्रामीण-श्रमिक निःसन्देह, उनको काम में लाने और जीवित रखने वाली पूंजी से अधिक, प्रतिवर्ष एक विशुद्ध-उत्पत्ति पैदा करते हैं तथा भूस्वामियों के

1 Smith describes as unproductive all work which "perish in the very instant of their performance, and seldom leave any trace or value behind them for which an equal quantity of service could afterwords be pr[illegible]"

Smith : wealth of Nations : vol I P. 314.

लिए स्वतन्त्र लगान उत्पन्न करते हैं। जिस तरह एक तीन बच्चों वाला विवाह दूसरे दो बच्चों वाले विवाह से अधिक उत्पादक सिद्ध होता है उसी तरह कृषक और ग्रामीण-श्रमिकों का श्रम निःसन्देह व्यापारियों, शिल्पकारों तथा निर्माणकर्त्ताओं के श्रम से अधिक उत्पादक होता है। परन्तु एक वर्ग का श्रेष्ठ उत्पादन किसी भी तरह दूसरे वर्ग को अपुत्पादक नहीं बना देता है।"[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि एडम स्मिथ का श्रम-विभाजनका सिद्धान्त निर्वाधवादी विचारधारा के प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है। वस्तुतः निर्वाधवादियों ने स्मिथ के ऊपर इतना गहन प्रभाव छोड़ा कि उसके द्वारा प्रतिपादित विरोधी सिद्धान्तों में भी निर्वाधवादियों के प्रति एक सम्मान की झलक दिखाई देती है। निर्वाधवादियों का सर्वाधिक प्रभाव स्मिथ द्वारा उनकी इस थीसिस के खण्डन के प्रयास पर दिखाई देता है कि कृषि और अन्य उद्योगों के बीच एक मौलिक अन्तर अन्तर यह है कि वाणिज्य और उद्योग में तो प्रकृति कोई भाग अदा नहीं करती परन्तु कृषि-व्यवसाय में प्रकृति सदैव मनुष्य के साथ सहयोग करती है। स्मिथ के शब्दों, "निर्माण कार्य में लगा हुआ उत्पादक श्रम का कोई भी समान परिणाम इतना अधिक पुनर्उत्पादन कभी नही प्रेरित कर सकता। इनके अन्तर्गत प्रकृति कुछ भी नहीं करती, मनुष्य ही सब कुछ करता है, और पुर्नोत्पादन सदैव ही इसको प्रेरित करने वाले अभिकरणों को शक्ति के अनुपात में होना चाहिए।"[2] प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने एडम स्मिथ के इस विचार की आलोचना करते हुए लिखा है कि "हम बहुदा यह विचारते हैं कि हम स्वपन देख रहे हैं जबकि हम एक बड़े अर्थशास्त्री के कार्य में ऐसी बातें पढ़ते हैं। क्या जल, वायु, विद्युत और वाष्प प्राकृतिक शक्तियां नहीं हैं और क्या वे उत्पादन-कार्य में मनुष्य के साथ ोग नहीं करती हैं ?"[3]

1 "Farmers and country labourers, indeed over and above the ck which mantains and employs them, reproduce annually a nes duce, a free rent to the landlord. As a marriage which affordı ly two, so the labour of farmer and country labourers in certainly ıore productive than that of merchants, artificers and manufactt rers. The superior produce of the one class, however, does no ender the other unproductive."

—Adam Smith : Wealth of Nations, vol. II, P. 173.

2 "No equal quantity of productive labour employed in manufactures can ever occasion so great a reproduction. In them nature does nothing, man does all, and the reproduction must always be in proportion to the strength of the agents that occasion it."

—Adam Smith, Ibid, vol I, P. 344.

3 "We almost think we are dreaming when we read such things in the work of a great economist. Water, wind, electricity, and steam are they not natural forces, and do they not cooperate with man in his task of production ?"

—Prof. Gide & Rist. A History of Economic Doctrines, P. 81.

(१) प्रकृतिवाद और आशावाद (Naturalism & Optimism)—प्रो० गीड और रिस्ट के मतानुसार, "श्रम-विभाजन पर आधारित बड़े प्राकृतिक समुदाय के रूप में आर्थिक विश्व की धारणा के अतिरिक्त, हम स्मिथ के कार्य का दो अन्य मौलिक विचारों में विभेद कर सकते हैं जिनके चारों ओर उसके अधिकतर सिद्धान्त एकत्रित हैं। प्रथम विचार है—आर्थिक संस्थाओं के स्वाभाविक उद्गम का और दूसरा विचार है—उनकी लाभदायक प्रकृति का अर्थात् संक्षिप्त रूप में स्मिथ का प्रकृतिवाद और आशावाद।"[1] स्मिथ के दृष्टिकोण से स्वाभाविकता (Spontaneity) और लाभदायकता (Beneficence) के विचार घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। अठारहवीं शताब्दी में कोई भी वस्तु जो कि प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक होती थी तत्काल अच्छी अथवा लाभदायक समझी जाती थी और इस तरह 'प्राकृतिक' (Natural), 'उचित' (Just) और 'लाभदायक' (Aduantageous) शब्द पर्यायवाची के रूप में इस्तेमाल किये जाते थे। स्मिथ भी विचारों की इस [illegible] मुक्त नहीं हो सके। आर्थिक संस्थाओं का स्वाभाविक उद्गम दर्शा[illegible] कल्पना की और साथ ही साथ उसने उनके लाभदायक एवं उपयोगी [illegible] प्रमाणित कर दिया है। वस्तुतः सामाजिक संस्थाओं के उद्गम का [illegible] प्रस्तुत करना तथा सामान्य हित की दृष्टि से उनके मूल्य की बात [illegible] योग्य बातें हैं, परन्तु इनके सम्बन्ध में विद्वानों की राय एक नहीं है। [illegible] इस बात को तो स्वीकार कर सकते हैं कि हमारे आर्थिक [illegible] कार्यान्वयन दोनों मामलों में प्राकृतिक अवयवों जैसे [illegible] करते हैं, परन्तु हम उसी समय उनकी लाभदायकता के [illegible] सकते" जबकि आर्थिक संस्थाओं की स्वाभाविकता की [illegible] फलदायक दिखाई देती है, परन्तु उनकी लाभदायकता [illegible] प्रमाण भ्रमात्मक एवं अपर्याप्त दिखाई देता है। [illegible]

अर्थशास्त्रियों ने अस्वीकार कर दिया है।[1] निम्नोक्त में हम इन दो विचारों का, जिन्होंने आर्थिक सिद्धान्तों के इतिहास में इतना महत्वपूर्ण भाग अदा किया है, पृथक्-पृथक् निरीक्षण करेंगे।

(अ) प्रकृतिवाद:—एडम स्मिथ का कथन है कि आर्थिक संस्थाओं का उद्गम एवं विकास अपने स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक रूप में हुआ है तथा इनके निर्माण के हेतु किसी प्रकार की वाह्य योजना, सहायता, शक्ति एवं नियमों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी है। यहां पर एडम स्मिथ निर्बाधवादियों से अधिक सहमत दिखाई देता है। उसका मत है कि आर्थिक जगत का वर्तमान स्वरूप लाखों व्यक्तियों के स्वाभाविक कार्यों का परिणाम है, जिनमें से प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को कोई हानि पहुंचाए बिना तथा परिणाम का सन्देह किये बिना अपनी निजी इच्छा का अनुसरण करता है। आर्थिक जगत की रूप रेखाएं, जैसा कि हम इसे जानते हैं, किसी सँगठनकर्ता के मस्तिक से उत्पन्न योजना की खोज नहीं है और न ही इसका निर्माण किसी विद्वान-समाज द्वारा किया गया है वरन् व्यक्तियों के एक वृहत्त् समूह द्वारा, एक अचेतन प्रवृत्ति की आज्ञा पालन के रूप में, किये गये असंख्य कार्यों के एकत्रीकरण का परिणाम है। स्मिथ का कथन है कि मनुष्य के अन्दर स्वार्थ की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है जिससे शासित होकर वह अपने विभिन्न आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करता है। परन्तु जब समाज के समस्त सदस्यों की इस प्राकृतिक प्रवृति का मेल हो जाता है तो आर्थिक संस्थाओं का उद्गम एवं विकास होता है।

आर्थिक जगत की स्वाभाविक संरचना का विचार एक तरह से विगत काल ...र्थिक-नियम (Ecouomic Law) सम्बन्धी धारणा के समान है। ये दोनों ही ...था... व्यक्तियों को बच्छाओं से ऊपर एक श्रेष्ठ इच्छा की उपस्थिति का निष्कर्ष ... हैं। परन्तु इन दोनों धारणाओं के बीच का अन्तर भी महत्वपूर्ण है क्योंकि ...री धारणा की तुलना में प्रथम धारणा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। स्मिथ ने ...क जगत को जीवित अवयव समझा जो कि स्वयं अपने लिये अपने निजी अपृथकनीय अवयवों को उत्पन्न करता है। यद्यपि स्मिथ ने अपने ग्रन्थ में "आर्थिक नियम" शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया, परन्तु विभिन्न आर्थिक संस्थाओं के कार्यों के सम्बन्ध में उसके द्वारा किया गया विश्लेषण सदैव समान निष्कर्ष

---

1 "We may agree with Smith that our economic orgainizations, both in their origin and functions, participate of the spontaneity of naturai organism, but we may at the same time reserve judgement as to their real worth ..while this conception of the spontanecty of economic intitutions seems to us just and fuitful, the demonstration given of their beneficent charact er appears insufficient and doubtful. The former conception is a common place with all the greatest economists, the latter is rejected by the majority of them."

Gide & Rist : Ibid, P. 86.

निकालता है। आर्थिक संस्थाओं के प्राकृतिक उद्गम एवं विकास के विचार की व्याख्या स्मिथ की पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" मे विस्तृत रूप से की गई है जिसमे वर्णित कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नोक्त हैं:—

(१) श्रम विभाजन (Diursion of labour).—स्मिथ के मतानुसार सम्पूर्ण उत्पादन क्रियाओं मे व्याप्त श्रम-विभाजन किसी भी तरह की पूर्व योजना का परिणाम न होकर मनुष्य समाज की निजी-स्वार्थ की प्राकृतिक प्रवृत्ति की देन है। समाज मे हर एक व्यक्ति निजी स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर आर्थिक कार्य करता है। परन्तु जब मनुष्य यह देखता है कि वह अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु अकेला ही विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन नही कर सकता तो यह केवल कुछ विशिष्ट वस्तुओं का उत्पादन करने लगता है इनमे से कुछ वस्तुओं का स्वय उपभोग करके शेष वस्तुओं को दूसरे व्यक्तियों को इस आशा से देता है कि इन वस्तुओं के बदले मे उसे दूसरे व्यक्तियो से अपने स्वार्थ की दूसरी वस्तुए प्राप्त हो जायेंगी। इस तरह स्वाभाविक रूप से मानव समाज को आर्थिक दृष्टि से प्रगति होने पर विनिमय (Exchange) का जन्म हुआ। विनिमय का सूत्रपात होने पर बाजारो का विस्तार हुआ और स्वाभाविक रूप के श्रम-विभाजन का विकास हुआ। इस तरह स्मिथ के मयानुसार श्रम-विभाजन का उद्गम किसी भी तरह की योजना के परिणामस्वरूप न होकर मनुष्य समाज की स्वार्थमयी प्रवृति के कारण स्वाभाविक रूप से हुआ। श्रम-विभाजन की संस्था सब व्यक्तिययो की वस्तु-निनिमय की सामान्य प्रवृत्ति का परिणाम और यह प्रवृत्ति भी स्वमेव व्यक्तिगत हित के प्रभाव मे प्राकृतिक रूप से विकसित हुई है।

(ii) मुद्रा (Money)—स्मिथ के मतानुसार श्रम-विभाजन की तरह 'मुद्रा' नामक आर्थिक सस्था का उद्गम एवं विकास भी स्वाभाविक रूप से हुआ है और यह किसी सामूहिक योजना या सरकार द्वारा संचालित किसी आयोजन का परिणाम नही है। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि मनुष्य की स्वार्थमयी प्रवृत्ति के फलस्वरूप वस्तु-विनिमय पद्धति का जन्म हुआ था, परन्तु जब मनुष्यो को वस्तु-विनिमय पद्धति की कठिनाइयो (सर्वमान्य मापक का अभाव, वस्तु-विभाजन में कठिनाई, धन-सचय मे कठिनाइ आदि) का अनुभव होने लगा तो कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों ने अपनी अदल-बदल की कठिनाइयो को दूर करने के हेतु यह विचारा कि अपनी उत्पादित वस्तु के अतिरिक्त किसी ऐसी वस्तु को भी रखना चाहिए जिसे दूसरे व्यक्ति अपनी वस्तु के बदले में लेने को तैयार हो जायें। इस तरह द्रव्य का जन्म हुआ जोकि

the effect of any human
ıeral opulence to which
very slow and gradual,
an nature which has in
to truck, barter, and

Wealth of Nations : vol I, P. 15.

समाज के सदस्यों के निजि स्वार्थ के हेतु उनकी सामूहिक इच्छा का परिणाम है। इस क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप तो बहुत बाद में हुआ है जिसका उद्देश्य चलन में प्रचलित सिक्कों के भार और शुद्धता की गारन्टी करना है।

(iii) पूंजी (Capital) स्मिथ के अनुसार "पूंजी" नामक आर्थिक संस्था का जन्म और विकास भी स्वाभाविक रूप से हुआ है। अपनी आर्थिक दशा सुधारने के हेतु ही व्यक्तियों ने धन का संचय (Saving) करना प्रारम्भ किया होगा जिसमें कि उनका व्यक्तिगत स्वार्थ निहित है। इस संचित धन को उत्पादक कार्यों में लगाने से पूंजी का जन्म प्राकृतिक रूप से हुआ।[1]

(iv) मांग और पूर्ति (Demand and Supply)—स्मिथ के मतानुसार बाजार में किसी वस्तु की मांग और पूर्ति का सन्तुलन भी स्वेच्छानुरूप एवं प्राकृतिक है और इसमें भी मानव-समाज के निजी हित का सिद्धान्त ही क्रियाशील होता है। जब बाजार में किसी वस्तु की पूर्ति मांग से अधिक हो जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि उस वस्तु की कीमत गिरने लगती है जिससे उत्पादकों की निजी-हित की प्रवृत्ति को ठेस पहुंचती है। इस स्थिति में उत्पादक वर्ग स्वाभाविक रूप से उस वस्तु के उत्पादन को कम कर देगा जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप या तो उस वस्तु की पूर्ति मांग के बराबर हो जायेगी या मांग से भी कम हो जायेगी जिसके परिणाम-स्वरूप वस्तु की कीमत बढ़ने लगेगी जिससे कि उत्पादक वर्ग के निजी-हित की रक्षा होने लगेगी। फलतः उत्पादक वर्ग अधिकतम लाभ प्राप्त करने की प्रेरणा से उस

---

1 "The principle which prompts to save, is the desire of bettering our condition, a desire which, though generally calm and dispassio- omes with us till we go into the grave.......An augmentation is the means by which the greater part of men propose better their condition. It is the means the most vulgar ost obvious, and the most likely way of augmenting their , is to save and accumulate some part of what they acquire. niform, constant, and uninterrupted effort of every man to his condition, the principle from which public and national as private opulence is originally derived, is frequently power- gh to maintain the natural progress of things toward impro- inspite both of the extravagance of government and of the errors of administration. Like the unknown principle of life, it frequently restors health and vigour to the constitu- n spite, not only of disease, but of the absurd prescriptions of octor."

—Adam Smith : Wealth of Nations, vol. I, P. 323.

"Some men who were keener than others saw the in conven- ces of the truck system. And in order to avoid the inconveniency of truck system. And in arder to avoid the inconveniency of such situations.

वस्तु का उत्पादन बढ़ा देगा जिसके फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति माँग के बराबर हो जाएगी और मूल्य गिरने लगेगा। स्मिथ के मतानुसार उत्पादक वर्ग के निजी स्वार्थ के कारण माँग और पूर्ति में परिवर्तन होता रहता है और इन दोनों शक्तियों में साम्य स्थापित होता रहता है।

(v) जनसंख्या (Population)—स्मिथ के मतानुसार किसी देश की जनसंख्या को किसी निश्चित योजना द्वारा नियमित एवं नियोजित नहीं किया जा सकता वरन् इसका नियंत्रण एवं नियोजन स्वाभाविक तौर से हुआ करता है। उनका कथन है कि यदि किसी देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों की तुलना में वहाँ की जनसंख्या अधिक है तो इसके परिणाम-स्वरूप मजदूरी का स्तर गिर जाएगा जिसके कारण श्रमिक वर्ग के निजी स्वार्थ को ठेस लगेगी और उन्हें अनेकों प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। इस दशा में भुखमरी, निर्धनता, अकालमृत्यु, महामारी, युद्ध आदि सम्पन्न होंगे तथा मृत्यु-दर, जन्म-दर से काफी ऊँची हो जायेगी और परिणामतः कुछ ही दिनों बाद इस देश की जनसंख्या माँग के बराबर (अर्थात् प्राकृतिक साधनों के अनुरूप) हो जाएगी। इसके विपरीत यदि किसी देश के प्राकृतिक साधनों की तुलना में वहाँ की जनसंख्या कम है तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि मजदूरी का स्तर ऊँचा हो जाएगा जिससे श्रमिकों के निजी-हित की रक्षा होगी, उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जायेगा तथा मृत्यु-दर काफी कम हो जायेगी। इस तरह कुछ समयोपरान्त जनसंख्या की पूर्ति इसकी माँग के बराबर हो जायेगी। इस तरह एडम स्मिथ ने बताया कि किसी देश की जनसंख्या में कमी-वृद्धि भी स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक रूप से होती है और इसके लिये किसी बाह्य शक्ति, नियंत्रण अथवा नियोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।[1]

---

[1] "The number of people depends upon the demand of society and this is how it works. Among the proletariat, generally speaking children are plentiful enough It is only when wages are very low that poverty and misery cause the death of many of them manage to to reach maturity.
rily does this as near
mand for labour req
the reward of labour must necessarily encourage in such a manner

requisite for this purpose, the deficiency of hands would soon raise it, and if it should at any time be more, their excessive multipication *would soon lower it to this necessary rate. The* market would be so
and so much over-
ack its price to the
ciety required. It it in this manner that the demand for men, like that for any othes commodity, nessarily regulate the production of men, quickeus it when it goes on too slowly, and stops it when it advances toot fast."

—Adam Smith : Wealth of Nations, Vol. I, P. 81–82

(vi) मुद्रा की मांग और पूर्ति (Demand and Supply of Money)—स्मिथ का कथन है कि मुद्रा की मांग और पूर्ति का साम्य भी मानव-समाज की निजी-हित की प्रेरणा पर स्वयं प्राकृतिक रूप से स्थापित हो जाता है। यदि किसी देश के चलन में मुद्रा की पूर्ति उसकी मांग से अधिक है तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि या तो अतिरिक्त द्रव्य का संचय करने लगेंगे या विदेशों से अधिक मात्रा में वस्तुओं का आयात करने लगेंगे या इसका विनियोग विदेशी उद्योगों में करने लगेंगे और इस प्रकार कुछ समय के बाद इस देश के चलन में मुद्रा की पूर्ति मांग के बराबर हो जायेगी। इसके विपरीत यदि किसी देश के चलन में मुद्रा की पूर्ति इसकी मांग की तुलना में कम है तो इस देश के व्यक्ति अपने संचय को समाप्त कर देंगे या संचित द्रव्य का उपयोग करने लगेंगे, विदेशी आयात की मात्रा कम कर देंगे तथा विदेशी उद्योगों में विनियोजित धन को वापिस मांगने लगेंगे तथा इन सब क्रियाओं के स्वाभाविक परिणामस्वरूप इस देश में द्रव्य की पूर्ति मांग के बराबर हो जायेगी।

(व) आशावाद (Optimism) :—एडम स्मिथ का कथन है कि स्वाभाविक रूप से उत्पन्न एवं विकसित होने वाली आर्थिक संस्थाएं मानव समाज के हेतु लाभदायक एवं कल्याणकारी होती हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक संस्थाओं का अन्तिम ध्येय मानव समाज का कल्याण करना है। अतएव जिस देश में आर्थिक संस्थाओं में जितनी अधिकता होगी वह देश उतना ही अधिक सुखी, सम्पन्न एवं वैभवशाली होगा। स्मिथ के शब्दों में, 'श्रम का विभाजन, मुद्रा का आविष्कार तथा पूंजी का एकत्रीकरण आदि कितने ही प्राकृतिक-सामाजिक तथ्य हैं जो कि धन की वृद्धि करते हैं। मांग और पूर्ति का साम्य, चलन संबंधी माध्यम की आवश्यकता के मुद्रा का वितरण, जनसंख्या की इसकी मांग के अनुरूप वृद्धि आदि अनेक घटक हैं जोकि आर्थिक समाज के कुशल कार्यान्वियन की गारंटी करते बात एडम स्मिथ द्वारा बताए गए विभिन्न आर्थिक संस्थाओं के लाभों से होती है। उसने बताया कि "श्रम विभाजन" के द्वारा श्रमिकों की कार्य-ा में वृद्धि होती है, समय की बचत होती है तथा आविष्कारों एवं सुधारों को मलता है। इसी प्रकार "मुद्रा" के द्वारा अदल-बदल की प्रणाली में उत्पन्न कठिनाइयां समाप्त हो गई हैं, बाजारों का क्षेत्र स्थानीय से राष्ट्रीय और

1"Division of labour, the invention of money and the accumu- of capital are so many natural social facts that also increase th. The adoption of demand and supply, the distribution of oney according to the need for a circulating medium, the growth of population according to the demand for it, are so many spontaneous phenomena which ensure the efficient working of economic society."

—Adam Smith.

अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है तथा मानव-समाज का जीवन-स्तर ऊंचा हो सका है। "माग और पूर्ति" के सन्तुलन द्वारा तय होने वाली कीमत उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों से दृष्टिकोण से न्यायप्रद एवं उचित होती है। इसी तरह किसी देश की जनसंख्या में प्राकृतिक साधनों के अनुरूप कमी-वृद्धि होना भी लाभदायक होता है। यदि किसी देश की जनसंख्या प्राकृतिक साधनों के अनुरूप नहीं घटती-बढ़ती है तो इसका परिणाम बहुत हानिकारक होगा इसी तरह "पूंजी" और द्रव्य की मांग-पूर्ति" आदि अन्य आर्थिक संस्थाएं, जिनका जन्म एवं विकास प्राकृतिक रूप से हुआ है, समाज के लिए लाभदायक हैं।

एडम स्मिथ का स्वार्थ-परमार्थ विद्वानों के सम्मुख कटु आलोचना का विषय रहा है। मनुष्य सदैव निजी स्वार्थ की भावना से ही कार्य नहीं करता वरन् वह सहयोग, सहानुभूति, प्रेम, दया, भ्रातृत्व, देश-प्रेम आदि अनेक ऐसी भावनाओं से प्रेरित होकर भी कार्य करता है जिनमें उसका कोई स्वार्थ निहित नहीं होता। यद्यपि आलोचकों के इस तर्क में कुछ सार अवश्य है तथापि यह स्मरणीय है कि एडम स्मिथ का सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति से न होकर मानव-समुदाय से था जिसके अन्दर अधिकांश आर्थिक क्रियाएं मनुष्यों की स्वार्थ-प्रवृत्ति के कारणवश ही सम्पन्न होती हैं। कुछ दूसरे विद्वानों ने स्मिथ के इस विचार का खण्डन किया है कि सभी आर्थिक-संस्थाओं का उद्गम स्वाभाविक रूप से होता है। इन विचारकों का कथन है कि वर्तमान नियोजन के काल में अनेक आर्थिक संस्थाओं की स्थापना पूर्व निश्चित योजनाओं के आधार पर की जाती है। इसी प्रकार कुछ आलोचकों ने स्मिथ के इस विचार का खण्डन किया है कि सभी आर्थिक संस्थाएं मानव-समाज के लिए हितकर होती हैं। उदाहरणार्थ "श्रम-विभाजन" नामक आर्थिक संस्था को ही लीजिए : यह सत्य है कि इससे श्रमिकों की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है, समय की बचत होती है, उत्पादन मे वृद्धि होती है तथा आविष्कारों एवं सुधारों को प्रोत्साहन मिलता है, परन्तु यह भी सत्य है कि इस संस्था ने मजदूरों के शोषण और समाज मे धन के असमान वितरण को बढ़ावा दिया है जोकि मानव समाज के लिए एक तरह का अभिशाप है। प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने स्मिथ की इसी आधार पर आलोचना करते हुए लिखा है कि, "आर्थिक संस्थाओं के स्वाभाविक उद्गम एवं विकास का विचार तो हमें उचित एवं फलदायक दिखाई देता है परन्तु इन संस्थाओं की लाभदायक प्रकृति के संबंध में दिया गया प्रमाण अपर्याप्त एवं भ्रमात्मक दिखाई देता है।" इसी तरह एक अन्य स्थल पर प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने यह लिखा है कि, "एडम स्मिथ द्वारा यह प्रदर्शित करना कि पूंजी का विनियोग सामान्य हित को प्रमाणित करता है, यह स्पष्ट करना है कि समस्त उत्पादन इस तरह संगठित किया जाता है जोकि राष्ट्र की समृद्धि के अनुकूल होता है।"

(४) स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (Free International Trade)—वणिकवादी विचारकों ने सर्वाधिक उत्पादक व्यवसाय बताया गया —

व्यापार–सन्तुलन को अपने देश के पक्ष में रखने के उद्देश्य से संरक्षण की नीति व वकालात की। इसके विपरीत निर्बाधवादी विचारकों ने वणिकवादियों की इ नीति की अवहेलना करते हुए स्वतन्त्र विदेशी व्यापार की नीति का समर्थन किया विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में एडम स्मिथ का दृष्टिकोण निर्बाधवादियों के दृष्टिको से अधिक श्रेष्ठ रहा। निर्बाधवादी स्वातंत्र्यवाद उनके द्वारा कृषि व्यवसाय को दि गये महत्व का परिणाम था और उन्होंने विदेशी व्यापार को गौण (Secondary महत्व प्रदान किया, जबकि दूसरी ओर एडम स्मिथ ने विदेशी व्यापार को लाभ दायक घोषित किया, बशर्ते कि इसका प्रारम्भ ठीक समय पर हुआ हो और इसक विकास स्वाभाविक रूप से हुआ हो।[1] इस प्रकार स्मिथ का आर्थिक स्वतन्त्रतावा का सिद्धान्त (Doctrine of Economic Libevalism) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में सर्वाधिक मुखर हुआ है। इस प्रकार यद्यपि स्मिथ ने निर्बाधवादियों के सन्तुलित-व्यापार के सिद्धान्त को और भी स्पष्ट एव सन्तोषप्रद रूप में प्रस्तुत किय है, तथापि स्मिथ हमको एक सन्तोषप्रद सिद्धन्त प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त के ठोस वैज्ञानिक आधार की खोज करने का कार्य रिकार्डो और उसके अनुयाइयों और विशेषकर जे० एम० मिल के लिए सुरक्षित रह गया था। स्कॉट के अर्थशास्त्रियों का विदेशी व्यापार सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत कुछ पंगु है। फिर भी स्वतन्त्र विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में दिए गए उसके कुछ तर्क महत्वपूर्ण हैं।[2] स्वतन्त्र विदेशी व्यापार के पक्ष में स्मिथ द्वारा प्रस्तुत मुख्य तर्क निम्नोक्त हैं—

---

1 "Each of those different branches of trade, however, is not only advantageous, but necessary and unavoidable when the course things, with out any constraint or violence, naturally introduces it."

—Adam Smith : Wealth of Nations, vol, I, P. 352.

2 "Is the struggle for Free Trade, as on other points, Smith was forestalled by the Physiocrats. But again has he shown him self superior in the breadth of his out look. Physiocratic Liberalism was the result of their interest in agriculture, foreign trade being of quite secondary importance. Smith, on the other hand, considered oreign trade in itself advantageous. provided it began at the right oment and developed spontaneously. Although his point of view for superior to that of the Physiocrats, even Smith failed to give us a satisfactory theory. It was reserued for Ricardo and his successors, purticularly John Stuart Mill, to find a solid scientific basis for the theory of international trade. The doctrine of the Scots economist is some what lame. But the hesitancy of a greate writer is often interesting, and some of his arguments deserve to be recalled."

—Prof. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, P. 114.

(क) विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में संरक्षण की नीति अपनाने पर राष्ट्रीय उद्योगों को कोई यथार्थ लाभ नहीं होता। स्मिथ ने बताया कि "उद्योग पूँजी से परिमित होता है।" "समाज का सामान्य उद्योग उससे आगे नहीं जा सकता है जितनी कि समाज द्वारा पूँजी लगाई जाती है, परन्तु क्या संरक्षण पूँजी की मात्रा में कोई वृद्धि करता है? नहीं, क्योंकि यह तो केवल पूँजी को एक उद्योग से हटाकर दूसरे उद्योग पर ले जा सकता है। परन्तु किसी देश के उद्योग के लिए व्यक्तियों द्वारा अपनी पूँजी को स्वाभाविक रूप में एक उद्योग से हटाकर दूसरे उद्योग को ले जाना लाभदायक हो सकता है......परिणामतः संरक्षण केवल व्यर्थ ही नहीं वरन् हानिकारक भी है।"[1] स्मिथ ने बताया कि किसी उद्योग-विशेष को सरकारी संरक्षण मिल जाने पर इस उद्योग के स्वामियों को एक बड़े परिणाम में लाभ प्राप्त होने लगता है जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि दूसरे उद्योगों से भी पूँजी निकाल कर इसी उद्योग-विशेष में लगाई जाने लगती है और इस तरह देश के विभिन्न उद्योगों का असन्तुलित विकास होने से पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। अतएव इस हानि का निवारण करने की दृष्टि से स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थन किया।

(ख) स्वतन्त्र व्यापार की नीति के अन्तर्गत क्षेत्रीय श्रम-विभाजन (Teriltorial Division of Labour) के लाभ प्राप्त हो जाते हैं जो कि संरक्षित व्यापार की नीति के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं होते। स्मिथ ने बताया कि यदि किसी देश में दूसरे किसी देश की अपेक्षा किसी वस्तु की उत्पादन-लागत अधिक आती है तो उस देश को उस वस्तु का स्वयं उत्पादन न करके उस देश से आयात कर लेना चाहिये जिसमें कि वह वस्तु अनुकूल प्राकृतिक दशाओं के कारण कम लागत-व्यय पर उत्पन्न हो जाती है। स्मिथ के मतानुसार विभिन्न देशों के बीच उत्पादों का एक प्राकृतिक विभाजन विद्यमान है जो कि इन सब देशों के लिए लाभदायक है जो कि संरक्षण की नीति के द्वारा समाप्त हो जाता है। अतएव क्षेत्रीय-श्रम-विभाजन के लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से स्मिथ ने स्वतन्त्र विदेशी व्यापार की नीति का समर्थन

---

[1] "Industry is limited by capital." The general industry of the society can never exceed what the capital of the society can employ. But protection, perhaps, increases the quantity of capital? No, for it can only diveit a part of it into a direction spontaneously into what it might not otherwise have gone. But the direction spontaneously given to their capital by individuals is the most favourable to a country's industry....... Protection, consequently, is not merely useless, lt may even prove injurious.

—Adam 'th : Wealth of Nations, Vol. I, P. 419.

किया ।[1]

(ग) स्वतन्त्र व्यापार की नीति के पक्ष में स्मिथ ने तीसरा तर्क यह प्रस्तुत किया कि इससे उपभोक्ताओं को बचत होती है (जैसा कि मिल ने भी कहा है कि विदेशी वाणिज्य का प्रत्यक्ष लाभ आयातों में निहित है)। स्वतन्त्र व्यापार की नीति के अन्तर्गत वांछित वस्तुओं का आवश्यक मात्रा में आयात किया जा सकता है और ये उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर प्राप्त है हो सकती है। स्मिथ के शब्दों में, "समस्त उत्पादन का एकमात्र ध्येय और आशय उपभोग है। परन्तु वणिकवादी पद्धति के अन्तर्गत उपभोक्ता का हित उत्पादक के हित पर बलिदान कर दिया जाता है।"[2] स्वतन्त्र व्यापार की नीति के अन्तर्गत विदेशी व्यापार का विकास होता है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ताओं को अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु अनेक प्रकार की वस्तुयें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हो जाती हैं। इसके विपरीत संरक्षित व्यापार की नीति के अन्तर्गत आयातों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया जाता है तथा घरेलू उद्योग-धन्धों की लागत ऊंची रहती है (क्योंकि संरक्षित व्यापार की नीति के अन्तर्गत उन वस्तुओं को भी देश के अन्दर उत्पन्न किया जाता है जिनका उत्पादन प्राकृतिक श्रम-विभाजन के अनुसार इस देश के लिये सस्ता व अनुकूल नहीं होता) और इस तरह अन्ततः उपभोक्ताओं को हानि उठानी पड़ती है जिसके निवारणार्थ ही स्मिथ ने स्वतन्त्र विदेशी व्यापार की नीति अपनाने का समर्थ किया।

इस आधार पर अपना तर्क रखते हुए कि विदेशी व्यापार के अन्तर्गत दोनों देशों के व्यापारियों को एक अतिरिक्त विनिमय मूल्य प्राप्त होगा, स्मिथ ने यह बताया विदेशी व्यापार से अनिवार्यतः दोनों देश लाभान्वित होते हैं। स्वतन्त्र-व्यापारिक नीति का समर्थन करते हुए भी स्मिथ ने कुछ विशेष परिस्थितियों में संरक्षण तथा सरकारी नियंत्रण को स्वीकार किया है, यथा—(क) यदि कोई देश आत्मनिर्भर होना चाहता है तो वह आयातों पर करारोपण कर सकता है, (ख) यदि 'अ' देश 'ब' देश से आने वाली वस्तुओं पर आयात कर लगा रहा है तो 'ब' देश को भी 'अ' देश से आने वाली वस्तुओं पर आयात कर लगाना चाहिये, (ग) जिन वस्तुओं का उपभोग देश के लिये आवश्यक हो उनके निर्यात पर कर लगाया जाना चाहिये, (घ) राष्ट्रीय जहाजों का ही प्रयोग करना चाहिये, तथा (ङ) यदि संरक्षण

1 "It is the maxim of every prudent master of a family never to to make at home what it will cost him more to make than ....what is produce in the conduct of every private family, be folly in that of a great kingdom."

—Adam Smith, Ibid, Vol. I, P. 422.

Consumption is the sole end and purpose of all production. in the mercautile system, the interest of the consumer is almost onstantly sacrificed to that of the producer."

—Adam Smith, Ibid, Vol. II, P. 159.

की नीति अपनाने से देश में रोजगार का स्तर ऊंचा होने की सम्भावना हो तो भी इस नीति का पालन किया जा सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि, "स्मिथ के लिए अहस्तक्षेप एक सामान्य सिद्धान्त था, एक पूर्ण नियम नहीं" (Non-intervention for Smith Was a general principle and not an absolute rule.)।

(५) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value)—मूल्य का विश्लेषण प्रारम्भ करने से पूर्व स्मिथ ने मूल्य को दो भागों में विभिक्त किया–(क) प्रयोग मूल्य या वास्तविक मूल्य (Value in use or Real Value) तथा (ख) विनिमय मूल्य (Value in Exchange)। प्रयोग मूल्य का अभिप्राय किसी वस्तु की उपयोगिता से है तथा विनिमय मूल्य का अभिप्राय किसी वस्तु की उस विनिमय शक्ति है जिसके बदले वह अन्य वस्तुओं का क्रय कर सकती है। स्मिथ का कथन है कुछ बहुत उपयोगी वस्तुओं (यथा–पानी) का विनिमय–मूल्य बहुत कम होता है तथा कुछ न्यूनोपयोगी वस्तुओं (यथा–हीरा) का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है। स्मिथ के शब्दों में, "मूल्य शब्द के दो विभिन्न अर्थ हैं जिनमें से एक को प्रयोग मूल्य तथा दूसरे को विनिमय मूल्य कहा जा सकता है। जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य बहुत अधिक होता है उनका विनिमय मूल्य बहुत कम अथवा शून्य के बराबर होता है तथा इसके विपरीत जिन वस्तुओं का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है उनका प्रयोग मूल्य बहुत कम अथवा शून्य के बराबर होता है।[1] स्मिथ द्वारा प्रतिपादित प्रयोग–मूल्य के विचार के आधार पर ही १६ वीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों ने सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत (Doctrine of Marginal Utility) का प्रतिपादन किया। स्मिथ ने बताया कि विनिमय मूल्य कभी भी स्थिर नहीं रहता क्योंकि यह मांग–पूर्ति पर अधिक निर्भर करता है तथा इस पर क्रेताओं और विक्रेताओं की सौदा करने की क्षमता (Bargaining Power) का निश्चियात्मक रूप से प्रभाव पड़ता है। इन्हीं दो कारणों से विनिमय मूल्य सदैव बदलता रहता है और उसे निश्चित रूप से नहीं आंका जा सकता। स्मिथ का विश्वास था कि विनिमय–मूल्य के नीचे एक प्राकृतिक या वास्तविक मूल्य होता है जो कि अपरिवर्तनीय होता है और इसी के चारों ओर विनिमय–मूल्य चक्कर काटता है।

मूल्य सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रतिपादन में स्मिथ किसी स्पष्ट विचार की अभिव्यक्ति नहीं कर पाये हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में

---

[1] "The word value, it is to be observed, has two different meanings : the one may be called value in use, the other value in exhange. The things which have the greatest value in use have frequently little or no value in exchange, and on the contrary those which have the greatest value in exchange, have frequently little or no value in use."
—Adam Smith.

स्मिथ के दो-तीन विचार पाये हैं जिनका पृथक्करण स्मिथ स्पष्ट रूप से नहीं कर पाये। उसने विलियम पेटी (William Petty) और कैन्टिलन (Contillou) द्वारा प्रतिपादित श्रम के मूल्य सिद्धान्त (Labour Theory of Value) को विकसित किया परन्तु उसने इस सिद्धान्त में लौक (Locke) के माँग-पूर्ति के विश्लेषण के कुछ तत्वों का भी समावेश कर दिया है। इस तरह एडम स्मिथ ने सर्वप्रथम श्रम के मूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा सिद्धान्त की कठिनाइयों के कारण बाद में उत्पत्ति-लागत के सिद्धान्त (The Cost of Production Theory) का निरूपण किया।[1]

इस तरह यह सत्यतापूर्वक कहा जा सकता है कि स्मिथ का मूल्य सिद्धान्त असंगत है। यद्यपि उसने स्वयं को अनेकों विरोधाभासों में प्रविष्ट कर दिया, तथापि उसने मूल्य के विश्लेषण के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक प्रगति दर्शाई। और अन्त में उसका सिद्धान्त श्रम के मूल्य सिद्धान्त पर आकर रुकता है जिसे कि रिकार्डो ने अपने निजी विश्लेषण का आधार बनाया। मूल्य-सिद्धान्त के सम्बन्ध में स्मिथ द्वारा की गई व्याख्या कितनी ही असंगत क्यों न रही हो तथापि यह स्वीकार्य है कि अतिरेक की व्याख्या करने में, जिसने कि सभी तरह के लाभों का आधार प्रस्तुत किया, उसने इस सिद्धान्त का दृढ़ता से उपयोग किया है।[2]

---

1 "It is not easy to give a summary account of Adam Smith's ambiguous and confused theory of value. Subsequent economists have found two or three different strands of thought which Smith did not separate sufficiently clearly. He developed the labour theory inherited from Petty and Cantillon, but he also added to it certain elements of the supply and demand analysis of Locke. And in his struggle with the difficulties of the concept of capital and its place in the economic process he abandoned his own labour theory of value and bequeathed to later generations what became mainly a cost of production theory."

—Eric Roll : History of Economic Thought, P. 156—57.

2 "It is true that Adam Smith's theory is in consistent. But although he involved himself as we shall see, in many contradictions, he made considerable progress in the explanation of value. And, in the [illegible] his theory rests on what Ricardo singled out as the basis for his [illegible]alysis, the labour theory of value. However inconsistent Smith [illegible] in his exposition of it, he keeps to it most strictly in one [illegible]ant application of it—in his discussion of the surplus which [illegible]d the basis of all profit."

—Eric Roll : Ibid, P. 157.

श्रम के मूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये स्मिथ ने कहा कि किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसके निर्माण में लगे श्रम के मूल्य पर निर्भर है और इस तरह सभी वस्तुओं के विनिमय मूल्य का वास्तविक मापक श्रम ही है (Labour, thorefore, is the real measure of the exechauge value of all commodities)। वस्तुतः स्मिथ के इस कथन में भी भ्रम उत्पन्न होता है क्योंकि विनिमय मूल्य के सम्बन्ध में की गई उसकी व्याख्या पूर्ववर्ती लेखकों की व्याख्या से सर्वथा भिन्न है। पैटी और कैन्टीलन की तरह स्मिथ ने भी किसी वस्तु के मूल्य का निर्धारण, वस्तु के उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम की मात्रा की लागत-व्यय से समझा था। इस लागत व्यय के अन्तर्गत केवल श्रमिक का जीविकानिर्वाह सम्बन्धी व्यय ही सम्मिलित नहीं है वरन् उनकी शिक्षा और पुनोंत्पादन का भत्ता भी सम्मिलित है। अपने पूर्ववर्तियों की तरह स्मिथ ने भी मांग के प्रभाव को स्वीकार किया जो कि श्रम के वितरण का निर्धारण इस तरह करती है कि वस्तु का मूल्य और श्रम की लागत बराबर हो जाए। इस तरह स्मिथ ने बताया कि", हर एक वस्तु की वास्तविक कीमत, जो कि प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति चाहने वाले व्यक्ति की वास्तविक लागत होती है, इस प्राप्ति में लगा हुआ श्रम है" (The real price of every thing, what euery thing really costs to the man who wants to alqire it, is the toil rnd truble of acquiring it)।

स्मिथ द्वारा प्रतिपादित श्रम का मूल्य सिद्धान्त एक पक्षीय और दोष युक्त है क्योंकि एक तो प्रत्येक श्रमिक का श्रम भिन्न प्रकार होने का कारण उसकी लागत-व्यय का मापना सरल नहीं है और दूसरे किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम के अतिरिक्त, भूमि, पूंजी, व्यवस्था, साहस आदि अन्य साधनों की भी आवश्यकता पड़ती है जिसके कारण वस्तु के मूल्य में उत्पत्ति के इन सभी साधनों का पुरस्कार सम्मिलित करना आवश्यक है। जब किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम के अतिरिक्त दूसरे स्थानों की भी उतनी ही महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है और सभी के संयोग से उत्पादन सम्भव होता है तो अकेले एक साधन (श्रम) पर ही मूल्य का निर्धारण कैसे हो सकता है? प्रो० जीड एण्ड रिस्ट (Gide & Rist) के शब्दों में", आजकल हमें भूमि और पूंजी का भी कुछ अभिलेख रखना चाहिए और इसलिये श्रम मूल्य का एक एकमात्र स्रोत नहीं है और न ही एकमात्र मापक है (We must now-a-days take some account of land and capital so that labour is not the only source of value, nor is its sole measure.)।

अतएव श्रम के मूल्य सिद्धान्त की उक्त कठिनाई को समझकर स्मिथ ने मूल्य का माप ज्ञात करने के हेतु दूसरा सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे उत्पत्ति-लागत का सिद्धान्त (The Cost of production Theory) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उसके उत्पादन में लगे समस्त साधनों (श्रम, पूंजी, भूमि, व्यवस्था और साहस) के पुरस्कार (मजदूरी, ब्याज, लगान,

वेतन और लाभ) के योग के बराबर होता है। यह स्मरणीय है कि स्मिथ इस सिद्धान्त के अन्तर्गत विभिन्न साधनों की सेवाओं के बदले के पुरस्कार को मापने के तरीके का विश्लेषण नहीं कर पाये। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि वास्तविक मूल्य के निर्धारण के सम्बन्ध में स्मिथ किसी ठोस एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण नहीं कर पाया। फिर भी आर्थिक विचारधारा के इतिहास में स्मिथ द्वारा प्रतिपादित मूल्य के दोनों सिद्धान्तों का विशेष महत्व है स्मिथ के पहले सिद्धान्त ने तो समाजवाद के लिये आधारशिला का काम किया है तथा उसके दूसरे सिद्धान्त के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मूल्य-निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त का निरूपण किया है।

(६) पूंजी और वितरण का सिद्धांत (Theory of capital and Distribution):—श्रम-विभाजन और मुद्रा के आविष्कार के अतिरिक्त, स्मिथ ने यह विचारा कि पूंजी को छोड़कर राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाने वाला अन्य कोई घटक नहीं है। पूंजी का परिमाण जितना बड़ा होगा उतनी ही अधिक संख्या में श्रमिकों को काम पर लगाया जा सकेगा जिसके फलस्वरूप श्रम विभाजन का विस्तार होगा। इस तरह स्मिथ के मतानुसार किसी राष्ट्र की पूंजी को बढ़ाने का अर्थ है—इसके उद्योग एवं समृद्धि को बढ़ाना। स्मिथ के शब्दों में, "किसी भी राष्ट्र की भूमि और श्रम का वार्षिक उत्पादन केवल या तो इसके उत्पादक श्रमिकों की संख्या को बढ़ाकर अथवा काम पर पहले ही लगे हुये श्रमिकों की उत्पादन शक्ति को बढ़ाकर ही बढ़ाया जा सकता है, किसी अन्य साधन से नहीं। यह स्पष्ट है कि इस राष्ट्र के उत्पादक-श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती परन्तु उनके निर्वाह के हेतु आवश्यक कोष अथवा पूंजी के परिमाण में वृद्धि की जा सकती है। उत्पादक-श्रमिकों की कार्यक्षमता को या तो उनको काम पर लगाने वाली मशीनों और यन्त्रों की संख्या में वृद्धि या उनमें सुधार करके बढ़ाई जा सकती है अथवा रोजगार के अधिक ठोस विभाजन एवं वितरण के द्वारा। हरएक दशा में अतिरिक्त पूंजी सदैव अपेक्षित है।'[1] इस तरह स्मिथ ने बताया कि पूंजी आर्थिक

1 "The annual produce of the land and labour of any nation can be increased in its value by no other means, but by increasing either the number of its productive labourers, or the productive power of those labourers who had before been employed. The number of its productive labourers, it is evident, can never be much creased, but in consequence of an increase of capital, or of the destined for maintaining them. The productive power of the ber of labourers cannot be increased, but in consequence same addition and improvement to those machines and ents which facilitate and abrige labour, or of a more proper ion and distribution of employment. In either case an addi- al capital is almost always required."

—Adam Smith : Wealth of Nations, Vol I, P. 423.

जीवन का वास्तविक स्रोत है। उसने बताया कि किसी समाज के उद्योग का विस्तार केवल उसी अनुपात में सम्भव है जिस अनुपात में उस देश की पूंजी बढ़ती है तथा किसी देश की पूंजी का विस्तार इसकी आय में से संचित की गई राशि के विस्तार पर निर्भर है।[1]

"पूंजी:' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्मिथ ने बताया कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने भावी जीवन को उन्नत बनाने की लालसा में धन का संचय करता है और यह विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचित राशि ही जब एकत्रित होकर किसी उत्पादक उपयोग में विनियोजित कर दी जाती है तो यह पूंजी का स्वरूप धारण कर लेती है। इस तरह स्मिथ के मतानुसार "पूंजी" नामक संस्था का उद्गम एवं विकास मनुष्य जाति की स्वाभाविक संचय की मनोवृत्ति पर आधारित है। पूंजी के कार्यों का उल्लेख करते हुए स्मिथ ने कहा है कि पूंजी-कृषि-उद्योग-व्यापार आदि विभिन्न उत्पादक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेती है तथा किसी समाज के सामान्य उद्योग का विस्तार उससे अधिक नहीं हो सकता जितनी मात्रा में समाज पूंजी जुटाता है।[2] यह स्मरणीय है कि स्मिथ ने कृषि व्यवसाय में लगी पूंजी को सर्वाधिक लाभकारी उपयोग बताया।

आधुनिक विचारकों का मत है कि स्मिथ द्वारा प्रतिपादित पूंजी सम्बन्धी विचार अत्यन्त दोषपूर्ण एवं अवैज्ञानिक है क्योंकि एक तो स्मिथ का यह कथन कि व्यक्ति द्वारा संचित आय ही पूंजी है, सत्य नहीं है और दूसरे, स्मिथ का यह कथन भी उचित नहीं है कि पूंजी ही किसी समाज के सामान्य उद्योग को सीमित करती है। इसीलिए प्रो॰ कैनन ने कहा है कि, "स्मिथ ने पूंजी के सम्पूर्ण विषय को सर्वाधिक असंतोष-प्रद दशा में छोड़ दिया है।"[3]

जहां तक वितरण सम्बन्धी सिद्धांत का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में स्मिथ के विचार मौलिक नहीं हैं और उसके विचारों पर निर्बाधवादियों का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। प्रो॰ जीड एन्ड रिस्ट के शब्दों में, "मौलिक रूप में वितरण के सिद्धांत का योगदान सर्वप्रथम निर्बाधवादियों ने किया जिनसे कि वह (स्मिथ) प्रभावित हुआ

---

1 'The industry of the society can augment only in proportion as its capital augments, and its capital can augment only in proportion to what can be gradually saved out of its revenue."

—Smith. Ibid, Vol. I, P. 419.

2 "The general industry of the society never can exceed what the capital of the society can employ."

—Smith.

3 "Smith left the whole subject of capital in the most unsatisfactory state."

—Cannan.

तथा उसके इस कार्य में दिखाई देने वाला संकोच और अनिश्चितताएं इस बात को सिद्ध करती हैं कि स्मिथ ने इस विषय पर इतना अच्छा नहीं विचारा जितना उसने दूसरे विषयों पर।"[1]मूल्य-निर्धारण के उत्पादन लागत सिद्धांत के अन्तर्गत स्मिथ ने यह बताया कि किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसकी लागत व्यय (मजदूरी+व्याज+लगान) के योग के बराबर होता है। यह स्मरण रहे कि स्मिथ ने भूमि, श्रम, पूंजी इन तीनों को ही उत्पत्ति के साधन स्वीकार किया तथा इन्हीं तीनों साधनों के पुरस्कार के निर्धारण के विषय पर अपने विचार प्रकट किए।

भूस्वामी का पुरस्कार (लगान) निश्चित करने के सम्बन्ध में स्मिथ आरम्भ से लेकर अन्त तक उलझन में रहे हैं और उनके द्वारा प्रतिपादित लगान सम्बन्धी विचार परस्पर विरोधाभासी हैं क्योंकि कहीं तो हम उन्हें निर्वाधवादियों की विचार-धारा के समीप पाते हैं और कहीं आधुनिक विचारधारा के समीप। सर्वप्रथम स्मिथ ने लगान को एकाधिकारी कीमत स्वीकार करते हुए कहा है कि, "भूमि का लगान भूमि के उपयोग के बदलें में प्रदान की जाने वाली कीमत है और यह स्वाभाविक रूप से एक एकाधिकारी कीमत है।"[2] आगे चलकर स्मिथ ने बताया कि, "ऊंचा अथवा नीचा लाभ या मजदूरी तो ऊंची या नीची कीमतों का कारण हैं जबकि ऊंचा या नीचा लगान इसका प्रभाव है।[3] इस तरह स्मिथ के मतानुसार लागन ऊंची कीमत का ही परिणाम है। यदि उत्पादित वस्तु की कीमत ऊंची होगी तो उसमें से मजदूर एवं साहसी के पुरस्कार निकल जाने पर, निश्चियात्मक रूप से कुछ न कुछ शेष रहेगा और यही भूस्वामी का लगान है। दूसरे स्थल पर स्मिथ ने लगान को प्राकृतिक उपहार (Natural Reward) स्वीकार करते हुए कहा है कि, "लगान प्रकृति की उन शक्तियों का उत्पादन है जिनके उपयोग को भूस्वामी कृषक को उधार देता है।'[4] दूसरे शब्दों में, स्मिथ के मतानुसार लगान भूमि की प्राकृतिक

1"The addition of a theory of distributicn to the original skeleton was probably due to the Physiocrats, with whom in the mean time he had become acquainted, and the hesitations and uncertainties which mar this part of the work merely go to prove that Smith had not thought it out as clearly as the other section."

—Gide & Rist.

2"The rent of land, therefore, considered as the price paid for use of the land, is naturally a monopoly price."

—Smith.

·h or low wages and profits are the causes of high or low or low rent ts the effect of it."

—A dam Smith.

Rent may be considered as the produce of those powers of use of which the landlord lands to the farmer."

—AdamS mith

विशेषताओं के कारण उपलब्ध एक प्रकार का उपहार है । यह स्मरण रहे कि स्मिथ द्वारा प्रतिपादित लगान सम्बन्धी प्रथम विचार में तो वस्तु की मांग अथवा कीमत लगान को प्रभावित करती है, परन्तु दूसरे विचार के अनुसार लगान पर वस्तु की कीमत का कोई प्रभाव नहीं पडता वरन् उल्टे लगान ही वस्तु की कीमत को प्रभावित करता है । इस प्रकार लगान के निर्धारण के सम्बन्ध मे स्मिथ द्वारा प्रतिपादित उक्त दोनो विचार परस्पर विरोधाभासी है ।

लगान की तरह मजदूरी के निर्धारण के सम्बन्ध मे भी स्मिथ आरम्भ से लेकर अन्त तक उलझन मे ग्रस्त रहे हैं तथा किसी भी स्थल पर एकमत नही हो सके हैं । मजदूरी के निर्धारण के सम्बन्ध मे स्मिथ ने अनेकों सिद्धान्तो का उल्लेख किया जिनमें से दो सिद्धान्त-जीवन-निर्वाह सिद्धान्त (Theory of Subsistance) तथा मजदूरी कोष सिद्धान्त (Wages Fund Theory) प्रमुख हैं । मजदूरी निर्धारण के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त के अन्तर्गत स्मिथ ने बताया कि वास्तविक मजदूरी का निर्धारण मजदूर के पालन-पोषण के लिए आवश्यक राशि तथा उसके परिवार के लिए आवश्यक भत्ते के बराबर होता है । इसके विपरीत मजदूरी-निर्धारण के मजदूरी-कोष सिद्धान्त के अन्तर्गत स्मिथ ने बताया कि मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों की मांग-पूर्ति के द्वारा होता है । श्रम की पूर्ति तो श्रमिकों के जीवन-स्तर की लागत द्वारा निश्चित होती है तथा जीवन-स्तर की लागत आवश्यक वस्तुओं के बाजार मूल्य पर निर्भर करती है । दूसरी ओर श्रम की मांग उपलब्ध स्कन्ध तथा राष्ट्रीय पूंजी की मात्रा पर निर्भर करती है । इस प्रकार स्मिथ ने बताया कि मजदूरों की माग तभी बढ़ सकती है जबकि राष्ट्रीय पूंजी के परिमाण में वृद्धि हो और यह तभी सम्भव है जबकि सम्पत्ति स्वामी वर्ग की आय उसके व्यय की तुलना में अधिक हो।

एडम स्मिथ ने लाभ एवं ब्याज दोनो का अधिकारी एक ही व्यक्ति को स्वीकार करते कहा है कि स्वयं पूंजी के उपलक्ष मे प्रदत्त पुरस्कार "लाभ" है तथा ऋणदाता को ऋण के उपलक्ष मे दिया जाने वाला लाभ का भाग "ब्याज" है । लाभ का निर्धारण करने के सम्बन्ध में स्मिथ ने बताया कि पूंजीपति श्रमिकों को उनका पुरस्कार देने के बाद अवशिष्ट राशि के रूप में लाभ प्राप्त करता है जिसकी मात्रा पूंजी की मात्रा पर निर्भर करती है अर्थात् जितनी अधिक मात्रा मे पूंजी जुटाई जाएगी उतना ही अधिक उत्पादक को लाभ प्राप्त होगा । ब्याज के निर्धारण के सम्बन्ध में स्मिथ ने कहा कि ब्याज की दर लाभ की दर के ऊपर ही निर्भर होती है अर्थात् यदि साहसी का लाभ अधिक है तो वह पूंजीपति को अधिक मात्रा में ब्याज देना पसन्द करेगा, अन्यथा नही । इस तरह स्पष्ट है कि लाभ और ब्याज के निर्धारण के सम्बन्ध मे स्मिथ कोई ठोस एवं वैज्ञानिक विचार प्रतिपादित नहीं कर पाए हैं ।

(७) करारोपण के सिद्धांत (Principles of taxation)—निर्बाधवादी विचारकों ने केवल एकल प्रत्यक्ष कर-प्रणाली (Single Direct tax system) का

समर्थन किया था और उन्होंने कराधान का समस्त भार भूस्वामी वर्ग पर डालने की वकालात की थी। इसके विपरीत एडम स्मिथ ने अनेक कर प्रणाली (Multiple tax system) का समर्थन किया तथा करारोपण के सम्बन्ध में सिम्नोक्त महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया—

(क) समानता का सिद्धांत (Canon of Equity)—स्मिथ के मतानुसार "प्रत्येक राज्य की जनता को सरकार की सहायता के हेतु यथासम्भव अपनी क्रमशः सामर्थ्य के अनुपात में अर्थात् उस आय के अनुपात में जोकि वे क्रमशः सरकार की सुरक्षा में प्राप्त करते हैं, धन देना चाहिये।"[1] इस तरह स्मिथ ने प्रगतिशील कर-पद्धति (Progressive tax syetem) का समर्थन किया जिसके अनुसार सरकार को हरएक व्यक्ति से उसकी सामर्थ्य के अनुसार कर वसूल करना चाहिये।

(ख) निश्चितता का सिद्धांत (Canon of certainty)—यह सिद्धांत करों की वसूली के सम्बन्ध में है। स्मिथ के मतानुसार "वह कर जिसे हरएक व्यक्ति देने को बाध्य है, निश्चित होना चाहिए, स्वच्छन्द नहीं"[2] अर्थात् कर की मात्रा, इसके भुगतान का समय और तरीका पूर्वनिश्चित होने चाहियें ताकि करदाताओं को किसी तरह की असुविधा न हो सके। एडम स्मिथ का कथन है कि कर के रूप में किसी व्यक्ति को जो धनराशि देनी है उसकी निश्चितता इतने महत्व की बात है कि समस्त देशों के अनुभव के अनुसार असफलता की बड़ी मात्रा इतनी भयानक नहीं जितनी कि अनिश्चितता की बहुत थोड़ी सी मात्रा।

(ग) सुविधा का सिद्धांत (Canon of Convenience)—स्मिथ के मतानुसार "प्रत्येक कर का रोपण उस समय और उस ढंग से होना चाहिये कि करदाता के लिये कर का भुगतान करना सर्वाधिक सुविधाजनक हो सके।[3]

(घ) मितव्ययिता का सिद्धांत (Canon of Economy)—स्मिथ के मतानु-

का निषेध किया और बताया कि जनता द्वारा करों के रूप में प्रदत्त राशि तथा सार्वजनिक कोष मे पहुँचने वाली कर सम्बन्धी आय मे बहुत थोड़ा अन्तर (Margin) होना चाहिये।

यह स्मरणीय है कि कराधान के ये सिद्धान्त—समानता, निश्चितता, सुविधाजनकता और मितव्ययिता, जिनका प्रतिपादन अबसे लगभग २०० वर्ष पूर्व एडम स्मिथ के द्वारा किया गया था, अब भी कराधान के मुख्य सिद्धान्त बने हुये हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र के अन्य भागो की अपेक्षा "राजस्व" के विवेचन मे सर्वाधिक सफलता मिली है तथा "राजस्व" के अन्तर्गत भी उनकी कर-प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित आर्थिक सिद्धान्तों एवं विचारो की प्रो० हेने, इन्ग्राम, मुलर, लिस्ट एव हिल्डन बर्ग आदि विद्वानों ने कटु आलोचना की है। प्रो० इन्ग्राम ने स्मिथ के विचारो की आलोचना करते हुए लिखा है कि एडम स्मिथ ने आदर्शवाद को तिलांजलि देकर भौतिकवाद की कड़ी वकालात की है तथा धन को जीवन के ऊंचे परिणामों का साधन न मानकर साध्य माना है।[1] एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान (Economics is the science of wealth) बताकर मानव-कल्याण को ठुकरा दिया। प्रो० हेने का मत है कि स्मिथ के विचारों मे व्यक्तिवाद का आधिक्य है जिसके कारण उसने सरकार के अधिकार एवं कर्त्तव्यों को परिमित कर दिया है।[2] हेने ने बताया कि स्मिथ ने केवल वास्तविक लागत का उल्लेख भर कर दिया है तथा उसका स्पष्टीकरण नही किया और न ही लाभ के किसी सिद्धान्त को विकसित किया।[3] जर्मन के कुछ अर्थशास्त्रियो, जिनमे फ्रेड्रिक लिस्ट और एडम मुलर के नाम उल्लेखनीय हैं, वे एडम स्मिथ के विचारों की आलोचना करते हुये कहा है कि स्मिथ के धन सम्बन्धी सीमित विचारों से राष्ट्रीय कल्याण को ठेस पहुंचती हैं और उसने "आर्थिक-मनुष्य को सामाजिक दृष्टिकोण से मिलाकर इस मिले-जुले स्वरूप को ही व्यक्तिगत साहसी माना है। प्रो० एरिक रौल का कथन है कि श्रम-विभाजन को विनिमय की प्रवृत्ति (propensity to Exchange) पर आधारित मानकर, जोकि मानव-व्यवहार की एक मुख्य मनोवृत्ति मानी जाती

---

1 "He does not keep inview the moral destination of our race, nor, regards wealth as a means 'to the higher ends of life, and thus incurs, not altogether unjustly, the change of materialism."

—Prof. Ingram.

2 "Further mora, his "individual" is an unreal one-too much of an "economic man", dominated by the "self love", and shrewed reflective choices of a scotch trader." —Prof. Haney.

3 "He mentions "Real Costs" but with out explanation, he. shifts to contractual payments for wages and rent, and dovelops no theory of profit." —Haney,

है. स्मिथ ने कारण और परिणाम के बीच भ्रम उत्पन्न कर दिया। वह बात कितनी ही सत्य हो सकती है कि श्रम-विभाजन के बिना विनिमय सम्भव नहीं हो सकता, परन्तु कम से कम सैद्धान्तिक रूप से यह कहना सत्य नहीं है कि श्रम-विभाजन के हेतु प्राइवेट विनिमय की उपस्थिति की आवश्यकता पड़ती है। यह तार्किक दृष्टि से प्रमाणयुक्त है कि ऐसी जाति जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई संस्था नहीं है विनिमय के बिना श्रम-विभाजन के उपयोग की विशेष तकनीक रख सकती है।[1]

एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों पर उक्त आरोप लगाये जाने पर भी यह अक्षरक्षः सत्य है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में स्मिथ का स्थान सर्वोत्कृष्ट रहेगा। प्रो० वी० एम० एब्राहम के शब्दों में, "सारांश रूप में आर्थिक विचारों के विकास-क्षेत्र में स्मिथ द्वारा प्रदत्त सेवायें अमूल्य हैं। उनसे विज्ञान के समस्त कोर्स की क्रांति की तथा उसके समय से लेकर अर्थशास्त्र ने साधारण जीवन व्यवसाय में लागू होने योग्य निश्चित सिद्धान्तों सहित, एक स्वतन्त्र विज्ञान की स्थिति प्राप्त की। उसने राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विज्ञान का, इसको उसके विभिन्न विभागों-उत्पादन, उपभोग, वितरण और विनिमय में विभाजित करके, प्रबन्ध किया जोकि सदैव के लिये अपरिवर्तनीय रहेगा। उसके सिद्धान्त आर्थिक विचारों के क्षेत्र में निर्देशक सिद्धान्त के रूप में रहेंगे। उसके द्वारा एक राजनैतिक अर्थव्यवस्था ने जन्म पाया और उसे राजनैतिक अर्थव्यवस्था का जनक कह कर पुकारा गया। "राष्ट्रों की सम्पत्ति" से बढ़कर अन्य कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता और यह वर्तमान अर्थशास्त्र की आधारशिला बन गई है। स्मिथ ने पुराने तथ्यों के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण अपनाया और उनकी वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत की। इस तरह अर्थशास्त्र आज भी वैसा है जैसी भविष्य वाणी स्मिथ ने की थी। उसका प्रभाव सभी जगह पड़ा तथा फ्रांस, इटली, जर्मनी और अमेरिका में उसके अनेक अनुयायी बन गये। उसकी जीवन गाथा के रचयिता जॉन रे (John Rae) ने लिखा है कि "उसने अपने निजी युग को उत्साया और आगामी

को नियमित किया ।" वह क्लासिकल आशावाद का दार्शनिक था" ।[1]

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने स्मिथ द्वारा रचित महान ग्रन्थ "राष्ट्रों की सम्पत्ति" की महानता व्यक्त करते हुए लिखा है कि उसकी पुस्तक आर्थिक विचारधारा के इतिहास में एक महान कृति रहेगी ।[2]

---

1 "On the whole the services rendered by Smith to the development of economic thought was termendous. He revolutionised the whole course of the science and from his time onwards Economics assumed the position of an independedt science with defintie maxims and principles applicable to the ordinary business of life. He systematised the whole science of Political Economy by dividing it into its compoment parts, Production, Consamption, Distribution and Exchange asystematisation which was to remain there unattered for ever. His theories were to remain thence forward as the guiding principles in economic doctrines. As political Economy was reborn in himg, he was called the Father of Political Economy. The "Wealth of Nation's could not be excelled by any other work and it became the ground work of modern economics. Smith initiated a new outlook towords old facts and brought them into a realistic interpretatiod. Hence Economics remains even today, what smith stated it was to be. His influerence was felt every where and in France, Italy Germany and America great disciples came forward in whom was found the pulsation of the life of the Smith His biographer, John Rae, commented that he, "Persuaded his own generation and governed the next." He was the philosopher of the classical optimism."

—V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 64.

2 "His book will remain as a permanent movement one of the most important epochs in economic thought." — Prof Gide & Rist.

है, स्मिथ ने कारण और परिणाम के बीच भ्रम उत्पन्न कर दिया। वह बात कितनी ही सत्य हो सकती है कि श्रम-विभाजन के बिना विनिमय सम्भव नहीं हो सकता, परन्तु कम से कम सैद्धान्तिक रूप से यह कहना सत्य नहीं है कि श्रम-विभाजन के हेतु प्राइवेट विनिमय की उपस्थिति की आवश्यकता पड़ती है। यह तार्किक दृष्टि से प्रमाणयुक्त है कि ऐसी जाति जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई संस्था नहीं है, विनिमय के बिना श्रम-विभाजन के उपयोग की विशेष तकनीक रख सकती है।[1]

एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों पर उक्त आरोप लगाये जाने पर भी यह अक्षरक्षः सत्य है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में स्मिथ का स्थान सर्वोत्कृष्ट रहेगा। प्रो० बी० एम० एब्राहम के शब्दों में, "सारांश रूप में आर्थिक विचारों के विकास-क्षेत्र में स्मिथ द्वारा प्रदत्त सेवायें अमूल्य हैं। उनसे विज्ञान के समस्त कोर्स की क्रांति की तथा उसके समय से लेकर अर्थशास्त्र ने साधारण जीवन व्यवसाय में लागू होने योग्य निश्चित सिद्धान्तों सहित, एक स्वतन्त्र विज्ञान की स्थिति प्राप्त की। उसने राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विज्ञान का, इसको उसके विभिन्न विभागों-उत्पादन, उपभोग, वितरण और विनिमय में विभाजित करके, प्रबन्ध किया जोकि सदैव के लिये अपरिवर्तनीय रहेगा। उसके सिद्धान्त आर्थिक विचारों के क्षेत्र में निर्देशक सिद्धान्त के रूप में रहेंगे। उसके द्वारा एक राजनैतिक अर्थव्यवस्था ने जन्म पाया और उसे राजनैतिक अर्थव्यवस्था का जनक कह कर पुकारा गया। "राष्ट्रों की सम्पत्ति" से बढ़कर अन्य कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता और यह वर्तमान अर्थशास्त्र की आधारशिला बन गई है। स्मिथ ने पुराने तथ्यों के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण अपनाया और उनकी वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत की। इस तरह अर्थशास्त्र आज भी वैसा है जैसी भविष्य वाणी स्मिथ ने की थी। उसका प्रभाव सभी जगह पड़ा तथा फ्रांस, इटली, जर्मनी और अमेरिका में उसके अनेक अनुयायी बन गये। उसकी जीवन गाथा के रचियता जॉन रे (John Rae) ने लिखा है कि "उसने अपने निजी युग को उकसाया और आगामी

1 "It is here that he makes division of labour depend upon the propensity to exchange, which he regards as one of the principle motives of human conduct. There can be little doubt that on this point Smith confused cause and effect. However true it may be that exchange cannot exist without division of labour, it is not true, at least in theory, that division of labour requires the existence of private exchange. It is logically demonstrable that a certain social organixation (for example, the economy of a patriarchal tribe which lacks the institution of private property) can have a technology using division of labour without exchange. And communities of this type can be shown to have existed.

—Eric Roll : History of Economic Thought, P. 154-55.

को नियमित किया।" वह क्लासिकल आशावाद का दार्शनिक था"।[1]

प्रो० जीद एन्ड रिस्ट ने स्मिथ द्वारा रचित महान ग्रन्थ "राष्ट्रों की सम्पत्ति" की महानता व्यक्त करते हुए लिखा है कि उसकी पुस्तक आर्थिक विचारधारा के इतिहास में एक महान कृति रहेगी।[2]

---

1 "On the whole the services rendered by Smith to the development of economic thought was termendous. He revolutionised the whole course of the science and from his time onwards Economics assumed the position of an independedt science with defintie maxims and principles applicable to the ordinary business of life. He systematised the whole science of Political Economy by dividing it into its compoment parts, Production, Consamption, Distribution and Exchange asystematisation which was to remain there unaltered [illegible] guiding [illegible] is reborn [illegible] "Wealth [illegible] became the ground work of modern economics. Smith initiated a new outlook towords old facts and brought them into a realistic interpretation. Hence Economics remains even today, what smith stated it was to be. His influerence was felt every where and in France, Italy Germany and America great disciples came forward in whom was found the pulsation of the life of the Smith His biographer, John Rae, commented that he, "Persuaded his own generation and governed the next." He was the philosopher of the classical optimism."

—V. M Abraham : History of Economic Thought, P. 64.

2 "His book will remain as a permanent movement one of the most important epochs in economic thought." —Prof Gide & Rist.

५

थॉमस रॉबर्ट माल्थस

(Thomas Robert Malthus)

प्राक्कथन—माल्थस अपने "जनसंख्या के सिद्धान्त" के लिये प्रसिद्ध है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में उसके अध्ययन के अतिरिक्त, उसके द्वारा विभिन्न आर्थिक प्रश्नों पर लिखे गये लेख तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर ग्रन्थ के सन्दर्भ से यह सिद्ध होता है कि एक महान अर्थशास्त्री था। थॉमस रॉबर्ट माल्थस का जन्म सन् १७६६ में हुआ। उसका पिता डनाइल माल्थस (Daniel Malthus) एक बुद्धिमान एवं धनाढ्य व्यक्ति था और वह समय के प्रसिद्ध दार्शनिकों, विक्षेपकर—डेविड ह्यूम (David Hume) और जे० जे० रूसो (J. J. Rousseau) का मित्र था। माल्थस अपने परिवार का सबसे छोटा लड़का था जो कि चर्च की ओर अभिप्रेरित हुआ और उसे नीतिशास्त्र व धर्मशास्त्र की उत्तम शिक्षा प्रदान की गई। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय को छोड़ने के बाद उसने अपने निवास स्थान के गिरजाघर में ही एक पादरी के रूप में काम करना आरम्भ कर दिया। सन् १८०७ में माल्थस ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित हेलीबरी (Haileybury) के कॉलिज में राजनैतिक अर्थव्यवस्था का प्राध्यापक नियुक्त हुआ जहाँ कि वह अपनी मृत्यु तक अर्थात् सन् १८३४ तक रहा। उसका विवाह ३९ वर्ष की आयु में हुआ और उसके तीन लड़के और एक लड़की पैदा हुई। सन् १७९८ में, जबकि माल्थस अपने निवास स्थान के एक गिरजाघर में एक पादरी के रूप में काम करता था, उसने अपना प्रसिद्ध निबन्ध "जनसंख्या के सिद्धान्त पर निबन्ध जैसे कि यह समाज के भावी विकास को प्रभावित करती है" (Essay on the Principle of Population as it affects the Future Improvement of society) प्रकाशित कराया। इस विषय का अधिक गहन अध्ययन करने के उद्देश्य से माल्थस ने सन् १७९९ से लेकर सन् १८०२ तक स्वीडन, फ्रांस, नार्वे, फिनलैण्ड और रूस आदि देशों का परिभ्रमण किया। [illegible]

of Political Economy), (ii) "अनाज-नियमों के सन्दर्भ में अल्प अध्ययनों की एक श्रेणी" (A serias of short studies dealing with the Corn Laws), (iii) "लगान पर" (On Rent), (iv) "दी पुअर लॉ" (The Poor Law) और (v) "राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था में परिभाषायें" (Definitions in Political Economy.) । एडम स्मिथ का शिष्य होने के नाते माल्थस को क्लासिकल सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण सदस्य माना जाता है। यद्यपि माल्थस से पूर्व भी डम स्मिथ के अनेक अनुयायी हुई तथापि किसी ने भी अर्थशास्त्र में माल्थस के ाबर योगदान नहीं किया और यही कारण है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास माल्थस की गणना प्रमुख विचारको में की जाती है।

माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त—(Malthusian theory of population)—आर्थिक विचारधारा के इतिहास में माल्थस का जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। वह 'राष्ट्रों की सम्पत्ति" में वर्णित जनसंख्या सम्बन्धी विचारों तथा तारगो द्वारा कथित एवं अनेक अर्थशास्त्रियों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम से प्रभावित हुआ। उसने इन अंशों को एक जनसंख्या के सिद्धान्त रूप में मिला दिया जिसके निष्कर्ष आशावाद के विरोधी थे।[1] उसकी पुस्तक का प्रभाव सभी आर्थिक सिद्धान्तों पर, उत्पादन और वितरण दोनों के सिद्धान्तों पर, अद्भुत था। माल्थस द्वारा लिखित जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त एडम स्मिथ के आशावाद के प्रति एक तरह का उत्तर था जिसे कि जेम्स बोनार (James Bonar) ने "राष्ट्रों की निर्धनता के कारणों पर एक निबन्ध (An Essay on the Ceuses of the Poverty of Nations) का शीर्षक दिया है।[2] प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार यद्यपि जनसंख्या का विचार

1 "He was impressed by the view of population in the Wealth of Nations and the works of earlier writers, and by the law of dimcinishing return, which was in the minds of many economists and which was in the minds of many economists and which had been stated clearly by Turgot. He combined these fragments into a theory of population, the conclusion of which contradicted the prevailing optimism."

—Eric Roll : History of Economic Thought, P, 195.

2 "Further more, we shall find that the influence of his book upon all economic theories, both of production and distribution, was enormous. The essap might even be considered a reply to that optimismof Adam Smith. The same title with slight modification would have served well enough, and James Bonar withly remarks that Mal[illegible] might have headed it An Essay on the causes of the [illegible] Nations." —Gide & [illegible] history of Economic

सिद्धान्त रूप में प्रकट करने का श्रेय माल्थस को ही है, तथापि यह कथन उपयुक्त नहीं हो सकता कि ये माल्थस के मौलिक विचार थे। माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी विचारों पर तत्कालिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों एवं समकालीन एवं पूर्ववर्ती विचारकों के विचारों का प्रभाव पड़ा है।

सन् १७५० तक इंगलैंड की कृषि-अर्थव्यवस्था की दशा उत्तम रही परन्तु शनैः शनैः इसकी दशा शोचनीय होने लगी और जिस समय (सन् १७९८) माल्थस ने अपना "जनसंख्या के सिद्धान्त पर निबन्ध" लिखा उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक बढ़ता जा रहा है। इस समय आयरलैंड में भीषण अकाल पड़ा जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के मूल्य बहुत ऊंचे हो गये और सर्वत्र बेकारी, भुखमरी एवं दरिद्रता के नग्न चित्र दिखाई देने लगे। खाद्य-स्थिति को ठीक करने के हेतु इंगलैंड की सरकार वे अनाज-नियम (Corn Lrws) बनाए परन्तु दशा में कोई परिवर्तन नहीं आ सका। ठीक इसी समय इंगलैन्ड में औद्योगिक क्रान्ति (Indnstrial Revoiution) का सूत्रपात हो गया था। औद्योगिक विकास ने समस्याओं के सुलझाने ने स्थान पर उनमें विषमताओं का भरना आरम्भ कर दिया। माल्थस ने देखा कि औद्योगिक विकास के साथ-साथ समाज पूंजीपति और श्रमिक अथवा शोषक एवं शोषित वर्गों में विभाजित होता जा रहा है और उनके बीच की खाई गहरी एवं विस्तृत होती चली जा रही है। अतएव इन विभिन्न समस्याओं का माल्थस पर गहरा प्रभाव पड़ा और इनका समाधान उसने जनसंख्या के सिद्धान्त में पाया। यह समय इंगलैण्ड के लिये ऐसा आ गया था जबकि वणिकवादियों एवं निर्बाधवादियों द्वारा देश की समृद्धि के हेतु जनसंख्या की वृद्धि की वकालात सारहीन सिद्ध हो चुकी थी तथा ऐसी दशा पैदा हो चुकी थी कि देश की समृद्धि के मार्ग में जनसंख्या की वृद्धि एक अनावश्यक बाधा बन गई थी। इन सब परिस्थितियों का माल्थस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव के अतिरिक्त माल्थस के के विचारों पर पूर्ववर्ती एवं समकालीन विचारकों के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसी विचारक बफन (Buffon) और मांटेस्क्यू (Montesquieu) बढ़ती हुई जनसंख्या के नियंत्रण के पक्ष में थे। इन विद्वानों के मतानुसार एक सीमा तक तो जनसंख्या लाभदायक थी और उनका विश्वास था कि जनसंख्या सदैव जीविका-निर्वाह के उपलब्ध साधनों से परिमित होगी और इस कारण जनाधिक्य की दशा उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही पैदा न होगा। निर्बाधवादी विचारक मीराब्यू (Mirabeau) का भी यही विश्वास था कि प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार समाज का विकास होने पर [illegible]तरेक की समस्या पैदा नहीं हो सकेगी। परन्तु दूसरी ओर इंगलैण्ड के प्रसिद्ध [illegible]वादी विचारक विलियम गॉड विन (William Godwin) ने मीराब्यू के [illegible]तिक आशावाद [illegible] Op[illegible] को अमितव्ययी अनुपातों की स्वीकृति प्रदान की। उसका [illegible] की प्रगति पर दृढ़ विश्वास था

जिसके कारण वह जनसंख्या की वृद्धि से किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं करता था।[1] इसी मत का समर्थन प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक काण्डरसेट (Condercet) ने भी किया। उसका विश्वास था कि विज्ञान की प्रगति से मनुष्य की तर्क शक्ति एवं प्रसन्नता का विकास होगा और इस कारण जनसंख्या की वृद्धि किसी भी दशा में हानिकारक नहीं होगी। काण्डरसेट ने गॉडविन के सम्मुख उत्पन्न इस प्रश्न कि क्या भूमि सदैव ही जीविका निर्वाह के आवश्यक साधनों की पूर्ति कर सकेगी का समाधान करते हुये बताया कि या तो विज्ञान जीविका निर्वाह के साधनों में वृद्धि करने के योग्य होगा अथवा मनुष्य की तर्क शक्ति जनसंख्या की अबाध वृद्धि को नियन्त्रित करेगी। माल्थस इन दोनों प्रकार के विरोधी विचारोंका का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सरकार और उद्योगपति दोनों ही जनसंख्या की वृद्धि के पक्षपाती हैं क्योंकि इसमें उन दोनों का अपना हित छिपा है अर्थात् एक ओर तो जनसंख्या बढ़ने पर सरकार अपनी सेना का आकार बढ़ा सकती है और दूसरी ओर उद्योगपतियों को अपेक्षाकृत कम मजदूरी पर श्रमिक मिल सकते हैं। माल्थस ने जनसंख्या की वृद्धि के परिणामों-भुखरी, निर्धनता, शोषण और बेकारी आदि को भी देखा और उनके निवारण का उपाय खोजने लगा। इसके

---

1. "In France Buffon and Montesquieu had already shown some concern in this matter. But a numerous population was usuall regaded as advantageous, and fear of excess was never entertained in as much as it was believed that the number of people would always be limited by the available means of subsistence. This was the view of the Physiocrat Mirabea, stated in his own characteristic fashion in his book "Ami des hommes", which has for its sub-tirle traite de la population. Such a natural fact as the growth of population could posses no terrors for the advocates of the natural order. But in the writings of Godwin this "natural optimism" assumed extravagant proportions. His book on *Political Justice* appeared in 1793 and greatly impressed the public. Godwin, it has been well said, was the first anarchist who was also a doctrinear At any rate be seems to have been the first to employ that famous phrase, "Government even in its best state is an evilo" His illimtable confidence in the future of society and the progress of science, which thought would result, in such a multiplity of products that balf a days work would be suffiorent to satisfy every need, and his belief in the efficacy of reason as a force which would restrain personal interest and check the desire for profit, really entitles him tc be considered a pioneer."

—Gide & Rist : History of Economic, P. 136-37

अतिरिक्त माल्थस के विचारों पर डेविड ह्यूम (David Hume), स्मिथ (Smith) और प्राइस (Price) आदि विचारकों के विचारों का भी प्रभाव पड़ा था। जोजेफ टाउनसैण्ड के विचारों ने माल्थस को इस निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता प्रदान की थी कि जहाँ तर्क शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता, वहां अधिक जनसंख्या का होना, आवश्यकताओं की पूर्ति न होना तथा मृत्यु-दर का ऊंचा होना स्वाभाविक है।

विलियम गॉडविन ने मनुष्य की समस्त आपदाओं का कारण सरकार को बताया था और इसीलिए उसने मनुष्य जाति की आपत्तियों का एकमात्र निराकरण सरकार के उन्मूलन में ढूंढा। विलियम गॉडविन के इन विचारों का खण्डन करते हुए माल्थस ने अपनी पुस्तक "जनसंख्या के सिद्धान्त पर निबंध" (Essay on The Priuciple of Population) में बताया कि मनुष्य जाति के दुखों का कारण सरकार नहीं है वरन् उसका अपूर्ण स्वभाव है। इस कथन की पुष्टि के हेतु उसने अपने निबन्ध के प्रथम संस्करण में दो स्वयं सिद्ध प्रमाण दिये अर्थात् मनुष्य जाति के जीवित रहने के हेतु भोजन आवश्यक है तथा स्त्री एव पुरुष के बीच काम-भावना का होना अनिवार्य है जो कि वर्तमान दशा में बनी रहेगी। माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त के मुख्य निष्कर्ष निम्नोक्त है :—

माल्थस ने बताया कि "खाद्य सामग्री उत्पन्न करने की भूमि की शक्ति की तुलना में जनसंख्या की शक्ति निश्चियात्मक रूप में बड़ी है। यदि सनसंख्या की वृद्धि में कोई रुकावट उत्पन्न नहीं की जाती तो यह ज्यामितीय अनुपात में बढ़ती है जबकि खाद्य–सामग्री केवल अंकगणितीय अनुपात में बढ़ती है।"[1] इस प्रकार माल्थस का ऐसा विश्वास था कि यदि जनसंख्या पर किसी तरह का प्रतिबन्ध न लगाया जाए तो वह खाद्य-सामग्री की अपेक्षा ऊंची दर से बढ़ती है क्योंकि इस रूप में बढ़ना जनसंख्या की प्रवृति है। माल्थस का ऐसा विचार था कि जनसंख्या की निर्बाध वृद्धि इतनी तीव्रता से होती है कि वह प्रति २५ वर्ष बाद दुगुनी हो जाती है। माल्थस के शब्दों में, "यह सुरक्षित रूप से निर्णय सुनाया जा सकता है कि जब जनसंख्या पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं होता तो वह प्रति २५ वर्ष बाद दुगुनी होती चली जाती है अर्थात् ज्यामितीय दर से बढ़ती है।"[2] यह स्मरणीय है कि माल्थस के मतानुसार जनसंख्या की वृद्धि की यह दर न्यूनतम है अर्थात् जनसंख्या की वृद्धि इस दर से ऊंची तो हो सकती है परन्तु इस से कम दर में वृद्धि सम्भव नहीं है। माल्थस द्वारा प्रतिपादित ज्यामितीय के आधार पर बढ़ने वाली जनसंख्या की

---

1 "The power of population is indefintely greater than the power in the earth to produce subsistence for men Popnlation when unchecked, increases in a geometrical ratio, subsistence in an arth- tical ratio."

—*Malthus.*

2 "It may safely be pronounced, therefore, that population, when unchecked, goes on doubling itself every twenty five years, or increases in a geometrical ratio."

—*Malthus.*

वृद्धि को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—

१ : २ : ४ : ८ : १६ ; ३२ : ६४ : १२८ २५६ : ५१२ १०२४ आदि।

दूसरी ओर माल्थस ने इस तथ्य पर विशेष बल डाला कि खाद्यान्न की पूर्ति जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा बहुत धीमी गति से बढ़ती है क्योंकि खाद्य-सामग्री केवल अंकगणितीय दर से बढ़ती है। माल्थस के शब्दों में, "यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भूमि की वर्तमान औसत दशा को दृष्टिगत करते हुए, यदि मानवीय उद्योग के हेतु खाद्य-सामग्री के साधन अधिक अनुकूल दशाओं में रहें तो भी अंकगणित दर से अधिक तेजी से खाद्य-सामग्री नहीं बढ़ सकती।"[1] माल्थस द्वारा प्रतिपादित अंकगणितीय आधार पर बढ़ने वाली खाद्य-सामग्री की वृद्धि को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—

१ : २ : ३ : ४ : ५ : ६ : ७ : ८ : ९ : १० : ११ आदि।

यह स्मरणीय है कि जिस तरह माल्थस ने जनसंख्या की ज्यामितीय आधार (Geometrical Ratio) की वृद्धि को न्यूनतम बताया उसी तरह उसने खाद्य-सामग्री की अंकगणितीय आधार (Arithmetical Ratio) की वृद्धि को अधिकतम बतायी। इस तरह माल्थस ने बताया कि मनुष्य में सन्तान उत्पन्न करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति निहित है क्योंकि उसमें इन्द्रिय लोलुपता। (Sexual Desire) कूट-कूट कर भरी है जिसके कारण जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से होती है। यदि इस बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित नहीं किया गया तो यह निश्चित है कि एक समय ऐसा आ जायेगा जबकि खाद्य-सामग्री की मात्रा जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने की दिशा में बहुत कम रह जायेगी। जनसंख्या की वृद्धि के सम्बन्ध में माल्थस ने एक महत्वपूर्ण बात यह बताई कि विवाहित स्त्री-पुरुष औसतन छः बच्चों को जन्म देते हैं जिनमें से दो या तो मर जाते हैं या विवाह नहीं करते और इस तरह स्त्री-पुरुष दो प्राणी मिलकर चार ऐसे बच्चों को जन्म देते हैं जो कि आगे चलकर मां-बाप बनते हैं। इसी आधार पर माल्थस ने जनसंख्या की वृद्धि का क्रम १ : २ : ४ : ८ : १६ आदि के रूप में दिखाया था जिसके अनुसार २५ वर्षों में किसी देश की जनसंख्या दुगुनी हो जाती है। माल्थस ने अपने इस आधार का प्रमाण संयुक्त राज्य अमेरिका की १९ वीं शताब्दी की जन-वृद्धि के इतिहास से लिया था। सन् १८०० में इस देश की जनसंख्या ५ मिलियन थी जो कि १०० वर्ष बाद (अर्थात् २५-२५ वर्ष के चार समयान्तर बाद) ८० मिलियन हो गई। दूसरी ओर खाद्य-सामग्री के सम्बन्ध में माल्थस का अभिप्राय खेती से उत्पन्न होने वाली फसलों से था। माल्थस का विचार था कि खेती में अधिक पूंजी व्यय करने से घटती हुई दर

1 "It may be fairly pronounced there fore, that, considering the present average state of the earth, the means of subsistence under circumstances the most favourable to human industry, could possibly be made to increase faster than in an arithmetical

पर उपज प्राप्त होती है।[1] माल्थस द्वारा अंकगणितीय दर १ : २ : ३ : ४ : ५ आदि का उदाहरण प्रस्तुत करने का मुख्य अभिप्राय यही है कि खाद्य-सामग्री की वृद्धि-दर जनसंख्या की वृद्धि-दर की अपेक्षा बहुत नीची है।

यह एक वास्तविक सत्य है कि किसी स्थान पर रह सकने योग्य व्यक्तियों की संख्या उस संख्या से अधिक नही हो सकती जितनी के लिये वहाँ खाद्य-सामग्री उपलब्ध है। यदि वहाँ इससे अधिक जनसंख्या मौजूद है तो वह भूखी मर जायेगी।[2] माल्थस के शब्दों में, "एक व्यक्ति जो इस संसार में पैदा हुआ है यदि वह अपने माता-पिता से खाद्य-सामग्री प्राप्त नहीं कर सकता जिनके ऊपर उसकी उचित माँग है और यदि समाज के लिये उसके श्रम की कोई आवश्यकता नहीं है तो उसका खाद्यान्न के छोटे से छोटे अंश पर भी कोई दावा नहीं हो सकता और वह जहाँ है कोई व्यवसाय नहीं रख सकता। चूंकि प्रकृति की ओर से उसके लिए कोई रिक्त-स्थान नहीं है, इसलिये वह उसकी मृत्यु का आह्वान करेगी।"[3] माल्थस ने बताया कि यदि बढ़ती हुई जनसख्या को न रोका जाये तो निश्चित रूप एक ऐसा समय आ जायेगा जबकि खाद्य-सामग्री की अपेक्षा जनसख्या का आधिक्य हो जायेगा। परन्तु यह भी निश्चित है कि किसी देश में उतनी ही जनसंख्या रह सकती है जितनी को जीवित रखने के हेतु वहाँ खाद्य-सामग्री उपलब्ध हो। अतएव इस सन्तुलन को बनाये

---

1 "It must be evident to those who have the slightest acquaintance with agricultural subjects, that in proportion as cultivation is extended, the additions that could yearly be made to the former average produce must be gradually and regularly diminishing,"
—Malthus.

2 "It is a truism that the number of people who can live in any place cannot exceed the number of people who can gain subsistence there. Any excessive population must, according to definition, die of hunger. This is just what happens in the animal and vegetable kingdoms. Germs are extraordinarily retarded by a law which demands the death of a certain proportion, so that life, like a well regulated reservoir, always remains at a mean level, the terrible gaps made by death being replenished by a new flow. Among savages, justs as among animals, which they much resemble, a large proportion literally dies of hungar."
—Gide & Rist : History of Economic Doctrines. P. 140-41.

3 "A man who is born into a world already possessed, if he can not get subsistence from his parents on whom he has a just emand, and if the society do not want his labour, has no claim of ht to the smallest portion of food and, in fact, has no business to where he is. At nature's mightly feast there is no vacant cover r him. She tells him to be gone."
—Malthus.

रखने के हेतु प्रकृति की ओर से स्वमेव जनसंख्या की वृद्धि पर रोक लगाने के हेतु भुखमरी, युद्ध, महामारी, अकाल, बाढ़, अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि के रूप में प्रतिबन्ध उपस्थित हो जाते हैं जिन्हें माल्थस ने नैसर्गिक प्रतिबन्ध (Positive Checks) की संज्ञा दी है। माल्थस ने बताया कि प्रकृति द्वारा प्रस्तुत अवरोध मानव जाति के लिए अत्यन्त वीभत्स एवं भयंकर होते हैं। अतएव इनकी भयंकरता से बचने के हेतु स्वयं व्यक्ति को पर्याप्त सजगता से काम करना चाहिये ताकि वह अवसर ही ही उपस्थित न हो सके कि प्रकृति जनसंख्या को कम करने के हेतु स्वयं हस्तक्षेप करे। इस प्रकार मनुष्य द्वारा जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की दिशा में लगाये गये प्रतिबन्धों को माल्थस ने प्रतिबन्धक नियन्त्रण (Preventine Checks) की संज्ञा दी। सभ्य समुदायों में खाद्य-सामग्री और जनसंख्या के बीच संतुलन स्वयं मानवीय पद्धतियों के द्वारा अर्थात् प्रतिबन्धक नियन्त्रण के द्वारा स्थापित हो जाता है जिसके अन्तर्गत जन्म-दर कम हो जाती है। अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण में माल्थस ने प्रतिबन्धक नियन्त्रणों के व्यवहार को विस्तृत कर दिया। इस नियन्त्रण के अन्तर्गत माल्थस ने आत्म संयम (Self Restraint) की अधिक वकालत की है। आत्म संयम से माल्थस का अभिप्राय उन सभी नैतिक गुणों के अपनाने से था जिनके पालन करने से जनसंख्या की वृद्धि रुक जाती है। इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि माल्थस ने एक साधारण परिवार में छः बच्चों का पैदा होना और इस तरह प्रति २५ वर्ष बाद जनसंख्या के दुगुने होने का अनुमान लगाया था, परन्तु उसने यह निष्कर्ष नहीं दिया कि छः बच्चों का जन्म किसी परिवार के लिये अधिकतम होगा क्योंकि जैसा उसने कहा है कि, "यह कहा जा सकता है कि शायद दूरदर्शिता की यह मात्रा सदैव उपलब्ध नहीं हो सके क्योंकि जब कोई व्यक्ति शादी करता है तो वह यह नहीं बता सकता कि उसके कितने बच्चे पैदा होंगे और अनेकों के तो छः से भी अधिक बच्चे पैदा होते हैं। यह निश्चित रूप से सत्य है।" परन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आत्म संयम कब रखा जाए ? आत्म संयम के अन्तर्गत, माल्थस के मतानुसार, व्यक्ति देर में शादी करके तथा ब्रह्मचर्य का पालन करके सन्तानोत्पत्ति को नियन्त्रित कर सकता है।[1] यह स्मरणीय है कि आत्म संयम के अन्तर्गत माल्थस ने शादी के बन्धन से बाहर के सभी तरह के सम्भोग का बहिष्कार किया है। माल्थस ने बताया कि यद्यपि जनसंख्या की वृद्धि को मिश्रित समागम, अप्राकृतिक समागम, गर्भपात (Abortion) तथा गर्भ विरोधी विधियों के प्रयोग (Use of The

---

1 "Restraintfrom marriage which is not followed by irregular gratifications may properly be termed moral restraint...By moral restraint I would be understood to mean a restraint from marrige, from prudential motives with a conduct strictly moral during period of this restraint, and I have never intentionaliy deviated this sense"

Contraceptives) आदि नियन्त्रणों द्वारा रोका जा सकता है, तथापि नियन्त्रण के ये तरीके उचित नहीं ठहराये जा सकते।[1] प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Prof Gide and Rist) के मतानुसार माल्थस हमें फ्रांस-रोड्स पर खड़े व्यक्ति का चित्र देता है जिसके सीधे सामने दुर्भाग्य का रास्ता है, दायीं ओर गुण का मार्ग है तथा बायीं ओर पाप का मार्ग है। इन सब मार्गों में से माल्थस उसे केवल दायें मार्ग पर चलने का सुझाव देता है। परन्तु साथ ही साथ उसे यह डर भी है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत थोड़ी होगी जो कि उसकी सलाह को स्वीकार करेंगे। दूसरी ओर वह पाप के मार्ग पर चलने की किसी को स्वीकृति भी नहीं देना चाहता यद्यपि वह जानता है कि इस सरल मार्ग में चलने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक होगी। किसी भी दशा में उसका दृष्टिकोण केवल फुसलाना मात्र है।"[2]

माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की आलोचना (Criticism of the Malthusian theory of Population)—माल्थस का जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त विद्वानों के बीच समर्थन एवं आलोचना का विषय रहा है। कोसा (Cossa), मार्शल (Marshall), टॉजिग (Taussig), एली (Ely), पैटन (Paten), कार्वर (Carver), प्राइस (Price) तथा वल्फ (Walf) आदि विचारकों ने माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का जोरदार समर्थन किया है। एक अमेरिकन प्रकृतिवादी प्रो० एडवार्ड ईस्ट (Edward East) ने कहा है कि विश्व में कृषि के लिए उपलब्ध क्षेत्र शीघ्र ही मानव प्रजाति की खाद्य पूर्ति करने में अपर्याप्त हो जायेंगे, यदि मानव प्रजाति की वृद्धि वर्तमान दर पर होती रही। इसके विपरीत कैनेन (Cannan), इन्ग्राम (Ingram) तथा ओपन हीम आदि विचारकों ने माल्थस के जनसंख्या

---

1 "Indeed, I should always particularly reprobate any artificail and unnatural modes of checking population, The restraint which I have recommended are quite of a different character. They are not only pointed out by reason and sanctioned by religion but tend in the most marked manner to stimulate industry." —Malthus.

2 "Malthus gives us a picture of man at the cross roads. Straight infront of him lies the road to misery, on the right the path of virture, while on the left is the way of vice. Towords the first man is impelled by a blind instnct Malthus warns him to rein in his desives and seek escape along either by road, preferably by the path on his right. But he fears that the number of those who will accept his advice and choose "The strait road of solvation" will be very small. On the other hand, he is unwilling to admit, even in the [illegible] of his own soul, the most men will probably follow the road [illegible]ds on to vice, and that masses will rush down the easy scope [illegible] perdition. In any case the prospect is anything but inriting."
Prof. Gide and Rist : History of Economic Doctrines, P. 145.

सम्बन्धी सिद्धान्तों की कटु आलोचना की है। संक्षेप में माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त की निम्नोक्त आधारों पर आलोचना की जाती है—

(क) आलोचकों का कथन है कि माल्थस की आर्थिक भविष्यवाणी Economic Predictions) इस तथ्य से मिथ्या सिद्ध हो चुकी है कि नैतिक दृष्टि से उसके सिद्धान्त ने प्रतिकूल व्यवहारों (Repugnant Practices) को जन्म दिया है तथा अनेक फ्रेंच लेखकों ने उसे फ्रांस की जन्म-दर के ह्रास के लिए उत्तरदाई ठहराया है।

(ख) फिर इतिहास में भी उसके भय का प्रमाण नहीं मिलता। विश्व का कोई भी एक देश ऐसा नहीं है जोकि जनाधिक्य से पीड़ित हो। कुछ दशाओं में तो उदाहरणार्थ फ्रांस में जनसंख्या बहुत धीमी गति से बढ़ी है। दूसरे देशों में जनसंख्या विशेष रूप से बढ़ी है लेकिन कहीं भी यह धन की वृद्धि से आगे नहीं गई है। माल्थस ने संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या-वृद्धि से अनेक आंकड़े एकत्रित करके ही यह भविष्यवाणी की थी कि २५ वर्षों में किसी देश की निर्बाध गति से बढ़ती हुई जनसंख्या दुगुनी हो जाती है, परन्तु जैसा कि निम्नोक्त तालिका से स्पष्ट है इस देश में भी जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति औसत आय अधिक बढ़ी है—

वर्ष	डॉलर	वर्ष	डॉलर
१८५०	३०७	१८९०	१०३६
१८६०	५१४	१९००	१२२७
१८७०	७८०	१९०५	१३१०
१८८०	८७०		

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि ५५ वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति औसतन आय चौगुनी से काफी अधिक बढ़ी है जबकि इस अवधि में देश की जनसंख्या २३ मिलियन से ९२ मिलियन (चौगुनी) हो गई है। अतएव आलोचकों का कथन है कि माल्थस द्वारा प्रस्तुत यह भविष्यवाणी मिथ्या है कि जनसंख्या की अबाध गति से वृद्धि देश में भुखमरी, निर्धनता, बेकारी आदि को जन्म देगी। यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या माल्थस का जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त सारहीन है? प्रो० जीद एण्ड रिस्ट ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा है कि "हम सोचते हैं कि यह कहना सत्य है कि नियम अब भी अखण्ड रहेगा लेकिन इससे उसने जो निष्कर्ष निकाले वे सत्य नहीं हैं। इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि सभी किस्म के जीव, मानव प्रजाति को सम्मिलित करते हुये, ज्यामितीय दर से बढ़ते हैं। यदि उनकी वृद्धि पर कोई नियंत्रण न लगाया जाय तो यह वृद्धि सभी सीमाओं को पार कर जायेगी। दूसरी ओर औद्योगिक उत्पादकों की वृद्धि निश्चित रूप से उत्पादकों को नियमित करने वाली अनेक दशाओं से अर्थात् श्रम, पूंजी,

माल की मात्रा तथा स्थान आदि से परिमित होती है।"[1]

(ग) माल्थस के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये आलोचकों ने कहा है कि माल्थस ने कामेच्छा (Sexnal Instinct) और प्रजनन इच्छा (Reproductive Instinct) को एक समान मान लिया है जबकि ये दोनों पूर्णतया भिन्न प्रवृत्तियों से शासित होती हैं। कामेच्छा एक तरह की पाशविक प्रवृत्ति है जिसे रोकना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर होता है, परन्तु प्रजनन इच्छा सामाजिक एवं धार्मिक दशाओं के अनुसार और विभिन्न स्थान और कालों में भिन्न-भिन्न रह सकती है और इसे मनुष्य अनेक कृत्रिम उपायों द्वारा रोक सकता है।[2]

(घ) प्रो० कैनन (Cannan) ने माल्थस के जनसंख्या-सिद्धांत की आलोचना करते हुए लिखा है कि जनसख्या और खाद्य-सामग्री के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। अपनी बात की पुष्टि के हेतु कैनन ने इंगलैण्ड का उदाहरण प्रस्तुत किया है और बताया है कि वहां पर केवल १/६ जनसख्या के भरण–पोषण के लायक ही खाद्यान्न उत्पन्न होता है फिर भी माल्थस द्वारा बताये प्राकृतिक प्रकोपों (भुखमरी, निर्धनता, महामारी, अकाल) को नहीं पाया जाता क्योंकि इंगलैण्ड अपने कारखानों में निर्मित पक्के माल को विदेशी बाजारों में बड़ी मात्रा में खपाता है और इसके बदले मे वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के हेतु खाद्य-सामग्री प्राप्त कर लेता है। फिर यह भी सत्य है कि विश्व की जनसख्या के भोजन का एक बड़ा भाग अण्डा, मांस और मछली है जिनके महत्व को माल्थस ने एक एकदम भुलाकर अपने दृष्टिकोण को केवल खेतों मे उत्पन्न होने वाली फसलों तक ही सीमित रखा है।

(ड) माल्थस ने मानवीय दुखों का पूर्ण उत्तरदायित्व मनुष्य पर सौंप कर यह सुझाव दिया था कि निर्धन व्यक्तियों को विवाह नहीं करना चाहिये। माल्थस के इस विचार की आलोचना करते हुए मार्क्सवादी लेखकों ने कहा है कि माल्थस ने निर्धनों के साथ अत्याचार बरता है क्योंकि उनकी निर्धनता के लिये वे स्वयं उत्तरदाई नहीं है वरन् इसके लिये समाज और धन का विषम वितरण उत्तरदाई है। यह तो ठीक है कि अशिक्षा, अदूरदर्शिता एवं मनोरंजन के साधनों के अभाव के कारण निर्धन परिवारों में अधिक बच्चे पैदा होते है, परन्तु यह भी सत्य है कि यदि समाज मे धन के वितरण की विषमता को दूर कर दिया जाये तो इस प्रकार के परिणाम होने की सम्भावना मिथ्या हो सकती है। इसी आधार पर कुछ लेखकों ने कहा है कि वर्तमान समय में किसी देश में जनसंख्या की समस्या संख्या की नहीं है वरन् धन के असमान वितरण की है।

(च) आलोचकों का कथन है कि जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रतिपादन मे माल्थस आवश्यकता से अधिक निराशावादी बन गया है तथा उसने भविष्य मे होने वाली विज्ञान की प्रगति एवं उसके फलस्वरूप कृषि, उद्योग, यातायात के क्षेत्रों मे होने वाली प्रगति की आशा को एकदम गवा दिया है। माम्बर्ट (Mombert) ने बताया है कि मनुष्यों का ऊंचा जीवन-स्तर जन्म-दर को घटाकर जनसंख्या की वृद्धि को रोकने में अच्छा काम करता है।

(छ) जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के हेतु माल्थस द्वारा आत्म संयम की गई जोरदार वकालात भी व्यवहारिक सिद्ध नहीं होती। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक आयु तक लड़के-लड़की को अविवाहित रखना और विवाह हो जाने पर उन्हें परस्पर मिलने न देने का उनके चरित्र, स्वास्थ्य और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जथार और बेरी के शब्दों में, "विवाहित दम्पत्ति के लिए आत्म संयम की बात करना कड़वी गोली निगलने के समान है।"

प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार, "नि.सन्देह माल्थस के जनसंख्या-सिद्धांत में कुछ त्रुटियां अवशेष रह गई हैं जिसके कारण इस सिद्धांत को समझने मे कुछ भ्रांतियां हो जाती हैं।"[1] इसी प्रकार प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने लिखा है कि "माल्थस के जनसंख्या-सिद्धांत का कितना ही विरोध उत्पन्न क्यों न हो गया हो, फिर भी उसकी शिक्षाएं आर्थिक विज्ञान का आवश्यक अंग बन गई हैं।"[2] माल्थस ही वह प्रथम विचारक था जिसने विद्वानों को सामाजिक समस्याओं पर विचार करने

1 "Undoubtedly some of the short comings of Malthu's logic are to be condemned as being due to his effort to attain a concise and forcible statement, which may be considered a factor in the misunderstanding of his doctrine" —Prof. Haney,

2 "Whatever opposition Malthus's doctrines may have aroused, his teaching has long since become a part and parcel of economic science," —Gide &

को आकर्षित किया। यद्यपि माल्थस द्वारा प्रयुक्त आँकड़ों का आज विशेष महत्व नहीं है, फिर भी माल्थस ने आँकड़ों के प्रयोग द्वारा आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में आँकड़ों का महत्व प्रदर्शित किया है। माल्थस ने स्मिथ के इस कथन को असत्य ठहराया कि प्रकृति द्वारा सब कुछ हितकर किया जाता है। प्रकृति के विनाशकारी रूप को सामने रखकर माल्थस ने मनुष्य जाति को यह सुझाव दिया है कि वह प्रकृति के सहारे पर न रहकर स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान की खोज करे। माल्थस "जनसंख्या" जैसी सामाजिक समस्या पर विचार प्रस्तुत करने वाला प्रथम व्यक्ति था, इसीलिए उसे जनसंख्या-विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है।[1]

नव-माल्थसवाद (Neo–Malthusianism)—आधुनिक युग में भारत, चीन आदि अनेक देशों के सम्मुख जनाधिक्य (Over–population) की समस्या विद्यमान है तथा जनसंख्या पर नियन्त्रण एवं संतति-निरोध (Birth Control) का विचार एक सामान्य सी बात हो गई है। संतति-निरोध का अर्थ किसी भी शारीरिक, रासायनिक, यान्त्रिक एवं शल्य चिकित्सात्मक ढंग से किसी स्वस्थ स्त्री-पुरुष के समागम पर भी गर्भ रहने में बाधा पहुंचाने से है। संतति-निरोध की प्रक्रिया के प्रचारकों को ही आजकल नव-माल्थसवादियों की संज्ञा दी जाती है जिसके युग का प्रारम्भ सन् १८८४ से होता है जबकि डा० ड्रायसडेल (Drysdale) की पुस्तक "सामाजिक विज्ञान के तत्व" (Elemants of Social Scieuce) प्रकाशित हुई थी तथा माल्थस-सभा (Malthusion League) की स्थापना हुई थी। नव-माल्थवादी माल्थस से निम्नोक्त बातों में भेद रखते हैं :—

(i) थॉमस रॉबर्ट माल्थस संभोग की इच्छा (Sexnal Desire) तथा

(i) माल्थस ने सम्भोग की इच्छा को आत्म संयम (Self-Restraints) द्वारा नियन्त्रित करने का सुझाव दिया है, जबकि नव माल्थसवादियों का कथन है कि संभोग की इच्छा प्राकृतिक एवं पाशविक प्रवृत्ति द्वारा शासित होती है जिसको नियंत्रित करने से व्यक्ति के स्वास्थ्य, चरित्र और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इस तरह सम्भोग की इच्छा का किसी भी तरह निराकरण नहीं किया जा सकता।

(ii) माल्थस के विचार में जन-वृद्धि को रोकने की दिशा में संतति-निग्रह पदार्थों (Contraceptives) का प्रयोग उचित नहीं था और उनके स्थान पर उसने आत्म संयम अपनाने को महत्व दिया है। इसके विपरीत नव-माल्थसवादी विचारकों ने संतति निग्रह पदार्थों के प्रयोग की वकालात की है क्योंकि इनके प्रयोग द्वारा व्यक्ति प्रकृतिदत्त संभोग की इच्छा को भी तृप्त कर सकते हैं और साथ ही साथ जनसंख्या की वृद्धि को भी नियन्त्रित किया जा सकता है। नव माल्थसवादियों के मतानुसार संतति-निरोध पदार्थों का प्रयोग समाज के सभी तरह के हेतु आवश्यक है क्योंकि इससे—(क) अविवाहित व्यक्तियों द्वारा किए गए सम्भोग सम्बन्धी असामाजिक कार्य छिपाये जा सकते हैं। (ख) विवाहित दम्पत्ति का जीवन अधिक सुखकारी बन सकता है क्योंकि इन साधनों के अपनाने से प्रजनन नहीं होता जिससे नारी के सौंदर्य पर कम आघात पहुँचता है। (ग) वेश्यागमन आदि कार्यों में इन साधनों का सहारा लिया जा सकता है। (घ) किसी सीमा तक संतति निरोध करके आर्थिक समस्या की गुत्थी को सुलझाया जा सकता है तथा (ङ) राष्ट्र की उन्नति हो सकती है।

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने माल्थस एवं नव-माल्थसवादियों के विचारों में निहित उक्त भिन्नता को देखते हुये ही यह कहा है कि, यह विश्वास करना तर्कपूर्ण है कि यदि आज माल्थस जीवित होता तो वह किसी भी तरह नवमाल्थसवादियों के विचारों का समर्थक न होता। वह अपनी इच्छापूर्वक अपने अनुयाइयों के सतत संभोगिक कपटों को, जोकि व्यक्ति को उन दायित्वों से मुक्त कर देते हैं जोकि उसे प्रकृति ने सौंपे हैं, क्षमा नहीं करता।[1] प्रो० जीड एन्ड रिस्ट के इस कथन में कितनी सत्यता निहित है यह निम्नोक्त तर्कों से आंकी जा सकती है—

(अ) यद्यपि माल्थस ने अपने "निबन्ध" के प्रथम संस्करण में केवल आत्म संयम का ही समर्थन किया है तथा काम-प्रवचना (Sexual Frauds) का घोर विरोध किया है, परन्तु "निबन्ध" के दूसरे संशोधित संस्करण में वह आत्म संयम (Self-Rastraint) के स्थान पर विवेक पूर्ण नियन्त्रण (Prudential Check) को

1 "There is reason to believe, however, that were Malthus now alive he would not be a Neo-Malthusion. He would not have willingly pardoned his disciples the perpetration of sexual frauds which enable man to be freed from the responsibilites which nature intended him to bear."

— Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 1

वकालात करने लगता है [1]।

(ब) माल्थस को स्वयं इस बात का भ्रम था कि उसके द्वारा सुझाए गए आत्म संयम के उपाय को मानने वाले बहुत कम व्यक्ति होंगे और यही कारण है कि उसने धर्म और तर्क (Religion and Reason) का सहारा लिया।[2] जोकि इस बात का द्योतक है कि माल्थस की दृष्टि में भी उनके विचार इस तरह के नहीं थे कि व्यक्ति हर्षपूर्वक उनका स्वागत करेंगे और इसीलिए उन्होंने व्यक्तियों के सबसे कोमल तन्तु धर्म का सहारा लिया।

(स) जिस समय माल्थस ने अपने "निबन्ध" की रचना की वह पूर्ण आदर्शवाद का युग था। परन्तु समय के परिवर्तन ने आज व्यक्ति की समस्त विचारधाराओं को यथार्थवादी बना दिया है। आज के युग में तो उस कैथालिक चर्च में डा० स्टोन (Stone) द्वारा प्रतिपादित से तालवद्ध क्रिया (Rhythmic Method) को अपनाने का सुझाव दिया जाता है, जिस चर्च में बैठकर माल्थस ने आत्म संयम (Self-Restroint) पर बल दिया था।

उक्त तर्कों से स्पष्ट है कि प्रो० जीड एन्ड रिस्ट का यह कथन भ्रमात्मक है कि यदि आज माल्थस जीवित होता तो वह नव-माल्थसवादियों के विचारों का किसी भी तरह समर्थक न होता। वस्तुत: नव-माल्थसवादियों का यही कथन सत्य प्रतीत होता है कि वे माल्थस के पक्के अनुयायी हैं।[3]

माल्थस का लगान सिद्धांत (Malthusian theory of Rent):—यद्यपि आर्थिक विज्ञान में माल्थस का नाम जनसंख्या के सिद्धांत के साथ ही प्रसिद्ध है, तथापि उनका लगान सिद्धांत भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। माल्थस की पुस्तक 'लगान की प्रकृति एवं विकास की जाँच' (An Enguiry into the Nature and Progress of Rent) में माल्थस के लगान संबंधी विचार ज्ञात होते हैं। अन्य व्यवसायों की अपेक्षा माल्थस ने कृषि व्यवसाय को अधिक महत्व प्रदान किया क्योंकि

---

1 "It is clearly our duty to acquire a habit of gratifying our passion only in that way which is unattended with evil." "I have not the slightest hesitation in saying that the prudential cheek to marriage is better than premature movality." —Malthus.

2 "To the Christian I would say that the scriptures most clearly and precisely point it out to us as our duty to restrain our passions within the bounds of the reason." —Malthus.

3 "The Neo-Malthusions persist in regarding themselves as his disciples because they think that he cleaıly demonstrated-despite himsslf, perhaps. That the exercise of the blind instirct of reprodu- on must result in the multipication of human beings who are y want and disease and liable to sudden extinction oe slow tion, and that the only way of avoıding this is to check the t." —Gide & Rist, Ibid. P. 149.

एक तो कृषि से जनसंख्या के भरण-पोषण के हेतु खाद्य-सामग्री उपलब्ध होती है और दूसरे इसमे उद्योग-धन्धो को चलाने के हेतु कच्चा माल मिलता है। आगे चल कर उसने बताया कि सभी भूमिया जो खेती के काम मे प्रयुक्त हो रही हैं समान रूप से उपजाऊ नही होती और व्यक्ति सर्वप्रथम अधिक उर्वरा भूमियो पर ही खेती करते है।[1] माल्थस ने बताया कि भूमि पर जैसे-जैसे पूंजी की अधिक इकाइया लगाई जायेंगी उनमे उत्तरोत्तर कम मात्रा मे उपज प्राप्त होगी। इस प्रकार उसके मतानुसार लगान भूमि की उदारता के कारण एक प्रकार का अतिरेक (Surplus) है जोकि भूमि की उर्वराशक्ति के अनुपात मे ही बढ़ता है। माल्थस ने स्मिथ और जे० बी० से के इस विचार का कि "एकाधिकार द्वारा ऊंची कीमतो का ही परिणाम लगान है" खण्डन तीन आधारो पर किया (क) उसने बताया कि भूमि में एक ऐसा प्राकृतिक गुण निहित है कि इसमे जितनी श्रम और पूंजी लगाई जाती है उसके मूल्य की अपेक्षा अधिक मूल्य की उपज प्राप्त होती है। इस तरह उत्पादन मे से लागत व्यय घटा देने पर ही एक प्रकार की बचत प्राप्त होती है जोकि लगान के लिए आवश्यक है। (ख) चूंकि भूमि मे उत्पादित कुछ वस्तुए इस किस्म की होती है कि उनका उपभोग करने से पूर्व मनुष्य को कुछ भी नही करना पड़ता अर्थात् वे मानवीय उपभोग के हेतु भूमि मे स्वय ही तैयार हो जाती हैं, इसलिए भूमि को को मशीन की तरह नही माना जा सकता और उस पर पूर्ण एकाधिकार भी नही माना जा सकता। (ग) माल्थस का कथन है कि एकाधिकार के विचार के अनुसार उत्पादित वस्तु का मूल्य एकाधिकारी द्वारा बढा दिया जाता है और यह बढ़ा हुआ मूल्य वास्तविक लागत व्यय से अधिक होता है। इस प्रकार इन दोनो का अन्तर ही भूमि का लगान होता है। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि माल्थस के लगान सम्बन्धी विचार अपूर्ण तथा अवैज्ञानिक है।

माल्थस का अत्युत्पत्ति का सिद्धांत (Malthusian theory of over Production)—माल्थस के समकालीन विचारक जे० बी० से (J. B. Say) ने यह मत प्रतिपादित किया कि किसी वस्तु की माग ही उसकी पूर्ति को जननी है और इस कारण अत्युत्पत्ति की दशा का पैदा होना किसी भी तरह सम्भव नही है। माल्थस ने अपनी पुस्तक "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांत" (Principles of political Economy) मे जे० बी० से के इस मत का घोर विरोध करते हुए बताया कि किसी समय किसी वस्तु की प्रभावशाली मांग (Effective Demand) कम हो सकती है क्योंकि उसकी ऐसी प्रवृत्ति है, परन्तु उस वस्तु का उत्पादन तुरन्त कम करके पूर्ति को कम करना असुविधाजनक होता है जिसका परिणाम यह होता है कि उस वस्तु की मांग की अपेक्षा पूर्ति अधिक हो जाती है अर्थात अत्युत्पादन की

1 "The diminished numbers would, of course, cultivate principally the more fertile parts of their terr itory' and not be obliged in their more populous state, to apply to ungrateful soils."— [illegible]

दशा पैदा हो जाती है। माल्थस ने बताया कि व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग तो आवश्यक वस्तुओं के उपभोग पर व्यय कर देते हैं तथा शेष भाग का संचय कर लेते हैं तथा यह भी स्वाभाविक है कि किसी व्यक्ति की आय बढ़ने पर उसके व्यय के दोनों स्वरूपों (उपभोग और संचय) में वृद्धि हो जाए। माल्थस ने बताया कि धन के वितरण का प्रभाव एक बड़ी सीमा तक उपभोग और विनियोग पर पड़ता है। यदि समाज में धन का वितरण समान हो तो उपभोग बढ़ जाता है क्योंकि निर्धन व्यक्ति भी अपना अतिरिक्त धन वस्तुओं और सेवाओं की खरीदारी में व्यय कर देते हैं परन्तु समाज में धन के विषम वितरण की स्थिति में कुल उपभोग की मात्रा कम रहती है क्योंकि धनी वर्ग को तो यह सुविधा मिल जाती है कि वह एक बड़ी सीमा तक धन का संचय कर सकता है जबकि निर्धन वर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाता है। अपने विचारों के प्रतिपादन में माल्थस ने यह भी बताया कि संचय की मात्रा पर ही विनियोग की मात्रा निर्भर करती है और इन दोनों के द्वारा ही वास्तविक मांग का निर्धारण होता है। इस प्रकार संक्षेप में, माल्थस ने बताया कि समाज में धन के वितरण की विषमता के कारण समाज के धनी व्यक्ति तो अधिक मात्रा में संचय कर पाते हैं जिसके विनियोजन द्वारा उत्पादन के परिणाम में वृद्धि होती है; परन्तु दूसरी ओर निर्धन व्यक्तियों की आय बहुत कम होने के कारण उनकी मांग उत्पादन के अनुपात में नहीं बढ़ पाती है जिसका परिणाम यह होता है कि वास्तविक मांग कम रहने के कारण वस्तुओं की पूर्ति का स्टॉक बिना बिके रह जाता है और यहदशा अत्युत्पादन को जन्म देती है। अत्युत्पादन की स्थिति का निवारण करने के हेतु माल्थस ने दो सुझाव दिए – (क) जो व्यक्ति किसी भी तरह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहयोगी नहीं होते अर्थात अनुत्पादक उपभोक्ताओं (unproductive Consumers) पर सरकार को व्यय करना चाहिए ताकि उनकी वास्तविक मांग में वृद्धि हो सके तथा (ख) श्रमिकों की मजदूरी में कटौती की जाए।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में माल्थस का योगदान (Malthusian Contribution to History of Economic Thought):— प्रो० वी० एम० एब्राह्म के मतानुसार "इन सब योगदानों के सहित माल्थस का नाम अर्थशास्त्र में सदैव स्मरणीय रहेगा। यही वह व्यक्ति था जिसने जनसंख्या के विश्लेषणात्मक एवं सांख्यिक अध्ययन द्वारा जीवशास्त्रीय कारक का समावेश आर्थिक सिद्धान्त में किया। यह उपभोग, उत्पादन और वितरण पर अपने प्रभावों के एक विश्लेषण के द्वारा अपनाई गई। उसका अत्युत्पत्ति का सिद्धान्त तथा असामयिक लगान के सिद्धांत ने माल्थस के योगदानों का स्वरूप निर्धारित किया। क्लासिकल आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत उसका जनसंख्या का सिद्धान्त एक बड़े सिद्धान्त के सदृश्य माना गया। जनसख्या के नियंत्रण के हेतु जो तरीके उसने सुझाए उनसे निश्चित रूप से सामाजिक विचारधारा प्रभावित हुई। यद्यपि उसका जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त

विश्व की आर्थिक क्रियाओं के विकास के कारण विफल सिद्ध हुआ, तथापि भारत और चीन जैसे देशों में उसका सिद्धान्त अब भी सत्य सिद्ध होता है। परन्तु यह कहना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि माल्थस के सिद्धान्तों की बड़ी महानता, दूसरे क्लासिकल लेखक डेविड रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित अधिक निश्चित एवं ठोस सिद्धान्तों की महत्ता से ओझिल हो गई।"[1] अपने अत्युत्पत्ति के विचारों के प्रदर्शन में वास्तविक माग संबंधी विचार देकर माल्थस ने कीन्स (Keynes) के लिये एक उपयुक्त मार्ग का प्रशस्तीकरण किया जिस पर चलकर उसने अपने रोजगार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

---

1 "With all these contributions the name of Malthus will be ever remembered in ecooomics. It was he who introduced the biological factor into economic theory through his analytical and statistical stduy of population This was followed by an analysis of its effects on consumption, production and distribution. His theory of market glut, gluts in the capital accumulation, his theory of rent though anti-dated but superior to that of Ricardo along with his theory population, formed the contributions of Malthus. His theory of population was assimilated into the classical economic system as a major doctrine. The methods that he suggested for check in population definitely effected sbsequent social thinking. Even though his theory of population was falsified by the later developments in the economic activity of the world, countries like India and China still remain subjected to the sorrowful plight as outlined by the Reverend Mr. Malthus in the year 1798 But it was very unfortunate to note that the great significance theories of Malthus was over-shad-owed by the more concrete theories put forward by another great classical Davial Ricardo."

Prof. V. M. Abraham : History of Economic

५

डेविड रिकार्डो

(David Ricardo)

प्राक्कथन:—अर्थशास्त्र में स्मिथ से अगला महत्वपूर्ण नाम रिकार्डो का है तथा उससे चारों ओर इतना भयंकर विरोधाभास केन्द्रित है जितना किसी अन्य विद्वान के चारों ओर केन्द्रित नहीं हुआ। स्मिथ ने किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की तथा उसकी बुद्धिमानी और उदारता ने उसे विरोधाभास से बचा दिया। अत एव प्रत्येक अर्थशास्त्री, उसके विचार कुछ भी क्यों न हों, उसके होठों से निकलने वाले स्वरों को पकड़ने के हेतु उसके चरणों में बैठा पाया जाता है। परन्तु प्रणाली के प्रश्न की व्याख्या के सम्बन्ध में सदैव रिकार्डो के विरूद्ध आक्रमण किया जाता है और उस पर विज्ञान कल्पना लोक के फलहीन मार्ग पर ले जाए जाने का आरोप लगाया जाता है। रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त प्रत्येक मार्क्सवादी को व्यक्तिगत सम्पत्ति पर उसके सामान्य आक्रमण में एक लक्ष्य प्रदान करता है। रिकार्डो का मूल्य सिद्धान्त वर्तमान समाजवाद का प्रारम्भिक बिन्दु है।[1]

डेविड रिकार्डो का जन्म सन् १७७२ में लन्दन में हुआ था। इनके पिता लन्दन स्कन्द विनिमय (London Stock Exchange) के सदस्य थे। रिकार्डो ने अपनी छोटी आयु से ही व्यापार शुरू कर दिया और शीघ्र ही वह बैंकिंग और विनिमय की सूक्ष्मताओं से अवगत हो गया। विवाह के अवसर पर रिकार्डो का

---

[1] "Next to Smith, Recardo is the greatest name in economics,

उसने माता-पिता से अलग हो गया और उसने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया। रिकार्डो लन्दन की स्टाक एक्सचेंज का एक सदस्य बन गया और अल्पावधि में ही उसने काफी सम्पत्ति एकत्रित कर ली। प्रारम्भ में रिकार्डो का ध्यान बैंकिंग की समस्याओं पर आकृष्ट हुआ। फ्रांसीसी युद्ध के कारण बैंक-नोट के मूल्य में ह्रास हो गया। अतएव सन् १८१० में उसका प्रथम निबन्ध "सर्राफा की ऊँची कीमत-बैंक-नोटों की मुद्रा-ह्रास का एक प्रमाण" (The High Price of Bullion-a Proof of the Depreciation of Bank Notes) के नाम से प्रकाशित हुआ। सन् १८१७ में रिकार्डो का प्रमुख ग्रन्थ "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त" (Principles of Political Economy) प्रकाशित हुआ। सन् १८१९ में वह ब्रिटिश संसद का एक सदस्य निर्वाचित हुआ। १८२१ में रिकार्डो ने "राजनैतिक अर्थव्यवस्था क्लब" (Political Economy Club) की स्थापना की जो कि उस युग में आर्थिक विचारों का समन्वय करने के हेतु स्थापित प्रारम्भिक संघों में से एक था। सन् १८२२ में रिकार्डो की एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'कृषि का संरक्षण' (Protection of Agriculture) प्रकाशित हुई। सन् १८२३ में रिकार्डो का स्वर्गवास हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके समस्त लेखों को सावधानीपूर्वक एकत्रित किया गया तथा उसका तात्कालिक प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों माल्थस (Malthus), मैकलॉक (Mc Culloch) तथा जे० बी० से (J. B. Say) के साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया जो कि उसके सिद्धान्तों को समझने के हेतु विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों में, "रिकार्डो का सम्बन्ध मुख्य रूप से धन वितरण से रहा है। इस तरह उसने आर्थिक जांच के एक नवीन क्षेत्र को खोला जबकि उसके पूर्ववर्ती विचारक मुख्यतया उत्पादन के विश्लेषण में ही लगे रहे थे। राजनैतिक अर्थव्यवस्था की प्रधान समस्या ऐसे नियमों का निर्धारण करना है जिनके द्वारा वितरण को नियमित किया जाए। हम उत्पत्ति के साधनों के बीच त्रिपक्षीय आय के विभाजन अर्थात् भूमि के लगान, पूंजी के लाभ और श्रम की मजदूरी का कुछ ज्ञान रखते हैं। रिकार्डो ऐसे मार्ग का निर्धारण करना चाहता था जिसके अनुसार यह विभाजन किया जाए तथा ऐसे नियमों का प्रतिपादन करना चाहता था जिनके अनुसार प्रत्येक साधन की आय का अनुपात निश्चित किया जाए।"* इसी प्रकार प्रो० हेने ने लिखा है कि, "रिकार्डो के साथ

* "Speaking generally, Ricardo's chief concern is with the distribution of wealth. He was thus instrumental in opening up a new field to economic inquiry, for his predecessors ... gross of with production. ... this distribution is the prin ... "We have already some aquaintance with the tripartite division of revenues corresponding with ...

हम पहली बार वितरण की समस्या पर, उन कारणों की विस्तृत एवं वैज्ञानिक व्याख्या करने के दृष्टिकोण से जो कि समाज की सम्पूर्ण आय में से हिस्सों का निर्धारण करते हैं और जो कि कार्यशील समुदायों या वर्गों पर पहुँचते हैं, आते हैं।"[1] उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के हिस्सों के निर्धारण के सम्बन्ध में रिकार्डो ने स्वयं कहा है कि, "लगान, मजदूरी और लाभ की महान समस्या उन अनुपातों के निर्धारण के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है जिनके अन्तर्गत सम्पूर्ण उत्पादन का वितरण सम्पत्ति स्वामियों, पूंजीपतियों और कर्मचारियों में किया जाता है परन्तु यह मूल्य के सिद्धान्त के साथ निश्चित रूप से सम्बधित नहीं है।" (After all, the great problem of rent, of wages, or of profits might be elucidated by determining the proportions in which the total product is distributed between the proprietors, the capitalists, and the workers, but this is not necessarily connected with the doctrine of value.) निम्नोक्त में रिकार्डो के वितरण सिद्धान्त (लगान, मजदूरी और लाभ) की आलोनाचत्मक व्याख्या की गई है।

रिकार्डो का लगान सिद्धांत (Ricardo's theory of Rant):—रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित समस्त सिद्धान्तों में से लगान का सिद्धांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। निवाध्ववादी विचारकों (Physiocrats) ने लगान को विशुद्ध उत्पत्ति (Net Product) कहा जोकि उनके मतानुसार भूमि की उदारता और प्रकृति की देन ही परिणाम है। एडम स्मिथ (Adam Smith) ने भी लगान को प्रकृति की देन ही स्वीकार किया क्योंकि उसके मतानुसार भी प्रकृति दयावान है तथा मनुष्य उसी के सहयोग से कार्य करता है। स्मिथ के बाद माल्थस (Malthus) ने लगान सम्बन्धी विचारो का प्रतिपादन किया। माल्थस ने लगान को प्राकृतिक देन स्वीकार किया और बताया की लगान भौतिक एवं आर्थिक नियमों का परिणाम मात्र है। इस तरह माल्थस के मतानुसार लगान विभिन्न प्रकार के भू भागों की उर्वराशक्ति का अन्तर है जोकि भूस्वामी को मिलता है। इसके विपरित रिकार्डो ने लगान को भूमि की दया परिणाम स्वीकार नहीं किया। रिकार्डो के शब्दों में, "कृषिगत उत्पादन और उसके फलस्वरूप लगान का विचार क्योंकि प्रकृति कृषि की प्रक्रिया में मनुष्य के साथ सहयोग करती है, पूर्णतया मिथ्या है।'[2] उसने बताया कि लगान केवल

1 "With Ricardo, we for the first time come to grips with the problem of distribution, in the sense of a comprehensive scientific attempt to deal with the causes that determine the shares in the total income of the society which go to the functional groups or classes."

—Prof. Haney : History of Economic Thought P. 291.

2 "The notion of agriculture yielding a produce and a rent in consequence, because nature concurs with human industry in the process of cultivation, is a mere fancy." —Ricardo.

तभी उत्पन्न होता है जबकि जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप निम्न श्रेणी की भूमि या अपेक्षाकृत कम लाभदायक स्थिति की भूमि खेती के काम में आने लगती है"[1] रिकार्डो ने बताया कि जब प्रथम श्रेणी की भूमि पर खेती करके बढ़ती हुई जन-संख्या की मांग की पूर्ति सम्भव नहीं होती है तो द्वितीय श्रेणी की भूमि पर, जोकि प्रथम श्रेणी की भूमि की अपेक्षा कम उपजाऊ होती है, खेती की जाती है और इस दशा में प्रथम श्रेणी की भूमि पर लगान उत्पन्न होता है। अतएव रिकार्डो के मता-नुसार लगान प्रकृति की उदारता का परिणाम न होकर उसकी कंजूसी का परिणाम है क्योंकि प्रकृति ने प्रथम श्रेणी की भूमि कम मात्रा में प्रदान की है।

"लगान" शब्द की व्याख्या करते हुए रिकार्डो ने बताया कि, "लगान भूमि की उत्पत्ति का वह भाग है जोकि भूस्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के उपयोग के बदले में दिया जाता है" (Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the original and indestructible powers of the soil)। इस प्रकार रिकार्डो की लगान सम्बन्धी परिभाषा से स्पष्ट है कि यद्यपि वह लगान को प्रकृति की दया का परिणाम नहीं मानता तथापि वह माल्थस द्वारा प्रतिपादित इन विचारों से अवश्य सहमत है अर्थात लगान विभिन्न भूभागों के उत्पादन का अन्तर है तथा भूमि में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Return) लागू होता है। रिकार्डो ने बताया कि जब वर्तमान समय में जोती जाने वाली भूमि के उत्पादन से जनसंख्या की खाद्यान्न सम्बन्धी आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती तब या तो नई भूमि पर खेती की जाती है अथवा यदि नई भूमि उपलब्ध नहीं है तो उसी भूमि पर अधिक पूंजी और श्रमकी मात्रा जुटाई जाती है। इस तरह रिकार्डो के मतानुसार बढ़ती हुई जनसंख्या के हेतु विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) अथवा गहरी खेती (Intensive Cultivation) की जाती है और दोनों ही दशाओं में लगान उत्पन्न होता है।

मान लिजिये किसी नए उपनिवेश की जनसंख्या बहुत कम है और भूमि का क्षेत्र काफी विस्तृत है। इस दशा में यहां के निवासी सर्वप्रथम सर्वाधिक उर्वर भूमि पर खेती करना प्रारम्भ करेंगे अर्थात प्रथम श्रेणी की भूमि पर खेती की जाएगी। परन्तु शनैः शनैः इस उपनिवेश की जनसंख्या बढ़ती जाएगी और इसके फलस्वरूप प्रथम श्रेणी की भूमि से इतनी मात्रा में खाद्यान्न प्राप्त नहीं हो सकेगा कि समस्त जनसंख्या की मांग को पूरा किया जा सके। अतएव इस दशा में द्वितीय श्रेणी की भूमि पर जोकि अपेक्षाकृत कम उर्वर होगी, खेती की जाएगी। चूंकि इन दोनों श्रेणियों की उर्वरा शक्ति में अन्तर है, इसलिए यह भी स्वाभाविक है कि इन दोनों

1 "Rent only appears when the progress of population [illegible] into cultivation land of inferior quality or less ad[illegible] situated."

के उत्पादन में भी अन्तर होगा। यही उपज का अन्तर (Surplus) प्रथम श्रेणी का लगान होता है जोकि भूस्वामी को मिलेगा तथा द्वितीय श्रेणी की भूमि सीमांत (Margiual Laud) अथवा लगानरहित भूमि (Rentless Land) कहलाएगी। इसी प्रकार जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों की भूमियों पर खेती की जाएगी और उत्तरोत्तर द्वितीय और तृतीय श्रेणी की भूमियों से भी लगान मिलने लगेगा तथा चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमांत भूमि कहलाएगी। रिकार्डो के शब्दो में "जनसंख्या की वृद्धि के प्रत्येक चरण के साथ साथ जिसके कारण कोई देश अपेक्षा कृत कम उपजाऊ भूमि पर खेती करने को बाध्य होगा ताकि यह खाद्य की पूर्ति को बढ़ा सके, सभी अधिक उपजाऊ भूमि पर लगान उत्पन्न होगा।"* विस्तृत खेती में लगान उत्पन्न होने की प्रक्रिया को एक रेखा चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है:—
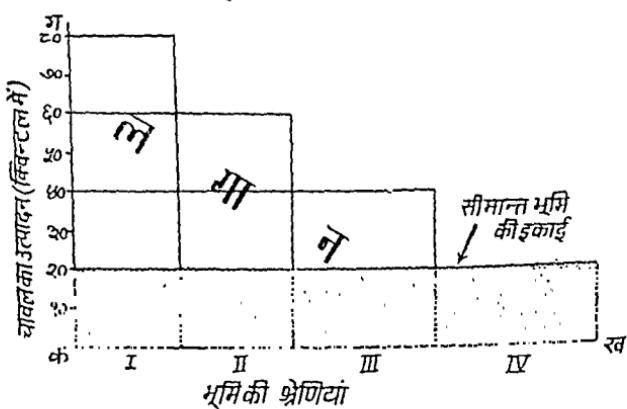
चित्र १

उक्त रेखा चित्र में 'क ख' आधार रेखा पर भूमि की विभिन्न श्रेणियां तथा 'क' रेखा पर चावल की उत्पत्ति (क्विन्टलस में) दिखाई गई है। सर्वप्रथम पहली श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है जिसमें ८० क्विन्टल चावल का उत्पादन होता है। जनसंख्या बढ़ने पर उत्तरोत्तर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की भूमियों पर खेती की जाने लगती है जिनमें क्रमशः ६०, ४० और २० क्विन्टल चावल का उत्पादन होता है। रिकार्डो के मतानुसार विभिन्न श्रेणियों की भूमियों की उपज का अन्तर ही लगान का कारण है। इस दशा में चतुर्थ श्रेणी की भूमि सीमान्त या रहित कहलाएगी क्योंकि उससे उतना ही पैदा होगा जितना कि उसमें श्रम के रूप में व्यय किया गया है, परन्तु प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी की

1 "With every step in the progress of population, which shall bligc a country to have recourse to land of worse quality, to enable it to raise its supply of food, rent on all the more fertile land will rise,"
—Ricard.

भूमियों से क्रमशः ६० क्विन्टल, ४० क्विन्टल और २० क्विन्टल का अतिरेक प्राप्त होता है जो कि रिकार्डो के मतानुसार इन तीनों श्रेणियों की भूमियों का लगान है। रेखा-चित्र में रेखांकित भाग प्रत्येक भूमि पर लगे लागत-व्यय का द्योतक है।

विस्तृत खेती की तरह गहरी खेती में भी लगान उत्पन्न होता है। गहरी खेती की परिस्थिति में थोड़ा अन्तर यह होता है कि जब एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की माग बढ़ती है, तब दूसरी ओर भूमि सीमित होने के कारण उसी पर अधिक मात्रा में पूंजी और श्रम की इकाइयाँ जुटाई जाती हैं। इस दशा में कुल उत्पत्ति तो बढ़ती है परन्तु श्रम व पूंजी के प्रत्येक उत्तरोत्तर इकाई से क्रमशः घटती हुई दर पर उत्पत्ति होती है अर्थात् क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Return) लागू होता है। श्रम व पूंजी की सीमान्त इकाई के उत्पादन तथा उससे पूर्व की इाइयों के उत्पादन का अन्तर ही लगान है जो कि निम्नोक्त रेखाचित्र से भी दर्शाया जा सकता है—
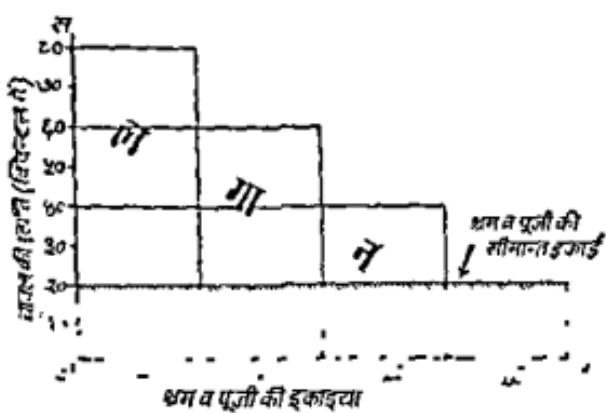
चित्र २

उक्त रेखाचित्र मे 'अ ब' आधार रेखा पर श्रम व पूंजी की विभिन्न इकाइयां तथा 'अ स' रेखा पर चावल की उत्पत्ति क्विन्टल मे दिखाई गई है। श्रम व पूंजी की प्रथम इकाई लगाने से भूमि में ८० क्विन्टल चावल का उत्पादन होता है। जनसंख्या बढ़ने पर (चूंकि भूमि की मात्रा सीमित है) उत्तरोत्तर, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रम व पूंजी की इकाइयां जुटाई जाती हैं जिनसे क्रमशः ६०, ४० और २० क्विन्टल चावल का उत्तरोत्तर उत्पादन होता है। रिकार्डो के मतानुसार श्रम व पूंजी की विभिन्न इकाइयों की उपज का अन्तर ही लगान का कारण है। इस दशा में श्रम व पूंजी की चौथी इकाई सीमान्त इकाई कहलाएगी क्योंकि इससे उतना ही पैदा होता है जितना कि उसमे व्यय किया गया है, परन्तु श्रम व पूंजी की प्रथम, द्वितीय और तृतीय इकाइयों से क्रमशः ६० क्विन्टल ४० क्विन्टल और २० क्विन्टल चावल का अतिरेक प्राप्त होता है जो कि रिकार्डो के

इन तीनों इकाइयों का लगान है। रेखाचित्र में रेखांकित भाग प्रत्येक इकाई पर लगे लागत-व्यय का द्योतक है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट आभास होता है कि इस सिद्धान्त की क्रियाशीलता के हेतु कुछ आवश्यक दशाओं की उपलब्धि आपेक्षित होती है अर्थात—(क) जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि, (ख) भूमि के उत्पादन में क्रमागत ह्रास नियम की क्रियाशीलता, (ग) सीमान्त भूमि अथवा श्रम व पूंजी की सीमान्त इकाई के लागत-व्यय द्वारा फसल की कीमत का निर्धारण होना, (घ) भूस्वामियों और किसानों के बीच स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का पाया जाना, (ङ) प्रत्येक श्रेणी की भूमि अथवा श्रम व पूंजी की प्रत्येक इकाई से उत्पन्न अनाज को एक ही मूल्य पर वेचा जाना, (च) भूमि के विभिन्न टुकड़ों की उर्वरता में अन्तर पाया जाना, आदि।

लगान और कीमत का सम्बन्ध निर्धारित करते हुये माल्थस ने बताया कि लगान का प्रभाव कीमत पर नहीं पड़ता वरन् अनाज की कीमत ही लगान को प्रभावित करती है। "अनाज का मूल्य इसलिये ऊंचा नहीं है क्योंकि लगान अदा किया जाता है वरन् लगान इसलिये अदा किया जाता है क्योंकि अनाज का मूल्य ऊंचा है।" (Corn is not hight because rent is paid, but rent is paid because corn is high – Ricardo)। रिकार्डो का मत है कि प्रत्येक वस्तु की कीमत उसपर व्यय किये गये श्रम के बराबर होती है। अतएव सीमान्त भूमि की उत्पादन-लागत (Cost of Production of Marginal land) के अनुसार ही उपज की कीमत का निर्धारण होगा और इसी कारण सीमान्त भूमि लगान रहित भूमि होगी क्योंकि उससे जो कुछ प्राप्त होता है वह उस पर लगे लागत-व्यय के बराबर है और इस तरह सीमान्त भूमि से कोई अतिरेक (लगान) प्राप्त नहीं होता। चूंकि रिकार्डो ने कीमत के द्वारा लगान का निर्धारण किया है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वे सब बातें जो कि खेती के पदार्थों के मूल्य पर प्रभाव डालती हैं, वे निश्चियात्मक रूप से लगान को भी प्रभावित करेंगी। इस प्रकार रिकार्डो के मतानुसार भूमि के लगान को जनसंख्या की वृद्धि (Increase in Population), खेती सम्बन्धी सुधार (Agricultural Improvements) यातायात के सुधरे हुये साधन (Improved Means of Transportation) तथा सभ्यता का सामान्य विस्तार (General Extension of Civilization) आदि तत्व अधिक प्रभावित करते हैं।

यहां पर रिकार्डो के लगान सिद्धान्त (Ricardian Theery of Rent) तथा [illegible]वादियों के विशुद्ध उत्पत्ति के सिद्धान्त (Physiocratic Theory of Net [illegible]) के अन्तर का स्पष्टीकरण भी सप्रसांगिक है :— (क) निर्बाधवादियों ने [illegible] उत्पत्ति का विचार उत्पादन की समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया [illegible] डेविड रिकार्डो ने लगान के सिद्धान्त का प्रतिपादन वितरण [illegible] समस्याओं के संदर्भ में किया है। (ख) निर्बाधवादियों के मतानुसार भूमि

के उत्पादन में से लागत-व्यय को घटाकर जो कुछ शेष रहता है वही विशुद्ध अथवा वास्तविक उत्पादन है। इसके विपरित रिकार्डो के मतानुसार लगान उत्पत्ति का वह भाग है जो कि भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के उपयोग के बदले में भूस्वामी को दिया जाता है। (ग) निर्वाधवादियों के मतानुसार समाज की समृद्धि अधिकतम शुद्ध उत्पादन पर निर्भर करती है। (The prosperity of mankind is bound up with a maximum Net Proctuct)। इसके विपरीत रिकार्डो ने बतलाया कि लगान की अभिवृद्धि समाज के लिए कल्याणकारी नहीं है क्योंकि भूस्वामी का हित उपभोक्ता और उत्पादक के हितों के विरुद्ध होता है (The interest of land lord is always opposed to that of the consumer and of the manufacturer) (घ) निर्वाधवादियों के मतानुसार प्रकृति दयालु है और प्रकृति की दया के कारण ही विशुद्ध-उत्पत्ति की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत रिकार्डो ने प्रकृति को कजूस बताया और कहा कि लगान इसलिए उत्पन्न होता है कि सभी भूमियां समान रूप से उर्वर नहीं हैं (ङ) निर्वाधवादियों के मतानुसार भूमि पर खेती करने वाले सभी कृषकों को बचत (Suaplus) प्राप्त होती है क्योंकि इस क्रिया करने में प्रकृति उसका सहयोग करती है। इसके विपरीत रिकार्डो ने बताया कि सीमांत-भूमि (Marginal Land) पर खेती करने वाले किसान को किसी तरह भी बचत नहीं होती क्योंकि सीमान्त भूमि से उतने ही मूल्य का उत्पादन प्राप्त होता है जितने मूल्य का उस पर श्रम-पूंजी व्यय किया गया है। (च) निर्वाधवादियों के मतानुसार विशुद्ध-उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों के हेतु पारस्परिक संघर्ष के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अनुसार भूस्वामी, उपभोक्ता और उत्पादक तीनों वर्गों के हित परस्पर विरोधी हैं। (छ) निर्वाधवादियों के मतानुसार विशुद्ध-उत्पत्ति एक प्रकार की अर्जित सम्पत्ति है जबकि रिकार्डो के मतानुसार लगान भूस्वामी की एक अनर्जित आय है जिसकी प्राप्ति के हेतु उसे कुछ भी नहीं करना पड़ता। (ज) निर्वाधवादियों ने बताया कि कृषि सम्बन्धी तरीकों को सुधार के विशुद्ध-उत्पत्ति के परिमाण को बढ़ाया जा सकता है परन्तु रिकार्डो के मतानुसार कृषि सम्बन्धी तरीकों में सुधार करने से लगान की मात्रा कम हो जायगी। (झ) निर्वाधवादियों ने जनसंख्या की वृद्धि का विशुद्ध उत्पादन की धारणा से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। इसके विपरित रिकार्डो ने लगान की उत्पत्ति का मूल कारण जनसंख्या को बताया। उसने बताया कि जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न की मांग बढ़ती है जिसे पूरा करने के हेतु अपेक्षाकृत घटिया किस्म की भूमि पर खेती की जाती है और इसके कारण ही उत्तम किस्म की भूमि पर लगान उत्पन्न हो जाता है। (ञ) निर्वाधवादी विचारकों ने विशुद्ध-उत्पत्ति और अनाज के मूल्य में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया, परन्तु रिकार्डो ने बताया कि लगान का प्रभाव अनाज की कीमत पर नहीं पड़ता वरन् अनाज की कीमत ही लगान को प्रभावित करती है।

आलोचना—रिकर्डो का लगान सिद्धान्त विद्वत समाज के हेतु विवाद का विषय रहा है। इस सिद्धान्त के विरुद्ध उठाई जाने वाली मुख्य आपत्तियां निम्नोक्त रही हैं:—

(i) कैरे (Carey) तथा रोश्चर (Roscher) आदि विद्वानों ने रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा कि रिकार्डो का यह कथन सत्य नहीं है कि नए उपनिवेश में सर्वप्रथम सर्वाधिक उपजाऊ भूमि पर खेती की जाएगी। आलोचक-विद्वानों ने बताया कि सर्वाधिक उर्वरा भूमि तो घास-फूंस तथा वृक्षों से पहले ही आच्छादित रहती है जिसको साफ करने में काफी परिश्रम और व्यय की आवश्यकता होती है। अतएव नए उपनिवेश में सर्वप्रथम घटिया क़िस्म की भूमि पर ही खेती की जाएगी।

(ii) फ्रांसीसी विद्वान बस्टियाट (Bastiat) के मतानुसार लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियां (Original and Industuctable Powers of the Soil) के कारण नहीं मिलता वरन् भूस्वामियों को इस कारण मिलता है क्योंकि उन्होंने भूमि को साफ करके कृषि योग्य बनाने में श्रम व पूंजी का व्यय किया है। आलोचकों के मतानुसार भूमि की उर्वराशक्ति मौलिक एवं अविनाशी नहीं है।

(iii) प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के मतानुसार रिकार्डो का यह प्रमाण ठोस नहीं है कि विभिन्न उर्वराशक्ति की भूमियों की उपज सदैव एक कीमत पर बिकेगी अथवा एक समान होगी।[1]

(vi) वर्तमान युग में ऐसी कोई भी भूमि दिखाई नहीं पड़ती जो कि लगान-रहित हो। इस प्रकार रिकार्डो की सीमान्त-भूमि अथवा लगान रहित भूमि की धारणा केवल काल्पनिक एवं मिथ्या है।

(v) जॉन राबिन्सन (John Robinson) के मतानुसार लगान केवल भूमि से ही प्राप्त नहीं होता वरन् वह तो उत्पत्ति के सभी साधनों से प्राप्त होता है। राबिन्सन के शब्दों में, "लगान उत्पत्ति के किसी विशेष साधन (केवल भूमि ही नहीं) को काम में लगाने के हेतु आवश्यक न्यूनतम व्यय के ऊपर अर्जित अतिरेक है।"

(vi) आलोचकों का कथन है कि रिकर्डो के लगान-सिद्धान्त की यह मान्यता दोषपूर्ण है कि कृषि-भूमि में सदैव ही क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होता है। वस्तुतः सिंचाई की सुविधा, उत्तम किस्म के बीज के इस्तेमाल, पर्याप्त मात्रा में खाद, एवं उर्वरकों के प्रयोग, खेती की वैज्ञानिक रीति अपनाने

---

1 "In the first place there is the assumption that the produce [illegible] nds unequally fertile and representing unequal amounts of labour always sell at the same price. or, in other words, will always [illegible]ess the same exchange value. Is this proposition demonstrably und ?"

—Gide & Rist, Ibid, p. 163.

तथा घटया किस्म के कृषि-यन्त्रों के प्रयोग द्वारा कुछ समय के लिए कृषि-भूमि मे उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को समाप्त किया जा सकता है।

(vii) आलोचकों का यह कथन है कि रिकार्डो की यह मान्यता भी निराधार है कि लगान का अनाज की कीमत पर कोई प्रभाव नही पड़ता और केवल अनाज की कीमत ही लगान को प्रभावित करती है। विद्वानों के मतानुसार इन तीन दशाओं में लगान भी फसल की कीमत को प्रभावित कर सकता है– (अ) यदि भूमि पर सरकार या भूस्वामियों के एक वर्ग का एकमात्र स्वामित्व हों तो वे इस दशा मे सीमान्त-भूमि पर भी लगान वसूल कर सकते है। अतएव इस दशा में लगान-सीमान्त उत्पत्ति-व्यय का एक भाग बनकर फसल के मूल्य को प्रभावित करेगा। (ब) यदि किसानो के पास खेती को छोड़कर जीविका-उपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है तो उनमें भूमि प्राप्त करने की दिशा मे परस्पर इतनी तीव्र प्रतिस्पर्धा हो जाएगी और वे सीमान्त-भूमि पर भी लगान देने को तैयार हो जायेंगे। स्पष्टतः लगान सीमान्त उत्पत्ति-व्यय में मिलकर फसल की कीमत को प्रभावित करने लगेगा। (स) यह सम्भव है कि भूमि का कोई टुकड़ा किसी फसल विशेष के सम्बन्ध में अधि-सीमान्त (Super-marginal) हो और वह दूसरी फसल के सम्बन्ध मे सीमान्त (Marginal) हो और यदि वह दूसरी फसल पैदा करने के हेतु ही प्रयुक्त की जाती है तो इस दशा मे पहली फसल का लगान ही दिया जाएगा जोकि दूसरी फसल की लागत-व्यय मे सम्मिलित होकर उसकी कीमत को प्रभावित करेगा।

(viii) आलोचकों ने रिकार्डो के सिद्धान्त की इस मान्यता को भी गलत ठहराया है कि भूस्वामियों और किसानों के बीच स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होती है क्योंकि व्यावहार में कहीं भी इस स्वतन्त्र प्रतियोगिता के दर्शन नही होते।

(ix) अन्त में, आलोचको ने बताया कि रिकार्डो का लगान-सिद्धान्त मानव-जाति के भविष्य को अधकारपूर्ण बताकर ऐसे ही अन्य निराशावादी सिद्धान्तों की पुष्टि करता है। रिकार्डो ने बताया था कि जैसे ही किसी समाज की वृद्धि एवं विकास होता है वह अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमियों तथा कम उत्पादक साधनों को इस्तेमाल करने के लिए बाध्य होगा''''''इस तरह यद्यपि रिकार्डो का सिद्धान्त प्रगति का विरोधी तो नहीं है लेकिन यह इतना अवश्य दिखाता है कि संघर्ष किस प्रकार अधिकाधिक जोरदार होता जा रहा है तथा जिस मार्ग से गुजर कर हम प्रगति कर रहे हैं उसमें किसप्रकार आवश्यकता की न्यूनता यदि अकाल भी

निवास करती है।"[1]

रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त की इतनी कटु आलोचना होने के बाद भी यह स्वीकार्य है कि इस सिद्धान्त ने विद्वत वर्ग को बड़ी सीमा में प्रभावित किया है। यदि यह सिद्धान्त एक ओर अर्थशास्त्रियों के विचारों में परिवर्तन का सूत्रपात करता है तो दूसरी ओर इसकी सहायता से समाज सुधारकों ने अनेक प्रकार के सामाजिक दोषों का बहिष्कार किया है तथा तीसरी ओर इस सिद्धान्त की सहायता से राजनीतिज्ञों ने अनेकों समाज के कल्याण से सम्बन्धित नियम बनाए हैं। प्रो० एरिक रौल (Eric Roll) का कथन है कि रिकार्डो के सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि इसने भूस्वामियों एवं शेष समाज के बीच पाये जाने वाले संघर्ष को स्पष्ट कर दिया है। रिकार्डो ने बताया कि अनाज की कीमत बढ़ने से भूस्वामी के अतिरिक्त उत्पादक, उपभोक्ता तथा अन्य सभी वर्गों को हानि होती है।[2] रिकार्डो के इस विचार को ही आधार बनाकर जे० एस० मिल (J. S. Mill) ने भूमि के राष्ट्रीयकरण का विचार प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त के प्रतिपादन से एडम स्मिथ के समाज के विभिन्न वर्गों में एकता स्थापित करने के समस्त प्रयत्न नष्ट हो गये और विद्वानों की विचारधारा ने एक नया मोड़ लिया। सारांश रूप में, रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त प्रत्येक मार्क्सवादी को व्यक्तिगत सम्पत्ति पर उसके सामान्य आक्रमण में एक लक्ष्य प्रदान करता है।

रिकार्डो का मजदूरी का सिद्धान्त (Ricardian Theory of Wages)—माल्थस के जनसंख्या-सिद्धांत एवं रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त के विश्लेषण के पश्चात् तुरन्त यह प्रश्न पैदा होता है कि ये नियम श्रमिक की दशाओं तथा मजदूरी की मात्रा पर क्या प्रभाव छोड़ते हैं। एक ओर तो 'आत्म संयम' के न्यून प्रभाव के कारण सम्पत्ति स्वामियों की संख्या बढ़ती है जिसके परिणाम-स्वरूप मानवीय श्रम का अधःपतन होता है तथा दूसरी ओर उत्पत्ति का ह्रास नियम आवश्यक वस्तुओं की कीमत में वृद्धि कर देता है। एक ओर नीची मजदूरी और दूसरी ओर ऊंची कीमतों के बीच में श्रमिक की दुर्दशा की कल्पना अवर्णनीय है। प्रसिद्ध निर्बाधवादी

---

1 "Finally, the theory of rent seems to give colour to certain theories which predict an extremely dark future for the race, corroborating the gloomy forebodings of Malthus. As society grows and advances it will be forced to employ lands that are less fertile and means of production that are more one rous...Ricardo's theory does involue a denial of progress. Bui it shows how the struggle is becoming more difficult, and how scarcity and want, if not actual [illegible]e, must be in the path along which we are advancing,"

Prof. Gide & Rist : A History of Economic Doctrines, P. 170.

2 "The natural price of labour is that price which is necessary [illegible]able their race, without either increase or diminution."

—*Ricardo.*

विचारक तारगो (Turgot) ने बताया था कि श्रमिकों के लिये इतनी मजदूरी उचित है जो कि उन्हें जीवित रख सके। मजदूरी के सम्बन्ध में रिकार्डो ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया कि, "प्राकृतिक मजदूरी वह मजदूरी है जो कि श्रमिक तथा उसके बच्चों को जीवन-बसर करने के हेतु आवश्यक हो।"[2] रिकार्डो ने बताया कि प्राकृतिक मजदूरी इतनी होनी चाहिये कि वह श्रमिकों की जनसख्या को घटने-बढ़ने न दे अर्थात् श्रमिक के बच्चों की सख्या उतनी ही होनी चाहिये जो कि अपने माँ-बाप के स्थानापन्न करने के हेतु आवश्यक हो। यदि श्रमिक वर्ग की जनसंख्या इससे अधिक हो गई है तब निश्चियात्मक रूप से सामान्य मजदूरी कम हो जायेगी और यदि श्रमिक वर्ग की जनसख्या इससे अधिक है तो निश्चित रूप से सामान्य मजदूरी अधिक हो जायेगी। "यह स्मरणीय है कि रिकार्डो के मतानुसार मुद्रा के रूप में सामान्य मजदूरी नहीं बढ़ सकती और यदि वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो रही है तभी सामान्य मजदूरी में वृद्धि होगी क्योंकि इस दशा में भी मजदूरी पूर्ववत् रहती है तो श्रमिक भूखे मरने लगेंगे। इस तरह अनाज की मूल्य-वृद्धि के अनुसार ही मजदूरी में बढ़ने की प्रवृत्ति होगी ताकि श्रमिक रोटी की पूर्ववत् मात्रा कम या अधिक नहीं, प्राप्त कर सकें। यह उसकी अनाज में मापी गई वास्तविक मजदूरी है जोकि स्थिर रहेगी तथा इसी के ऊपर श्रमिक वर्ग की समृद्धि निर्भर करेगी।"[1] परन्तु क्या यह मजदूरी व्यावहार में स्थिर रहती है। रिकार्डो ऐसा सोचता दिखाई नहीं देता क्योंकि उसके मतानुसार तो, "समाज के प्राकृतिक विकास के अन्तर्गत श्रमिक की मजदूरी की गिरने की प्रवृत्ति होती है, जितनी अधिक ये माँग पूर्ति से नियमित होती हैं क्योंकि श्रम की पूर्ति तो समान दर से बढ़ती रहेगी परन्तु उसके लिए माँग की वृद्धि बहुत नीची दर से होगी।"[2]

---

1 "This is not tantamount to saying that nominal wages measured in terms of mony cannot increase. Indeed, it is absolutelly necessary that they should increase, seeing that the price of commodities is continually rising. If they were to remain the same work man would soon be reduced to starvation. Wages accordingly will shaw a tendency to rise in sympathy with the rising price of corn so that the work man will always be able to procure just the same quantity of bread, no more and no less. It is his real wages measured in corn that remain stationary, and upon this depends the well-being of the working-class." Gide & Rist, Ibid, P. 172.

2 "In the natural advance of society the wages of labour will have a tendency to fall as far as they are regulated by supply and demand, for the supply of labourers will continue to increrse at the same rate, whilst the demand for them will increase at a slower rate."

रिकार्डो ने बताया कि यह भी सम्भव है कि सामान्य मजदूरी (Nominal Wages) की वृद्धि वास्तविक मजदूरी (Real Wages) में कमी कर दे। इस दशा में यद्यपि यह दिखाई देगा कि मजदूरी बढ़ गई है, परन्तु श्रमिक के भाग्य की प्रसन्नता कम हो जायेगी, यह सत्य है कि वह अधिक मौद्रिक-मजदूरी (Money Wages) प्राप्त करेगा परन्तु उसकी अनाज-मजदूरी (Corn Wages) कम हो जायेगी। रिकार्डो ने बताया कि जब तक श्रमिक वर्ग अपने बच्चों की संख्या सीमित करने के सम्बन्ध में सचेत नहीं हो जायेगा तब तक उनकी स्थिति (Status) का पूर्ववत रहना दुष्कर है। रिकार्डो के शब्दों में, "यह सत्य है और इसमें कुछ सन्देह भी नहीं किया जा सकता कि निर्धन वर्ग को आराम और खुशहाली स्थिर रूप से तब तक नहीं दिलाई जा सकती, जब तक कि वे स्वयं ही अपने बच्चों की संख्या को नियमित नहीं कर लेते अथवा विधान द्वारा ऐसा नहीं किया जाता।"[1] यह स्मरणीय है कि रिकार्डो की अपेक्षा माल्थस श्रमिकों की मजदूरी के सम्बन्ध में अधिक निराशवादी था।[2]

रिकार्डो का लाभ का सिद्धान्त (Ricardian Theory of Profit) :— रकार्डो के मतानुसार लगान और लाभ में कोई अन्तर नहीं है। रिकार्डो का यह विचार उस समय की दशाओं के अनुरूप था क्योंकि उस काल में व्यक्ति अपनी पूँजी का स्वयं विनियोग करते थे तथा अपनी ही देखभाल में उत्पादन करते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्पादन में से उत्पादन-व्यय घटाने पर शेष भाग पूँजी और साहस का लाभ होता था। रिकार्डो ने बताया कि सीमान्त भूमि का उत्पादन मजदूरी+लाभ के योग के बराबर होता है, परन्तु उसने यह भी संकेत किया कि मजदूरों की न्यूनतम आवश्यकताओं की परितुष्टि के योग्य ही मजदूरी होनी

1. "It is truth which admits not a doubt, that the comforts and well being of the poor cannot be permanenty secured without some regard on their part or some effort on the part of the legislature to regulate the increase of their numbers, and to render less frequent among them early and improvident maraiages." —Ricardo.

2 "It must be remarked here that on this question as on that of rent, Malthus is less pessimistic than Ricardo. For from mointaining that every rise in wages of necessity involved an excess of population and a consequent lowering of wages, Malthus believed that a capacity for forerhought, which constitutes the most efficacious check upon the operation of blind instinct, may be eagendered even among the working class, and that a high standard of life once secured may become permanent. All this may be very, but the reosoning involves us in a vicious circle."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 173.

चाहिए। अतएव कुल उत्पादन में से मजदूरी का भाग निकल जाने पर अवशिष्ट राशि लाभ ही है।

रिकार्डो ने बताया कि वास्तविक संघर्ष पूंजपति और श्रमिक के बीच उत्पन्न होता है। एक बार अनाज का मूल्य सीमान्त-भूमि की उत्पत्ति-लागत के द्वारा निर्धारित हो जाने पर सम्पत्ति का स्वामी इससे अतिरिक्त राशि को स्वयं हस्तागत करके श्रमिक और पूंजीपति से यह कहता है कि "शेष राशि को तुम आपस में बांट सकते हो।" यह स्मरणीय है कि स्मिथ ने तो श्रमिक से ठगी गई राशि को ही लाभ बताया था, परन्तु रिकार्डो ने अपना भिन्न मत प्रकट करते हुए कहा कि लाभ का कारण श्रम का परिवर्तनीय स्वभाव है। माग और पूर्ति के अतिरिक्त रीति-रिवाज, खाद्य-सामग्री के मूल्य, रहन-सहन का स्तर आदि अनेक तत्त्व श्रम को प्रभावित करते हैं जिसका प्रभाव लाभ पर पड़ता है। रिकार्डो ने बताया कि मजदूरी की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ लाभ की दर कम होती जाती है। "लाभ की दर में कमी हुए बिना श्रम के मूल्य में कोई वृद्धि सम्भव नहीं है। यदि अनाज का वितरण किसान और श्रमिक के बीच किया जाए तो दूसरे को दिया गया भाग जितना बड़ा भाग होगा, प्रथम को दिया गया भाग उतना ही छोटा होगा।"[1] रिकार्डो ने इस नियम का प्रतिपादन किया कि, "लाभ की प्रवृत्ति घटने की ओर है क्योंकि समाज और धन की प्रगति के साथ-साथ खाद्य-सामग्री की अतिरिक्त आवश्यक मात्रा, अधिक श्रम के त्याग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।"[2]

इस प्रकार रिकार्डो के लाभ-सम्बन्धी विचारों से किसी निश्चित सिद्धान्त की रूपरेखा तैयार नहीं होती तथापि इनसे इन बातों का आभास मिल जाता है—(अ) लाभ पूंजी की उत्पादक-शक्ति के कारण मिलता है; (ब) लाभ का उद्गम वर्तमान उपभोग में कमी होने से होता है; (स) मजदूरी की दर बढ़ने पर लाभ की दर गिर जाती है; तथा (द) जब नई भूमियों पर से लाभ की मात्रा शून्य हो जाएगी उस समय उन पर खेती नहीं की जाएगी।[3] संक्षेप में रिकार्डो के

1 "There can be no rise in the value of labour without a fall of profit. If the corn is to be divided between the farmer and the labourer, the larger the portion that is given to the latter, the less will remain to the former." —Ricardo.

2 "The tendency of profits to a minimum, for in the progress of society and welth the additional quantity of food required is obtained by the sacrifice of more labour." —Ricardo.

3 "The source of profits, the productivity of capital, is taken for granted even more tactly than the part played by utility in value." —Prof. Haney : History of Economic Thought, P. 303.

का मूल्य उस बोरे के मूल्य द्वारा निर्धारित होगा जिसका उत्पादन सर्वाधिक अलाभकर दशाओं में किया गया है। परन्तु इसका निर्धारण उस बोरे के मूल्य द्वारा क्यों नहीं किया जाता जिसका उत्पादन सर्वाधिक अनुकूल दशाओं में किया गया है अथवा जिसका उत्पादन औसत दशाओं में किया गया है।"[1]

रिकार्डो का व्यापार-संतुलन का सिद्धान्त तथा मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त

(Ricardian theory of Balance of trade and the Quantity theory of Money):—प्रो॰ जीद एवं रिस्ट के मतानुसार रिकार्डो ने अपने प्रमुख-सिद्धान्त (वितरण-सिद्धान्त) के अतिरिक्त अन्य सिद्धान्तों पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक विचार प्रस्तुत किये हैं परन्तु ये विचार सर्वमान्य होने के कारण रिकार्डो की ख्याति बढ़ाने में विशेष योगदान नहीं कर पाये हैं। उसके विदेशी व्यापार एवं बैंकिंग सम्बन्धी सिद्धान्त इसी तरह के हैं। इन सिद्धान्तों में निराशावाद अथवा हितों के संघर्ष का कोई अंश नहीं है। रिकार्डो यह बताने में समर्थ हुआ कि पूर्ण स्वतन्त्र वाणिज्य पद्धति के अन्तर्गत व्यक्तिगत लाभ की खोज सभी की सार्वभौमिक भलाई से सम्बद्ध है।[2]

---

1 "The statement that value is determined by labour is not enough to account for the phenomenon of rent, Let us imagine a market where three sacks of corn are available for sale. Let us further suppose that the production of each involved a different quantity of labour, one being produced on land that was very fertile, the other on soil that was less generous, etc. Every sack will sell of the same price, but the questian is, which *of those different quantities* of labour is the one that determines the price ? Ricardo replies that it is the maximum quantity, and the value of the corn is determined *by the value of that* sack which is produced under the greatest disadvantages. But *why should it* not be determined by the value of the sack grown under the *most favourable* circumstances, or by the value of that other sack raised under conditions of avrage difficulty ?" —*Gide & Rist : History of Economic Doctrines*, P. 165.

2 "*There are* other doctrines which, regarded as contributions to the science, are *much more important* and more definite, but just because they figured almost *directly in the* category of universally accepted truths whose validity and authorship have never been questioned, they have contributed less to him fame. Such are his theories of international *trade and banking*. where the theorist becomes linked to a f... Here at any rate there is no conflicting interest. On the ... under a system of perfectly ... advantage is admirably con... ...hole."

...istory of Economic Doctrines, P. 177-78.

ने पत्र-मुद्रा के निर्गमन एवं नियन्त्रण सम्बन्धी सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए। सन् १८२२ और १८४४ के बैंक अधिनियम (Bank Acts of 1822 & 1844) जिनसे इंगलैण्ड की भावी बैंक-नीति निर्धारित हुई, सरकार द्वारा रिकार्डो के सिद्धान्तों को व्यवहारिक स्वरूप देने की दिशा में एक प्रयास का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रिकार्डो ने सन् १७९७ का इंगलैण्ड का पत्र-मुद्रा संकट अपनी आंखों से देखा था। जबकि बैंक आफ इंगलैन्ड (Bank of England) की संचित राशि (Reserves) १० मिलियन से घटकर 8½ मिलियन रह गई। उस समय यह समझा गया था कि पत्र-मुद्रा के मूल्य की यह अस्थिरता केवल एक अस्थाई घटना बनकर रह जाएगी परन्तु यह दशा सन् १८२१ तक चलती रही। बैंक नोट के मूल्य में औसतन १०% का ह्रास हो गया, परन्तु नैपोलियन के युद्ध के अन्त में यह ३०% ऊंचा हो गया। रिकार्डो ने इस मुद्रा-संकट के परिणामों को भी अपनी आंखों से देखा था। भूस्वामियों ने अपने लगान के भुगतान की मांग स्वर्ण में की अथवा बैंक नोट के मूल्य ह्रास की सीमा तक लगान की मात्रा बढ़ाने का दावा किया।

रिकार्डो ने बैंक-मुद्रा के मूल्य में ह्रास होने के कारणों का विश्लेषण अपनी "सर्राफा की ऊंची कीमत बैंक नोटों की घिसावट का एक सबूत"(The High Price of Bullion a proof of the Depreciation of Bank Notes) नामक पुस्तक में किया जो कि सन् १८०९ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में रिकार्डो इस परिणाम पर पहुँचा कि बैंक-नोटों के मूल्य-ह्रास का केवल एक ही कारण है अर्थात् पत्र-मुद्रा का अत्यधिक प्रकाशन (Excessive Supply of Paper money)। उसने बताया कि बैंक नोट के मूल्य में ह्रास आने का एक परिणाम यह हुआ है कि स्वर्ण का अधिक निर्यात होने लगा है। इस समस्या के समाधान का उत्तर देते हुये रिकार्डो ने कहा कि हमारी करैंसी के समस्त दोषों के हेतु जो [illegible] मैंने प्रस्तावित किया है, यह है कि बैंक को चलन में नोटों की मात्रा धीरे-धीरे उस समय तक कम करनी चाहिये जब तक कि उनका मूल्य सिक्कों के मूल्य के बराबर (जिनका कि वे प्रतिनिधित्व करते हैं) न हो जायें अर्थात् दूसरे शब्दों में, जब तक कि स्वर्ण और रजत धातुओं की कीमतें उनकी टकसाली कीमत के बराबर न हो जाय।

यह स्मरणीय है कि रिकार्डो पत्र-मुद्रा के दोषों का निवारण चाहता था परन्तु वह पत्र-मुद्रा को समाप्त कर देने का पक्षपाती नहीं था। वस्तुत: उसने कागजी मुद्रा को बहुत लाभकारी एवं आवश्यक बताया। रिकार्डो के शब्दों में "एक सुनियमित पत्र-मुद्रा वाणिज्य के अन्तर्गत इतना बड़ा सुधार है कि मैं उससे बहुत माफी चाहूंगा यदि कोई पक्षपातवश हमें कम उपयोगी प्रणाली को अपनाने को कहे।" "मुद्रा के उद्देश्य में बहुमूल्य धातुओं का [illegible] वास्तविक रूप से वाणिज्य के विकास तथा सभ्य जीवन की क[illegible] दिशा में एक अधिक महत्वपूर्ण कदम समझा जाना चा[illegible] नहीं है कि

ज्ञान और विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ हमने यह खोज की है कि उन्हें उस कार्य से निष्कासित कर देना जिसे कि वे कम ज्ञानकाल में लाभदायक तरीके से करते चले आये हैं, भी एक दूसरा सुधार होगा।"[1] इसी क्रम में आगे चलकर रिकार्डो ने बताया कि यदि किसी देश में केवल मात्र धात्विक मुद्रा का ही प्रचलन है तो ऐसी भी दशा आ सकती है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की मुद्रा सम्बन्धी माग को पूरा करने की दिशा में स्वर्ण का उत्पादन फेल हो जाए और इस तरह स्वर्ण का मूल्य बहुत ऊँचा होकर सामान्य मूल्य-स्तर को गिरा दे। परन्तु इस खतरे का निवारण समाज की मांग के अनुरूप पत्र-मुद्रा के प्रकाशन द्वारा सरलता से किया जा सकता है। इस प्रकार रिकार्डो पत्र-मुद्रा प्रणाली का इतना बड़ा समर्थक था कि वह इसे धात्विक मुद्रा प्रणाली से भी अधिक श्रेष्ठ समझता था और वह पत्र-चलन को बनाए रखने के उद्देश्य से धात्विक मुद्रा को भी समाप्त कर देना चाहता था। यह स्मरणीय है कि रिकार्डो परिवर्तनीय पत्र-मुद्रा (Convertible Paper Money) का पक्षपाती था। रिकार्डो का मत था कि पत्र-मुद्रा के प्रति जनता का विश्वास प्राप्त करने की दिशा में यह आवश्यक है कि पत्र-मुद्रा परिवर्तनशील हो। अतएव जनता पर विश्वास को जमाए रखना तथा मुद्रा के मूल्य को स्थिर रखने के हेतु यह जरूरी है कि बैंक के द्वारा चलन में रहने वाली पत्र-मुद्रा के स्थान पर स्वर्ण-चांदी का धात्विक कोष रखा जाए तथा इस धात्विक कोष को घटा-बढ़ाकर ही वह पत्र-मुद्रा के परिमाण को घटाए-बढ़ाए। रिकार्डो ने बताया कि इस तरह के नियमन को प्रभावशाली बनाए रखने पर बैंक-नोट का मूल्य बैंकर्स और महाजनों के लिए समान रहेगा और जैसे ही वे बैंक-नोट्स के मूल्य में ह्रास का कोई लक्षण देखेंगे वे इनको स्वर्ण-रजत की छड़ों में परिवर्तित कर सकेंगे। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि वृहद् जनता धात्विक मुद्रा का पुनः प्रयोग करने लगेगी क्योंकि ये धात्विक छड़ें दैनिक जीवन के ध्येय के हेतु कम उपयोगी होंगी।

प्रो० जीड एण्ड रिस्ट का कथन है कि यद्यपि रिकार्डो उदार राजनैतिक अर्थव्यवस्था (Liberal Political Economy) का चैम्पियन था, तथापि उसे

1 "A well regulated paper money is so great an improvement in commerce that I should greatly regret if prejudice should induce us to return to a system of less utility." "The introduction of the precious metals for the purpose of money may with truth be considered as one of the most important steps towards the improvement of commerce and the arts of civilized life, but it is no less true that with the advancement of knowledge and science we discover that it would be another improvement to banish them again from the emplyment to which, during a less enlightened period, they had been so ad tageously applied."

स्वतन्त्र बैंकिंग प्रणाली पर भरोसा नहीं था तथा उसने एक ऐसी बैंकिंग प्रणाली की रूपरेखा तैयार की जिसका कार्यान्वयन केवल एक सरकारी बैंक द्वारा ही सम्भव था। उसने स्वयं को स्वतन्त्र बैंकिंग पद्धति का तीव्र विरोधी घोषित किया तथा चलन के नियमन के सम्बन्ध में स्वतन्त्र बैंकिंग पद्धति की योग्यता पर संदेह किया। यह इस बात का प्रदर्शन है कि रिकार्डो जैसा उदार व्यक्तिवादी व्यक्तियों को स्वतन्त्रता में तथा अधिक कुशल मुद्रा की किस्म के निर्णय की उनकी योग्यता में, कितना थोड़ा विश्वास रखता था।[1]

उपसंहार :—उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में रिकार्डो का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रिकार्डो ही वह प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने स्पष्ट रूप से निगमन प्रणाली (Deductive Method) को अपनाया तथा वितरण की समस्या पर गहन चिन्तन करके उसके महत्व को स्पष्ट किया। उसने लगान सम्बन्धी पूर्वकालिक विचारों को एक नया मोड़ प्रदान किया तथा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच स्थित संघर्ष का स्पष्टीकरण किया। रिकार्डो का लगान-सिद्धान्त प्रत्येक मार्क्सवादी को व्यक्तिगत सम्पत्ति पर उसके सामान्य आक्रमण में एक लक्ष्य प्रदान करता है तथा उसका मूल्य-सिद्धान्त वर्तमान समाजवाद का प्रारम्भिक बिन्दु है।

———

1 "One would hardly expect the great champion of Liberal political economy to outline a banking system which could only erate through a state bank. This was clearly his opinion, however. eclared himself utterly opposed to the free banking spstem, and d the ability of such a system to regulate the currency...... shows what little confidence a Liberal individualist like Ricardo d in the liberty of individuals and their ability to judge of the kind of money that is most serviceable."

—Gide & Rist : A History of Economic Doctrines, P. 181-82.

१७

सिसमान्डी

(Sismondi)

प्राक्कथन:—सिसमाण्डी जिनेवा (Geneva) का निवासी था। उसका परिवार मूल रूप से इटैलियन था जो कि सोलहवी शताब्दी मे फ्रांस और कुछ समय बाद जिनेवा मा बसा था जहां कि सन् १७७३ मे सिसमाण्डी का जन्म हुआ। सन् १८४२ में सिसमाण्डी की मृत्यु हो गई। अपने जीवन काल में उसने अर्थशास्त्र एवं इतिहास के प्रति विशेष अभिरुचि दिखाई और वास्तव में उसका मुख्य कार्य ऐतिहासिक ही था क्योंकि उसने फ्रांस और इटैलियन रिपब्लिक के जो इतिहास लिखे,उनसे सिसमाण्डी को अपने जीवन काल मे काफी प्रसिद्धि मिली। जहां तक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध है इस क्षेत्र में सिसमाण्डी ने अपना कार्य आर्थिक-स्वतन्त्रतावाद के उत्कट समर्थक के रूप मे प्रारम्भ किया। सन् १८०३ में उसने "वाणिज्यिक सम्पदा" (The Commercial Wealth) तथा सन् १८१९ में "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के नवीन सिद्धान्त" (New Principles of Political Economy) नामक ग्रन्थ लिखे। इन दोनो ग्रन्थो मे से प्रथम ग्रन्थ के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वह एडम स्मिथ का अनुयाई था तथा उसने स्वतन्त्र-व्यापार एवं हस्तक्षेप-विरोधी नीति का समर्थन किया। इस ग्रथ में सिसमाण्डी ने न केवल स्मिथ के कार्य की सैद्धान्तिक संरचना को पूर्णरूपेण स्वीकार किया वरन् उसने स्मिथ के व्यावहारिक निष्कर्षों एवं उसके राजनैतिक दर्शन को भी स्वीकार किया।[1] परन्तु सिसमाण्डी ने अपने दूसरे ग्रन्थ के द्वारा अर्थशास्त्र के धारा प्रवाह मे नवीन मोड़ प्रदान किया तथा अपने विचारो की अभिव्यक्ति में उसने कहीं-कहीं परम्परावादियों से भी सहमति प्रकट की। सिसमाण्डी ने तात्कालिक

1 "Sismondi's chief works were historical, and his voluminous of France and of the Italian Republic where those which earned him fame in his lifetime. But he also wrote two economic works separated by sixteen years. In 1903 he published La Richesse Commercial in 1819, the Nouveaux Principles del Economic Politique: In his first book he is still a faithful diciple of Adam Smith, an uncompromising free trader and non-interventionist. He accepts fully not only the theoretical structure of Smith's work, but also its practical conclusions and its political philosophy."

—Eric Roll : History of Eco. Thought.

औद्योगिक क्रांति, व्यावसायिक प्रणाली तथा श्रमिकों की दयनीय दशा का पूर्ण अध्ययन किया तथा इनके कारणों का विश्लेषण किया। यद्यपि उसने परम्परावादियों के कुछ सिद्धांतों को स्वीकार अवश्य किया तथापि उसने इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया।

सिसमाण्डी के आर्थिक विचारों पर उसके जीवनकाल में घटित हुई अनेक घटनाओं-फ्रांसीसी क्रांति, नैपोलियन युद्ध, औद्योगिक क्रांति, फैक्ट्री प्रणाली आदि का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।[2] इसके अतिरिक्त सिसमाण्डी के आर्थिक विचारों पर समकालीन अर्थशास्त्रियों अर्थात माल्थस (Malthus), जे० बी से (J. B. Say), फ्रैड्रिक लिस्ट (Fredrich List), रिकार्डो (Ricardo), सीनियर (Senior) आदि के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त सन् १८१५, १८१८ और १८२५ में फ्रांस और इंगलैण्ड में उपस्थित होने वाले आर्थिक संकट (Economic Crisis) ने भी सिसमाण्डी के विचारों को बड़ी मात्रा में प्रभावित किया। "वाणिज्यिक सम्पदा" नामक पुस्तक लिखने के बाद सिसमाण्डी ने यूरोपियन देशों का परिभ्रमण किया तथा ऐतिहासिक खोज की। इटली, फ्रांस और स्विटजरलैण्ड में वह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम आर्थिक संकट के प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क में आया और उसने यह खोज की कि उन संकटों ने इंगलैंड, जर्मनी तथा बेल्जियम आदि देशों को भी प्रभावित किया है। सिसमाण्डी के विचारों पर इस अनुभव का गहन प्रभाव पड़ा और जब उसने पुन; अपने आर्थिक विचारों का प्रतिपादन किया तो उसके विचार स्मिथ के सिद्धान्तों से कुछ भिन्न हो चले, यद्यपि उसने क्लासिकल सम्प्रदाय से पूर्णतया अपना सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया। उसने सदैव एडम स्मिथ के प्रति आदर प्रकट किया तथा परम्परावाद के प्रमुख सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने का दावा किया। माल्थस की तरह सिसमण्डी ने भी ने क्लासिकल सिद्धान्त को व्यवहारिक समस्याओं में लागू किया और विशेषकर उस रूप में जिसमें कि यह रिकार्डियन पद्धति में किया गया था। माल्थस की तरह उसने भी अपना कार्य क्लासिकल पद्धति की आलोचना के साथ आरम्भ किया तथा उसने आर्थिक-विज्ञान के क्लासिकल ध्येय के प्रति आक्षेप

1 "Thus Sismondis life was cast among stirring events and great thinkers, The French Revolution, the Neapolic War, and the consummation of Industrial Revolution, and the factory system were witnessed by him, and their attendant evils were noted,"

—Prof. Haney.

प्रकट किया।[1]

प्रो० जीड एवं रिस्ट के मतानुसार, 'सिसमाण्डी का मतभेद राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सैद्धान्तिक सिद्धान्तों पर नहीं था। जहाँ तक इनका संबंध है उसने स्वयं को एडम स्मिथ का शिष्य घोषित किया। वह तो मुख्य रूप में क्लासिकल सम्प्रदाय के उद्देश्य, पद्धति एवं व्यावहारिक निष्कर्षों से मतभेद रखता था।'[2] "सिसमाण्डी ने स्वयं भी इस तथ्य को और विचार प्रकट करते हुए लिखा है," एडम स्मिथ का सिद्धान्त भी हमारा ही सिद्धान्त है परन्तु उनसे प्राप्त सिद्धान्तों से जो व्यवहारिक निष्कर्ष हमने निकाले हैं वे पूर्णतया उनके निष्कर्षों से भिन्न हैं"।[3]

सिसमाण्डी के आर्थिक विचार (Sismondi's Economic Ideas)— अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सिसमाण्डी के आर्थिक विचारों को निम्नोक्त में वर्गीकृत किया जा सकता है —

---

1 "Before he ventured out again with a theoretical work Sismondi did a considerable amount of historical research and travelling. In Italy, Switzer land, and France he came into direct contact with the first crises of the nineteenth century, and he discovered that they had also ravaged England, Germany, and Belgium. This Experince left its mark, and when he came to formulate again his economic views little to the discriminating repetition of Smithian doctrines remaided. Sismondi did not break entirely with the classical school. He always retained to have preserved intact the main thoretical apparatus of classicism. Like Malthus, whom he admired, Sismondi objected to the application of classical theory to practical problems, particularly in the way in which this was done in the Ricardian system. Like Malthus, too, he began with a criticism of the classical method, and to this he added an objection to the classical conception of the aim of economic science."

—Eric Roll : History of Economic Thought, P. 335-36.

2 "Sismonds disagreement was not upon the theoretical principles of political economy. So far as these were concerned he declared himself a disciple of Adam Smith. He merely disagreed with the method, the aim and the practical conclusion of the classical school."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 188.

3 "Adam Smith's doctrine is also ours but the practical conclusion which we drew from the doctrine, barrowed from him frequently appears to us to be diametrically opposed to his.

—Sismondi : Nouveaux Principles, vol II, P. 50

(क) अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रणाली,
(ख) अर्थशास्त्र का उद्देश्य,

(ग) अत्युत्पादन एवं प्रतिस्पर्धा के सम्बन्ध में सिसमाण्डी द्वारा की गई आलोचना,

(घ) आर्थिक संकट, तथा

(ङ) सिसमांण्डी की सुधार परियोजनाएं।

निम्नोक्त में सिसमाण्डी के इन्हीं विचारों का क्रमिक रूप से अध्ययन किया गया है।

(क) **अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रणाली** (Method of Study):—सिसमाण्डी ने एडम स्मिथ तथा उसके शिष्यों (रिकार्डो, माल्थस, जे० बी० से) द्वारा अपनाई गई अध्ययन की प्रणालियों के अन्तर का महत्वपूर्ण विवेचन किया। उसके मतानुसार स्मिथ ने हर एक तथ्य का अध्ययन अपने सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में किया तथा उसका अमर कार्य वास्तव में मानव जाति के इतिहास के दार्शनिक अध्ययन की उपज है। रिकार्डो के सम्बन्ध में, जिसने कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में गूढ़ पद्धति का समावेश किया, उसका दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था। इस प्रकार सिस: सिसमाण्डी ने रिकार्डो और उसके अनुयाइयों द्वारा अपनाई गई अध्ययन की निगमन प्रणाली (Deductive Method) का विरोध किया तथा स्मिथ एवं माल्थस द्वारा अपनाई अध्ययन की आगमन प्रणाली (Inductive Method) का समर्थन किया उसने यह विचार किया कि राजनैतिक अर्थशास्त्र को एक नैतिक विज्ञान के रूप में समझना उत्तम है जिसमें कि सभी तथ्यों की आवश्यक जाँच की जाती है और यदि कोई अकेला तथ्य भी पृथक है तो उस पर भी पूर्ण विचार किया जाता है। सिसमाण्डी ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को अनुभव, इतिहास तथा अनुसन्धान पर आधारित किया। सिसमाण्डी के शब्दों में, "राजनैतिक अर्थव्यवस्था मनुष्य अथवा मनुष्यों के अध्ययन पर आधारित है। हमें मानवीय प्रकृति राष्ट्रों के चरित्र और भाग्य की जानकारी विभिन्न स्थानों और विभिन्न कालों में करनी चाहिये। हमें इतिहासकारों, प्रश्न यात्रियों आदि से पूछ-ताछ करनी चाहिये। इतिहास का दर्शन, यात्राओं का अध्ययन आदि समानान्तर अध्ययन हैं"।*

---

1 "Political Economy is based upon up on the study of man or men. We must know human nature, character and destiny of nations in different places and at different times. We must consult historions, question travellers, e c...The philosophy of history...the study of travels, etc, are parallel studies."

—Sismondi : Nouveaux Principles, vol, I P. 257.

प्रो० एरिक रोल के मतानुसार "सिसमाण्डी ने रिकार्डो पर अध्ययन की गूढ़ प्रणाली अपनाने का आक्षेप लगाया। उसने माल्यस को आगमन एवं निगमन के ध्यान पूर्वक संतुलन के रूप में पकड़ा जोकि उसके मतानुसार स्मिथ की परम्परा के अधिक अनुकूल था। उसने दावा किया कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यह विस्तृत अनुभव एवं इतिहास के ज्ञान पर स्वयं को आधारित करती है। राजनैतिक अर्थव्यवस्था का एक नैतिक ध्येय है। यह केवल धन से ही सम्बन्धित नही वरन् मानव के सम्बन्ध मे धन से सम्बन्धित है। यह मानवीय कल्याण पर आर्थिक क्रियाओ के प्रभाव का अध्ययन है। इसी कारण से सिसमाण्डी ने अन्य आर्थिक समस्याओं की तुलना मे वितरण की समस्या को अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया और इस क्षेत्र में वह रिकार्डो से सहमत दिखाई देता है। यह सहमति माल्थस और सिसमाण्डी के उद्देश्य में अन्तर पैदा करती है। माल्थस ने उपभोग पर बल डाला क्योंकि उसका ध्येय अनुत्पादक उपभोक्ता को न्यायोचित ठहराना था। सिसमण्डी ने वितरण पर बल डाला क्योंकि उसका सम्बन्ध मुख्यतया सामाजिक न्याय से है। इस तरह यद्यपि वे सामान्य निष्कर्षों पर पहुचते हैं तथापि उनके दृष्टिकोण सर्वथा विरोधी हैं।"* प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने सिसमाण्डी के विचारों का समर्थन करते हुए लिखा है कि किसी मनुष्य की पूर्ण रूपेण कल्पना करने और उसके ऊपर

---

1 "Sismondi makes the often repeated and illfounded charge that Ricardo had been too abstract. He holds up malthus as an example of the careful balance between deduction and induction which he claims, was more truely in the Tradition of *Smith. He* claims that political economy has so wide a scope that it has to base itself on a wide experience and a knowledge of history in order to comprehend fully the social relations which were the *object of its* study. Political Economy has a moral purpose, It is not concerned with wealth as such, but with wealth io relation to *man. It has* to study economic activity from the point of view of its effects on human welfare. For this reason Sismondi regards the *problems of* distribution as more important than any other economic problems. In this respect he is, oddly in agreement with Ricardo. This agreement of emphasis brings out also the *different approch* and purpose of Malthus and Sismondi. Malthus had begun by stressing consumption, since his purpose was to justify the unproductive consumer Sismondi stresses distribution, *because* his concern is mainly with social justice. Thus at through they reach formally similar conclusions their intentions are quite dissimilar,"

Eric Roll ; History of Eco. Thought.

आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव आँकने के हेतु देश-काल एवं व्यवसाय का अध्ययन करना अत्यावश्यक है ।[1] सिसमाण्डी का विचार था कि आगमन प्रणाली को न अपनाने के कारण ही आर्थिक सिद्धान्तों के व्यवहारिक निष्कर्षों में अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं। सिसमाँण्डी द्वारा आगमन पद्धति का समर्थन किए जाने पर ही उसे ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Historical School) का मार्गदर्शक बताया जाता है।

यह स्मरणीय है कि सिसमाण्डी व्याप्तिमूलक आगमन पद्धति का समर्थक था और उसकी सम्पूर्ण आर्थिक विचारधारा इसी पद्धति पर आधारित है, तथापि उसे आगमन पद्धति का प्रतिपादक नहीं कहा जा सकता क्योंकि सिसमाण्डी से पूर्व भी एडम स्मिथ और माल्थस द्वारा इस अध्ययन प्रणाली को अपनाया जा चुका था फिर स्वयं सिसमाण्डी भी इस क्षेत्र में उत्पन्न नहीं था कि आर्थिक सिद्धान्तों से व्यावहारिक निष्कर्ष निकालने के हेतु कौन सी अध्ययन प्रणाली उत्तम है। वास्तविकता तो यह है कि निगमन प्रणाली का भी अपना एक महत्व है तथा अनेक स्थल पर सिसमाण्डी ने भी इस प्रणाली का सहारा लिया है। अत्युत्पादन के सामान्य संकट की सम्भावना के विवेचन में सिसमाण्डी ने आगमन के साथ निगमन प्रणाली को भी अपनाया है। इस प्रकार सिसमाण्डी इन दोनों अध्ययन प्रणालियों के बीच संघर्ष उत्पन्न करने में ही संलग्न रहा।

(ख) अर्थशास्त्र का उद्देश्य (Aim and Object of Economics) — अध्ययन की प्रणाली के साथ-साथ अर्थशास्त्र के उद्देश्य के सम्बन्ध में भी सिसमाण्डी क्लासिकल सम्प्रदाय का विरोधी था। परम्परावादियों के मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था धन का विज्ञान था, मानव-कल्याण का नहीं। परन्तु अर्थशास्त्र का वास्तविक ध्येय मनुष्य अथवा कम से कम मनुष्य जाति की भौतिक समृद्धि है। सिसमाण्डी ने अर्थशास्त्र को सामाजिक और आदर्शवादी विज्ञान स्वीकार किया तथा इसका ध्येय मानव-कल्याण और सुख संतोष की स्थापना करना बताया।[2] यही कारण है कि सिसमाण्डी के अतिरिक्त अन्य परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने धनोत्पादन

---

1 "Sismondi's conception of economic method is incontestably just so long as the economist confines himself to the discussion of practical problems or attempts to gange the probable effects of a darticular legislative reform or is unravelling the causes of a particular event."
—Gide & Rist : Ibid, P, 189.

2 "The accumulation of wealth in abstracts is not the aim of government, but the participation by all its citigens in the pleasures of life which the wealth represents. Wealth and population in the abstract are no indication of a country's prosperity : they must in some way be related to one another before being employed as the basis of comparison."
—Sismondi : Nouveaux Principes, vol I, P. 9.

का विशेष अध्ययन किया था तथा "उत्पत्ति" पर ही विशेष रूप से अपने विचार प्रकट किए, परन्तु सिसमाण्डी ने उपभोग एवं वितरण की समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन किया। धन के वितरण के सम्बन्ध में सिसमाण्डी ने निर्धन वर्ग के लिए एक पृथक भाग रखने का सुझाव दिया। सिसमाण्डी के शब्दों, "विस्तृत रूप से राजनैतिक अर्थव्यवस्था उदारता का सिद्धान्त है तथा कोई सिद्धान्त जिसका अंतिम विश्लेषण मानवजाति की समृद्धि की वृद्धि का परिणाम नहीं निकलता, विज्ञान से बिल्कुल सम्बंधित नहीं है।"[1] सिसमाण्डी की अर्थशास्त्र की परिभाषा को जे० बी० से (J, B. Say) ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया, "सिसमाण्डी के मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था मानवजाति की खुशहाली का विज्ञान है। जो कुछ वह कहना चाहता था वह यह है कि यह वह विज्ञान है जिसकी जानकारी उन सबको आवश्यक है जो कि मानव कल्याण से सम्बन्धित हैं। शासकों को योग्य सिद्ध करने के हेतु इस विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है तथा मानवजाति का कल्याण व्यक्ति की धरोहर की अपेक्षा सरकारी धरोहर पर अधिक निर्भर है।"[2] इस प्रकार सिसमाण्डी ने अर्थशास्त्र को केवल मात्र शासन-प्रबन्ध का विज्ञान (A science of Administrotion) बना दिया जिससे कि योग्य शासक अपनी प्रजा को सन्तुष्ट कर सकें यह स्मरण रहे कि अर्थशास्त्र को सिसमाण्डी ने 'मानव कल्याण के शास्त्र" के रूप में ही स्वीकार किया—"धन के शास्त्र" के रूप में नहीं अर्थात् सिसमाण्डी के क्लासिकल विचारकों के इस मत का खण्डन किया कि अर्थशास्त्र धन का शास्त्र है तथा अर्थशास्त्री का कर्तव्य मनुष्य को ऐसे तरीके बताना है कि उनकी सहायता से अपने धन के कोष की मात्रा को अधिकतम कर सके।

ताकि मानव-जाति का अधिकतम कल्याण सम्भव हो सके तथा निर्धन वर्ग को राष्ट्रीय आय में से उचित भाग मिल सके इसलिए सिसमाण्डी ने सरकारी हस्तक्षेप द्वारा धन के वितरण को नियन्त्रित करने का सुझाव रक्खा। उसकी इस भावना को लक्ष्य करते प्रो० हेने ने लिखा है कि, "जबकि अन्य अर्थशास्त्रियों ने

---

1 "Political Econamy at its widest, is a theory of charity, and any theory that upon last analysis has not the result of increasing the happiness of mankind, does not belong to the science at all.
—Sismondi.

2 "Sismondi refers to political economy as the science charged with guarding the happiness of mankinp. What he wishes to say is that it is the science a knowledge of ought to be possessed by all those who are concerned with human welfare. Rulers who wise to be worthy of their positinns, ought to be acquainted with the study, but the happiness of mankind would be much jeopardized if, instead of trusting to the intelligence and industry of the ordinary citizen, we trusted to government."
—J. B. Say.

राष्ट्रीय धन की वृद्धि का तरीका बताया, परन्तु उसने राष्ट्रीय खुशहाली को बढ़ाने का तरीका बताया तथा इस लक्ष्य तक पहुंचने के हेतु उसने समृद्धि को नियमित करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप के लाभों को गिनाया।"[1] सिसमाण्डी का मत था कि किसी देश की समृद्धि उसकी जनसंख्या अथवा धन की मात्रा से नहीं आंकी जा सकती वरन् यह तो इन दोनों के सम्बन्ध पर निर्भर है अर्थात् वही देश समृद्धिशाली है जिसकी जनसंख्या अपने परिश्रम द्वारा उचित रूप से जीवन-यापन करती है।

(ग) **अत्युत्पादन एवं प्रतिस्पर्धा के सम्बन्ध में सिसमाण्डी द्वारा की गई आलोचना** (Sirmondi,s Criticism of Over-production and Competition):—"आर्थिक जाँच के उद्देश्य एवं पद्धति के सम्बन्ध में सिसमाण्डी द्वारा अभिव्यक्त किए गए विचार उसके सिद्धांत के अधिक महत्वपूर्ण भाग नहीं हैं। जो कुछ अधिक महत्वपूर्ण है वह यह कि उसने क्लासिकलवाद के आशावाद तथा पूँजीवादी पद्धति की एकरूपता एवं स्वयं परिचालित साम्य के चरित्र के विश्वास का खण्डन किया।"[2]

परम्परावादी विचारकों ने असीमित उत्पादन की निर्भीक चेतना को जन्म दिया था। उनका विश्वास था कि समाज के सभी वर्गों के हित समान हैं और उनमें किसी तरह का विरोध नहीं है जिसके कारण स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत स्वयं परिचालित साम्म के द्वारा कभी भी अत्युत्पादन की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती और उत्पादन सदैव उपभोक्ताओं की मांग के अनुरूप रहेगा। चूंकि परम्परावादी विचारकों ने समाज के सभी वर्गों के हितों को समान बताया, इसलिए इनका विश्वास था कि शासन का सर्वोत्तम स्वरूप वही है कि किसी तरह की सरकार न हो। सिसमाण्डी ने परम्परावादियों के इन सभी विचारों का विरोध किया। सर्वप्रथम उत्पादन को लीजिए। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मत था कि उत्पादन की सामान्य अभिवृद्धि कोई असुविधा प्रस्तुत नहीं करती और यदि कभी उत्पादक वर्ग द्वारा आवश्यकता का गलत अनुमान लगाकर किसी तरह की भूल हो भी जाती वह शीघ्र ही स्वयं परिचालित साम्य (Spontaneous Mechanism)

"The economists had taught how to increase national wealh, uld teach how to increase national happiness and to this end ould point out the advantages of Government intervention to re- te the progress." —Haney.

2 "Sismondi's remarks on the method and object of economic nquiry are not the important parts of his theory. What is important is his rejection of classicism, in so far as it implies optimism and a belief in harmony and in the self equilibrating character of the capitalist system." —Eric Roll.

द्वारा ठीक कर दी जाती है। किसी वस्तु की गिरती हुई कीमतें उत्पादक वर्ग को तुरन्त सचेत कर देती हैं कि वे अपने प्रयत्नों को दूसरी दिशा मे लगायें। इसी तरह किसी वस्तु की बढ़ती हुई कीमतें उत्पादकों को यह बताती हैं कि इस वस्तु की पूर्ति अपर्याप्त है तथा इसका और अधिक उत्पादन होना चाहिए। इस प्रकार माग और पूर्ति के संतुलन होने पर कभी भी विषम स्थिति उत्पन्न नही हो सकती और इस कारण उत्पादन की मात्रा मे किसी तरह के नियमन की भी आवश्यकता नही है। सिसमाण्डी ने परम्परावादियो के इस विचार की कटु आलोचना करते हुए बताया कि इनके द्वारा प्रतिपादित किया गया स्वयं परिचालित साम्य केवल मात्र सैद्धांतिक है, व्यावहारिक नही। उसने बताया कि यदि किसी वस्तु की माग की अपेक्षा उसकी पूर्ति कम है तो इस दशा में तो उत्पादन को बढाना समाज के सभी वर्गों के लिए हितकर है और इस प्रक्रिया मे किसी प्रकार की कठिनाई भी नही हो सकती। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु की पूर्ति की अपेक्षा उसको माग कम है तो इस दशा मे उस वस्तु की पूर्ति को कम करने मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ेगा। सिसमाण्डी ने बताया कि उत्पादन को कम करने के हेतु यह आवश्यक है कि उत्पत्ति के साधनो को उस क्षेत्र से हटाकर किसी अन्य क्षेत्र मे लगा दिया जाए तथा यह कार्य अधिक सरल नहीं है क्योंकि श्रम व पूंजी आदि साधनो के सामने अनेक कठिनाइयां उपस्थित हो जायेंगी। जिस श्रमिक ने एक व्यवसाय मे कई वर्ष रहकर कुशलता पाई हो, समय और धन व्यय करके प्रशिक्षण प्राप्त किया हो, उस व्यवसाय के सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त किया हो : तब क्या संभव है कि क्या वह श्रमिक तुरन्त ही उस व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय मे संलग्न होना चाहेगा। इसी प्रकार क्या यह सभव है कि किसी कारखाने में लगी हुई अचल पूंजी (Fixed Capital) को तुरन्त दूसरे कारखाने में अंतरित किया जा सके। जहा तक उत्पादक का संबन्ध है वह भी किसी उद्योग-विशेष को जिसके प्रबन्ध और प्रशासन मे उसने अपने जीवन का काफी समय बिताया है, तुरन्त छोड़ने को तैयार नहीं हो सकता। परिणामतः उत्पादन स्वाभाविक रूप से नियन्त्रित होना तो दूर रहा, सदैव समान रहेगा या उसकी प्रवृत्ति वृद्धि की रहेगी। सिसमाण्डी ने बताया कि उत्पादक उस उद्योग विशेष से स्वयं को पूर्णतया पृथक नही कर सकते और उनकी संख्या केवल तभी कम होगी जबकि कुछ कारखाने फेल हो जायें तथा कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या भूखी मर जाए।"[1] निष्कर्ष रूप में उसने लिखा है कि, "साम्य के इस यथार्थ सिद्धान्त को जोकि स्वयं स्थापित हो जाएगा, छोड़िए। एक किस्म का साम्य, यह सत्य है, दीर्घ

1 "Producers will not withdraw from that industry entirely, and their numbers will diminish only when some of the workshops have failed and number of workmen have died of misery"

काल में पुनर्स्थापित अवश्य हो जाता है, परन्तु यह केवल अनेक यातनाओं के बाद ही संभव है।"*

सिसमाण्डी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि उसने जहां एक ओर स्वयं परिचालित साम्य से बचने का सुझाव दिया है, वहां दूसरी ओर यह भी बताया है कि वस्तु की पूर्ति घटाई अवश्य जा सकती है जोकि दीर्घकाल में ही सम्भव है और इस बीच में समाज के सामने अनेक कठिनाइयों की उपस्थिति अवश्यम्भावी है। सिसमाण्डी ने बताया कि वस्तु की गिरती हुई कीमतों का परिणाम यह होगा कि श्रमिकों की मजदूरी कम होती जाती जाएगी तथा उत्पादकों की हानि बढ़ती जायेगी जिसके कारण कुछ उद्योगपति एवं श्रमिक विनष्ट हो जायेंगे। फलतः उस वस्तु की पूर्ति कम होने लगेगी और उसकी कीमत बढ़ने लगेगी। इस प्रक्रिया की स्थापना के हेतु सिसमाण्डी ने एक लम्बे समय की आवश्यकता बताई जिस दौरान में बेकारी आर्थिक संकट आदि अनेक विषम समस्याओं का सूत्रपात हो जाएगा। सिसमण्डी ने अत्युत्पादन (Over Production) की स्थिति को समाज के लिए हानिकारक ठहराते हुए इसके निराकरण के हेतु उत्पादन की प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक ठहराया। सर्वव्यापी अत्युत्पादन की दशा किस प्रकार उपस्थित हो जाती है इस सम्बन्ध में सिसमण्डी ने दो विचार प्रस्तुत किए—(i) किसी देश की वार्षिक आय (Annual Reveuue) तथा वार्षिक उत्पादन (Annual Production) में अन्तर होता है। (ii) एक वर्ष की आय दूसरे वर्ष के उत्पादन को खरीदने के हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इस तरह यदि किसी वर्ष का उत्पादन पहले वर्ष की आय अधिक हो जाता है तो उत्पत्ति का एक भाग बिना बिके रह जाएगा तथा अत्युत्पादन की दशा उत्पन्न हो जायेगी। सिसमाण्डी के इस कथन में दो त्रुटि दिखाई पड़ती है, एक तो किसी राष्ट्र की वार्षिक आय ही उसका वार्षिक उत्पादन है तथा कोई एक दूसरे से न्यूनाधिक नहीं हो सकता। दूसरे दो विभिन्न वर्षों की उत्पत्ति का विनिमय न होकर एक वर्ष के विभिन्न उत्पादों का ही परस्पर विनिमय

* "Let us bewere of this dangerous theory of equilibrium whtch ir supposed to be automatically established in the long run, but it is only after a frightful amount of suffering." —Sismondi.

होता है।[1]

मशीनरी के प्रश्न पर लगभग सभी परम्परावादी विचारक एकमत थे। उन्होंने मशीनरी को बहुत लाभदायक बताया क्योंकि इनसे कम दर पर वस्तुओं का निर्माण होता है तथा उपभोक्ताओं को आय की बचत प्राप्त होती है जिसके फलस्वरूप अन्य उत्पादों की मांग बढ़ जाती है तथा मशीनों के कारण हटाए गए श्रमिकों को काम मिल जाता है।[2] इस प्रकार पराम्परावादियों का मत था कि मशीनों के प्रयोग से अनेको लाभ यथा-उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि, वस्तुओं के मूल्य मे कमी, उपभोक्ताओं की उपभोग्य-क्षमता मे वृद्धि, नागरिको के जीवन-स्तर मे सुधार, रोजगार मे वृद्धि आदि होंगे। परन्तु सिसमाण्डी ने बताया कि परम्परावादियों का यह तर्क इतिहास, अनुभव तथा परीक्षण पर आधारित न होने के कारण कल्पित एवं अव्यावहारिक है। सिसमाण्डी के शब्दों मे "प्रत्येक नया उत्पादन दीर्घकाल में कुछ नए उपभोग को जन्म देता है। परन्तु वस्तुओं का परीक्षण उस रूप में करना चाहिए जो कि उनका वास्तविक स्वरूप है। हमें सामाजिक साम्य की कार्यशीलता की बाधाओं की गणना करनी चाहिए और तब हम क्या देखेंगे? मशीनरी का तत्काल प्रभाव यह होगा कि कुछ श्रमिक बेकार हो जायेंगे, उनमें परस्पर प्रतियोगिता पैदा होगी जिससे उनकी मजदूरी कम हो जाएगी। इसके परिणामस्वरूप उपभोग कम होगा तथा मांग हतोत्साहित होगी, सदैव लाभदायक होना तो दूर की बात रही मशीनरी का परिणाम केवल तभी लाभदायक हो सकता है जबकि इसके प्रयोग द्वारा आय की वृद्धि हो जिसके फलस्वरूप काम से निष्कासित व्यक्तियों को नया काम दिलाया जा सके। यदि मनुष्य को दूसरी जगह काम मिल जाता है, तो कोई भी व्यक्ति मशीन को मनुष्य के स्थान पर प्रतिस्थापित करने के

---

1 "But with in the argument there lurks a two fold confusion. [illegible] oduce, and the [illegible] t is the produce [illegible] ous products of [illegible] movements of [illegible] erpart in actual life) it is the different products created at every moment that are [illegible] reciprocal demand [illegible] ay be two many or [illegible] severe crisis in one [illegible] one and the same time, there can never be too much. Mc Culloch, Ricardo, and Say victoriously upheld this view against Sismondi."

—Gide & Rist, Ibid, P. 190-91.

1 "On the question of machinery the classical writers were unanimous. Machinary they considered to be very beneficial, furnishing commodities at reduced rates and setting free a portion of the consumers, revenue, which accordingly meant an increased dem rd for other products and employment for those dimissed as a re[illegible] to this introduction,"

—Gide & Rist, Ibid, P

लाभों से इन्कार नहीं करेगा।"* सिसमाण्डी के इस विचार की अभिव्यक्ति प्रो० हेने ने इन शब्दों में की है, "उसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि मशीनरी का आविष्कार एवं प्रयोग तभी लाभदायक हो सकता है जबकि उसका प्रयोग आय और मांग की वृद्धि के बाद किया जाय जिसके फलस्वरूप निष्कासित कर्मचारियों को दूसरी जगह रोजगार मिल सके, अन्यथा मशीनों के प्रयोग से बेकारी और न्यून मजदूरी की यातनाएं सहन करनी पड़ेंगी।"[1] यह स्मरणीय है कि जहां परम्परावादी विचारकों का यह विश्वास था कि मशीनरी के प्रयोग द्वारा श्रमिकों की आय एवं मांग की स्वयमेव वृद्धि हो जाएगी, वहां सिसमाण्डी ने मशीनों के प्रयोग से पूर्व ही श्रमिकों की आय एवं मांग को बढ़ाना आवश्यक ठहराया। इस संदर्भ में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सिसमाण्डी मशीनों के प्रयोग से भी अधिक आय के विषम वितरण को श्रमिकों की दुर्दशा का कारण मानता था। कहने का अभिप्राय यह है कि सिसमाण्डी ने क्लासिकल विचारकों के इस मत का खण्डन किया कि मशीनों का प्रयोग सदैव मानव जाति की भलाई में होता है। उसने बताया कि यदि मशीनों का प्रयोग मानवीय श्रम के प्रतिस्थापक के रूप में किया जाता है तो इस दशा में मशीनों का प्रयोग मानव जाति के लिए अभिशाप सिद्ध होगा। मशीनों का प्रयोग केवल उसी दशा में उचित है जबकि छटनी हुए श्रमिकों को रोजगार के दूसरे साधन जुटाये जा सकें। मशीनों के प्रयोग के साथ-साथ समाज में आय और धन के वितरण की विषमता को सिसमाण्डी ने श्रमिक वर्ग की आपदाओं के लिए अधिक उत्तरदाई ठहराया।

* "Every new product must in the long run give rise to some fresh consumption. But let is examine things as they really are. Let us disist from our habit of making abstraction of time and place. Let us take some account of the obstacles and the friction of the social mechanism. And what do we see? The immediate effect of machinery is to throw some of the workers out of employment, to increase the competition of others, and so to lower the wages of all. This result in diminished consumption and a slackening of demand. Far from being always beneficial, machinery produces useful results only when its introduction is preceded by an increased revenue, and conequently by the possibility of giving new work to those displaced. No one will denay the advantages substuting a machine for a man, pravided that man can obtain emplyment elsewere."

—Sismondi.

1 "His real point is that invention and the introduction of machinery are an unmixed benefit only when preceded by an increase in revenue and demand which would allow the employment elsewhere of the labour which is displaced, other wise there is suffering, through lower wages and unemployment." —Prof. Haney.

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने स्वतन्त्र प्रतियोगिता (Free Competition) को किसी देश की अर्थव्यवस्था के लिये हितकर ठहराया था। एडम स्मिथ का विश्वास था कि सामान्य रूप से व्यापार की कोई शाखा अथवा कोई श्रम-विभाजन स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही लाभप्रद हो सकता है।[1] सिसमाण्डी ने परम्परावादियों के इस विचार का विरोध करते हुये बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता केवल तभी लाभप्रद सिद्ध हो सकती है जबकि इसकी सहायता से बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के हेतु उत्पादन की मात्रा को बढ़ाया जा सके। उसने बताया कि परम्परावादी विचारकों की यह धारणा सत्य नहीं है कि प्रतियोगिता उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होती है। जिस समय किसी वस्तु की मांग स्थिर होती है उस समय प्रतियोगिता का मुख्य कारण मौजूदा बाजार होता है अर्थात् बाजार पर अपना अधिकार जमाने के चक्कर में उत्पादकों में प्रतियोगिता होने लगती है। *इस दशा में कम कुशल अथवा अशक्त उत्पादक अपना तैयार माल नहीं* बेच पाते और वे दिवालिये हो जाते हैं तथा दूसरी ओर कुशल अथवा शक्तिशाली उत्पादक अपनी लागत-व्यय को घटाकर अधिक मात्रा में माल बेचने में सफल हो जाते हैं, परन्तु इस तरह उत्पादकों को जो अतिरिक्त बचत प्राप्त होती है उसे वे श्रमिकों को अथवा उपभोक्ताओं को (वस्तुओं की नीची कीमतों के रूप में) न देकर स्वयं अर्जन कर लेते हैं। इस संदर्भ में सिसमाण्डी ने दूसरी महत्वपूर्ण बात यह बताई कि उत्पादक वर्ग प्रतियोगिता में सफल होने के हेतु अनेक तरीकों से लागत-व्यय को कम करता है, यथा-श्रमिकों के काम के काम के घन्टे बढ़ा देता है, उनकी मजदूरी की दर गिरा देता है तथा पुरुषों के स्थान पर कम मजदूरी देकर स्त्रियों एवं बच्चों से काम लिया जाता है, आदि। इस प्रकार उत्पादकों की लागत-व्यय तो कम हो जाती है परन्तु इसका समस्त भार श्रमिकों को वहन करना पड़ता है। उत्पादक वर्ग द्वारा किए जाने वाले श्रमिक वर्ग के शोषण को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए सिसमाण्डी ने कहा, "कभी-कभी किसी उत्पादक की आय श्रमिकों के शोषण के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करती। एक लाभ इस *कारण उत्पन्न नहीं होता कि उद्योग अपने लागत-व्यय की अपेक्षा अधिक मात्रा में* उत्पादन करता है वरन् इसलिये लाभ पैदा होता है कि यह उद्योग अपने श्रमिकों को परिश्रम की उचित क्षतिपूर्ति करने में असफल रहता है। इस तरह का उद्योग

---

1 "In general, if any branch of trade, or any division of labour, be advantageous to the public, the freer and more general the competition, it will always be more so."

एक सामाजिक बुराई है।[1] सिसमाण्डी ने बताया कि इस तरह प्रतियोगिता के कारण, जो कि एक तरह से जुआरी व्यवहार है, श्रमिकों के जीवन स्तर, स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता का ह्रास होता है। इस तरह प्रतियोगिता को बुराई कहकर सिसमाण्डी ने अर्थशास्त्रियों एवं व्यक्तिवादियों के मार्ग का विरोध किया।[2] प्रतियोगिता के साथ-साथ सिसमाण्डी ने लाभ (Profits) को भी सामाजिक बुराई बताया और इसकी उत्पत्ति का कारण उत्पादक वर्ग द्वारा श्रमिकों का शोषण करना बताया।[3]

(ब) आर्थिक संकट (Economic Crisis)- सिसमाण्डी इस सिद्धान्त की व्याख्या करने वाला प्रथम लेखक था कि औद्योगिक समाज की प्रवृत्ति दो पृथक वर्गों में विभाजित होने की होती है अर्थात् पूँजीपति वर्ग या धनी वर्ग (Capitalist or Rich) तथा श्रमिक या निर्धन वर्ग (Proletariat or Poor)। उसने बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के कारण कुछ ही समय में मध्य वर्ग समाप्त हो जाता है। सिसमाण्डी के शब्दों में, "मध्यम वर्ग समाप्त हो गया है, अर्थात् स्वामी एवं किसान, स्वतन्त्र शिल्पकार, छोटे-छोटे निर्माणकर्ता तथा साधारण व्यापारी उनसे प्रतियोगिता करने में विफल हो चुके हैं जो कि बड़े उद्योगों का नियन्त्रण करते हैं। समाज में अब पूँजीपतियों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है तथा समाज में ऐसे

1 "The earnings of an entrepreneur sometimes represents nothing but the spoliation of the workmen. A profit is made not because the industry produces much more than it costs, but because it fails to give to the workmen sufficient compensation for his toil. Such an industry is a Social evil,"

—Sismondi : Nouveaux Princilpes, vol. I, P. 92.

2 "It is futile to deny the justice of the argument. When cheapness is only obtained at the cost of permanent deterioration in the wealth of the workers, competition evidently is a producer of evil rather than of good. The public interest is no less concerned with the preservation of vital wealth than it is with facilitating the produ-…on of material Wealth. Sismondi Showed that competition was …uble edged sword, and in doing so he prepared the way for those …o very justly demand that the state should place limits upon its … and prescribe rules for its employment."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 197.

3 "We might almost say that modern society lives at the expense of the proletariat, seeing that it curtails the reward of his toil." "Spoliation indeed we have, for do we not find the rich robbing the poor ? They draw in their revenues from the fertile, easily cultivated fields and wallow In their wealth, while the cultivator. who created that revenue is dying of hunger, never allowed to enjoy any of it."

—Sismondi,

व्यक्तियों के वर्ग का विकास हो रहा है जिनके पास किसी तरह की सम्पत्ति नहीं है।"[1] एक अन्य स्थल पर उसने लिखा है कि "हम पूर्णतया नवीन दशाओं में रह रहे हैं जिनका हमें अभी तक कोई अनुभव नहीं है। सभी सम्पत्ति हर एक तरह के परिश्रम को तलाक दे रही है जिसके अन्तर्गत संकट के चिन्ह हैं"।[2]

प्रो० एरिक रोल के शब्दों में, "उनका विश्लेषण मुख्यता एक विचार पर अर्थात् अत्युत्पादन और संकट जो कि प्रतियोगिता एवं श्रम व स्वामित्व के पृथक्करण द्वारा उत्पन्न होते हैं, आधारित है। इनमें से दूसरा कारक श्रमिक को पूर्णतया पूंजीपति पर निर्भर बना देता है और श्रमिक केवल मात्र सेवायोजकों की दया पर जीवित रहते हैं। जीवित रहने के हेतु वे सेवायोजक द्वारा प्रदत्त मजदूरी की किसी भी दर को स्वीकार कर लेते हैं। श्रम की पूर्ति पूर्णतया पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की माग (Demand of Wage-habour) पर निर्भर करती है। दूसरी ओर जनसंख्या आय पर निर्भर है। जब श्रमिक स्वतन्त्र होता है तो वह अपनी आय पर नियंत्रण रखता है, वह अपनी वर्तमान दशा को पहिचान कर सम्भावनाओं की गणना कर सकता है और वह यह भी निश्चित कर सकता है कि उसे कब शादी करनी तथा बच्चे पैदा करने हैं। परन्तु जैसे ही सम्पत्ति और श्रम को पृथक्-पृथक् कर दिया जाता है तो आय पूंजीपति के नियंत्रण में चली जाती है। यह पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की मांग पर निर्भर करती है और चूंकि इसका निर्धारण उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर पूंजी के लाभदायक उपयोग द्वारा उत्पादन की आवश्यकता के अनुरूप होता है, इसलिए, इसमें उच्चा-

---

1 "The intermediate classes have all disappeared, the small proprietor and the peasant farmer of the plain, the master craftsman, the small manufacturer, and the village tradesmen, all have faild to with stand the competition of those who control great industries. Society no longer has any room save for the great capitalist and his hireling, and we are witnessing the frightfully rapid growth of a hitherto unknown class of men who have absolutely no property."

—Sismondi.

2 "We are living under entirely new conditions of which as yet we have no experience. All property tends to be divorced from every kind of toil, and therein is the sign of danger. —Si-

एक सामाजिक बुराई है।[1] सिसमाण्डी ने बताया कि इस तरह प्रतियोगिता के कारण, जो कि एक तरह से दुधारी तलवार है, श्रमिकों के जीवन स्तर, स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता का नाश होता है। इस तरह प्रतिस्पर्धा की बुराई करके सिसमाण्डी ने समाजवादियों एवं साम्यवादियों के मार्ग का निर्देशन किया।[2] प्रतियोगिता के साथ-साथ सिसमाण्डी ने लाभ (Profits) को भी सामाजिक बुराई बताया और इसकी उत्पत्ति का कारण उत्पादक वर्ग द्वारा श्रमिकों का शोषण करना बताया।[3]

(घ) आर्थिक संकट (Economic Crisis)—सिसमाण्डी इस विश्वास की व्याख्या करने वाला प्रथम लेखक था कि औद्योगिक समाज की प्रवृत्ति दो प्रथक वर्गों में विभाजित होने की होती है अर्थात पूंजीपति अथवा धनी वर्ग (Capitalist or Rich) तथा श्रमिक या निर्धन वर्ग (Proletariat or Poor)। उसने बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के कारण कुछ ही समय में मध्य वर्ग समाप्त हो जाता है। सिसमाण्डी के शब्दों में, "मध्यम वर्ग समाप्त हो गया है, सम्पत्ति स्वामी एवं किसान, स्वतन्त्र शिल्पकार, छोटे-छोटे निर्माणकर्त्ता तथा ग्रामीण व्यापारी उनसे प्रतियोगिता करने में विफल हो चुके हैं जो कि बड़े उद्योगों का नियन्त्रण करते हैं। समाज में बड़े पूंजीपतियों के लिये कोई स्थान नहीं रह गया है तथा समाज में ऐसे

---

1 "The earnings of an entrepreneur sometimes represents nothing but the spoliation of the workmen. A profit is made not because the industry produces much more than it costs, but because it fails to give to the workmen sufficient compensation for his toil. Such an industry is a Social evil,"

—Sismondi : Nouveaux Princilpes, vol. I, P. 92.

2 "It is futile to deny the justice of the argument. When cheapness is only obtained at the cost of permanent deterioration in the wealth of the workers, competition evidently is a producer of evil rather than of good. The public interest is no less concerned with e preservation of vital wealth than it is with facilitating the produ- of material Wealth. Sismondi Showed that competition was ble edged sword, and in doing so he prepared the way for those ery justly demand that the state should place limits upon its prescribe rules for its employment."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 197.

"We might almost say that modern society lives at the ex- the proletariat, seeing that it curtails the reward of his 'Spoliation indeed we have, for do we not find the rich the poor ? They draw in their revenues from the fertile, ivated fields and wallow In their wealth, while the cultivator. d that revenue is dying of hunger, never allowed to enjoy "

—Sismondi,

व्यक्तियों के वर्ग का विकास हो रहा है जिनके पास किसी तरह की सम्पत्ति नहीं है।"[1] एक ग्रन्य स्थल पर उसने लिखा है कि "हम पूर्णतया नवीन दशाओं में रह रहे हैं जिनका हमें अभी तक कोई अनुभव नहीं है। सभी सम्पत्ति हर एक तरह के परिश्रम को तलाक दे रही है जिसके अन्तर्गत संकट के चिन्ह हैं"।[2]

प्रो० एरिक रौल के शब्दों में, "उनका विश्लेषण मुख्यता एक विचार पर अर्थात् अत्युत्पादन और सकट जो कि प्रतियोगिता एवं श्रम व स्वामित्व के पृथक्करण द्वारा उत्पन्न होते हैं, आधारित है। इनमें से दूसरा कारक श्रमिक को पूर्णतया पूंजीपति पर निर्भर बना देता है और श्रमिक केवल मात्र सेवायोजकों की दया पर जीवित रहते हैं। जीवित रहने के हेतु वे सेवायोजक द्वारा प्रदत्त मजदूरी की किसी भी दर को स्वीकार कर लेते हैं। श्रम की पूर्ति पूर्णतया पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की मांग (Demand of Wage-habour) पर निर्भर करती है। दूसरी ओर जनसख्या आय पर निर्भर है। जब श्रमिक स्वतन्त्र होता है तो वह अपनी आय पर नियंत्रण रखता है, वह अपनी वर्तमान दशा की पहिचान कर सम्भावनाओं की गणना कर सकता है और वह यह भी निश्चित कर सकता है कि उसे कब शादी करनी तथा बच्चे पैदा करने हैं। परन्तु जैसे ही सम्पत्ति और श्रम को पृथक्-पृथक् कर दिया जाता है तो आय पूंजीपति के नियंत्रण में चली जाती है। यह पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की मांग पर निर्भर करती है और चूंकि इसका निर्धारण उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर पूंजी के लाभदायक उपयोग द्वारा उत्पादन की आवश्यकता के अनुरूप होता है, इसलिए, इसमें उच्चा-

---

1 "The intermediate classes have all disappeared, the small proprietor and the peasant farmer of the plain, the master craftsman, the small manufacturer, and the village tradesmen, all have faild to with stand the competition of those who control great industries. Society no longer has any room save for the great capitalist and his pireling, and we are witnessing the frightfully rapid growth of a hitherto unknown class of men who have absolutely no property."

—Sismondi.

2 "We are living under entirely new conditions of which as yet we have no experience. All property tends to be divorced every kind of toil, and therein is the sign of danger. —Si

एक सामाजिक बुराई है।¹ सिसमाण्डी ने बताया कि इस तरह प्रतियोगिता के कारण, जो कि एक तरह से दुधारी तलवार है, श्रमिकों के जीवन स्तर, स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता का ह्रास होता है। इस तरह प्रतियोगी की बुराई करके सिसमाण्डी ने समाजवादियों एवं राज्यवादियों के मार्ग का निर्देशन किया।² प्रतियोगिता के साथ-साथ सिसमाण्डी ने लाभ (Profits) को भी सामाजिक बुराई बताया और इसकी उत्पत्ति का कारण उत्पादक वर्ग द्वारा श्रमिकों का शोषण करना बताया।³

(घ) आर्थिक संकट (Economic Crisis)—सिसमाण्डी इस विचार को स्वीकार करने वाला प्रथम लेखक था कि औद्योगिक समाज की प्रवृत्ति दो पृथक वर्गों में विभाजित होने की होती है अर्थात् पूँजीपति अथवा धनी वर्ग (Capitalist or Rich) तथा श्रमिक या निर्धन वर्ग (Proletariat or Poor)। उसने बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के कारण कुछ ही समय में मध्य वर्ग समाप्त हो जाता है। सिसमाण्डी के शब्दों में, "मध्यम वर्ग समाप्त हो गया है, अर्थात् स्वामी एवं किसान, स्वतन्त्र शिल्पकार, छोटे-छोटे निर्माणकर्ता तथा व्यापारी उनसे प्रतियोगिता करने में विफल हो चुके हैं जो कि बड़े उद्योगों का नियन्त्रण करते हैं। समाज में अब पूँजीपतियों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है तथा समाज में ऐसे

1 "The earnines of an entrepreneur sometimes represents nothing but the spoliation of the workmen. A profit is made not because the industry produces much more than it costs, but because it fails to give to the workmen sufficient compensation for his toil. Such an industry is a Social evil,"

—Sismondi : Nouveaux Princilpes, vol. I, P. 92.

2 "It is futile to deny the justice of the argument. When cheapness is only obtained at the cost of permanent deterioration in the wealth of the workers, competition evidently is a producer of evil rather than of good. The public interest is no less concerned with he preservation of vital wealth than it is with facilitating the produ-
n of material Wealth. Sismondi Showed that competition was
uble edged sword, and in doing so he prepared the way for those
very justly demand that the state should place limits upon its
and prescribe rules for its employment."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 197.

3 "We might almost say that modern society lives at the expense of the proletariat, seeing that it curtails the reward of his toil." "Spoliation indeed we have, for do we not find the rich robbing the poor? They draw in their revenues from the fertile, easily cultivated fields and wallow In their wealth, while the cultivator. who created that revenue is dying of hunger, never allowed to enjoy any of it."

—Sismondi,

व्यक्तियों के वर्ग का विकास हो रहा है जिनके पास किसी तरह की सम्पत्ति नहीं है।"[1] एक अन्य स्थान पर उसने लिखा है कि "हम पूर्णतया नवीन दशाओं में रह रहे हैं जिनका हमें अभी तक कोई अनुभव नहीं है। अभी सम्पत्ति हर एक तरह के परिश्रम को तलाक दे रही है जिसके अन्तर्गत संकट के चिन्ह हैं"।[2]

प्रो० एरिक रोल के शब्दों में, "उसका विश्लेषण मुख्यतः एक विचार पर अर्थात् अत्युत्पादन और संकट जो कि प्रतियोगिता एवं श्रम व स्वामित्व के पृथक्करण द्वारा उत्पन्न होते हैं, आधारित है। इसमें से दूसरा कारक श्रमिक को पूर्णतया पूंजीपति पर निर्भर बना देता है और श्रमिक केवल मात्र सेवायोजकों की दया पर जीवित रहते हैं। जीवित रहने के हेतु वे सेवायोजक द्वारा प्रदत्त मजदूरी की किसी भी दर को स्वीकार कर लेते हैं। श्रम की पूर्ति पूर्णतया पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की मांग (Demand of Wage-habour) पर निर्भर करती है। दूसरी ओर जनसंख्या आय पर निर्भर है। जब श्रमिक स्वतन्त्र होता है तो वह अपनी आय पर नियंत्रण रखता है, वह अपनी वर्तमान दशा को पहिचान कर सम्भावनाओं की गणना कर सकता है और वह यह भी निश्चित कर सकता है कि उसे कब शादी करनी तथा बच्चे पैदा करने हैं। परन्तु जैसे ही सम्पत्ति और श्रम को पृथक्-पृथक् कर दिया जाता है तो आय पूंजीपति के नियंत्रण में चली जाती है। यह पूंजीपतियों की मजदूरी-श्रम की मांग पर निर्भर करती है और चूंकि इसका निर्धारण उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर पूंजी के लाभदायक उपयोग द्वारा उत्पादन की आवश्यकता के अनुरूप होता है, इसलिए, इसमें उच्चा-

---

1 "The intermediate classes have all disappeared, the small proprietor and the peasant farmer of the plain, the master craftsman, the small manufacturer, and the village tradesmen, all have faild to with stand the competition of those who control great industries. Society no longer has any room save for the great capitalist and his pireling, and we are witnessing the frightfully rapid growth of a hitherto unknown class of men who have absolutely no property."

—Sismondi.

2 "We are living under entirely new conditions of which yet we have no experience. All property tends to be di- every kind of toil, and therein is the sign of danger. —do.

इनके कर्मचारी काम से हटाये जाते हैं जबकि नई इकाइयाँ बहुत धीमी गति से विकसित हो पाती हैं। इस तरह जो श्रमिक बेकार हो जाते हैं वे सामान्य वस्तुओं का उपभोग कम करने को बाध्य हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप स्थाई न्यून-उपभोग अथवा आर्थिक संकट की दशा पैदा हो जाएगी।[1]

यद्यपि सिसमाण्डी द्वारा किए गए आर्थिक संकट के विश्लेषण को उस समय से लेकर आज तक अनेक विचारकों ने अपनाया है, तथापि उसका यह विश्लेषण अधिक उत्तम नहीं ठहराया जा सकता। उसने अत्युत्पादन के संकट का तो वर्णन किया है परन्तु न्यूनोत्पादन के संकट का कोई वर्णन नहीं किया। फिर यदि धन का वितरण समान भी कर दिया जाये तब भी आर्थिक संकटों का निवारण नहीं किया जा सकता। प्रो० हैने (Prof. Haney) का कथन है कि सिसमाण्डी ने अत्युत्पादन की कटु आलोचना इस कारण की है क्योंकि वह परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित पूँजी के उत्पादकता-सिद्धान्त (Productivity Theory of Capital) को समाप्त करना चाहता था। इसी तरह दूसरे आलोचकों का मत है कि सिसमाण्डी ने सर्वव्यापी आर्थिक संकट का विवेचन न करके कुछ विशेष उद्योगों में पाए जाने वाले दोषों का ही वर्णन किया है। वास्तविकता यह है कि उसने परम्परावादियों के इस कथन का खण्डन किया है कि किसी वस्तु की माँग व पूर्ति में साम्य की स्थापना स्वयमेव हो जाती है।

(ङ) सिसमाण्डी की सुधार परियोजनायें (Sismondi's Reform Projects)—सिसमाण्डी ने समाज में दो बुराइयों को मुख्यतः देखा: (i) सम्पत्ति की अनुपस्थिति (The Absence of Property) तथा (ii) श्रमिक वर्ग की आय की अनिश्चितता (The Uncertainty of the Earnings of the Working Class)। उसने यह सुझाव दिया कि समस्त सरकारी क्रियायें इन्हीं दो समस्याओं पर केन्द्रित होनी चाहियें। सिसमाण्डी ने परम्परावादियों के स्वतन्त्रवाद (Laissez Faire) का विरोध करते हुए सरकारी हस्तक्षेप को उत्तम ठहराया क्योंकि उसका विश्वास था कि सरकारी हस्तक्षेप की नीति के द्वारा धनी एवं निर्धन अथवा पूँजीपति और श्रमिक दोनों वर्गों के बीच उपस्थित संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। सिसमाण्डी ने श्रमिकों को कुछ सम्पत्ति दिलाने का सुझाव देते हुए यह इच्छा प्रकट की थी कि स्वतन्त्र

---

1 "The petty merchants, the small manufacturers, disappear, and great enterpreneur replaces hundreds of them whose total wealth was never equal to his. Taken altogether, however, they consumed more than he does. His costly luxury gives much less encouragement to industry than the honest ease of the hundred homes which it has replaced." —Sismondi.

देता है और कारण इसमे विचारक भी सिसमाण्डी की ही तरह सरकार से श्रम-कानून बनाने का मशवरा देते हैं तथा उन समस्त सुधारो को अपनाने की राय देते हैं जिनको सिसमाण्डो ने सुझाया था। प्रो० हेने के मतानुसार, "यद्यपि उसने समाजवादी निष्कर्ष नही निकाले, तथापि सिसमाण्डी के तर्क बहुधा स्वयं मार्क्स की तरह चलते हैं तथा श्रम के शोषण से सबन्धित उनके विचार नि.सन्देह समाजवादी आलोचना को प्रभावित करते हैं।"[1] इसी तरह प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने लिखा है कि, "सिसमाण्डी यद्यपि स्वय समाजवादी नही था, तथापि उसका समाजवादियों द्वारा ध्यानपूर्वक अध्ययन किया।"[2] समाजवादी विचारको के साथ-साथ सिसमाण्डी के विचारो का राज्य समाजवादियो (State Socialists) पर भी पड़ा। सिसमाण्डी के प्रत्युत्पादन (Over production), आर्थिक संकट (Economic Crisis) तथा सरकारी हस्तक्षेप की नीति (Policy of State Intervention) ने रॉडबर्टस (Rodbertus) को काफी सीमा तक प्रभावित किया था और इसी के आधार पर उसने अपना आर्थिक संकट का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। मानवीय परम्परावादी शाखा के प्रमुख विचारको जे० एस० मिल (J. S. Mill), रस्किन (Rustain) आदि पर भी सिसमाण्डी के विचारो का प्रभाव अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं अध्ययन-पद्धति की स्वीकृति के रूप मे दिखाई देता है। यही नही, चूंकि सिसमाण्डो ने विशुद्ध ऐतिहासिक पद्धति को विशेष महत्व प्रदान किया था, इसी कारण उसे ऐतिहासिक सम्प्रदाय का संस्थापक (Founder of Historical school) कहा जाता है। सिसमाण्डी से प्रभावित होकर ही रोस्चर (Roscher), श्मोलर (Schmoller), हिल्डर ब्रान्ड (Hilderbrand) आदि विचारकों ने निगमन पद्धति (Deductive Method) के स्थान पर आगमन पद्धति (Inductive Method) को विशेष महत्व प्रदान किया था। सिसमाण्डी के मानव-कल्याण सम्बन्धी विचारों का मार्शल (Marshall), पीगू (Pigou), कैनन (Cannan) आदि नव-परम्परावादियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है और इन विचारकों ने भी अर्थशास्त्र के अध्ययन मे 'धन' के स्थान पर 'मानव-कल्याण' को अधिक महत्व प्रदान किया है। अन्त मे, सिसमाण्डी के विचारों के प्रभाव से मार्क्सवादी विचारक कार्लमार्क्स (Karl Marks) और (Engles) भी अछूते नही रह गए हैं। यद्यपि यह कहना सत्य है कि श्रम के शोषण संबन्धी

---

1 "Though he does not draw socialistic conclusions, Sismondi's argument often runs like that of Marx himself, and his thought concerning the exploitation of labour uodoubtedly inflbenced socialistic criticism." —Prof. Haney.

2 "Sismondi, though not himself a socialist, has been much-read and carefully studied by socialist. It is among them that his nfluence is most marke d." —Prof. Gide & Rist.

विचारों में मार्क्स और सिसमाण्डी एक मत नहीं हैं, तथापि इस तथ्य को भी नहीं भुलाया जा सकता कि सिसमाण्डी के विचारों ने एक बड़ी सीमा तक मार्क्स-वादियों को प्रभावित किया है।

प्रो० एरिक रौल (Eric Roll) के मतानुसार, "उसने साम्यवाद को इसलिए अस्वीकार किया कि वह व्यक्तिगत हित के महत्व में अटूट विश्वास रखता था। उसने संघवाद को भी ठुकराया क्योंकि वह इसे मानव जाति की उत्पादक-शक्तियों के लिए एक बाधा समझता था। परन्तु उसकी नीति अन्त में अधिक आदिम दशाओं को प्राप्त हुई। उसने अपनी नीति के उद्देश्य की व्याख्या सम्पत्ति एवं श्रम के पुर्नसंगठन तथा उत्पादन एवं उपभोग के बीच साम्य की पुनर्स्थापना के रूप में की। इसकी व्याख्या समाजवादी ध्येय के रूप से की गई है। परन्तु जहाँ अनेक तात्कालिक समाजवादी विचारकों—विशेषकर इंग्लैंड के समाजवादी विचारकों ने उत्पत्ति के सही तरीके के साधन के रूप में व्यक्तिगत सम्पत्ति के निराकरण का सुझाव दिया, वहाँ सिसमाण्डी ने स्वतन्त्र उत्पादकों, छोटे-छोटे किसानों और शिल्पकारों को देखना चाहा था। उसने बताया कि बढ़ते हुए असाम्य को सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाये। सरकार द्वारा आविष्कारों पर रोक लगाई जाए तथा औद्योगिक-प्रगति का ऐसा ध्येय अपनाया जाए कि अत्युत्पादन एवं दुर्भाग्य की सम्भावनाओं का निराकरण करते हुए आवश्यक समायोजन ठोस रूप में किया जा सके।"

८

सेन्ट साइमन एवं सेन्ट साइमोनियनस

(Saint Simon and Saint Simonians)

प्राक्कथन:—सिसमाण्डी ने राजनैतिक अर्थव्यवस्था के अध्ययन में सामाजिक अर्थशास्त्र के अध्ययन की पूरक पूर्ति करते हुए अर्थ-विज्ञान के संस्थापकों के लिए खोज के क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया था। परन्तु वितरण के क्षेत्र में उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति, जोकि आधुनिक समाज की मौलिक संस्था है, का कोई विरोध नहीं किया। उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति को आवश्यक एवं न्यायप्रद ठहराया, जबकि हरएक इंगलिश और फ्रेन्च अर्थशास्त्री ने इस संस्था के साथ दूसरे प्रकार का व्यवहार किया और यह संस्था उनकी आलोचना का मुख्य विषय बन गई।[1] फ्रेन्क नैफ (Frank Neff) के शब्दों में, "समाजवादी प्रवर्तकों में से अनेकों को उस लिस्ट में रखा जाता है जिन्हें सच्चा समाजवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था का निराकरण नहीं किया। इनमें से सिसमाण्डी एक था और सेन्ट साइमन दूसरा था।"[2] इनके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ ऐसे लेखक भी हुए जिन्होंने यह दावा किया कि आर्थिक संगठन का एक मुख्य उद्देश्य उत्पादन की मात्रा को अधिकतम करना तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक सामाजिक संस्था का उन्मूलन करना है। इन विचारकों ने एक निश्चित लक्ष्य अपने सामने रखते हुए व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था का विरोध किया क्योंकि उन्होंने यह देखा कि इस संस्था का धन के उत्पादन और वितरण पर असमाजिक प्रभाव पड़ता है।

---

1 "Sismondi, by supplementing the study of political economy by a study of social economics, had already much enlarged the area traced for the science by its founders. But while giving distribution the position of honour in his discussion, he never dared carry his criticism as far as an examination of that fundamental institution of modern society-private property, at least, he thought legitimate and necessary. Every English and French economist had always treated it as a thing apart a fact so indisputable that it formed the very basis of all their speculations." —Gide & Rist

2 "Among the socialist pioneers some are customarily who were not truely socialist in as much as they did not ... institution of private property. Sismondi was one of Simon was another."

इन विचारको ने इस संस्था के ऐतिहासिक विकास से सम्बन्धित सिद्धांतों पर सन्देह किया और यह निष्कर्ष दिया कि इसका उन्मूलन वर्तमान समाज के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक संगठन को पूर्णता प्रदान करेगा। इस तरह व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध अर्थ-विज्ञान की एक मौलिक विशेषता बन गई।

यह स्मरणीय है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध प्रारम्भ से काल्पनिक साम्यवादियों (Utopian Communists) द्वारा अर्थात् प्लेटो (Plato) और मूर (More) से लेकर मैबले (Mablay), मौर्ले (Morelly), गॉडविन (Gddurn) तथा बेबफ (Babeuf) तक, किया गया। परन्तु इन विचारकों ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से न करके नीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से किया था सेन्ट साइमोनियन के व्यवहार की मौलिकता यह है कि यह आर्थिक एवं राजनैतिक क्राँति की प्रत्यक्ष उपज है जिसने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्राँस तथा समस्त यूरोप को हिला दिया। सेन्ट साइमन का समाजवाद अनिश्चित नहीं है।[2] सेन्ट साइमनवाद आर्थिक स्वतन्त्रतावाद का असम्भावित विस्तार सा दिखाई देता है, पुरातन समाजवादी धारणाओं का नवीनीकरण नहीं।

---

1 "The Originality of the Saint Simonian treatment is that it is the direct outcome of the economic and political revolution which shook Franch and the whole Europe towards the end of the eighteenth and the begining of the ninteenth centuries. The socialism of Saint Simon is not a vague aspiration for some pristive equality which was largely a creation of the imagination. It is rather the native expression of juvenile enthusiasm in the presence of the new industrial regime begotten of mechanical invention and scintific discovery. The medern spirit at its best is what it would fain reveal. It sought to interpret the generous aspiration of the vew bourgeois class, freed through the instrumentality of the Revolution from the tutelage of baron and priest, and to show how the reactionary policy of the Restoration threatened its triumph. Not content, however, with confining itself to the intellectual orbit of the bourgeoise, is sought also to define the sphere of the workers in future society and to lay down regulations for their benfit. But its appeal was cheifly to the more cultured classesengineers, bankers, artists, and savants. It was to these men all of them members of the better classes that the saint Simohians preached collectivism and the suppresion of inheritance as the easiest way of founding a new society upon the basis of science and industry."

—Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 213-14.

सेन्ट साइमनवाद की विचारधाराओं को हम दो वर्गों में विभिक्त कर सकते हैं— (i) सेन्ट साइमन के विचार तथा (ii) उसके अनुयाइयों के विचार। सेन्ट साइमन की विचारधारा को "ग्रौद्योगिकवाद" (Industrialism) तथा समाजवाद के हल्के मिश्रण (Slight Admixture of Socialism) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है और इस तरह उसकी विचारधारा स्वाभाविक रूप से आर्थिक स्वतन्त्रतावाद से सम्बद्ध हो जाती है। सेन्ट साइमन के अनुयाइयों की विचारधारा की व्याख्या सामूहिकतावाद (Collectivism) के रूप में की जा सकती है। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में सेन्ट साइमोनियनस के विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। परन्तु सेन्ट साइमन के सिद्धान्त की जानकारी के बिना सेन्ट साइमोनियनस के विचारों को समझ सकना असम्भव है। अतएव हम पहले सेन्ट साइमन के विचारों की ही व्याख्या करेंगे तथा यह दिखायेंगे कि किस तरह उसका समाजवाद आर्थिक स्वतन्त्रतावाद से सम्बद्ध है।

(क) सेन्ट साइमन

(Saint Simon)

काउन्ट हेनरी डी साइमन (Count Henry de Simon) का जन्म सन् १७६० में फ्रांस के उच्च घराने में हुआ था। प्रारम्भ से ही साइमन स्वतन्त्र विचारों साहसी प्रवृत्ति एवं क्रांतिकारी प्रवृत्ति का था। संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम में उसने सक्रिय भाग लिया जिसके अन्तर्गत उसे कारागार की यातनाएं सहन करनी पड़ीं। कारागार से मुक्त होने पर साइमन ने सम्पूर्ण अमेरिका का परिभ्रमण किया तथा उस देश की अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण बातों की जानकारी प्राप्त की। अमेरिका के परिभ्रमण के पश्चात् वह फ्रांस वापिस लौट आया तथा अपने नवीन विचारों के आधार पर एक नवीन औद्योगिक समाज की रचना के हेतु व्यग्र हो उठा। यह स्मरणीय है कि साइमन कुशाग्र बुद्धि का होते हुए भी अत्यधिक सनकी एवं अपव्ययी प्रकृति का व्यक्ति था। सन् १८२५ में साइमन की मृत्यु हुई। अपने जीवनकाल में उसने अर्थशास्त्र और तर्कशास्त्र पर अनेक सारगर्भित लेख लिखे जिनका एकमात्र उद्देश्य समाज-कल्याण में निहित था। साइमन की रचनाओं में से 'उद्योग' (Industry) "औद्योगिक प्रणाली" (The Industrial System) तथा "उद्योग पर प्रश्नोत्तर" (Qnestions and Answer on Industry) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सेन्ट साइमन की विचारधारा पर औद्योगिक क्रांति के परिणामों, अमेरिका की अर्थव्यवस्था, फ्रांसीसी क्रांति का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त साइमन तात्कालिक विचारकों सिसमाण्डी (Sismondi), सर टॉमस मूर (Sir Thomas More), मोर्ले (Morelly), गॉडविन (Godvin) रोबर्ट ओवन (Robert Owen), चार्ल्स फूरियर (Charls Fourier) तथा लुई ब्लैंक (Louis ... के विचारों से भी काफी अंश तक प्रभावित हुआ था।

सेन्ट साइमन के अर्थशास्त्र का उद्योग के परमत्व (Apothesis of Industry) के रूप में निरूपण किया जा सकता है। उसका विचार था कि आधुनिक समाज की समृद्धि केवल मात्र औद्योगिक विकास द्वारा ही सम्भव है अर्थात् समाज को समृद्ध बनाने का एक मात्र उत्तरदायित्व उद्योगपतियों, औद्योगिक नेताओं, बैंकर्स और इंजीनियरों पर है। साइमन ने बताया कि यदि किसी देश के प्रथम श्रेणी के पचास वैज्ञानिक, प्रथम श्रेणी के पचास बैंकर्स, दो सौ श्रेष्ठ व्यापारी, छः सौ उच्च कोटि के कृषक, प्रथम श्रेणी के पचास चिकित्सक, तथा पांच सौ कुशल इंजीनियर्स की मृत्यु हो जाय तो उस देश को भारी क्षति उठानी पड़ेगी। परन्तु यदि दुर्भाग्यवश उस देश के उच्च पदाधिकारियों, राज्य-मन्त्रियों, पुजारियों, राजनैतिक नेताओं, न्यायधीशों, सिपाहियों आदि की मृत्यु हो जाय तो इससे उस देश को विशेष हानि नहीं होगी।[1] इस तरह स्पष्ट है कि साइमन के विचार से उद्योगपति एवं उद्योग से सम्बन्धित व्यवसायों का ही विशेष महत्व है तथा इनके अतिरिक्त अन्य व्यवसायिक वर्ग केवल मात्र देश की सजावट है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता

---

1 "Let us suppose that France suddenly loses fifty of her first class doctors, fifty first class chemists, fifty first-class physiologists, fifty first-class bankers, two hundred of her best merchants, six hundred of her formost agriculturists, five hundred of her most capable ironmasters, etc (enumerating the principal industries). Seeing that these men are its most important products, the minute that it loses these the nation will degenerate into a more soulless body and fall into a state of despicable weakness in the eyes of rival nations, and will remain in this subordinate position so long as the loss remains and their places are vacant. Let us take anothe supposition. Imagine that France retains all her men of genius, whether in the arts and science, or in the crafts and industries, but has the misfortune to loss on the same day the king's brother, the Duke of Angouleme, and all the other members of the royal family, all the great officers the Crown, all ministers of state, whether at the head of a department or not, all the Privy Coucillors, all the masters of requests, all the mars hals, cardinais, archbishops, bishops, grand vicars and conons, all prefects and sub prefects, all Government employees, all the judges, and on top of that a hundred thousand propritors—the cream of her nobility. Such an overwhelming catastrophe woulb certainly aggrieve the French, for they are kindly-disposed nation. But the loss of a hundred and thirty thousand of the best-reputed individuals in the state would give rise to sorrow of a purely sentimental kind. It would not cause the community the least incovenieace." —Saint Simon

है कि साइमन के विचार मे अधिकारी वर्ग का काय पूर्णतया व्यर्थ है तथा इसके अभाव मे समाज स्थिर रह सकता है और उसकी खुशहाली मे किसी तरह की कमी नहीं आएगी। परन्तु दूसरी ओर औद्योगिक नेताओं, बैकर्स तथा व्यापारियों का अभाव इस देश को पंगु बना देगा तथा धन के महत्वपूर्ण स्रोत शुष्क हो जायेंगे क्योंकि उनकी क्रियायें वास्तविक रूप से फलदायक एवं आवश्यक होती हैं। समाज के ये उत्पादक वर्ग ही वास्तविक शासक हैं और वास्तविक शक्ति इन्हीं के हाथ मे है। साइमन की दृष्टि से समाज के सम्पूर्ण भार को वहन करने वाले वर्ग ये ही हैं।

सेन्ट साइमन के अनुसार इस बात को स्वीकार करने मे बहुत थोड़े परिश्रम की आवश्यकता है कि जिस दुनियाँ मे हम रहते हैं वह उद्योग पर आधारित है तथा उद्योग के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु विचारशील व्यक्तियों के ध्यान को आकृष्ट करने योग्य नही है। साइमन ने बताया कि भावी क्रम उद्योगवाद का होना चाहिए अर्थात् एक ऐसा सामाजिक संगठन जिसका केवल एक ही उद्देश्य हो– धन और समृद्धि के स्रोत अर्थात उद्योग का पुनः विकास करना। इस तरह यद्यपि वह व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोधी नही था, तथापि वह समाज मे पनपने वाले विभिन्न प्रकार के अनुत्पादक वर्गों के पक्ष मे नही था और वह तो एक मात्र उत्पादक वर्ग का ही पक्ष पाती था। यद्यपि वह औद्योगिक विकास के दुष्परिणामों को जानता था, तथापि उसने इन सबका श्रेय केवल अनुत्पादक वर्ग को ही दिया। इन समस्त दुष्परिणामों के निराकरण के हेतु वह एक नवीन औद्योगिक समाज के निर्माण का पक्षपाती था जिसमें कि हरएक व्यक्ति उत्पादन मे सहयोग प्रदान करेगा। उस नवीन औद्योगिक समाज की रचना करने के हेतु उसने सर्वप्रथम समस्त वर्ग-भेद का उन्मूलन करने का विचार रक्खा और बताया कि इस औद्योगिक समाज में समानता का आधार अपनाया जाएगा। व्यक्ति की समानता का आधार उसका वह श्रम और प्रयत्न होगा जोकि वह उत्पादन के लिए करेगा। साइमन के मतानुसार इस औद्योगिक समाज में श्रमिक और निष्क्रिय केवल दो ही वर्ग होंगे। साइमन की दृष्टि से इन दोनों वर्गों मे से ही जीवित रहने के अधिकारी केवल प्रथम वर्ग के ही व्यक्ति हैं तथा द्वितीय वर्ग के व्यक्तियों के लिए कोई स्थान नही हैं, प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उसने मानसिक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त किसानों, शिल्पकारों, उद्योगपतियों बैकर्स और कलाकारों को रक्खा। इन विभिन्न व्यक्तियों मे साइमन ने कार्यशक्ति के अन्तर के अलावा और कोई अन्तर नही देखा। साइमन के शब्दो मे, "औद्योगिक समानता का अर्थ राज्य मे अपने शेयर के बिल्कुल ठीक अनुपात मे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्राप्त लाभ से है अर्थात् अपनी कार्यशक्ति और साधनों के उपयोग,

भी सम्मिलित है के अनुपात में" ।[2] यह स्मरणीय है कि सेन्ट साइमन पूंजीपतियों की आय को छीनने के पक्ष में नहीं था, वह तो केवल भूस्वामियों के विरुद्ध था।

सेन्ट साइमन अपने नवीन औद्योगिक समाज में श्रम एवं योग्यता पर आधारित न केवल सभी सामाजिक विभेदों को समाप्त करने के पक्ष में था वरन् वह सरकार को भी अनावश्यक मानता था। सेन्ट साइमन के लिए "राष्ट्रीय संगठन" (National Association) का अभिप्राय "औद्योगिक उपक्रम" (Industrial Enterprise) से था। उसकी इच्छा फ्रांस को एक फैक्ट्री में परिणित करने तथा एक वड़े आदर्श कारखाने के आधार पर राष्ट्र की व्यवस्था को आधारित करने की थी। उसने वताया कि एक कारखाने में चोरियों को रोकना तथा अन्य अव्यवस्थाओं को नियंत्रित करने का काम सर्वदा द्वितीयक महत्व का है तथा यह कार्य अधीनस्थों द्वारा किया जा सकता है। औद्योगिक समाज में सरकार का कार्य अनुत्पादक आलसियों से श्रमिकों की रक्षा करना तथा उत्पादक के लिए सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता कायम रखने तक सीमित होना चाहिए।[2] इस तरह यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साइमन के "उद्योगवाद" तथा स्मिथ (Adam Smith) के 'स्वतन्त्रतावाद" में विशेष अन्तर नहीं है।

सम्पूर्ण फ्रांस को एक वड़े कारखाने के रूप में परिणित करने की कल्पना करते हुए साइमन के सामने नई निर्माण-शासन पद्धति की स्थापना करने तथा साहसियों के हितों को एक ओर उपभोक्ताओं के हित से तथा दूसरी ओर श्रमिकों के हित से आवद्ध करने की समस्या उत्पन्न हुई और इस कार्य के हेतु उन्हें एक तरह की सरकार की आवश्यकता महसूस हुई। साइमन ने नई किस्म की सरकार वनाने में मनुष्यों के प्रशासन की जगह शक्तियों के संगठन की आवश्यकता वताई और कहा कि सरकारी नीतियो को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है वरन् इन्हें उत्पादक संगठन के एक यथार्थ विज्ञान में वदल देने की आवश्यकता है। साइमन के शब्दों में, "पुरानी प्रणाली के अन्तर्गत निम्न वर्गों के ऊपर उच्च वर्गों को वढ़ावा देकर सरकार

---

1 "Industrial equality consists in each drawing from society ...enfits proportionate to his share in the state that is, in proportion his potential capacity and the use which he makes of the means his disposal—including of course, capital." —Saint Simon.

2 "France was to be turned into a factory and the organized on the model of a vast workshop," but "the task of preventing thefts and of checking other disorders in a factory is a matter of quite secondary importance and can be discharged by subordinates." "*In a similar fashion, the function of government in industrial society must be limited to defending workers from the unproductive sluggard and maintaining security and freedom for the producer.*" —Saint Simon.

की शक्ति को बढ़ाने की प्रवृत्ति निहित थी। नई प्रणाली के अन्तर्गत समाज की सभी शक्तियों को इस रूप में आबद्ध करने का ध्येय होना चाहिए ताकि उन सब कार्यों का सफल सम्पादन हो सके जिनकी प्रवृत्ति अपने सदस्यों को नैतिक अथवा भौतिक रूप में सुधारने की है।"[1] साइमन के अनुसार नई किस्म की सरकार का कार्य ऐसा होगा जिसमें क्षमता (Capacity) शक्ति (power) का स्थान ग्रहण कर लेगी तथा निर्देशन (Direction) आज्ञा (Command) का स्थान ग्रहण कर लेगा।

अपनी इस नवीन व्यवस्था को और अधिक स्पष्ट करने के हेतु साइमन ने बताया कि वर्तमान राजनैतिक सरकार का नेतृत्व समाप्त कर दिया जायेगा और इसके स्थान पर चैम्बर ऑफ डिप्टीज (Chamber of Deputies) द्वारा अर्थात् औद्योगिक नेतृत्व की सरकार द्वारा सचालन किया जायेगा। उसने दो चैम्बरो की स्थापना करने का सुझाव दिया जिनमें से एक चैम्बर के सदस्य शिल्पकारों, व्यापारियों, उद्योगपतियों एवं किसानों आदि के द्वारा निर्वाचित होंगे तथा दूसरे चैम्बर के सदस्य वैज्ञानिकों विशेषज्ञों, कलाकारों एवं श्रमिकों द्वारा चुने जायेंगे। इस तरह के चैम्बर का मुख्य कार्य अन्य चैम्बरसें द्वारा प्रस्तावित प्रस्तावों पर विचार करना तथा उन्हे स्वीकार या अस्वीकार करना होगा। समस्त व्यवस्थापन का आधारभूत सम्बन्ध देश की भौतिक सम्पत्ति के विकास से होगा।

राजनैतिक स्वरूप के स्थान पर आर्थिक स्वरूप की एक सरकार की स्थापना मनुष्यों को प्रशासित करने के स्थान पर वस्तुओं का प्रशासन करना, आदर्श कारखाने के रूप में समाज की स्थापना तथा शान्तिपूर्ण उद्योग के साधनों के यथार्थ उपयोग द्वारा उत्पादन-शक्ति की वृद्धि के उद्देश्य को सामने रखते हुए राष्ट्र का उत्पादक सघ के रूप मे परिवर्तन करना, आदि अनेक प्रशासनिक धारणायें है जो कि सेन्ट साइमन को दूसरे उदारवादी विचारको से भिन्न करती हैं और जो उसे समाजवादी की पदवी पर पहुंचा देती हैं। सेन्ट साइमन के केन्द्रीय विचार का मार्क्स (Mark) तथा एंजिल (Engles) जैसे विचारको पर गहरा प्रभाव पड़ा है तथा एंजिल ने उसके विचारों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि साइमन की औद्योगिक समाज की धारणा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। प्राउद्न ने भी उसके इस विचार को स्वीकार किया है। मेंजर और सोरल के इस लेख मे, "फैक्ट्री के आदर्श पर समाज का

1 "Under the old system the tendency was to increase the power of government by establishing the ascendancy of the higher classes over the lower. Under the new system the aim must be to combine all the forces of society in such a fashion as to secure successful execution of all those works which tend ... lote of its members either morally or physically."

पुनर्गठन" भी साइमन के विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है।[1] वस्तुत: सरकार की यह एक ऐसी आदर्श धारणा है जोकि सेन्ट साइमन के उद्योगवाद को आर्थिक-स्वतन्त्रतावाद से पृथक् करती है।

सेन्ट साइमन के औद्योगिक समाज के विचार का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका यह विचार समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। परन्तु साइमन ने व्यक्तिगत-सम्पत्ति नामक संस्था का निराकरण नहीं किया जिसके कारण उनके द्वारा संगठित समुदाय को समाजवादी संगठन कहने के स्थान पर सामूहिक संगठन (Collective Organization) कहना अधिक उपयुक्त है। साइमन के औद्योगिक समाज का केन्द्रिय संगठन देश या समाज की आर्थिक-सामाजिक समस्याओं के समाधान के हेतु था और वह यह चाहता था कि देश से निर्धनता और वेकारी दूर हो जाए, देश को आर्थिक संकटों का सामना न करना पड़े, देश का औद्योगिक विकास हो आदि। यही कारण था कि साइमन अपनी औद्योगिक योजना में व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा सरकार का पुनर्गठन करना चाहता था। सारांश रूप में सेन्ट साइमन द्वारा प्रस्तावित उद्योगवाद के आदर्श को समाज का सुधार करने तथा उस पर क्रान्तिकारी आक्रमण करने की दिशा में ग्रहण किया जा सकता है। साइमन द्वारा किया गया कार्य इस प्रकार का था और अब हम यह देखेंगे कि उद्योगवाद से सामूहिकवाद का विकास कैसे होगा।

(ख) सेन्ट साइमोनियनस
(The Saint Simonians)

सेन्ट साइमन के कार्यों का अध्ययन बहुत कम किया जाता है। उसका प्रभाव मुख्य रूप से व्यक्तिगत था तथा उसके विचारों को फैलाने का कार्य उसका

---

1. "An economic rather than a political form of government, administering things instead of governing men, with a society modelled on the workshop and a na ion transformed into a productive association having as its one object "The increase of postive utility y means of peaceful industry."—such are the ruling conceptions hich distinguish Saint Simon from the Liberals and serve to bring im in to the ranks of the socialist. His central idea will be enthusiastically welcomed by the Marxian Collectivist and English speaks of it as the most important doctrine which its author ever propounded. Prondhon accepts it and as a practical idea proposes the absorption of government and its total extinction in economic, organization, The same idea occurs in Mengers Neve Stoatslehre, and in Sorel's writings. where he speaks of "reorganization society on the model of a factory."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 221.

काम्टे (August Comte), जिसने कि ऐसा ही ग्रन्थ पद संभाला, सन् १८१७ से १८२४ तक उसके सभी प्रकाशनों में सहयोगी रहा। प्रालोइन्ड रोडरिज (Olinde Rodrigues) तथा उसका भाई इयुजिन (Eugene) दोनों ही उसके प्रारम्भिक अनुयाइयों में से थे। बरथॅलमे एन्फेन्टन (Barthelmy Enfantin) तथा एमण्ट बेजर्ड (Amant Bazard) की भी सेन्ट साइमन के शिष्यों में गणना की जाती है। सेन्ट साइफन की मृत्यु के तुरन्त बाद उसके शिष्यों ने उसके विचारों को जन समुदाय में फैलाने के हेतु "Le Producteur" नामक समाचार-पत्र प्रकाशित कराया। स्मरणीय है कि सेन्ट साइमोनियस ने केलव सेन्ट साइमन के प्रार्थिक विचारों को ही जनता के समक्ष नहीं रखा वरन् उन्होंने अपने कुछ मौलिक विचार भी प्रस्तुत किए। एन्फेन्टन और बेजार्ड के विचारों को बाद में चलकर ४७ पुस्तकों में संग्रहित किया गया है। इन सभी पुस्तकों में साइमन के विचारों तथा उसके अनुयाइयों द्वारा किए गए परिवर्तनों का उल्लेख है। एमण्ट बेजार्ड की पुस्तक "सेन्ट साइमन के सिद्धान्तों की व्याख्या" (Expositon de la Doctrine de Saint Simon) अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस पुस्तक का द्वितीय भाग विशेष रूप से दर्शन शास्त्र और नीतिशास्त्र से सम्बन्धित है तथा प्रथम भाग में इस सम्प्रदाय के सामाजिक सिद्धान्त का विश्लेषण हैं जो कि मेन्जर (Manger) के मतानुसार वर्तमान समाजवाद की महत्वपूर्ण व्याख्या का एक स्वरूप है। दुर्भाग्य-वश एन्फेन्टन के प्रभाव के अन्तर्गत दार्शनिक विचारों को ऊंचा स्थान मिलता गया जिसके फलस्वरूप इस सम्प्रदाय का पतन हो गया।

सेन्ट साइमोनियनस ने बताया कि देश में फैलने वाली बेकारी, निर्धनता, श्रम की बिगड़ती हुई दशा आदि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक बुराइयों का एकमात्र कारण सम्पत्ति-स्वामियों की व्यक्तिगत सम्पति का पाया जाना है। साइमन के अनुसार तो बड़ी सीमा तक व्यक्तिगत सम्पत्ति ग्राह्य थी परन्तु उसके अनुयाइयों ने उसकी इस विचारधारा का खण्डन किया और अपने तर्क की पुष्टि के हेतु विभिन्न तर्क प्रस्तुत किये। व्यक्तिगत सम्पत्ति की आलोचना सेन्ट साइमोनियनस ने (अ) धन् के वितरण और (ब) धन के उत्पादन अर्थात् न्याय एवं उपयोगिता (Justice and utility) दो विभिन्न दृष्टिकोण से की है।

(अ) सेन्ट साइमन ने इस बात पर बल डाला कि नए औद्योगिक समाज में श्रमिक और निष्क्रिय दोनों वर्ग एक साथ नहीं रहते। उसके उद्योगवाद में निष्क्रिय वर्ग के हेतु कोई स्थान नहीं था तथा योग्यता एवं श्रम ही केवल उत्पादन में पारितोषिक पाने का दावा रख सकते थे। कुछ कारणों से सेन्ट साइमन ने पूंजी को व्यक्तिगत त्याग की एकमात्र परिणाम बताया और इस प्रकार पूंजीपतियों को भी उत्पादन में पारितोषिक पाने का दावेदार बताया। साइमन केवल अनुपादक व्यक्तिगत सम्पत्ति का ही विरोधी था। परन्तु साइमन के शिष्य उसके इस

से सहमत नहीं हुए। इसका कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि पूँजीपति को जो भी आय मिलती है वह उसके स्वयं के श्रम का परिणाम न होकर श्रमिकों के परिश्रम का शोषण होता है। इस तरह श्रमिकों द्वारा की गई अधिक परिश्रम की कमाई को उनके द्वारा हड़प कर लेना उचित नहीं है। इस पर पूँजीपतियों की प्रवृत्ति सदैव यह रहती है कि वह उत्पादन का अधिक से अधिक भाग लें तथा श्रमिकों को, जिन्होंने अपना खून-पसीना एक करके उत्पादन किया है, कम से कम हिस्सा प्राप्त हो। वास्तव में यह समाज के लिए हितकर नहीं है, यह एक अन्याय है और एक तरह से पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है। सेन्ट साइमोनियन्स ने बताया कि यह सत्य है कि उत्पादन का कार्य श्रमिकों के साथ-साथ पूँजीपति की पूँजी के सहयोग से ही सम्भव होता है, परन्तु यह भी सत्य है कि यह पूँजी उसके स्वामी की कमाई नहीं है क्योंकि उसने इसे पैतृक उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया है। सेन्ट साइमोनियन्स के विचारों की व्याख्या करते हुए प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने लिखा है", "आज के सामान्य स्वीकृत अर्थ के अनुसार सम्पत्ति के अन्तर्गत वह धन सम्मिलित है जिसका कि तुरन्त उपभोग नहीं किया जाता वरन् जो कि इसके स्वामी को आय प्रदान करता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत भूमि और पूँजी उत्पत्ति के दो साधन माने जाते हैं। ये उत्पादन के प्राथमिक यंत्र हैं—उनका स्वरूप भले ही कैसा हो। सम्पत्ति-स्वामी और पूँजीपति दो वर्ग इन दो यंत्रों पर अपना नियंत्रण रखते हैं। उनका कार्य इन यंत्रों को श्रमिकों में वितरित करना है। वितरण का विभिन्न निर्माण-क्रियाओं के द्वारा सम्पन्न होता है जो कि लगान और ब्याज दो आर्थिक घटकों को जन्म देता है। परिणामतः श्रमिक, इस समस्त सम्पत्ति के कुछ व्यक्तियों के हाथों में एकत्रीकरण के कारण, अपने ही श्रम का फल पाने के हेतु बाध्य किया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से अधिक और कुछ नहीं है। उत्तराधिकार के नियमों के कारण शोषक और शोषित कभी अपना स्थान परिवर्तित नहीं करते"।[1]

---

1 "Property, according to the generally accepted meaning of the term to day, consists of wealth which is not destined to be immediately consumed, but which entitles its owner to a revenue. Within this catagory are included ihe two agents of production, land and capital. These are prtmarily instruments of production, whatever else they may be. Property—owners and capialists two classes that need no: be distinguished for our present purpose have the ontrol of these instruments. Their function is to distribute them mong the workers. The distribution takes place though a series f operations which give rise to the economic phenomena of interest and rent. Consequently the worker because of this concentration of property, in the hands of a few individuals, is forced to share the fruits of his labour. Such an obligation is nothing short of the exploitation of one man by another. an exploitation all the more odius because the privileges are carefully preserved for one section of the community. Thanks to the laws of inheritance, exploiter and exploited never seem to chance places."
—Gide & Rist, Ibid, P. 226.

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि सम्पत्ति-स्वामी और पूंजीपति किस तरह निष्क्रिय कहे जा सकते हैं जबकि उन्होने अपनी आय बढाने के हेतु पहले से कठिन परिश्रम किया होता है, सेन्ट साइमोनियनस ने और अधिक स्पष्ट रूप से कहा है कि उनकी आय का एक निश्चित भाग अवश्य उनके व्यक्तिगत प्रयत्नो का फल हो सकता है, परन्तु पूंजीपति या सम्पत्ति-स्वामी जो कुछ भी वे प्राप्त करते हैं, वह केवल दूसरों के श्रम की ही उपज हो सकती है और यह स्पष्ट रूप से शोषण है। यह स्मरणीय है कि सेन्ट साइमोनियनस ने "शोषण" (Exploitaion) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम नहीं किया। इन विचारकों से पहले सिसमण्डी ने भी इस शब्द का प्रयोग किया था और आगे चलकर कार्ल मार्क्स ने भी इस शब्द का प्रयोग किया था परन्तु इन सबने "शोषण" शब्द का प्रयोग एक अर्थ में नहीं किया। सिसमाण्डी ने ब्याज को पूंजीपति की न्यायपूर्ण आय बताया और साथ ही साथ यह भी कहा कि इस तरह श्रमिक का शोषण असम्भव है। उसने बताया कि श्रमिक का शोषण उस समय सम्भव है जबकि एक ओर पूंजीपति तो विलासपूर्ण जीवन बिता रहे हो परन्तु दूसरी ओर श्रमिकों को इतनी थोड़ी मजदूरी मिलती हो कि वे केवल जीवित-भर रह सकें। दूसरे शब्दों में जब श्रमिक को उचित (Just) मजदूरी नहीं मिले तो इसका अर्थ उसका पूंजीपति द्वारा शोषण किया जाना ही है। सिसमाण्डी ने बताया कि शोषण की यह बुराई पैदा अवश्य हो सकती है परन्तु इसका स्वभाव अस्थाई होता है तथा इसका निराकरण सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली को यथावत् रखकर ही किया जा सकता है अर्थात् इस सामाजिक बुराई के निराकरण के हेतु सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली को उलटने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर सेन्ट साइमोनियनस ने बताया कि शोषण हमारे सामाजिक क्रम की अवयवी बुराई (Organic Defect) है जो कि व्यक्तिगत सम्पत्ति मे निहित है। इस प्रकार का शोषण केवल शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों का ही नहीं होता वरन् यह सम्पत्ति स्वामी को किसी न किसी रूप में कुछ प्रदान करने वाले सभी व्यक्तियों का होता है।[1] यहा यह बात स्मरणीय है कि साइमोनियनस ने "लगान" और "ब्याज" को ही शोषण की श्रेणी मे रखा परन्तु उन्होंने "लाभ" को इसका प्रतिफल नहीं बताया। उन्होंने बताया कि लाभ तो निर्देशन के कार्य के प्रतिफल का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु यदि साहसी श्रमिकों की मजदूरी को घटाकर अपने लाभ को बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो इस क्रिया को साइमन के शिष्य भी सिसमाण्डी की तरह शोषण मानते हैं, परन्तु उनका

1 "The mass of workers are today expoited by those people whose property they use. Captains of industry in their dealings with proprietors have to submit to a similar kind of treatment, only to a much less degree. But they occasionally share in the privilege of the exploiters, for the full burden of exploitation falls upon the working classes that is, upon the vast majority of mankind."

—(Doctrine de Saint Simon, P.

यह विश्वास है कि आर्थिक-प्रणाली में यह क्रिया सदैव सम्भव नहीं है। और इस तरह सेन्ट साइमोनियनस ने समाज के एक ऐसे भावी स्वरूप की कल्पना की जिसमें विशेष कार्यशक्ति को सदैव विशेष प्रतिफल मिलेगा।[1] उनके सिद्धान्त में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।

कार्ल मार्क्स ने शोषण को पूंजीवादी प्रणाली में निहित एक स्वाभाविक पाप (Vice) बताया है। उसने यह निष्कर्ष दिया कि शोषण की उत्पत्ति धन के विनिमय की वर्तमान पद्धति में देखी जा सकती है। उसके मतानुसार श्रम सभी मूल्य का एकमात्र स्रोत है और फलस्वरूप व्याज और लाभ एक तरह की चोरी है। मार्क्स ने बताया कि साहसी की आय उसी तरह अन्यायपूर्ण है जिस तरह कि पूंजीपति और भूस्वामी की आय अन्यायपूर्ण है। इस तरह मार्क्स का सिद्धान्त, जोकि सभी तरह की अनार्जित आय का विरोध करके श्रमिक की मजदूरी की रक्षा करता है अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक तर्कपूर्ण कहा जा सकता है। परन्तु वास्तविकता यह कि इस सिद्धान्त को सबसे अधिक आलोचना की गई है। यदि यह सिद्ध किया जा सके कि उत्पादित वस्तु का मूल्य एकमात्र मानवीय श्रम का परिणाम नहीं है तो मार्क्स की विचारधारा धराशाही हो जाती है। सेन्ट साइमोनियनस कभी भी मूल्य के सिद्धान्त से व्यग्र नहीं हुए: उनका सम्पूर्ण ध्यान श्रम से प्राप्त आय तथा पूंजी से प्राप्य आय के बीच विभेद करने में लगा हुआ है जिस पर सिसमाण्डी द्वारा भी बल डाला गया और श्रम से प्राप्त आय के अतिरिक्त दूसरी आय को अन्यायपूर्ण ठहराने का ही उन्होंने निष्कर्ष दिया।

(ब) सेन्ट साइमोनियनस ने निर्बाधवादियों (Physiocrats) तथा क्लासिकल अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिगत सम्पत्ति के सामाजिक महत्व को भी अनुचित ठहराया। निर्बाधवादियों एवं परम्परावादियों का यह मत था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति उत्पादन-कार्य में पर्याप्त सहयोग प्रदान करती है। अतएव यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामियों (भूस्वामी और पूंजीपति) को उनकी सम्पत्ति (भूमि और पूंजी) के उपयोग के बदले में कुछ भी प्रदान नहीं किया गया तो ये सम्पत्ति–स्वामी अपनी सम्पत्ति को उत्पादन-कार्य में प्रयोग करने के हेतु नहीं देंगे और इस तरह सपूर्ण उत्पादन-क्रिया ही ठप्प हो जाएगी। परन्तु सेन्ट साइमोनियनस ने प्रारम्भ से उक्त तर्क का विरोध किया तथा सामाजिक उपयोगिता के हित में (जोकि किसी भी तरह न्याय के हित से कम नहीं है) व्यक्तिगत संपत्ति की संस्था पर आक्रमण किया। उनके मतानुसार वितरण के साथ-साथ उत्पादन को भी विस्तार की आवश्यकता है। इन विचारकों ने बताया कि जहाँ तक उत्पत्ति के

---

1 "It is our belife that profits diminish while wages Increase, the term 'Wages' as we use it includes the profits that accure the enterpreneur, whose earnings we regard as the price of his labour." —(Le Producteur, vol I, P, 245)

धनों के वितरण की वर्तमान पद्धति प्रचलित रहेगी, वहाँ तक वर्तमान में स्थित व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था को उत्पादकों के हित में नहीं ठहराया जा सकता। वर्तमान दशाओं में पूंजी उत्तराधिकार के नियम के अनुसार एक दूसरे को प्राप्त होती है। इस तरह व्यक्ति जन्म के संयोग से ही उत्पत्ति के साधनों का स्वामी बन जाता है, जबकि वास्तविक रूप से सामाजिक हित की माँग यह है कि उत्पत्ति के ये साधन अधिक योग्य व्यक्तियों को दिये जाने चाहियें तथा इनका वितरण उन स्थानों और उद्योगों में होना चाहिये जहाँ इनकी सर्वाधिक आवश्यकता है। इस तरह सेन्ट साइमोनियनस के सम्पूर्ण प्रयास उत्तराधिकार पर ही केन्द्रित हैं। यहाँ एक बात विचारणीय यह है कि यदि हम स्मिथ (Adam Smith) के इस विचार को स्वीकार करते हैं कि सरकार की स्थापना वास्तव में उन व्यक्तियों के विरुद्ध जिनके पास कोई सम्पत्ति नहीं है, उन व्यक्तियों की रक्षा करता है जिनके पास कुछ सम्पत्ति है, तब हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तराधिकार का नियम अनिवार्य है। दूसरी ओर जब हम सेन्ट साइमोनियनस के विचार को दृष्टिगत करते हैं जिसने एक ऐसे औद्योगिक समाज की स्थापना की कल्पना की जिसमें धन को साध्य के बजाय साधन तथा व्यक्तिगत आय के स्रोत के स्थान पर सामाजिक उत्पादन का यन्त्र समझा जाता था, तब हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तराधिकार का नियम अवांछनीय है। उत्तराधिकार के नियम को केवल इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है कि यह धन के पुनः एकत्रीकरण को प्रेरित करता है।[1] परन्तु साइमोनियनस ने स्पष्ट रूप से कहा कि उत्पत्ति की सभी वास्तविक अथवा प्रत्यक्ष अव्यवस्थायें जन्म और मरण के अवसर के अनुसार सम्पत्ति के अन्तरण के कारण हैं। "हरएक व्यक्ति अपना समस्त ध्यान अपने तात्कालिक आश्रितों पर केन्द्रित करता है। उत्पादन का सामान्य दृष्टिकोण कभी भी नहीं लिया जाता। न तो कोई विचार किया जाता है और न ही दूरदर्शिता से काम लिया जाता है। पूंजी की आवश्यकता

1 "If we accept Smith's view, that goverment is in reality instituted for the defence of those who have some property against those who have non at all-a very narrow conception of the function of government-inheritance is simply inevitable. On the other hand if we put ourselves at the point of view of the Saint Simonians, who lived in an industrial society where wealth was regarded, not as end, but as a means, not merely as a source of individual income, but as the instrument of social production, it seems utterly wrong that it should be left at the disposal of the first comer. The practice of inheritance can only be justified on the ground that it provides a stimulus to the further accumulation of wealth, orthat indefault of a truely rational system the chances of birth are not much open to criticism than any other."

—Gide & Rist, Ibid, P. 229.

विनियोजन किया जाए जोकि वर्तमान काल मे कुछ व्यक्तियों के हाथों मे है।[1] इस तरह साइमन के अनुयाइयो का सामूहिकतावाद अपने ढंग का अनूठा है, क्योंकि यह एक ऐसा सामाजिक संगठन होगा जिसमे सरकार स्वय देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं को नियंत्रित करेगी तथा जिसमे पूंजीपति, भूस्वामी तथा व्यक्तिगत साहस का कोई स्थान नही होगा।

(स) उक्त दो आधारों के अतिरिक्त ऐतिहासिक आधार पर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति की आलोचना की गई है। सेन्ट साइमोनियनस ने निवधिवादियो के इस विचार को अस्वीकार किया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति एक अविनाशी सस्था है। उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर कहा कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार दिन-प्रतिदिन घटते जा रहे हैं तथा इस प्रकार एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जबकि समाज मे व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक संस्था का कोई अवशेष नही रह जाएगा। साराश रूप मे इन विचारको ने बताया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक सामाजिक सस्था में समाज के विकास के अनुरूप प्रारम्भ से ही परिवर्तन होते चले आए हैं। सम्पत्ति अन्य सामाजिक तथ्यो की तरह ही एक सामाजिक तथ्य है और इस पर भी प्रगति का नियम लागू होता है। अतएव यह सामाजिक तथ्य विभिन्न कालों एवं विभिन्न रूपो मे विस्तृत हो सकता है, छोटा हो सकता है अथवा नियमित हो सकता है।[2] व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक सामाजिक संस्था पर से निरन्तर व्यक्तिगत

1 "We may provisianally speak of this system of banking, ignoring for the time being the some what [illegible]

[illegible] principal localities, informing the central institution as to their particular needs and their productive ability. Within the area circumscribed for these banks of a more specialized character still, covering a less extensive field and including within their ambit the tenderer branches of the industrial tree. All wants would be finally focused in the central bank and all effort would radiate from it"

—(Doctrive de Saint Simon, P. 226-7)

2 "The general opinion seems to be that whatever revolutions may take place in society, this institution of private property must for ever remain sacred and inviolable. it alone is from eternity into eternity. In reality nothing could [illegible] ss correct. Property is [illegible] facts, must submit to [illegible] extended, curtailed, or

—Doctrine de Saint Simon, P. 179.

अधिकारों का कम होना एक ऐतिहासिक तथ्य है। सामन्तशाही युग में जो सम्पत्ति उत्तराधिकार के रूप में केवल बड़े पुत्र को ही मिलती थी अब वह सब पुत्रों और यहाँ तक कि पुत्रियों में भी समान रूप से वितरित होने लगी है और इस तरह सम्पत्ति पर से व्यक्तिगत अधिकार कम होते जा रहे हैं। इसी प्रकार दास-प्रथा का उदाहरण दिया जा सकता है। एक समय था जबकि दास व्यक्तिगत सम्पत्ति समझे जाते थे, परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ यह प्रथा कम हो गई और आज इस प्रथा का कोई अवशेद नहीं रह गया है। इसी तरह के अन्य ऐतिहासिक उदाहरण लिए जा सकते हैं जोकि यह सिद्ध करते हैं कि समय के साथ-साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक संस्था के स्वरूप में परिवर्तन होते रहेंगे। अतएव सेन्ट साइमोनियनस ने यह निष्कर्ष दिया कि एक समय ऐसा भी आएगा जबकि किसी सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति या व्यक्तिगत परिवार विशेष का अधिकार न रहकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो जाएगा।[1] अतएव यह आवश्यक है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी व्यक्तिगत सम्पत्ति को सामूहिक सम्पत्ति में परिणित कर दिया जाए।

सेन्ट साइमन ने मानव जाति को बाल्यावस्था, युवावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था अर्थात् विभिन्न कालों वाला जीवित प्राणी बताते हुये कहा कि प्रजाति के इतिहास में बौद्धिक उत्तेजना का क्षेत्र व्यक्ति के बौद्धिक हितों के ह्रास के समानान्तर है तथा एक की भविष्यवाणी दूसरे के आधार पर की जा सकती है। साईमन के शब्दों में, "भविष्य किसी श्रेणी (Series) की अन्तिम सीमा है जिसकी प्रथम मर्यादा भूतकाल में होती हैं। जब हम श्रेणी की प्रथम मर्यादाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेते हैं तो यह बताना कि पीछे क्या होगा, कठिन नहीं है। भूतकाल का ध्यानपूर्वक परीक्षण भावी विचार-क्रम की निश्चित रूप से पूर्ति करता है।[2] इसी आधार पर साइमोनियनस ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के इतिहास की व्याख्या की तथा सभी व्यक्तियों तथा इसके क्रमिक विस्तार की ...नय. के द्वारा इसके पूर्ण उन्मूलन की भविष्यवाणी की। इस तरह सेन्ट साइमन के अनुयाइयों के सिद्धान्त को इतिहास का दर्शन (Philosophy of History)

---

[1] "The law of progress as we have outlined it would tend to establish an order of things in wdich the state, and not the family, herit allaccumulated wealth and every other form of what ...ts calls the funds of production."

—Doctrine de Saint Simon, P. 182.

[2] "The future is just the last term of series the first term of lies somewere in the past. When we have carefully studied ...rst terms af the series it ought not to be difficult to tell what ...ows careful observation of the past should supply the clue of the ...ture."

—Saint Simon.

कहा जा सकता है। उन्होंने जिस नवीन आर्थिक पद्धति की स्थापना की कल्पना की उसे वे केवलमात्र स्वप्न ही नहीं समझते थे वरन् इसकी स्थापना में उनका अटूट विश्वास भी था। "हमारी भविष्यवाणियाँ अन्य सभी सामान्य वैज्ञानिक अनुसंधानों की तरह समान उत्पत्ति रखती हैं तथा समान किस्म की आधारशिलाओं पर आधारित है,"[1] ऐसा उनका विश्वास था।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में सेन्ट साइमनवाद का महत्व (The Importance of Saint Simonism in the History of Economic Thought)—प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों में, "सेन्ट साइमोनियनस का सिद्धांत वास्तविकतावाद एवं कल्पनावाद का अनोखा मिश्रण है। उनका समाजवाद जो कि सामान्य जनता के स्थान पर केवल शिष्ट समाज को ही अपील करता है, श्रमिक वर्ग के जीवन के परिचय से प्रेरित न होकर तात्कालिक बड़े आर्थिक विचारों से सम्बन्धित घनिष्ठ परिधारा आदि से प्रेरित हुआ है।"[2] इन विचारकों के बैंक तथा साख सम्बन्धी विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा इन्हीं के आधार पर वर्तमान औद्योगिक संगठन की बैंकिंग एवं साख व्यवस्था संगठित हुई है। सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण भले ही कैसा क्यों न हो परन्तु यह मानने के लिए बाध्य हैं कि किस तरह ये जमा बैंक (Deposit Banks) अब तक पूंजी के बड़े स्रोत (Reservoirs) बन गए जहाँ से साख का वितरण हजारों तरीको से उद्योग की सम्पूर्ण राजधानी में किया जाता है। एन्फेन्टन (Enfautin) ने साख का उद्देश्य बताते हुए लिखा कि "एक समाज में, जहाँ कि व्यक्तियों के एक समूह के अधिकार में उत्पत्ति के साधन तो हैं परन्तु उनमें कार्यक्षमता अथवा विनियोजन की इच्छा का अभाव है और जहाँ वहाँ व्यक्तियों के दूसरे समूह के पास साधन तो कोई नहीं है परन्तु वे कार्य करना चाहते हैं, साख का उद्देश्य प्रथम समूह के व्यक्तियों के अधिकार से साधनों को दूसरे समूह के व्यक्तियों के अधिकार में अन्तरित करना है।"[3] इस तरह यह भी स्पष्ट है

---

1 "Our predictions have the same origins and are based upon the same kind of foundations as are common to all scientific discoveries." —Doctrine de Saint Simon, P. 119.

2 "The doctrine of the Saint Simonians consists of a curious mixture of realism and utopianism. Their socialism, which makes its appeal to the cultured classes rather than to the masses, is inspired, not by a knowledge of working class life, but by close observation and remarkable intuition concerning the great economic currents of their time." —Gide & Rist. Ibid, P. 236.

3 "The object of credit in a socity where one set of people possess the instruments of production but lack capacity or desire to employ them, and were another have the desire to work but are without the means, is to help the possage of these instruments .. the former's possession into the hands of the latter."
nic Politiquect Pol

कि साइमनवादियों को द्रव्य एवं साख सम्बन्धी पूर्ण जानकारी हासिल थी।

इसी प्रकार उनके द्वारा जो उत्पत्ति पर अधिक ठोस नियंत्रण रखने की मांग की तथा मांग के अनुरूप उत्पादन-क्रिया को चलाने की पद्धति अपनाने का जो सुझाव दिया गया वह भी उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण है। उन्होंने बताया स्वतन्त्र प्रतियोगिता से बचने के हेतु विभिन्न व्यापारी जो परस्पर संधि कर लेते हैं वह साइमनवादियों के विचारों की ही देन है। " आर्थिक विकास पर उनके मान्य व्यक्तिगत प्रभाव के अतिरिक्त, हमें यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि उनके लेखों में हम समाजवादियों द्वारा १९ वीं शताब्दी के अर्थशास्त्र को प्रदत्त आलोचनात्मक एवं निर्माणकारी दोनों प्रकार के योगदान देखते हैं। उनका सिद्धांत विगत समाजवादी साहित्य के सूचीपत्र से कुछ थोड़ा ही अधिक है।"[1]

सेन्ट साइमोनियनस ने उन्नीसवीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों के लिए विभिन्न प्रश्नों एवं समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत किया। मार्क्स (Karl marx) के परम मित्र एंजिल्स (Engels) ने तो साइमनवादियों के विचारों एवं सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हुए यहां तक कहा है कि उनके विचारों की सहायता से वह भविष्य के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का पूर्ण अनुभव कर सका था।[2] साइमनवादियों के आलोचनात्मक एवं क्रियात्मक वाक्यों ने भी अपना प्रभाव छोड़ा है। उनका यह नारा "मनुष्य का शोषण मनुष्य के द्वारा" (Exploitation of man by man) सन् १८४८ तक काफी जनप्रिय रहा। मार्क्स के समय से इसका स्थान "वर्ग युद्ध" (Class war) ने ले लिया परन्तु इनमें भी वहीं विचार निहित है'। साइमनवादियों से पहले एडम स्मिथ (Adam Smith), रिकार्डो (Ricardo) अथवा जे० बी० से (J. B. Say) किसी के भी द्वारा राजनैतिक अर्थव्यवस्था के विज्ञान तथा सामाजिक संगठन के तथ्य के बीच अन्तर नहीं किया गया।[3] इन विचारकों के मतानुसार सम्पत्ति एक

---

1 "In additiod to the considerable personal influance which they were able to excercise over economic development, we have to recognize that in their writings we have the beginings both of the critical and constructive contribution made by socialist to nineteenth century economics. Their doctrine is, as it were, little more than an index to later socialist literature."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 238.

2 "Genial perspicacity of Saint Simon, which enabled him to anticipate all the doctrines of subsequent socialists other than those of a specifically economic character." —Engels.

3 "The majority of economists, and especially Say, whose work we have just reviewed, regard property as a fixed factor whose origin and progress is no concern of theirs, but whose social utitity alone Concerns them. The conception of a distinctively social order is more foreign still to the English writers."

—Doctrine de Saint Simon, P. 221,

प्रकार से सामाजिक तथ्य थी। धन के वितरण से उनका अभिप्राय केवल मात्र उत्पत्ति के विभिन्न कारकों के बीच वार्षिक आय के वितरण से था। उनका सम्पूर्ण ध्यान ब्याज की दर, मजदूरी की दर अथवा लगान की मात्रा की समस्याओं के चारों ओर ही केन्द्रित था। उनका वितरण का सिद्धात सरल रूप मे सेवाओं की कीमतों का सिद्धान्त है। उन्होंने व्यक्तियों पर कोई ध्यान नहीं दिया अपितु सामाजिक उत्पादन को अव्यक्तिगत कारकों—भूमि श्रम और पूंजी के बीच कुछ आवश्यक नियमों के द्वारा वितरित करने का विचार रखा। व्याख्या की सुविधा के लिए कभी-कभी अव्यक्तिगत कारक व्यक्तिगत कारक बन जाते हैं, यथा-सम्पत्ति स्वामी, पूंजीपति और श्रमिक लेकिन यह सब तर्क की सामान्य प्रवृति के हेतु स्वीकार नहीं है। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर, सेन्ट साइमोनियनस तथा सामान्य रूप से दूसरे अर्थशास्त्रियों के लिए वितरण की समस्या रूप से यह है कि सम्पत्ति का विभाजन किस प्रकार किया जाए। मुख्य प्रश्न यह निर्धारित करना है कि कुछ दूसरे व्यक्तियों में अधिकार में सम्पत्ति क्यों होती है। जबकि दूसरे व्यक्तियों मे अधिकार मे लेश मात्र भी सम्पत्ति नहीं होती उत्पत्ति के विभिन्न साधन भूमि और पूंजी इस तरह क्यों असमान रूप से वितरित हैं तथा इस वितरण के फलस्वरूप आयों में असमानता क्यों है ? समाजवादी अर्थशास्त्री ने विभिन्न सामाजिक वर्गों से उत्पत्ति के कारको को प्रतिस्थापित करने के पक्ष में हैं। इसके विपरित साइमनवादियों ने अपने औद्योगिक समाज मे सक्रिय और निष्क्रिय केवल दो वर्गों की कल्पना की और बताया कि निष्क्रिय वर्ग सक्रिय वर्ग के ऊपर भारस्वरूप है। इस तरह सेन्ट साइमोनियनस का सम्पूर्ण दृष्टिकोण दूसरे विचारकों की तरह नैतिकता पर आधारित न होकर व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरोध पर आधारित है।

६

सहयोगी समाजवादी

The Associative Socialists

प्राक्कथन:—'सहयोगी समाजवादी' की संज्ञा उन सब लेखकों को दी जाती है जिनका यह विश्वास था कि पूर्व अनुमानित योजना के आधार पर स्थापित ऐच्छिक संगठन के द्वारा ही समस्त सामाजिक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।[1] उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ ऐसे विचारक उत्पन्न हुए जिन्होंने उपभोग, विनिमय, उत्पादन एवं वितरण सभी सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों का अपनी पूर्व आयोजित योजना द्वारा समाधान करने का प्रयास किया। उनका विश्वास था कि व्यक्तियों द्वारा ऐच्छिक आधार पर संगठित समुदायों के द्वारा ही समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। चूंकि ये सभी विचारक पारस्परिक सहयोग की आधार शिला पर आधारित सहयोगी समुदायों के निर्माण के पक्ष में थे, इसीलिए ये विचारक आर्थिक विचारधारा के इतिहास में 'सहयोगी समाजवादी' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। फ्रैन्क नैफ (Franc Neff) के मतानुसार काल्पनिक समाजवादियों का लक्ष्य अप्रतियोगी समुदाय द्वारा मानव जाति की क्षमता को पूर्णरूपेण विकसित करना था। सामाजिक सुधारों के लक्ष्य तक पहुँचने के उनके साधन ऐच्छिक संगठन एवं शिक्षा थे।[2]

सहयोगी समाजवादी विचारक सेन्ट साइमोनियनस से, जिन्होंने समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान समुदाय (Association) के बजाय सामाजीकरण (Socialization) में खोजा और इस तरह सामूहिक वाद (Collectivism) के संस्थापक बन गए जो कि एकदम भिन्न चीज है, मतभेद रखते हैं। सामूहिकवाद

---

1 "The name "Associative Socialists" is given to all those writers who belive that voluntary association on the basis of the some preconceived plan is sufficient for the solution of all social [illegible]ons."

—Prof. Gide & Rist.

2To have human beings aid their kind to the full extent of their capacities through non-competitive association was the objective of the Utopian Socialists. Their mens of reaching the goal of social reforms was through voluntary association and, eduction. [Utopia was the title of Sir Thomas More's description of an ideal organisation,]

—Franc Neff.

की व्याख्या राष्ट्रीयकरण के रूप में की जाती है। दूसरी ओर समुदायवाद अपने चरित्र में व्यक्तिवादी अधिक है जो कि व्यक्तियों को समूह में मिलाने का समर्थन नहीं करता वरन् उनकी सुरक्षा छोटे ऐच्छिक समुदायों के द्वारा करता है जिनके संगठन में आंतरिक एकता को महत्व दिया जाए।[1] सहयोगी समाजवादी उदार सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों से भी मतभेद रखते हैं। सहयोगी समाजवादी विचारकों का यह दावा था कि समुदायों के द्वारा वे एक नए सामाजिक संगठन की स्थापना करने में सफल होंगे। ये विचारक उदार अर्थशास्त्रियों (Liberals) की तरह व्यक्तिगत प्रेरणा की स्वतन्त्र क्रियाशीलता के हेतु उत्कंठित थे, लेकिन उनका यह विश्वास था कि स्वतन्त्रता और वैयक्तिकता का तब तक विकास सम्भव नहीं है जब तक कि वर्तमान दशाओं को सुधार कर नये पर्यावरण को उत्पन्न न किया जाए। उन्होंने बताया कि इस नये वातावरण की उपस्थिति स्वमेव सम्भव नहीं हो सकती वरन् इसका निर्माण किया जाना चाहिए। वर्तमान दशाओं में एक कृत्रिम समाज, जो कि कठोर सीमाओं से आबद्ध हो और जो कुछ दूरी तक इसे इसकी चारदीवारी में पृथक् करती हों, की धारणा ने ही इस प्रणाली को काल्पनिक समाजवाद की संज्ञा प्रदान की।[2] यदि सहयोगी समाजवादियों की यह मान्यता होती कि सामाजिक

---

1 "They differ from the Saint Simonians, who sought, the solution in socialization rather than in association, and thus became the founders of collectivism......The term 'Nationalization' much better describes what they sought. Associationism, on the other hand, more individual should be merged in the mass, would have him safeguarded by means of small autonomous groups, where federation would be entirely voluntary, and any unity that might exist wauld be prompted from within rather than imposed from without.

—Gide & Rist : History of Economic Thought, P 242.

2 "On the other hand, the Associationists must be carefully distinguished from the economists of the Liberal School. Fortunately this is not very difficult, for by means of these very associations they claim to be able to create a new social milien they are as ankious as the Liberals for the free exercise of individual initiative but they believe that under existing conditions, except in the case of a few privileged individuals, this very initiative is being smotehered They belive that liberty and individuality never can expand unless transplanted into a new environment. But this new environment will not come of itself. It must be created, just as the gardnust build a conservatory if he is to secure a requisite environment,......

iety set up in the midst
limitations which to
hat has won for
Gide & Rist ; Ibid,

६

सहयोगी समाजवादी

The Associative Socialists

प्राक्कथन:—'सहयोगी समाजवादी' की संज्ञा उन सब लेखकों को दी जाती है जिनका यह विश्वास था कि पूर्व अनुमानित योजना के आधार पर स्थापित ऐच्छिक संगठन के द्वारा ही समस्त सामाजिक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।[1] उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ ऐसे विचारक उत्पन्न हुए जिन्होंने उपभोग, विनिमय, उत्पादन एवं वितरण सभी सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों का अपनी पूर्व आयोजित योजना द्वारा समाधान करने का प्रयास किया। उनका विश्वास था कि व्यक्तियों द्वारा ऐच्छिक आधार पर संगठित समुदायों के द्वारा ही समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। चूंकि ये सभी विचारक पारस्परिक सहयोग की आधार शिला पर आधारित सहयोगी समुदायों के निर्माण के पक्ष में थे, इसीलिए ये विचारक आर्थिक विचारधारा के इतिहास में 'सहयोगी समाजवादी' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। फ्रैन्क नैफ (Franc Neff) के मतानुसार काल्पनिक समाजवादियों का लक्ष्य अप्रतियोगी समुदाय द्वारा मानव जाति की क्षमता को पूर्णरूपेण विकसित करना था। सामाजिक सुधारों के लक्ष्य तक पहुँचने के उनके साधन ऐच्छिक संगठन एवं शिक्षा थे।[2]

सहयोगी समाजवादी विचारक सेन्ट साइमोनियनस से, जिन्होंने समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान समुदाय (Association) के बजाय सामाजीकरण (Socialization) में खोजा और इस तरह सामूहिक वाद (Collectivism) के संस्थापक बन गए जो कि एकदम भिन्न चीज है, मतभेद रखते हैं। सामूहिकवाद

---

1 "The name "Associative Socialists" is given to all those writers who belive that voluntary association on the basis of the some preconceived plan is sufficient for the solution of all social questions." —Prof. Gide & Rist.

2 To have human beings aid their kind to the full extent of their capacities through non-competitive association was the objective of the Utopian Socialists. Their mens of reaching the goal of social reforms was through voluntary association and, eduction. [Utopia was the title of Sir Thomas More's description of an ideal organisation,] —Franc Neff.

को व्याख्या राष्ट्रीयकरण के रूप मे की जाती है। दूसरी ओर समुदायवाद अपने चरित्र मे व्यक्तिवादी अधिक है जो कि व्यक्तियों को समूह मे मिलाने का समर्थन नही करता वरन् उनकी सुरक्षा छोटे ऐच्छिक समुदायों के द्वारा करता है जिनके संगठन मे आतरिक एकता को महत्व दिया जाए।[1] सहयोगी समाजवादी उदार सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों से भी मतभेद रखते हैं। सहयोगी समाजवादी विचारकों का यह दावा था कि समुदायों के द्वारा वे एक नए सामाजिक सगठन की स्थापना करने मे सफल होंगे। ये विचारक उदार अर्थशास्त्रियों (Liberals) की तरह व्यक्तिगत प्रेरणा की स्वतन्त्र क्रियाशीलता के हेतु उत्कठित थे, लेकिन उनका यह विश्वास था कि स्वतन्त्रता और वैयक्तिकता का तब तक विकास सम्भव नही है जब तक कि वर्तमान दशाओं को सुधार कर नये पर्यावरण को उत्पन्न न किया जाए। उन्होंने बताया कि इस नये वातावरण की उपस्थिति स्वमेव सम्भव नही हो सकती वरन् इसका निर्माण किया जाना चाहिए। वर्तमान दशाओं मे एक कृत्रिम समाज, जो कि कठोर सीमाओं से आवद्ध हो और जो कुछ दूरी तक इसे इसे इसकी चारहदीवारी से पृथक् करती हों, की धारणा ने ही इस प्रणाली को काल्पनिक समाजवाद की संज्ञा प्रदान की।[2] यदि सहयोगी समाजवादियों की यह मान्यता होती कि सामाजिक

1 "They differ from the Saint Simonians, who sought, the solution in socialization rather than in association, and thus became the founders of collectivism......The term 'Nationalization' much better describes what they sought. Associationism, on the other hand, more individual should be marged in the mass, would have him safeguarded by means of small autonomous groups, where federation would be entirely voluntary, and any unity that might exist wauld be prompted from within rather than imposed from without.

—Gide & Rist : History of Economic Thought, P. 242.

2 "On the other hand, the Associationists must be carefully distinguished from the economists of the Liberal School. Fortunately this is not very difficult, for by means of these very associations they claim to be able to create a new social milien they are as anxious as the Liberals for the free exercise of individual initiative but they believe that under existing conditions, except in the case of a few privileged individuals, this very initiative is being smotehered They belive that liberty and individuality never can expand unless transplanted into a new environment. But this new environment will not come of itself. It must be created, just as the gardnuet [illegible] requisite environment...... [illegible] iety set up in the midst of [illegible] limitations which to some [illegible] from its surroundings, that has won for the system its name of Utopian Socialism."

—Gide & Rist ; Ibid, P. 242-43,

पर्यावरण को स्थिर नियमों द्वारा सुधारा जा सकता है जिस तरह कि मनुष्य अपना सुधार करने के स्वयं योग्य है, तो उन्होंने एक महत्वपूर्ण सत्य की खोज की होती उन सबके मार्ग का प्रशस्तीकर किया होता जो कि आजकल सामाजिक प्रश्नों का समाधान सिन्ड़ीकलइज्म मे (Syndicalism) में, सहकारिता में अथवा गार्डन-सिटी आदर्श (Garden-City ideal) में खोज रहे हैं। दूसरी ओर यदि ये विचारक अपनी योजनाओं को व्यापक स्तर पर लागू करने में सफल होते तो यह सम्भव है कि नई किस्म की स्वतन्त्रता का समाज की वर्तमान संरचना के अन्तर्गत उपभोग की जाने वाली स्वतन्त्रता की अपेक्षा कम स्वागत किया जाता।

सहयोगी समाजवादियों का दावा यह था कि वर्तमान सामाजिक पर्या-पर्यावरण कृत्रिम है तथा उनका कार्य उस दूसरे पर्यावरण की खोज करना (निर्माण करना नहीं) है जोकि अपनी प्राकृतिक एकता के कारण मानवजाति की आवश्यकताओं की सभी वस्तुओं से परिपूर्ण हो। इस तरह उनका यह विचार निर्दोषवादियों के प्राकृतिक-व्यवस्था के विचार की तरह प्रतीत होता है। उनके कुछ कथन प्रत्यक्ष रूप से क्विजने अथवा रिवेरी के कथनों से उद्धत हैं।[1] सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस नवीन समाजवाद में सन् १७८९ के सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया थी। क्रांतिकारियों ने किसी भी तरह के संगठन को अच्छा नहीं समझा और बताया कि इसके द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को जंजीर में बांध दिया जाता है। नवीन सामाजिक व्यवस्था के प्रतिपादकों—ओवन (Owen), फूरियर (Fourier) और कैबट (Cabet) को प्रेरित करने वाले विश्वासों की अपेक्षा क्रांति की भावना की समता की कल्पना करना वास्तव में बहुत कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सहयोगी समाजवादियों को सिसमाण्डी (Sismondi) और सेन्ट साइमन (Saint Simon) से भी अधिक प्रतियोगिता के नवीन घटक ने प्रभावित किया। उनके मतानुसार उत्पादकों के बीच लाभ के लिए संघर्ष तथा श्रमिकों के बीच मजदूरी के लिए तीव्र प्रतियोगिता ही समस्त सामाजिक बुराई की जड़ है। उनका यह भी विश्वास था कि इस तरह की प्रतिस्पर्धा का अन्तिम

1 "On the contrary, their claim was that the present social environment is artificial, and thas their business was not to create but merely to discover that other environment what is already so wonderfully adopted to the true needs of mankind in virtue of its providential, natural harmony. At bottom it the same idea as the "natural order" of the Physiocrats, much as their conception differs from that of the Physiocrats—an incidental proof that the order is any thing but "natural", seing that it varies with those who define it. Some of their sayings, however, might very well have been borrowed directly fram Quesnay or Riviere."—

Gide & Rist, Ibid, P. 243.

परिणाम एकीकरण एवं एकाधिकार होगा।[1] उन्होंने बताया कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बनाये रखकर तथा उत्पादकों की न्यायपूर्ण आकांक्षा को पूर्ववत् रखकर केवल ऐच्छिक समुदायों के द्वारा ही (जोकि सरकारी प्रकृति के न हों) इस प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया जा सकता है।

प्रो० गीड एण्ड रिस्ट के शब्दों में, "इस सम्प्रदाय के दो अधिक प्रसिद्ध प्रतिनिधि रोबर्ट ओवन और चार्ल्स फूरियर हैं। यद्यपि ये दोनों समकालिक थे—एक का जन्म १७८१ में हुआ था और दूसरे का जन्म १७७२ में हुआ था, तथापि यह दिखाई नहीं देता कि वे कभी परस्पर एक-दूसरे के जानकार हों। ओवन ने कभी भी फूरियर की प्रणाली पर ध्यान नहीं दिया और फूरियर ने भी कभी ओवन की साम्यवादी प्रणाली को सम्बोधित नहीं किया।[2]

सहयोग की सामान्य विशेषतायें (General Characteristics of Associationism):—यद्यपि सहयोगवाद के विभिन्न विचारकों की प्रणालियों में पर्याप्त अन्तर है, तथापि उनके विचारों में कुछ सामान्यतायें निम्नोक्त हैं:—

(अ) सहयोगवाद व्यक्तिवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। सेन्ट साइमन और उनके अनुयाइयों की तरह वे किसी समूह में विश्वास नहीं करते। उनका विश्वास था कि सामूहिकवादी प्रणाली के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की समूह में विलीन हो जाने की सदैव आशंका बनी रहती है और इस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कोई अस्तित्व नहीं रहता है। अतः उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के हेतु सहयोग के आधार पर ऐसे छोटे-छोटे संगठनों का निर्माण किया जाए जिनकी सदस्यता ऐच्छिक हो और जो अपनी प्रगति स्वयं करें। इस तरह जहाँ सेंन्ट साइमोनियनस का समूहों में विश्वास था वहाँ सहयोगवाद के प्रचारकों का सहयोग पर आधारित समुदायों में विश्वास था। इसके अतिरिक्त जहां सामूहिकवादी राष्ट्रीयकरण के द्वारा श्रमिकों के शोषण को रोकना चाहते थे, वहाँ सहयोगी समाजवादी सहकारी संगठनों की स्थापना द्वारा साहसी के लाभ को समाप्त करके श्रमिकों के शोषण को रोकने के पक्षपाती थे।

---

1 "It is obvious that the present regime of free competition, which is supposed to be necessary in the intrests of our stupid political economy, and which is further intended to keep monopoly in check, must result in the growth of monopoly in almost every branch of industry." —Victor Considerant, Principes, de Socialism.

2 "The two best known representatives of this school are Robert Own and Charles Fourier. Although they were contemporaries—the one war born in 1771, the other in 1772 it does note appear that they ever became known to [illegible] Owen never seems to have paid any atten[illegible] refers to Owen's [illegible] of betterness."

(ब) सहयोगी समाजवादियों की दूसरी सामान्यता यह है कि वे मनुष्य को अपने सामाजिक-पर्यावरण का दास मानते थे। उनका विश्वास था कि मनुष्य की प्रकृति अच्छी या बुरी नहीं होती वरन् जिस पर्यावरण में वह रहता है उसी के अनुरूप मनुष्य का नैतिक एवं मानसिक विकास होता है। अतएव मनुष्य की दशा को सुधारने के हेतु उन्होंने मनुष्य के पर्यावरण को सुधारने का सुझाव दिया। सहयोगी समाजवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में विश्वास रखते थे। परन्तु उनका यह मत था कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्व दोनों की साथ-साथ रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए व्यक्तित्व एवं स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु उन्होंने सहयोग की भावना पर आधारित एक काल्पनिक समाज की स्थापना करने का प्रस्ताव रक्खा।

(स) सहयोगी समाजवादियों ने स्वतन्त्र प्रतिस्पधा का भी विरोध किया। इन विचारकों ने अपने समय में स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा तथा आर्थिक क्षेत्र में सरकार की हस्तक्षेप-विरोधी नीति के दुष्परिणामों को स्पष्ट रूप में देखा था। इस प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के हेतु वे कोई क्रांतिकारी कदम नहीं उठाना चाहते थे। उनका विश्वास था कि श्रमिकों एवं पूंजीपतियों को कोई हानि पहुँचाए बिना स्वेच्छा के आधार पर निर्मित सहकारी संस्थाओं के द्वारा स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का अन्त किया जा सकता है।

१. रोबर्ट ओवन (Robert Owen)

रोवर्ट ओवन का जन्म सन् १७७१ में इंगलैंड में एक शिल्पी परिवार में हुआ था। उसने केवल प्रारम्भिक शिक्षा ही प्राप्त की थी और इसके पश्चात् अल्पायु में ही उसके जीवन का प्रारम्भ एक कारखाने में नवसिखुआ (Apparan tice) के रूप में हुआ था। बुद्धि, परिश्रम एवं शान्ति प्रकृति के कारण ओवन ने अल्पायु में काफी उन्नति प्राप्त की। ३० वर्ष की आयु में ओवन न्यू लेनार्क मिल्स (New Lanark Mills) का सहयोगी मालिक एवं संचालक बन गया और कुछ समय बाद वह इस कारखाने का स्वन्त्र मालिक बन गया। उसने अपने कारखाने में कुछ व्यवसायिक सुधार किये जो कि इंगलैंड के दूसरे कारखानों के लिए आदर्श रूप थे। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में ओवन का योगदान काल्पनिक एवं क्रियात्मक दो प्रकार था। रोवर्ट ओवन ने अपने समय के दूसरे मिल मालिकों के विरोध करने पर भी श्रमिकों की दशा सुधारने के हेतु अनेक व्यवहारिक कदम ऐसी परिस्थिति में उठाए जबकि सरकार भी श्रमिकों के हितों की रक्षा के हेतु सर्वथा उदासीन थी।

रोवर्ट ओवन के विचारों पर तात्कालिक परिस्थितियों-औद्योगिक क्रांति एवं उससे उत्पन्न दुष्परिणामों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था। इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समाज पूंजीपति और श्रमिक अथवा धनी एवं निर्धन दो वर्गों में विभक्त हो गया था और इन दोनों वर्गों के बीच की खाई विशाल होती जा रही

थी। इसके अतिरिक्त समाज को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। क्योंकि कभी वस्तुओं का मूल्य एकदम गिर जाता था और कभी उनके मूल्य में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती थी जिसके परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग की दशा अत्यधिक खराब हो गई थी। जहां एक ओर मूल्यों के उच्चावचन का उपभोक्ता वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ रहा था वहां दूसरी ओर इससे दुकानदारों में भी कड़ी प्रतिस्पर्धा का सूत्रपात हो रहा था। इन सब बातों का ओवन पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। रोबर्ट ओवन पर अपने समकालीन विचारकों सिसमाण्डी (Sismondi), सेन्ट साइमन (Saint Simon) तथा लिस्ट (List) के विचारों का भी प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त ओवन के समय तक विश्व की दो प्रमुख घटनाएं घटित हो चुकी थी—अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम तथा फ्रास की राज्य क्रांति। इन दोनो महत्वपूर्ण घटनाओं ने ओवन को यह विचारने के हेतु विवश कर दिया कि सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अनेकों दोष विद्यमान हैं जिन्हें दूर करना अत्यावश्यक है।

रोबर्ट ओवन एक महान समाजवादी अर्थशास्त्री था।[1] उसने अपने विचारों को पुस्तकों एवं लेखों के माध्यम द्वारा ही विद्वत समाज के समक्ष नही रक्खा वरन् अपने कार्यों के द्वारा भी अभिव्यक्त किया है। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही कि ओवन के विचारों का प्रदर्शन उसकी पुस्तकों एवं लेखों से अधिक उसके कार्यों में है। उसने कभी भी पूंजीवाद को समूल नष्ट करने का विचार नही किया वरन् वह तो केवल मात्र यह चाहता था कि समाजवाद एवं पूंजीवाद को एक पृष्ठभूमि पर खड़ा कर दिया जाये। ओवन ने अपने इसी प्रयास में अनेकों क्रियात्मक कार्य किये जिनके आधार पर उसके आर्थिक विचारो को निम्नोक्त वर्गों में रक्खा जा सकता है :—

(क) श्रम विधान (Labour Legislation),

(ख) नए पर्यावरण का निर्माण (Creaotion of New Enviornnent),

---

1 "Robret Owen of all socialist has the most strikingly original, not to say unique, personality. One of the greatest captains of industry of his time, where else have we such a commanding figure? Nor is his socialism simply the philanthropy of the kind-hearted employer. It is true that it is not revolutionary, and he would not bring himself to support the charist movement, which seems harmless enough now. He never suggested expropriation as an ideal for working men, but he exhorted them to create new capital, and is just here that the cooperative programme differs from the collectivist even to this day. But for all practical purposes Owen was a socialist, even a communist. Indeed, he was probably the f to inscribe the word 'socialism' on his banner."

(ग) लाभ का उन्मूलन (The Abolition of Profit)।

(क) श्रम-विधान (Labour Leyislaton) :—तीस वर्ष की आयु में ही ओवन न्यू लेनार्क मिल्स (New Lenark Mills) का सहयोगी मालिक एवं संचालक हो गया तथा कुछ समय बाद वह इस कारखाने का स्वतन्त्र मालिक बन गया। ओवन का यह विश्वास था कि मनुष्य के चरित्र को अच्छा या बुरा बनाने वाला उसका पर्यावरण होता है। उसका विचार था कि यदि कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों की सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाए तो इसका लाभ कारखाने के स्वामी को ही प्राप्त होता है क्योंकि श्रमिकों को सुख-सुविधा प्रदान करने से उनका स्वास्थ्य सुधारता है जिससे उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है और इस बढ़ी हुई कार्यक्षमता का अंतिम लाभ उद्योगपति को ही प्राप्त होता है। इसी अभिप्राय से ओवन ने अपने कारखाने के विधान में निम्नोक्त सुधार किए—

(i) उसने श्रमिकों के काम के दैनिक घन्टे १६ से घटाकर १० कर दिए।

(ii) १० वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाना बन्द कर दिया गया तथा उनके लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई।

(iii) उस समय के कारखानों की सामान्य विशेषता-श्रमिकों पर किए जाने वाले जुर्माने—समाप्त कर दी गई।

(iv) श्रमिकों के लिए अच्छे पारिश्रमिक की व्यवस्था की गई, उनके लिए सस्ती एवं शुद्ध उपभोग्य-वस्तुओं का प्रवन्ध किया गया तथा उनके निवास के हेतु अच्छे घरों की व्यवस्था की गई।

इन सव सुधारों का परिणाम यह हुआ कि ओवन का कारखाना दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करता गया। वस्तुत; ओवन ने इस सुधारों को इस आशा से कार्यान्वित किया था कि वह दूसरे कारखानों के सम्मुख एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करेगा जिससे कि दूसरे उद्योगपति भी अपने कारखानों में उन सुधारों को क्रियान्वित करेंगे। परन्तु ओवन की आशा के अनुकूल दूसरे मिल मालिकों ने इस ओर कोई कोई कदम नहीं उठाया वरन् उल्टे उन्होंने ओवन के सुधारों का कड़ा विरोध किया। मिल-मालिकों की इन आलोचनाओं का उत्तर देते हुए स्वयं रोवर्ट ओवन ने कहा, "आपने अनुभव किया होगा कि उस कारखाने में जिसमें कि हर प्रकार की मशीनें मौजूद हों और वे मशीनें सदैव साफ-सुथरी रहती हों, तथा एक कारखाने में जहां मशीनें गन्दी और वेकार पड़ी रहती हों बहुत ही कठिनाई से काम लिया जाता हो तो इन दोनों कारखानों में कितना अन्तर है। देखने की बात यह है कि जब मशीनों को साफ-सुथरी रखने और उनका बराबर ध्यान रखने से इतना अच्छा परिणाम निकलता है, तब यदि आप अपने कारीगरों पर, जो कि बहुत ही वढ़िया नमूने की मशीनें हैं, उतना ही ध्यान दें तो कितना अच्छा परिणाम निकलेगा। क्या यह वात बिल्कुल स्वाभाविक नहीं समझ लेनी चाहिये कि अदभुत मशीनें तो साधारण मशीनों से कहीं बहुत अधिक पेचीली और कोमल होती हैं,

यदि उन्हे अच्छी दशा में रक्खा जाए और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए तो उनकी शक्ति और कार्यक्षमता बहुत अधिक बढ़ जायेगी और अन्ततः लाभ ही लाभ प्राप्त होगा। श्रमिकों को पर्याप्त माना मे भोजन-वस्त्र न मिलने के कारण जो मानसिक संघर्ष एवं कुढ़न रहती है, वह उन पर दया दृष्टि रखने से जाती रहेगी, उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य ठीक होने लगेगा और वे अल्पायु मे मृत्यु से बच जायेंगे।"[1]

यह देखते हुए कि उसके प्रयोगों का दूसरे सेवायोजकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, ओवन ने व्यवस्थापिका सभा से यह अपील की। सर्वप्रथम उसने ब्रिटिश सरकार और तद्पश्चात् दूसरे देशों की सरकारों से श्रम-नियमों को कानून का स्वरूप प्रदान करने की अपील की ताकि श्रमिकों की दशा में सुधार सम्भव हो सके लार्ड शेफटसबरी (Lord Shaftesbury) के काल से पूर्व ओवन ने कारखानों में काम करने वाले बाल-श्रमिको के काम के दैनिक घन्टे कम करने का एक आन्दोलन चलाया सर्वप्रथम सन् १८१६ में एक कारखाना अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार नौ वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाना निषेध कर दिया गया। इसके तदन्तर सन् १८३३ का फैक्ट्री एक्ट, १८७४, १८५०, १८६४ और १८७५ के फैक्ट्री एक्टस सभी ओवन के प्रयोग की आधारशिला पर पारित हुए।

अपनी परियोजनाओं के हेतु प्राप्य तुच्छ सहयोग से निरुत्साहित होकर तथा उत्साह एवं विधान की सामाजिक प्रगति की दिशा मे महत्ता स्वीकार करते हुए, ओवन ने अपना ध्यान संगठन (Association) की सम्भावना पर बदला। उसने कल्पना की, कि संगठन के द्वारा उस नवीन पर्यावरण की उत्पत्ति सम्भव होगी जिसके अभाव मे किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान सम्भव नहीं है।

(ख) नए पर्यावरण का निर्माण (The Creation of the Milieu):— समाज के नए वातावरण का निर्माण एक ऐसी प्रेरक शक्ति की थी जिसने ओवन के विभिन्न प्रयोगों को चेतना प्रदान की। मानव-जीवन पर वातावरण के प्रभाव का विश्वास करने वाला ओवन प्रथम विचारक था। इस कारण ओवन को रोग निदान

---

1 "Exprince must have taught you the difference between an efficiently equipped factory with its machinery always clean and in good working order and one in which the machinery is filthy and out of repair and working only with the greatest amount of friction. Now if the care which you bestow upon machinery can give you such excellent results, may you not expect equally good result from care spent upon human beings with their infinitely superior stucture? Is it not quite natural to conclude that these infinitely more delicate and complex mechanisms will also increase inforce and efficiency and will be realy much more economical if they are kept in good working condition and treated with a certain measure of kindness."

शास्त्र (Etiology) का जनक कहा जा सकता है : रोग निदान शास्त्र समाज शास्त्र का वह प्रमुख अंग है जिसके अन्तर्गत मनुष्य के आचरण को उसके वातावरण में खोजा जाता है वातावरण को प्रभावित करके अवयव को परिवर्तित करने का उस का सिद्धान्त अर्थशास्त्र में वही स्थान रखता है जो कि जीवशास्त्र में लैमार्क के सिद्धान्त को प्राप्त है । ओवन ने अपने इस सिद्धान्त में बताया कि प्रकृति से मनुष्य न तो अच्छा है और न बुरा वरन् मनुष्य ठीक वैसा ही है जैसा कि उसे पर्यावरण ने बनाया है और यदि वर्तमान में वह बुरा है तो यह केवल उसके पर्यावरण के कारण ही है यह स्मरणीय है कि ओवन ने प्राकृतिक पर्यावरण की अपेक्षा सामाजिक पर्यावरण को अधिक महत्वपूर्ण समझा[1] इस तरह ओवन के मतानुसार श्रमिकों की तात्कालिक दयनीय दशा का कारण उस समय का सामाजिक वातावरण ही था । उसने यह निश्चय किया कि सामाजिक पर्यावरण को बदल कर श्रमिकों की दशा में परिष्कार सम्भव है और यह नवीन पर्यावरण मनुष्य की शिक्षा, कानून और व्यक्ति की चेतन प्रवृत्ति में परिवर्तन लाकर प्राप्त किया जा सकता है । इस स्थल पर प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने ओवन के विचारों की समालोचना करते हुए लिखा है कि यदि मनुष्य अपने वातावरण की उत्पत्ति है तो उस वातावरण को बदलना कैसे सम्भव हो सकता है[2] यह सत्य है कि ओवन का सम्बन्ध श्रमिक को ऐसा गृह प्रदान करने से था जहाँ कि कुछ सीमा तक आराम और कुछ सुन्दरता के साधन उपलब्ध हों । इस तरह नैतिक दृष्टि से ओवन की यह निर्णायक धारणा सम्पूर्ण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के निषेध के रूप में परिणामित हुई । ओवन का स्वयं भी ऐसा विश्वास था कि उत्तरदायित्व

---

1 "The creation of a social milieu was the one impelling force that inspired all Owen's various experiments......He has thus some claim to be regarded as the father of etiology—etiology being the title given by sociologists to that part of their subject which treats of the subordination and adaptation of men to his enviornment. His theory concerning the possibility of transforming the organism by influencing its surroundings, occupies the same position in economics as Lamark's theory does in biology. By nature man is neithe good nor bad. He is just what his enviornment has made him, and at the present he is on the whole rather bad, it is simply because 's enviornment is so detestable. Scarcely anystress is laid upon the natural enviornment which seemed of such supereme importance to writers like Le Play. Owen's interest was in the social enviornment, the product of education and legislation or of deliberate individual action."

—Gide & Rist : Ibid, P. 248.

2 "If man is simply the product of his enviornment, how can he possibly change that enviornment ?"

—Gide & Rist : Ibid, P. 249.

का विचार एक बेहूदा विचार है और इसने बहुत हानिकारक कार्य किया है (The idea of responsibility is one of the absurdest, and has done a great deal of harm)।

रोबर्ट ओवन ने अपने इस विचार को व्यावहारिक स्वरूप भी प्रदान किया उसने अपने परिश्रम एवं धन से ही दो नवीन बस्तियों का निर्माण किया जोकि पूर्णरूपेण सुन्दरता के साधनों एवं आरामदायक वस्तुओं से भरपूर थी। एक बस्ती अमेरिका के इण्डियाना नामक प्रदेश में बसाई गई थी तथा दूसरी बस्ती स्कॉटलैण्ड में बसाई गई थी। इन बस्तियों के सम्बन्ध में ओवन का विचार था कि इनमें हरएक व्यक्ति शिक्षित हो, सबके लिए कानून समान हो तथा सबकी वेतन प्रवृत्तियों एक जैसी हों। इस तरह ओवन अपनी बस्तियों को उस समय की समस्त बुराइयों से दूर रखना चाहता था ताकि एक निर्मल सामाजिक वातावरण की सृष्टि हो सके। परन्तु व्यक्तियों की निरक्षरता, स्वार्थपरता एवं रूढ़िवादिता के कारण ओवन का यह प्रयोग भी विफल रहा।[1] यह अवश्य है कि ओवन के सामाजिक वातावरण सम्बन्धी विचारों ने कुछ समय बाद रस्किन (Ruskin) और विलियम मोरिस (William Morris) जैसे विद्वानों को प्रभावित किया तथा उनके विचारों के ही आधार पर इंगलैण्ड में उपवन-नगर आन्दोलन (Garden City Compgain) का श्रीगणेश हुआ।

(ग) लाभ का उन्मूलन (The Abolition of Profit):—पर्यावरण को बदलने के संदर्भ में ओवन को लाभ से छुटकारा दिलाने की प्रथम आवश्यकता अनुभव हुई। उसकी दृष्टि में लाभ एक बुराई तथा मौलिक रूप में पाप के समान था। लाभ इस तरह का कद था जिसने मनुष्य का नैतिक पतन किया और उसे ऐडिन (Eden) के उद्यान से अलग कर दिया। लाभ की परिभाषा भी अन्याय से परिपूर्ण है क्योंकि इसको सदैव उत्पादन-लागत से ऊपर और अधिक के रूप में परिभाषित किया गया। ओवन के विचार से वस्तुएं उस कीमत पर बिकनी चाहियें थीं जितनी उनकी उत्पत्ति-लागत थी अर्थात् विशुद्ध कीमत ही उचित कीमत है (Net price is only Just price.)। उसकी दृष्टि में आर्थिक संकट (Economic Crisis) एवं बेकारी (Unemployment) की मूल इसी लाभ की प्रवृत्ति में निहित थी। यदि समाज को अत्युत्पत्ति (Over-production) अथवा न्यूनोत्पत्ति (Under-production) की स्थिति का सामना करना पड़ता है तो उसका भी मुख्य

1 "At last Owen himself was driven to the conclusion that his attempt to mould the environment which was to re-create society had proved unsuccessful. He renounced all his ambitions for building up a new social order, and contented himself with an attempt to read society as at present constituted of some of the more potent evils that were sapping its strength," —Gide & Rist.

स्रोत उत्पादक वर्ग की लाभ प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा ही है। लाभ की प्रवृत्ति की मौजूदगी में श्रमिक के लिए अपने परिश्रम से उत्पन्न वस्तुओं की पुनः खरीदारी करना असम्भव हो जाता है और फलस्वरूप श्रमिक अपने द्वारा किये गये उत्पादन के बराबर मात्रा में उपभोग करने में असमर्थ रहता है। श्रोवन के मतानुसार", लाभ का रहस्य सस्ती खरीदारी और धन की कृत्रिम धारणा के नाम पर, जिनका कि धन की वृद्धि के अनुसार विस्तार होता है और न धन की कमी के साथ संकुचन होता है, मंहगी बिक्री में निहित है" (The secret of profit is to buy cheap and to sell dear in the name of an artificial cenception of wealth which neither expands as wealth grows nor contracts as it diminishes.)। इन्हीं सब कारणों से ओवन ने लाभ के अस्तित्व को समाप्त करने की ओर कदम बढ़ाया।

कुछ अर्थशास्त्रिकों का ऐसा विचार था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लाभ की प्रवृत्ति स्वमेव उन्मूलित हो जाएगी अर्थात् लाभ का अंश स्वयं ही मूल्य में विलीन हो जाएगा क्योंकि अपनी-अपनी वस्तुओं को अधिकाधिक मात्रा में बेचने के उद्देश्य से उत्पादकों को निश्चय ही अपनी वस्तुओं के मूल्य में कटौती करनी पड़ेगी और अन्ततः ऐसी स्थिति आ जाएगी जबकि वस्तु का बाजारू-मूल्य उसकी लागत-व्यय के बराबर हो जाएगा और इस तरह लाभ की दर शून्य तक गिर जाएगी। परन्तु ओवन ने इस मत से असहमति प्रकट की और बताया कि लाभ की प्रवृत्ति को समाप्त करने के हेतु प्रतिस्पर्धा को समाप्त करना अत्यावश्यक है। ओवन ने विचार किया कि लाभ का मन्त्र स्वर्ण अथवा द्रव्य ही है क्योंकि लाभ का एकत्रीकरण इन्हीं दोनों रूपों में किया जाता है। उसने बताया कि धात्विक मुद्रा बड़े परिमाण में अपराध, अन्याय तथा भुखमरी का कारण है तथा इसके कारण व्यक्ति का चरित्र पतन के गर्त में चला जाता है (Metallic money is the cause of agreat deal of crime, injustice, and want, and it is one of the conributory cause which tend to destroy character and to make life into a pandemonium.)।

ओवन के क्रियाशील मस्तिष्क ने एक योजना बनाई जिसमें उसने द्रव्य के स्थान पर श्रम-पत्रों (Labour-Notes) प्रयुक्त करने का निश्चय किया। यह दृष्टि- ... करते हुए कि श्रम ही मूल्य का कारण है, यह भी स्वाभाविक है कि श्रम हमें ...ो मापने का सर्वोत्तम साधन भी प्रदान करता है। ओवन ने यह योजना ...क उत्पादक को जो कि अपनी उत्पादित वस्तुओं को बेचना चाहता है, उसके किए गये परिश्रम के घन्टों के अनुपात में श्रम-पत्र दे दिये जायेंगे और इसी ...ह उपभोक्ता जो कि वस्तुओं को खरीदना चाहता है, समान मात्रा में श्रम-पत्र देने को बाध्य होगा और इस तरह लाभ स्वमेव उन्भूलित हो जाएगा। यह स्मरणीय है कि ओवन द्वारा द्रव्य का उन्मूलन किया जाना कोई नवीन विचार नहीं था वरन् उसकी मौलिकता यह थी कि उसने यह खोज की, कि श्रम-पत्र द्रव्य के स्थान की

पूर्ति कर सकते हैं। इस आविष्कार को ओवन ने मैक्सिको और पेरू की स्वर्ण-खानों की तुलना में अधिक मूल्यवान बताया।[1]

अपनी इस योजना को कार्य रूप में देने के हेतु ओवन ने सन् १८३२ में लन्दन में एक राष्ट्रीय समतुल्य श्रम-विनिमय (National Equitable Labour Exchange) की स्थापना की। ओवन द्वारा स्थापित इस बाजार में द्रव्य का प्रयोग नहीं होता था क्रेता और विक्रेता केवल मात्र श्रम-पत्रों के द्वारा ही क्रय-विक्रय करते थे। इस विनिमय ने एक सहकारी समिति का स्वरूप ले लिया जहाँ कि हर एक सदस्य अपने श्रम का उत्पादन जमा कर देता था इसकी कीमत श्रम-पत्रों के रूप में प्राप्त कर लेता था इस तरह यहाँ प्रतियोगिता नामक वस्तु का कोई स्थान नहीं रह गया। परन्तु दुर्भाग्य वश ओवन का यह प्रयोग भी सफल नहीं हो सका। जिन व्यापारियों को इस श्रम-विनिमय के स्थापित होने से हानि सहन करनी पड़ रही थी, उन्होंने अपने नाना प्रकार के प्रयत्नों द्वारा इस विनिमय को समाप्त कर दिया। यह स्मरणीय है कि ओवन द्वारा द्रव्य को लाभ का आधार मानकर उस पर आघात करना उचित नहीं था क्योंकि विनिमय सम्बन्धी सुविधाओं को दूर करने के हेतु ही द्रव्य का जन्म हुआ था, तथापि उसके इस कथन में सत्यता के पर्याप्त दर्शन होते हैं कि लाभ ही सब संकटों की मूल है। ओवन के इस विचार ने साम्यवादियों को बहुत अधिक प्रभावित किया कि उपभोक्ताओं के सहयोग से लाभ की प्रवृत्ति को समाप्त किया जा सकता है? ओवन के इसी विचार ने सहकारिकता (Cooperation) को जन्म दिया। इस तरह यदि ओवन को सहकारी आन्दोलन का जनक कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में ओवन का मूल्यांकन:—आर्थिक विचारधारा के इतिहास में रोबर्ट ओवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मानव समाज के कल्याण के हेतु जीवन भर योजना बनाने वाला और अपनी असफलताओं पर भी निरुत्साहित न होकर उनको कार्य रूप प्रदान करने वाला यह अर्थशास्त्री सदैव अमर रहेगा। श्रमिकों की दशा को सुधारने की दिशा में श्रम-विधान की रूप-रेखा प्रस्तुत करने वाला तथा उसको कार्यरूप में परिणित करने वाला ओवन प्रथम समाज-सुधारक था। यद्यपि ओवन के श्रम-विधान सम्बन्धी नियमों को तुरन्त ही सरकार

1 "The condemnation of money was not new, but what was original was the discovery that labour notes could supply take place of money, a discovery which Owen considered more valuable that all the mines of Mexico and Peru. It has truly been a wonderful mine, and has been freely exploited by almost every socialist. But in hardly squares with Owen's communistic ideal, which aimed at giving to each according to his needs. The labour notes evidently imply payment according to the capacity of each."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P 251.

एवं मिल-मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं हुई, तथापि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसके विचारों एवं क्रियात्मक प्रयोगों से प्रभावित होकर ही इंगलैंड की सरकार ने सन् १८१६ में पहला कारखाना नियम पास किया और तदन्तर अनेक फैक्ट्री अधिनियम पारित किये। ओवन के पर्यावरण सम्बन्धी विचार ने ही आगे चलकर समाजवादियों को एक नवीन समाज की स्थापना की ओर प्रेरित किया है। औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) के प्रतिपादन का श्रेय भी ओवन को ही मिलना चाहिये जिसके अनुसार उत्पादकों और श्रमिकों के बीच संघर्ष को दूर करने के हेतु तथा उनमें सहयोग की भावना पैदा करने के हेतु श्रम-कल्याण की नितान्त आवश्यकता थी। रिकार्डो की तरह ही ओवन ने भी किसी वस्तु के मूल्य निश्चय उस वस्तु के निर्माण पर व्यय हुये श्रम के अनुपात से आँका था। यद्यपि ओवन के इस विचार को उससमय विशेष महत्व नहीं हुआ था, तथापि आगे चलकर उसके शिष्य टॉमसन (Thompson) ने इसे अतिरेक मूल्य (Surplus Value) का रूप प्रदान किया तथा इसी विचार के द्वारा कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की कटु आलोचना की। अंत में ओवन ने सहकारी आन्दोलन की भी स्थापना की तथा इसआन्दोलन के विकास के साथ-साथ उसका महत्व भी बढ़ता गया है।[1]

२. चार्ल्स फूरियर (Chorles Fourier)

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide and Rist) के मतानुसार, "फूरियर की अपेक्षा ओवन का व्यावहारिक प्रभाव अधिक रहा है क्योंकि विगत शताब्दी के अनेक समाजवादी आन्दोलनों को ओवन के विचारों में सरलता से खोजा जा सकता है। लेकिन फूरियर का बौद्धिक कार्य सम्पूर्ण रूप में यद्यपि अधिक काल्पनिक था तथा अपनी प्रकृति में ओवन के कार्य की अपेक्षा कम प्रतिबन्धित था, तथापि उसका दृष्टिकोण व्यापक था तथा भविष्य की अमितव्ययी दैवी शक्ति को सभ्यता के दोषों की व्याख्या से जोड़ने वाला था।"[2]

चार्ल्स फूरियर का जन्म सन् १६६२ में फ्रांस में हुआ था। उसने अपनी शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अनेक यूरोपियन देशों का भ्रमण किया और तद्-

1 "The co-operative association, with its system of no profits, will for ever remain as Owen's most remarkable work, and his fame will for ever be linked with the growth of that movement."
—Gide & Rist : Ibid, P, 253.

2 "Owen's practical influence has been much greater than Fourier's, for most of the important socialistic movements of the last century can easily be traced back to Owen. But Fourier's intellectual work, when taken as a whole, though more utopian and less resteained in character than Owen's, has a considerally wider outlook, and combines the keenest appreciation of the evils of civilization with an almost uncanny power of divining the future."
—Prof, Gide & Rist : Hist ry of Economic Doctrines, P. 255.

पश्चात् व्यापार कार्य में संलग्न हो गया। परन्तु उस समय की व्यापार-क्षेत्र मे प्रचलित बेईमानी और भ्रष्टाचार से अनभिज्ञता के कारण फूरियर को अपने व्यापारिक कार्य में हानि उठानी पड़ी। ४० वर्ष की आयु तक पहुचने पर फूरियर का ध्यान व्यापार-क्षेत्र से हटकर सामाजिक समस्याओ पर केन्द्रित हो गया जिसने उसे एक लेखक के रूप से प्रस्तुत किया। फूरियर अनेको ने ग्रन्थो की रचना की जिनमे से उनका "नवीन औद्योगिक जगत" (The New Industrial World) नामक ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका प्रकाशन सन् १८२६ ई० मे हुआ था।

कुछ लेखकों के लिये फूरियर केवल मात्र एक पागल व्यक्ति था क्योकि उसने कुछ ऐसे ही विचार प्रस्तुत किये थे, फिर भी यह निश्चित है कि उसके तथ्यों मे कुछ मौलिकता एव सत्यता का भी आभास होता है। उसके जीवन के अंतिम क्षणो मे उसके शिष्यो ने सहयोग जैसे सिद्धान्त के परीक्षण करने शुरू कर दिये थे और उसकी मृत्यु के बाद उसकी योजना के अनुसार अमेरिका आदि देशों मे ४० समाजो की स्थापना की गई थी। चार्ल्स फूरियर अपनी वितरण की योजना मे कठिनाई से ही श्रम, पूजी और व्यवसायिक योग्यता के बीच कोई अन्तर कर पाया तथा उसने उत्पादन का ५/१२ वां भाग श्रम को देना निश्चित किया ४।१२ वा भाग पूजी को देना निश्चित किया (जोकि सम्भवतया उससे अधिक है जितना कि आजकल इस साधन को प्राप्त होता है) तथा ३।१२ वा भाग व्यवस्थापक को देना निश्चित किया। फूरियर ने उत्तराधिकार के अधिकार को अपने फेलेसेन्टीयर का मुख्य आकर्षण बताया और यह घोषणा की, कि धन की असमानता तथा गरीबी दैवी नियम हैं और ये सदैव विद्यमान रहेंगी।[1]

---

1 "To some writers Fourier is simply mad man, and it is difficult not to acquiesce in the description when we recal the many extravagance that disfigure his work, which even his most faithfnl dis-

he himself would never have recognized. But what are we to make

heme as being so pita-
udders to think of the
especially their decla-
bts—and all this in the
f destribution scarcely
l, and businegs ability,
labour, four-twelfths to
oday) and three twelfths

as it ought to be ?"

—Prof, Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P.

एवं मिल-मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं हुई, तथापि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसके विचारों एवं क्रियात्मक प्रयोगों से प्रभावित होकर ही इंगलैंड की सरकार ने सन् १८१९ में पहला कारखाना नियम पास किया और तदन्तर अनेक फैक्ट्री अधिनियम पारित किये। ओवन के पर्यावरण सम्बन्धी विचार ने ही आगे चलकर समाजवादियों को एक नवीन समाज की स्थापना की ओर प्रेरित किया है। औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) के प्रतिपादन का श्रेय भी ओवन को ही मिलना चाहिये जिसके अनुसार उत्पादकों और श्रमिकों के बीच संघर्ष को दूर करने के हेतु तथा उनमें सहयोग की भावना पैदा करने के हेतु श्रम-कल्याण की नितान्त आवश्यकता थी। रिकार्डो की तरह ही ओवन ने भी किसी वस्तु के मूल्य निश्चय उस वस्तु के निर्माण पर व्यय हुये श्रम के अनुपात से आँका था। यद्यपि ओवन के इस विचार को उससमय विशेष महत्व नहीं हुआ था, तथापि आगे चलकर उसके शिष्य टॉमसन (Thompson) ने इसे अतिरेक मूल्य (Surplus Value) का रूप प्रदान किया तथा इसी विचार के द्वारा कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की कटु आलोचना की। अंत में ओवन ने सहकारी आन्दोलन की भी स्थापना की तथा इसआन्दोलन के विकास के साथ-साथ उसका महत्व भी बढ़ता गया है।[1]

२. चार्ल्स फूरियर (Chorles Fourier)

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide and Rist) के मतानुसार, "फूरियर की अपेक्षा ओवन का व्यावहारिक प्रभाव अधिक रहा है क्योंकि विगत शताब्दी के अनेक समाजवादी आन्दोलनों को ओवन के विचारों में सरलता से खोजा जा सकता है। लेकिन फूरियर का बौद्धिक कार्य सम्पूर्ण रूप में यद्यपि अधिक काल्पनिक था तथा अपनी प्रकृति में ओवन के कार्य की अपेक्षा कम प्रतिबन्धित था, तथापि उसका दृष्टिकोक व्यापक था तथा भविष्य की अमितव्ययी दैवी शक्ति को सभ्यता के दोषों की व्याख्या से जोड़ने वाला था।"[2]

चार्ल्स फूरियर का जन्म सन् १६६२ में फ्रांस में हुआ था। उसने अपनी शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अनेक यूरोपियन देशों का भ्रमण किया और तद्-

1 "The co-operative association, with its system of no profits, will for ever remain as Owen's most remarkable work, and his fame will for ever be linked with the growth of that movement."
—Gide & Rist : Ibid, P, 253.

2 "Owen's practical influence has been much greater than ourier's, for most of the important socialistic movements of the last century can easily be traced back to Owen. But Fourier's intellectual work, when taken as a whole, though more utopian and less resteained in character than Owen's, has a considerally wider outlook, and combines the keenest appreciation of the evils of civilization with an almost uncanny power of divining the future."
—Prof, Gide & Rist : Hist. ry of Economic Doctrines, P. 255.

पश्चात् व्यापार कार्य मे संलग्न हो गया। परन्तु उस समय की व्यापार-क्षेत्र में प्रचलित बेईमानी और भ्रष्टाचार से अनभिज्ञता के कारण फूरियर को अपने व्यापारिक कार्य मे हानि उठानी पड़ी। ४० वर्ष की आयु तक पहुंचने पर फूरियर का ध्यान व्यापार-क्षेत्र से हटकर सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित हो गया जिसने उसे एक लेखक के रूप से प्रस्तुत किया। फूरियर अनेको ने ग्रन्थों की रचना की जिनमें से उनका "नवीन औद्योगिक जगत" (The New Industrial World) नामक ग्रन्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसका प्रकाशन सन् १८२९ ई० में हुआ था।

कुछ लेखकों के लिये फूरियर केवल मात्र एक पागल व्यक्ति था क्योंकि उसने कुछ ऐसे ही विचार प्रस्तुत किये थे, फिर भी यह निश्चित है कि उसके तथ्यों में कुछ मौलिकता एवं सत्यता का भी आभास होता है। उसके जीवन के अंतिम क्षणों मे उसके शिष्यों ने सहयोग जैसे सिद्धान्त के परीक्षण करने शुरू कर दिये थे और उसकी मृत्यु के बाद उसकी योजना के अनुसार अमेरिका आदि देशों में ४० समाजों की स्थापना की गई थी। चार्ल्स फूरियर अपनी वितरण की योजना में कठिनाई से ही श्रम, पूंजी और व्यवसायिक योग्यता के बीच कोई अन्तर कर पाया तथा उसने उत्पादन का ५/१२ वा भाग श्रम को देना निश्चित किया ४।१२ वां भाग पूंजी को देना निश्चित किया (जोकि सम्भवतया उससे अधिक है जितना कि आजकल इस साधन को प्राप्त होता है) तथा ३।१२ वां भाग व्यवस्थापक को देना निश्चित किया। फूरियर ने उत्तराधिकार के अधिकार को अपने फैलेसेन्टीयर का मुख्य आकर्षण बताया और यह घोषणा की, कि धन की असमानता तथा गरीबी दैवी नियम हैं और ये सदैव विद्यमान रहेंगी।[1]

---

1 "To some writers Fourier is simply mad man, and it is diffi-
cult not to acquiesce in the description when we recal the many ex-
travagance that disfigure his work, which even his most faithfnl dis-
ciples can only explain giving them some symbolic meaning of which
we may be certain Fourier would never have taught. The term
'bourgeois socialist' seems to us to describe him fairly accurately, but
its employment lays us open to the charge of using a term that
he himself would never have recognized. But what are we to make
of one who speaks of Owen's communistie scheme as being so pita-
ble as to be hardly worth refuting,. who 'shudders to think of the
Saint Simonians and of all their monstrosities, especially their decla-
mations against property and hereditary rights—and all this in the
nineteenth century;" who in his scheme of destribution scarcely
drew any distinction be'ween labour, capital, and businegs ability,
five twelfths of the product being given to labour, four-twelfths to
capital (which is probably more than it gets today) and three twelfths
to management, who outbid the most brazen faced company promo-
ter by offering a dividend of 30 to 36 percent, or for those who held
up the right of inheritance as an of the chief attractions that would be
secured by the Phalanstere, and who finally declared that inequality
of wealth and even property are of divine ordination, and consequntly
must for ever remain, since everything that God has ordained is just
as it ought to be ?"

—Prof. Gide & Rist : History ...

चार्ल्स फूरियर के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Charles Fourier)—अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से चार्ल्स फूरियर के विचारों को निम्नोक्त शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) फेलेन्सटीयर की योजना (The Phalanstere),

(ख) सम्पूर्ण सहकारिता (Integral Cooperation),

(ग) भूमि की ओर लौटना (Back to the Land), तथा

(घ) आकर्षक श्रम (Attractive Labour)।

(क) फेलेन्सटीयर की योजना (The Phalanstere)—चार्ल्स फूरियर रॉबर्ट ओवन की न्यू लेनार्क तथा न्यूहारमोनी योजनाओं से बहुत प्रभावित हुआ था और वह भी ओवन की तरह इस मत का मानने वाला था कि मनुष्य पर उसके सामाजिक पर्यावरण का निर्णायक प्रभाव पड़ता है तथा यदि उसके सामाजिक वातावरण को बदल दिया जाये तो मनुष्य की प्रकृति में भी परिवर्तन किया जा सकता है। ताकि मनुष्य का सामाजिक जीवन अधिक से अधिक सुखी बन सके, इसलिए ओवन की तरह फूरियर भी फेलेन्सटीयर नामक सामाजिक इकाई के एक संगठन द्वारा मनुष्य के दूषित सामाजिक पर्यावरण को परिवर्तित करना चाहता था।

फूरियर की यह सामाजिक इकाई (फेलेन्सटीयर) एक नदी के किनारे लगभग ४०० एकड़ क्षेत्रफल के शुद्ध वातावरण में स्थापित होनी थी जिसमें लगभग १५०० व्यक्तियों के ४०० परिवार सदस्य बनाए जाने थे। इन सभी सदस्यों के हेतु एक विस्तृत होटल का आयोजन था। इस सामाजिक इकाई में प्रत्येक परिवार अपने-अपने मकान में रहता और मकानों का वितरण परिवार के सदस्यों की किराया देने की योग्यता पर निर्भर होता। इस विस्तृत होटल में अनेक प्रकार के विशाल कमरों के निर्माण की कल्पना की गई जोकि विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु बनाये जाने थे। होटल के प्रबन्ध का सम्पूर्ण भार सदस्यों पर सामूहिक रूप से सौंपा जाना था। इस होटल में सभी सदस्यों द्वारा मिलजुल कर काम करने, भोजन करने, व्यायाम करने आदि की कल्पना की गई ताकि मनुष्यों में एक दूसरे को समझने की शक्ति पैदा हो तथा उनमें भ्रातत्व, सहयोग एवं प्रेम की पवित्र भावनाओं की उत्पत्ति हो। चार्ल्स फूरियर का यह फेलेन्सटीयर एक मात्र होटल ही नहीं था वरन् यह स्वावलम्बी सामाजिक इकाई होती थी क्योंकि इसमें उत्पादन की भी सुन्दर की जानी थी। फूरियर की यह सामाजिक इकाई ४०० एकड़ क्षेत्र पर स्था थी और इसी क्षेत्र में विभिन्न खाद्य एवं अखाद्य फसलों को उगाने का था। फसलों की पैदावारी के अतिरिक्त फूरियर ने अपनी सामाजिक इकाई त उद्योगों का भी निदेश किया। वह विशालस्तरीय उद्योगों का विरोधी क उसका ऐसा विचार था कि विशालस्तरीय उद्योगों से प्राकृतिक वातावरण हो जाता है जिसका प्रभाव व्यक्तियों पर हेयकर पड़ता है। इस तरह कृषिगत उत्पादन का कार्य भी फेलेन्सटीयर के सदस्यों पर सौंपा जाना था

तथा इस पर किसी तरह के बाह्य नियन्त्रण की आवश्यकता अनुभव नही की गई। फेलेन्सटीयर का समस्त प्रबन्ध जनतंत्रीय सिद्धान्तो पर होना था जिसमे पदधिकारियों की नियुक्ति समस्त सदस्यो के सहयोग से की जानी थी और इस तरह इसका संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों के आधार पर होना था। चूंकि इस समाजिक इकाई मे केवल मात्र १५०० सदस्यों को सम्मिलित करने की कल्पना की गई थी, इसलिए इस संगठन मे सदस्यों के बीच किसी तरह के झगड़े उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना भी नही थी। इस सामाजिक इकाई के संचालन के हेतु यह कल्पना की गई कि संयुक्त स्कन्ध कम्पनी (Joiut Stock Company) की तरह इसकी पूंजी को सदस्यों में हिस्सो के रूप मे बांट दिया जाएगा। विशुद्ध उत्पादन को सदस्यो मे वितरित करने के हेतु एक अनोखी रीति अपनाई जानी थी। यह आयोजन किया गया था कि विशुद्ध उत्पादन का ५/१२ वा भाग श्रम को, ४/१२ वां भाग पूंजी को शेप ३/१२वां भाग व्यवस्था को दिया जाएगा। इस प्रकार चार्ल्स फूरियर की फेलेन्सटीयर योजना मे कुछ ऐसे तत्व विद्यमान थे जोकि तात्कालिक आर्थिक दशाओं एवं विचारो के अनुकूल थे। इस सामाजिक इकाई की व्यवस्था के अन्तर्गत फूरियर ने दो प्रकार के लाभों की कल्पना की आर्थिक दृष्टि से इस इकाई मे उपभोक्ता को कम मूल्य पर अधिकतम सुख उपलब्ध हो सकेगा तथा सामाजिक दृष्टि से इस तरह का सामान्य जीवन विभिन्न व्यक्तियों को एक दूसरे को समझना सिखाएगा। इस संदर्भ मे प्रो० जीड़ एन्ड रिस्ट ने लिखा है कि सामाजिक संगठन के सम्बन्ध मे वर्णित सामाजिक एवं नैतिक लाभ भ्रमात्मक हैं क्योंकि यहसम्भव नही है कि धनी एव निर्धन व्यक्तियो के एक साथ रहने पर दोनो व्यक्तियो का जीवन अधिक सुखी हो सके।[1]

(ख) सम्पूर्ण सहकारिताः—(Integral Cooperation)—चार्ल्स फूरियर की फेलेन्सटीयर योजना के सिद्धान्तो का विश्लेपण करने से यह स्पष्ट होता है कि उसका होटल एक साधारण होटल न होकर एक प्रकार का सहकारी होटल (Cooperative Hotel) था जिसमे एक संगठन का समावेश था तथा इसमे निवास करने वाले व्यक्ति ही संगठन ही सदस्य थे। परन्तु विस्तृत रूप मे देखने पर यह पता चलता है कि आधुनिक युग की सहकारी समितियो और फेलेन्सटीयर में पर्याप्त अन्तर था। वस्तुतः आधुनिक युग की सहकारी समितियों का क्षेत्र तो अत्यन्त ही सीमित होता है क्योकि उनका निर्माण किसी एक उद्देश्य की पूर्ति के हेतु ही किया जाता है, परन्तु चार्ल्स फूरियर की फेलेन्सटीयर योजना मे सभी तरह की सहकारी समितियों का समावेश हो जाता है क्योंकि उपभोग, उत्पादन, विनिमय एव वितरण सभी इसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा

1 "The social and moral advantages seem some what more doubtful. It is not very obvious that contact with the rich make the poor more polished or a micable, nor is it very cl either would be much happier fot it." —Gide & Rist :

गया है जोकि एक बड़ी सीमा तक चार्ल्स फूरियर के विचारो को आगे लेकर बढ़ी है।

"एक कार्यक्रम जिसका उद्देश्य सम्पत्ति का उन्मूलन न होकर श्रमिक को संयुक्त स्कन्धीय सिद्धान्त पर सम्पत्ति का अधिकार देकर उसे ऊपर उठाना है, जिसकी सफलता वर्ग-युद्ध के द्वारा प्राप्त न होकर पूंजी, श्रम और प्रबन्ध-योग्यता के सहयोग के द्वारा प्राप्त की गई तथा पूंजीपति और श्रमिक उत्पादक एवं उपभोक्ता, ऋणी और ऋणदाता के बीच उत्पन्न संघर्ष को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया, किसी भी तरह सामान्य कार्यक्रम नहीं है। मार्क्सवादी सामूहिकवाद की उत्पत्ति से पूर्व फ्रेन्च श्रमिक वर्ग का आदर्श यही था और यह सर्वथा सम्भव है कि इसकी धरोहर केवल मात्र अस्थाई रह सके। जिस कार्यक्रम की रैडीकल समाजवादियों ने शपथ ग्रहण की और जिसे उन्होंने विशुद्ध समाजवादी कार्यक्रम के विरुद्ध बनाया, वह व्यक्तिगत सम्पत्ति का विस्तार करना एवं रक्षा करना है तथा श्रमिक का उन्मूलन करना है। इस प्रवृत्ति को ग्रहण करते हुए वे अचेतन रूप मे फूरियर के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं।"[1]

(ग) भूमि की ओर लौटना (Back to the Land):—वर्तमान युग में अनेक समाजवादी सम्प्रदायों द्वारा "भूमि की ओर लौटने" के सिद्धान्त को अपनाया जाता है, परन्तु इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रतिपादक चार्ल्स फूरियर ही था। फूरियर ने इस वाक्य का प्रयोग दो रूपो मे किया है: सर्वप्रथम उसने विचारा कि बड़े-बड़े नगरो का स्थानान्तरण होना चाहिए तथा इनमे निवास करने वाले व्यक्तियो को फेलेन्सटीयर्स मे बसाया जाना चाहिए जोकि आधुनिक युग के छोटे-छोटे गांव जैसे होंगे जिनमे ४०० परिवार अथवा १६०० व्यक्ति

---

1 "A Programme which aims, not at the abolition of property, but at the extinction of the wage-earner by giving him the right of holding property on joint stock principle, which looks to succed, not by advocating class-war, but by fostering co-operation of capital with labyur and managing abitity, and attempts to reconcile the conflicting interests of capitalist and worker, of producer and consumer, debtor and creditor, by weldin those interests to gather in one and the same person, is by no means common place Such was the ideal of the French working class untill Marxian collectivism took its place, and it is quite possible that its deposition may be only tempouary after all. The programme which they set against the purely socialistic programme, is the maintrenance and extension of private property and the abolition of the wage-earner. By taking this attitude they are unconsciously following in the wake of Fourier."

—Gide & Rist :

न जोसेफ लुई ब्लैंक (Jean Joseph Louis Blanc) का जन्म सन्
फांस के मैडरिड (Madrid) नामक स्थान पर हुआ था। उसने अपनी
रोज़ (Rhodes) और पैरिस (Paris) नामक स्थानों पर प्राप्त की।
त करने के बाद लुई ब्लैंक एक पत्रकार (Jouvrnalist) के रूप में जनता,
माया। सन् १८४८ में फ्रांसीसी क्रान्ति के समय उसकी प्रसिद्धि इतनी
कि वह अस्थाई सरकार (Provisional Government) का सदस्य बना
ा। लुई ब्लैंक ने अपने जीवन काल में अनेकों पुस्तकें लिखी, जिनमें से
प्रसिद्ध पुस्तक "श्रम का संगठन" (Oraganisation du Travail) का,
विचारधारा में महत्वपूर्ण स्थान है। इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ेगा,
१८४८ में फ्रांस में होने वाली श्रमिक क्रान्ति में लुई ब्लैंक के प्रकाशित
ने एक बड़ी सीमा तक योगदान किया। यह उसकी पुस्तक की सफलता
प्रमाण है कि अनेकों वर्षों तक "श्रम का सगठन" नामक पुस्तक को फ्रासीसी
ाद पर लिखी गई पुस्तकों में सर्व श्रेष्ठ माना गया। लुई ब्लैंक प्रसिद्ध
वेत्ता, राजनीतिज्ञ एवं समाजवादी विचारक था। उसका विश्वास था कि
त स्वतन्त्रता का नियन्त्रण सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार के द्वारा सम्भव है।
ह लुई ब्लैंक उन प्रथम समाजवादियों में से है जिसने समाज-सुधार का भार
के कन्धों पर रखा है। फ्रेंक नैफ (Frank Neff) के शब्दों में, "उसका
ास था कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल मात्र सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत
भव है लेकिन यह उद्योग सहकारी होना चाहिये। ब्लैंक उन समाजवादियों में से
था जिन्होंने राज्य के ऊपर सुधार का भार रक्खा और परिमाणतः वह राज्य-
वाद का जनक कहा जाता है।"[1]

लुई ब्लैंक के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Louis Blanc)—
ैंक ने समाज में विद्यमान प्रत्येक आर्थिक बुराई के लिए प्रतियोगिता को
ाई ठहराया। उसके मतानुसार प्रतियोगिता गरीबी, नैतिक पतन, अपराधों
ृद्धि, वेश्यावृत्ति, औद्योगिक संघर्ष तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपद्रवों के हेतु उत्तरदाई
लुई ब्लैंक ने तो यहाँ तक लिखा है कि प्रतियोगिता श्रमिकों के शोषण तथा

1 "He believed that individual liberty could be had only under
ong central government, but that industry should be co-pprative.
c was one of the first socialist olists to place the burden of
m upon the state, and conseuuently he is regarded as the father
ae socialism." —Neff.

2 "Every economic evil, if we are to believe Blanc, is the out-
e of competition. Competition affords an explanation of pover-
d of moral degradation, of the growth of crime and the preva-
e of prostitution, of indutrial crisis and international feuds."
—Prof. Gide & Rist.

चार्ल्स फूरियर विचारों का मूल्यांकन:—यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने फूरियर को एक काल्पनिक एवं पागल विचारक कहकर उसका मजाक उड़ाया है, तथापि यह स्वीकार्य है कि उसके आर्थिक विचार काफी अंश तक दूरदर्शिता एवं महत्ता से परिपूर्ण थे। उसके पूर्ण-सहकारिता, उपवन नगर सम्बन्धी विचार, श्रम को रुचिपूर्ण व्यवसाय बनाने का प्रयास, सहभागिता सम्बन्धी विचार आधुनिक युग में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। चार्ल्स फूरियर ने अपने फेलेन्सटीयर के हेतु पूंजी एकत्र करने का जो तरीका बताया उसी विचार के आधार पर आगे चलकर मिश्रित पूंजी कम्पनियों (Toiut Stock Companies) का जन्म हुआ। फूरियर ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के महत्व का निषेध नहीं किया वरन् उसने अपनी फेलेन्सटीयर योजना के द्वारा उन तरीकों को खोजने का प्रयास किया जिनके आधार पर व्यक्तिगत-सम्पत्ति नामक सामाजिक संस्था में निहित दोषों का निकारण हो सके। चार्ल्स फूरियर ने बच्चों की शिक्षा का एक नया विचार प्रस्तुत किया। उसके बताये हुये मार्ग पर चलकर उसके शिष्य फ्रोबल (Froebel) ने "किन्डरगार्टन" (Kindergarten) नामक श्रेष्ठ शिक्षा-प्रणाली का आविष्कार किया। नि:सन्देह बच्चों के शिक्षण के सम्बन्ध में फूरियर के विचारों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह स्मरणीय है कि अपनी फेलेन्सटीयर योजना में फूरियर स्त्री-पुरुषों को योनि सम्बन्धी आजादी देने के पक्ष में था और उसका यह विचार फूरियरवाद के पतन का कारण बना। पॉल जैनट (Paul Janet) ने एक स्थल पर कहा है कि समाजवादी स्त्री के सम्बन्ध में फूरियर द्वारा किये गये व्यावहार से कभी भी प्रसन्न नहीं हो सके और हम यह भी देख चुके हैं कि इस कमजोरी ने किस तरह सेन्ट साइमोनियनवाद को पतन के गर्त में डाल दिया।[1] इस विषय पर फूरियर के वाक्य देखिए, "एक सामान्य नियम की तरह यह कहा जा सकता है कि सामाजिक प्रगति सदैव ही स्त्री-जाति की पूर्ण मुक्तता से सम्बन्धित रही है, अन्य घटनाएं नि: सन्देह राजनैतिक आन्दोलनों को प्रभावित कर सकती है परन्तु सामाजिक प्रगति या अवनति को प्रभावित करने का एकमात्र श्रेय

1 "His teachings on the sex question bears all the marks of d indicates the fallacy of thinking that untrained passious s can be morally justified. His extreme views on this , which even go beyond the advocacy of free union, have ted a great deal to the downfull of Fourierism. Paul Janet some where that the socialists have not been very happy in eatment of the woman question, and we have already shown is weakness led to the downfoll of Saint Simcnism."

—Gide & Rist : *Ibid*, P. 263.

स्त्री-जाति की स्थिति में तीव्रता से परिवर्तन होता ही है।"[1] दुर्भाग्यवश फूरियर का स्त्रीवाद स्वागत का विषय नहीं बन सका क्योंकि उसने स्त्री जाति को जितनी स्वतन्त्रता देने का विचार किया वह स्वतन्त्र प्रेम से अधिक कुछ नहीं थी।

फूरियर की आकांक्षा व्यक्तियों को हारमोनी जगत में केवल एक आघात द्वारा प्रविष्ट करने का नहीं थी। उसने सोचा कि अपरिहार्य प्राथमिकता की तरह वे सक्रमण की स्थिति के द्वारा प्रवेश करने चाहियें जहां कि हर एक को न्यूनतम भोजन, सुरक्षा और आराम अर्थात् श्रमिक वर्ग के सुधार के वकीलों द्वारा आवश्यक बताई गई हरएक वस्तु उपलब्ध हो सके।"[2] वस्तुत. फूरियर का उत्पादन, उपभोग, वितरण एवं विनिमय आदि सभी को सहकारिता के आधार पर सगठित करने का विचार बहुत महत्वपूर्ण है। यदि उसका यह विचार कार्य रूप मे परिणित हो गया होता तो आज के मानव-समाज मे व्याप्त नाना प्रकार की बुराइयों का कोई अस्तित्व नही होता।

निष्कर्ष रूप मे, प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों मे कहा जा सकता है कि, "फूरियरवाद को कभी भी सम्मान प्राप्त नहीं हुआ तथा इस का सेन्ट साइमनवाद की तरह कभी प्रभाव भी व्यक्त नहीं हुआ, तथापि इसकी क्रिया सकुचित क्षेत्र रखते हुये भी कम स्थिर नहीं रही। विगत पचास वर्षों में सेन्ट साइमनवाद के विषय में कुछ भी नहीं सुना गया लेकिन एक फेलेन्सटीरियन सम्प्रदाय अब भी मौजूद है। यद्यपि इस सिद्धान्त में विश्वास करने वालों की संख्या अधिक नहीं है, परन्तु जहा तक सहकारी आन्दोलन का सम्बन्ध है यह सिद्धांत बहुत शक्तिशाली दिखाई पड़ता है। दीर्घकाल तक फूरियर के विचारों का निरीक्षण हरएक के द्वारा किया गया परन्तु

---

1 "As a general rule, it may be said that true social progress is alwaps accompanied by the fuller emancipation of woman, and there is no more certain evidence of decadence than the gradual servility of woman. Other events undubtedly influence political movements, but there is no other cause that begets social progress or social decline with the same ropidity as a change in the status of women." —Charles Fourier.

2 "It was not Fourier's intention to introduce men [into the word of Harmony at one stroke. He thought that as an indespensable preliminary they should go through a stage of transition which he calls Garantisme, where each one would be given a minimum of substence, security and comfort—in short, everything that is considered necessary by the advocates of the working class reform." —Gide & Rist,

बाद में उनके प्रति अत्यधिक सहानुभूति व्यक्त की गई।"[1]

३. लुई ब्लैंक (Louis Blanc)

"केवल अधिक मौलिक कार्य ही सदैव ध्यान को आकर्षित नहीं किया करता। स्टुअर्ट मिल ने सेन्ट साइमनवाद और फूरियरवाद के लेख के सम्बन्ध में यह दावा किया है कि इनकी गणना भूतकालीन एवं वर्तमानकालीन युगों की सर्वाधिक प्रशंसनीय उत्पत्तियों में की जानी चाहिये। लुई ब्लैंक के लेख के सम्बन्ध में ऐसी धारणा व्यक्त करना स्थानातीत होगा। उसके पूर्ववर्तियों का कार्य गूढ़ अर्थ के रूप में साफ बचा दिया जाता है परन्तु लुई ब्लैंक के कार्य के साथ ऐसा कुछ नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त उसका व्यावहार बहुत अपूर्ण है: उसकी सम्पूर्ण व्याख्या एक साधारण पुनर्विचारणीय आर्टिकिल के समान दूरी ग्रहण किये हुए है। उसके लेखों में अपवादस्वरूप भी मोलिकता नहीं है क्योंकि उसकी प्रेरणा के स्रोत सेन्ट साइमन, फूरियर, सिसमाण्डी, बौनेरोटी तथा १७९३ के जनतन्त्रीय सिद्धान्तों में देखे जा सकते हैं। संक्षिप्त रूप में ब्लैंक ऐसे समाजवादी विचारों की सुविधाजनक व्याख्या करने से ही सन्तुष्ट था जिनके विषय में जनता पुर्नस्थापन के समय से अभ्यस्त हो चुकी थी।"[2]

---

1 "Fourierism never enjoyed the prestige and never exercised the influence which Saint Simonism did, but its action, though less stratling, and confined as it was to a narrow sphere, has not been less durable. Nothing has been heard of Saint Simonism these last fifty years, but there is still a Phalanstere school. It is not very numberous, perhaps, if we are only to reckon those who formally adhere to the doctrine, if we take into consideration the co-operative movement, as we ought at least to some extent, it is seen to be very powerful still. For a long time Fourier's ideas were scouted by every body, but later much more sympathetic attention was given them."
—Gide & Rist, Ibid, P. 264.

2 "It is not the most original work that always attracts most attention. Stuart Mill, writing of Saint Simonism and Fourierism claims that "they may justly be counted among the most remarkable productions of the post and present age." To apply such term of the writing of Louis Blanc would be entirely out of place. His predecessor's work, despite a certain mediocrity, are redeemed by occasional remark of great penetration. but there is none of that in Louis [illegible]'s. Moreover, his treatment is very slight, the whole exposi[illegible] [illegible]cupying about as much spice as an orinary review article. [illegible]re is no evidence of exceptional originality, for the sources [illegible]spiration must be sought elsewhere—in the writings of Saint [illegible], of Fourier, of Sismondi, and of Buonarotti, one of the survi[illegible] of the Babeuf conspiracy, and in the democratic doctrines of [illegible]. In short, Blanc was content to give a convenient exposition of socialistic ideas as the public has public has become accustomed [illegible]nce the Restoration."
—Gide and Rist ; Ibid, P. 265.

जीन जोसेफ लुई ब्लैंक (Jean Joseph Louis Blanc) का जन्म सन् १८१३ में फ्रांस के मैडरिड (Madrid) नामक स्थान पर हुआ था। उसने अपनी शिक्षा रोडीज़ (Rhodes) और पेरिस (Paris) नामक स्थानों पर प्राप्त की। शिक्षा प्राप्त करने के बाद लुई ब्लैंक एक पत्रकार (Jouvrnalist) के रूप में जनता के सम्मुख आया। सन् १८४८ में फ्रांसीसी क्रान्ति के समय उसकी प्रसिद्धी इतनी बढ़ गई कि वह अस्थाई सरकार (Provisional Government) का सदस्य बना लिया गया। लुई ब्लैंक ने अपने जीवन काल में अनेकों पुस्तकें लिखीं, जिनमें से उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "श्रम का संगठन" (Oragaनisation du Travail) का, आर्थिक विचारधारा में महत्वपूर्ण स्थान है। इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि सन् १८४८ में फ्रांस में होने वाली श्रमिक क्रान्ति में लुई ब्लैंक के प्रकाशित विचारों ने एक बड़ी सीमा तक योगदान किया। यह उसकी पुस्तक की सफलता का ही प्रमाण है कि अनेकों वर्षों तक "श्रम का संगठन" नामक पुस्तक को फ्रांसीसी समाजवाद पर लिखी गई पुस्तकों में सर्व श्रेष्ठ माना गया। लुई ब्लैंक प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता, राजनीतिज्ञ एवं समाजवादी विचारक था। उसका विश्वास था कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का नियन्त्रण सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार के द्वारा सम्भव है। नि:सन्देह लुई ब्लैंक उन प्रथम समाजवादियों में से है जिसने समाज-सुधार का भार राज्य के कन्धों पर रक्खा है। फ्रेंक नैफ (Frank Neff) के शब्दों में, "उसका विश्वास था कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल मात्र सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत ही सम्भव है लेकिन यह उद्योग सहकारी होना चाहिये। ब्लैंक उन समाजवादियों में से प्रथम था जिन्होंने राज्य के ऊपर सुधार का भार रक्खा और परिणामत: वह राज्य-समाजवाद का जनक कहा जाता है।"[1]

लुई ब्लैंक के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Louis Blanc)— लुई ब्लैंक ने समाज में विद्यमान प्रत्येक आर्थिक बुराई के लिए प्रतियोगिता को उत्तरदाई ठहराया। उसके मतानुसार प्रतियोगिता गरीबी, नैतिक पतन, अपराधों की वृद्धि, वेश्यावृत्ति, औद्योगिक संघर्ष तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपद्रवों के हेतु उत्तरदाई है।[2] लुई ब्लैंक ने तो यहाँ तक लिखा है कि प्रतियोगिता श्रमिकों के शोषण तथा

1 "He believed that individual liberty could be had only under a strong central government, but that industry should be co-pprative. Blanc was one of the first socialist olists to place the burden of reform upon the state, and conseuuently he is regarded as the father of stae socialism." —Neff.

2 "Every economic evil, if we are to believe Blanc, is the outcome of competition. Competition affords an explanation of poverty and of moral degradation, of the growth of crime and the prevalence of prostitution, of indutrial crisis and international feuds." —Prof. Gide & Rist.

मध्यवर्ग के पतन के हेतु भी उत्तरदाई है। उसने बताया कि यदि तुम प्रतियोगिता के भयंकर परिणामों से मुक्ति पाना चाहते हो तो तुम्हें इसे समूल नष्ट करना होगा तथा इसके स्थान पर सहयोग को अपने सामाजिक जीवन की आधार शिला बनाना होगा।[1]

इस प्रकार लुई ब्लैंक समाजवादियों के उस समुदाय से सम्बन्धित है जिनका यह विचार था कि ऐच्छिक संगठनों के द्वारा ही समाज की सब आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सकता है। परन्तु उसने अपने पूर्ववर्ती विचारकों की तुलना में एक भिन्न प्रकृति के संगठन की आवश्यकता समझी। उसने न तो न्यू हारमोनी का और न फेलेन्सटीयर का ही स्वप्न देखा। उसने भावी आर्थिक जगत को समुदायों की श्रेणियों के रूप में नहीं समझा जिसकी हरएक श्रेणी स्वयं में एक पूर्ण समिति का संगठन करती है। फूरियर की सम्पूर्ण सहकारिता, जहाँ कि फेलेन्सटीयर सदस्यों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने को था, को उसने स्वीकार नहीं किया। उसका प्रयोजन एक सामाजिक प्रयोगशाला से था जिसको सरल रूप में सहकारी उत्पादक समिति कहा जा सकता है। उसके मतानुसार इसके कारखाने में एक ही व्यवसाय के श्रमिक सदस्य होंगे जोकि पारस्परिक सहयोग द्वारा जनतन्त्रीय ढंग से बड़े पैमाने का उत्पादन करेंगे।[2]

लुई ब्लैंक का सामाजिक प्रयोगशाला का विचार कोई नया विचार नहीं था क्योंकि बुचेज (Buchez) नामक सेन्ट साइमन के एक अनुयायी ने सन्

1 "In the first place we shall show how competition means extermination for the proletariat, and in the second place how it spells poverty and ruin for the bourgeoisie." "If you want to get rid of the terrible effects of competition you must remove it root and branch and begin to build a new, with association as the foundation of your social life."
—Louis Blanc.

2 "Louis Blanc thus belonged to that group of socialists who thought that voluntary associations would satisfy all the needs of society. But he thinks of association in a some what different fashion from his predecessors. He dreams neither of New Harmony nor of halanstere. Neither does he conceive of the economic world of re as a series of groups, each of which forms a complete society elf, Fourier's integral cooperation, where the Phalanstere was supply all the needs of its members, is ignored altogether. His oposal is a social workshop, which simply means a co-oprative roducer's society. The social workshop was intended simply to combine members of the same trade, and is distinguished from the ordinary workshop by being more democratic and equalitarian."
—Gide & Rist : Ibid, P. 266-67.

१८३१ में इसी प्रकार का एक प्रावधान रखा था लेकिन उसे बहुत कम सफलता मिल पाई। उसने एक समान व्यवसाय के कर्मचारियों को एक जगह संगठित होने, अपने यन्त्रों का एक साथ सामान्य सम्पत्ति के रूप में प्रयोग करने तथा लाभांश को परस्पर वितरित करने का सुझाव दिया था। इसके अतिरिक्त उसने वार्षिक लाभांश के १/५वें भाग से एक सुरक्षित कोष (Perpetual inalienabe Reserve) बनाने का सुझाव दिया जोकि क्रमशः प्रतिवर्ष बढ़ता रहेगा। उसने कहा कि, "इस तरह के कोष के अभाव में अन्य व्यावसायिक उपक्रमों की तुलना में सगठन बहुत कम अच्छा हो सकेगा। यह इसके संस्थापकों को तभी लाभदायक सिद्ध हो सकेगा तथा मौलिक रूप से अंशधारी न होने वाले हरएक सदस्य को बांधेगा क्योंकि जो व्यक्ति इसके प्रारम्भ से ही अंशधारक होंगे वे वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग दूसरों का शोषण करने में कर सकेंगे।"[1] इस तरह जहाँ बुचेज लघु उद्योगों के विषय में अधिक इच्छुक था, वहां लुई ब्लैंक ने बड़े उद्योगों का पक्षानुमोदन किया और यही उसकी सामाजिक प्रयोगशाला तथा एक साधारण सहकारी समिति में अन्तर है।

लुई ब्लैंक का मत था कि सामाजिक कारखाना अन्य प्राइवेट कारखाने की अपेक्षा अधिक मितव्ययी सिद्ध होगा क्योंकि इसमें प्रत्येक श्रमिक अधिक रुचि एवं उत्साह से कार्य करेगा।[2] उसका विचार था कि सामाजिक कारखाने में निर्मित होने वाला सामान अन्य कारखानों में निर्मित सामान की अपेक्षा कम मूल्य पर बाजार में आएगा जिसके फलस्वरूप यह सामान दूसरे कारखानों के उत्पादन को बाजार से शीघ्र ही निकाल देगा और इस तरह वह स्थिति आ जायेगी जबकि किसी तरह की प्रतियोगिता शेष नहीं रह जायेगी।

सरकारी हस्तक्षेप की नीति ही लुई ब्लैंक के विचारों को रोबर्ट ओवन और चार्ल्स फूरियर के विचारों से पृथक करती है। रोबर्ट ओवन और चार्ल्स फूरियर आर्थिक-क्षेत्र में लेशमात्र भी सरकार के हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते। परन्तु लुई ब्लैंक वह अर्थशास्त्री था जिसने सामाजिक सुधारों का भार राज्य के ऊपर स्वीकार किया। लुई ब्लैंक की विचारधारा के अनुसार वाह्य पूंजी

1 "Without some such fund assciation will become little better than other commercial undertakings. It prove beneficial the founder only, and will will ban every one who is not an original sharehoulder, for those who had a share in the con- cern at the begining will employ their privileges in exploiting others." —Buchez.

2 "The social workshop as compared with ordinary private factory will effect greater economies and have a better systemof organization for every worker without exception will be interested in honestly performing his duty as quickly as possible." —Louis Blanc.

१०

राजनैतिक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रवादी प्रणाली

(National System of Political Economy)

प्राक्कथन.—उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक एडम स्मिथ की विचारधारा ने सम्पूर्ण यूरोप पर विजय प्राप्त कर ली। इससे पूर्व के सिद्धान्तों को भुला दिया गया तथा स्मिथ की विचारधारा को चैलेंज करने वाला कोई भी प्रतिद्वन्दी दिखाई नहीं दिया। परन्तु इस दौरान में ही स्मिथ की विचारधारा में अनेक परिवर्तन उपस्थित हो चुके थे और यहां तक कि स्मिथ के शिष्य जे० बी० से (J. B. Say), माल्थस (Malthus) और रिकार्डो (Ricardo) ने इस विचारधारा में अनेक महत्वपूर्ण योगदान किए तथा इसका महत्वपूर्ण सुधार किया। क्लासिकल सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में से स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त को अभी तक पूर्णतः मान्यता मिलती आ रही थी और यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जा रहा था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्वतन्त्रता हरएक देश के अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार कर ली गई। जर्मनी और इंगलैण्ड में, फ्रांस और रूस में वैज्ञानिक आधिकारियों के बीच पूर्ण एकता थी। सर्वोदयन समाजवादी अर्थशास्त्रियों ने इस विषय का बहिष्कार किया। इसके अतिरिक्त आगस्टिन कॉरनोट (Augustin Cournot) तथा लुई से (Louis Say) आदि विचारकों ने भी इस सिद्धांत का विरोध किया परन्तु वे अपने विचारों को जनता के कानों तक नहीं पहुँचा सके। इसी दौरान में जर्मनी में एक नए सिद्धान्त का उद्भव हुआ जिसके लिए उस देश की विशेष आर्थिक एवं राजनैतिक दशाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अनुकूल वातावरण का निर्माण किया। इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने परम्परावादियों के विचारों-व्यक्तिवाद एवं राज्य की हस्तक्षेप न करने की नीति —का विरोध किया। उनके मतानुसार परम्परावादी विचारक इस विचार को अपनाने में असफल रहे हैं कि व्यक्ति राज्य का भी नागरिक होता है इन विचारकों ने जोकि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में राष्ट्रवादी (Nationalists) के नाम से विख्यात हैं, व्यक्ति की तुलना में राज्य के कल्याण को प्रथम स्थान प्रदान किया। इन राष्ट्रवादी विचारकों का मत था कि राज्य का कल्याण होने से व्यक्ति का कल्याण स्वमेव हो जाएगा। प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में," राष्ट्रवादी विचारकों, जिनकी विचारधारा की आलोचना आगे आती है, से अभिप्राय उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों के राजनैतिक-आर्थिक लेखकों के उस समुदाय से है जिन्होंने व्यक्तिवादी विश्ववादिता, स्वतन्त्र-व्यापार के क्लासिकल सिद्धान्त पर आक्रमण किया तथा राष्ट्रों की उत्पादन-शक्ति के निर्माण की, व्यक्तिगत सम्पत्ति

देते हैं तथा औद्योगिक विकास के पक्षपाती हैं।[1]

विभिन्न स्थानों एवं कालों में उत्पन्न होने वाले इन अर्थशास्त्रियों के विचारों में थोड़ी-बहुत भिन्नता का पाया जाना स्वाभाविक ही है, तथापि राष्ट्रवादी विचारधारा की कुछ विशिष्ट सामान्य विशेषताएं निम्नोक्त हैं—

(क) राष्ट्रवादी विचारकों ने परम्परावादियों के केवल दो सिद्धान्तों-विश्व-वादिता एवं स्वतन्त्र-व्यापार का ही विरोध किया है। उनके सब सिद्धान्तों का विरोध नहीं किया है।

(ख) इन विचारकों की दृष्टि में व्यक्तिगत हित की तुलना में राष्ट्र का हित ज्यादा महत्वपूर्ण है तथा राष्ट्र के हित में ही व्यक्तिगत हित निहित है। इस तरह जहां परम्परावादी विचारक व्यक्तिवाद को महत्व देते दिखाई पड़ते हैं, वहां राष्ट्रवादी विचारक व्यक्तिवाद के विरोधी दिखाई पड़ते हैं।

(ग) परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का ऐसा विश्वास था कि उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त विश्वव्यापी हैं अर्थात् जो नियम विश्व के हित में हैं वे सभी नियम व्यक्तियों के भी हित में हैं। इसके विपरीत राष्ट्रवादी विचारधारा के मतानुसार व्यक्ति और विश्व के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान राष्ट्र का है तथा यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक राष्ट्र की प्रगति और अर्थव्यवस्था एक जैसी हो। इस तरह जो नियम प्रगतिशील एवं समृद्ध देशों के हित में सम्भव है—यह आवश्यक नहीं है कि वे नियम अविकसित देशों के भी हित में हों।

(घ) राष्ट्रवादी विचारधारा के अन्तर्गत राष्ट्रीय उत्पादन को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इन विचारकों के मतानुसार सरकार का कर्त्तव्य यह है कि वह राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहन प्रदान करे। एक ओर जहां परम्परावादियों ने पूर्ण-प्रतियोगिता एवं स्वतन्त्र व्यापार पद्धति का समर्थन किया था, वहां दूसरी ओर राष्ट्रवादी विचारकों ने इन नीतियों का विरोध किया तथा सरकारी संरक्षण को आवश्यक बताया। उनका ऐसा विश्वास था कि यदि विदेशी व्यापार के क्षेत्र में पूर्ण प्रतिस्पर्धा एवं पूर्ण स्वतन्त्रता को अपनाया जाएगा तो कभी भी आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति से पिछड़ा हुआ देश प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि स्वतन्त्र व्यापार पद्धति के अन्तर्गत उन्नत देशों से वस्तुओं का आयात होता रहेगा परन्तु उस अविकसित देश के उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं मिल सकेगा। इस तरह राष्ट्रवादी विचारकों ने संरक्षित-व्यापार पद्धति का समर्थन किया।

निम्नोक्त में हम तीन प्रमुख विचारकों-एडम मूलर, फ्रेड्रिक लिस्ट तथा

1 "The former are more philosophical and more consistently idealistic. They are more given to the organismic concept of society, and to ideal of stability and permanen..e. The later are more apt to stress tariff policies and industrial deveplopment. They are usually driven to accept some degree of individualism." —Haney

हेनरी चार्ल्स कैरे के राष्ट्रवादी विचारों का क्रमशः उल्लेख करेंगे।

(१) एडम मूलर (Adam Muller)

एडम मूलर का जन्म सन् १७७९ में बर्लिन (Berlin) में हुआ था। उसने अपनी शिक्षा गॉटिंगन (Gottingen) विश्वविद्यालय से प्राप्त की तथा अपने जीवन के कुछ वर्ष साहित्यिक आलोचक, शिक्षक एवं लेक्चरर के रूप में व्यतीत किये। वह अनेक साहित्यिक रोमानी नेताओं तथा राजनीतिज्ञों का मित्र था। कुछ समय बाद मूलर आस्ट्रिया चला गया और वहां सरकारी कोष में नौकरी कर ली। कुछ समय उपरान्त वह आस्ट्रिया से ड्रेस्डेन चला गया और वहाँ उसने अनेक भाषण दिये जो कि सन् १८०६ ई० में "जर्मनी विज्ञान तथा साहित्य पर भाषण" (Lectures on Science and Literature) के नाम से प्रकाशित हुए। मूलर के लेखों एवं भाषणों के बारे में प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है कि उसके भाषणों एवं लेखों में गुप्त एवं निष्पक्ष विचारों की झलक मिलती है, उनमें प्रतिक्रिया के लक्षण हैं तथा फ्रांसीसी क्रान्ति एवं युद्धों का प्रभाव है।

एडम मूलर के विचारों का निर्णय देने के हेतु यह महत्वर्ण है कि उसके कैरियर को याद रक्खा जाये। यद्यपि उसने प्राकृतिक नियम की दार्शनिकता एवं स्वतन्त्रतावाद के प्रति नापसन्दगी गॉटिगन में अपने शिक्षकों से प्राप्त की थी, तथापि उसके साहित्यिक प्रयत्न उसकी राजनैतिक क्रियाओं से असम्बद्ध नहीं थे। उनकी सम्पूर्ण असंदिग्धता के साथ, कवित्व की प्रकृति तथा प्रभावशाली स्टाइल के साथ मूलर के लेख राजनैतिक संघर्ष में प्रयुक्त हथियार थे। मूलर राजनीति की गहनता में नहीं था। उसे जेन्ट का व्यावहारिक अनुभव नहीं था लेकिन वह अपने भाषणों के कार्यों की जानकारी के सम्बन्ध में राजनीति के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित था।[1] एडम मूलर ने अपना कार्य रोमान्टिक के रूप में प्रारम्भ न करके साहित्यिक लेखक के रूप में प्रारम्भ किया। उसने अपनी सन् १८०० में लिखित पुस्तक "Handelssaat" में बताया कि राज्य का कार्य प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अधिकृत सम्पत्ति का संरक्षण करना ही नहीं है वरन् इस बात की गारन्टी करना है कि समाज के हरएक सदस्य को प्राकृतिक नियम के द्वारा उसके सामान्य परिश्रम को योगदान की गई सम्पत्ति रखनी चाहिये।

एडम स्मिथ (Adam Smith) द्वारा प्रतिपादित विश्ववादिता एवं स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली का विरोध करके, एडम मूलर ने राष्ट्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था (National Political Economy) की स्थापना की। संक्षेप में, एडम मूलर राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत था, यह राष्ट्र को सशक्त और समृद्धिशाली बनाना चाहता था तथा राष्ट्र के नागरिकों के हृदयों में राष्ट्रीय भावना जागृत करना चाहता था। इसी राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा के हेतु उसकी यह आकाँक्षा थी कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच प्रतिस्पर्धा एवं विरोध (Opposition and Contest) बना रहे।

---

[1] Roll : History of Economic Thought, P. 219.

राष्ट्रीय उद्योगों की प्रगति के सदर्भ मे एडम मूलर ने सरकार द्वारा राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने तथा आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने की नीति का समर्थन किया। "राष्ट्रीय उद्योगों को सरक्षण प्रदान करके तथा कुछ आयात-निर्यातों का निषेध करके राष्ट्रीय भावनाओं को पनपने का मौका मिलेगा तथा तथा राष्ट्र का चरित्र उन्नत होगा।"[1] इस प्रकार मूलर की दृष्टि मे राज्य सभी प्रकार से उत्तम है। यद्यपि वह स्मिथ द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिवाद का विरोधी था। तथापि उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक सामाजिक संस्था का विरोध नहीं किया। मूलर ने बताया कि राज्य का प्रमुख कर्तव्य व्यक्तियों की सम्पत्ति की सुरक्षा करना है। उसका मत था कि यदि किसी राष्ट्र के व्यक्ति सामाजिक एव आर्थिक दृष्टिकोण मे ऊचे उठे हुए होगे तभी राष्ट्रीय समृद्धि मे वृद्धि सम्भव हो सकेगी। इसी कारण से मूलर व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध नही करता वरन् उसकी तो यह अभिलाषा थी कि हरएक व्यक्ति राष्ट्र का सदस्य रहते हुए अपनी सामाजिक व आर्थिक उन्नत्ति करे। "यद्यपि मूलर केन्द्रीयकरण एव एकता का बडी सीमा तक इच्छुक था ; तथापि उसने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का तेजी से दमन नहीं किया। उसकी दृष्टि से व्यक्ति खोने के लिये नहीं था वरन् वह तो राष्ट्रीय अवयव का एक अटूट सदस्य होने के नाते अपना सर्वोत्तम विकास करने के लिये था।"[2]

एडम मूलर राज्य के स्थायित्व की समस्या (Problem of Permanence) को सबसे बड़ी समस्या मानता था और इसी लिये उसने अनुवांशिक कुलीनता (Hereditary Nobility) को विशेष महत्व प्रदान किया है। उसका विश्वास था कि अनुवांशिक कुलीनता ही वर्तमान एवं भूत कालों को मिलाने का काम करती है। वस्तुतः एडम मूलर मध्य युग का प्रशंसक था तथा वह अपने युग मे मध्ययुगीय अर्थ-व्यवस्था की ही स्थापना करना चाहता था। इस प्रकार उसने सामन्तवाद एवं पूजीवाद को एक दूसरे से मिलाने का काम किया है। इसी कारण कुछ विचारकों ने मूलर को सनातनी वणिकवादी (Mercantulist Conservative) कहा है। मूलर का व्यक्तव्य था कि राज्य की प्रकृति को शब्दो और परिभाषाओ मे रख सकना [illegible] से नया स्व- [illegible] राज्य की [illegible] न्द्र मे स्थित [illegible]

1 "Protection to home industry, and even propibition of certain exports and imports, are defended on the ground that they stimulate national character to the wealth of a people." —Haney.

2 "While Muller desired great centralization and solidarity, he did not wish to extinguish utterly individual freedom : the individual was not to be lost, but was to attain his best development as a closely knit member of the national organism." —Haney.

चाहिए कि वह स्वयं को केवल मात्र दृश्य वस्तुओं से ही सम्बन्धित न रक्खे वरन् सभी भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं, व्यक्तियों एव सम्बन्धो अर्थात् उन सभी से अपना सम्बन्ध रक्खे जोकि धन का निर्माण करते हैं। क्लासिकल आर्थिक विचार-धारा के अनुसार उत्पादन के अन्तर्गत भौतिक वस्तुओं एव प्राइवेट स्वामित्व की वृद्धि निहित है। एडम स्मिथ का मत था कि एक राष्ट्र का धन इसके नागरिको के व्यक्तिगत धन का योग मात्र है और इसीलिए उसने राज्य को अहस्तक्षेपवादी नीति अपनाने का सुझाव दिया जोकि स्वहित को विस्तृत क्षेत्र प्रदान करेगी। परन्तु एडम मूलर के मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य (अ) व्यक्तियों, वस्तुओं एवं आदर्श समाज की उपयोगिता को बढाना तथा (ब) राष्ट्रीय उत्पादन को बढाना है।

प्रो० एरिक् रौल के शब्दो के "मूलर के मतानुसार उत्पत्ति के कारण भूमि श्रम और पूंजी नहीं है वरन् प्रकृति, मनुष्य भूतकाल है। इनमे अंतिम कारक के अन्तर्गत उसने विगत काल मे निर्मित समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक पूंजी को, जोकि उत्पादन मे मनुष्य और को सहयोग देने के हेतु अब भी उपलब्ध है, सम्मिलित किया है। मूलर का कथन है कि अर्थशास्त्रियो की प्रवृत्ति अध्यात्मिक पूजी के महत्व को स्वीकार करने की रही है। भूतकाल से उपलब्ध अनुभव का कोष भाषा, व्याख्यान एव लेखो के अन्तर्गत रक्खा जाता है तथा विद्यार्थियो का यह कर्तव्य है कि वे इसे सुरक्षित रक्खें और उसमे वृद्धि करें। ये सभी तत्व उत्पादन में सहयोग प्रदान करते है। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रो मे प्रभाव विभिन्न होता है, कृषि-कार्य मे भूसम्पत्ति पर बल डाला जाता है, उद्योग मे श्रम पर बल डाला जाता है, वाणिज्य मे पूजी पर और विशेषकर इसके मौद्रिक स्वरूप पर बल डाला जाता है तथा विज्ञान मे विचारो की पूंजी पर बल डाला जाता है, लेकिन इन सब मे दूसरे तत्व सुरक्षित रखे जाते हैं। समान्तवादी व्यवस्था की सामाजिक सरचना उत्पत्ति के इन कारकों के अधिकार मे, श्रम श्रमिकों के अधिकार मे रहती है। प्रारम्भ मे धन की जाती थी परन्तु सामन्त-वाद के अएकीकरण के कारण भौतिक और अध्यात्मिक पूजी के बीच पृथक्करण पैदा हो गया। भौतिक पूजी की धारणा न उत्पत्ति के अन्य कारको को महत्वहीन बनाना शुरू कर दिया तथा सम्पूर्ण सभ्य जीवन पर सर्वोच्चता प्राप्त करनी प्रारम्भ कर दी। मूलर ने बताया कि भौतिक पूजी ने उत्पत्ति के सभी क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण प्रभाव प्राप्त कर लिया है तथा अर्थशास्त्री केवल मात्र भूमि, श्रम और पूजी में भी अंतर स्थापित करने लगे हैं।"[1]

आर्थिक सरचना के सम्बन्ध मे मूलर की प्रवृत्ति क्लासिकल अहस्तक्षेपवादी नीति के विरुद्ध है। संक्षेप मे, यह राष्ट्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था की स्थापना

[1] Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, Page 224.

है : वह अपने पीछे एक भूत काल रखता है जिसका उसे सम्मान करना चाहिए तथा वह अपने आगे एक भविष्य रखता है जिस की उसे परवाह करनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति समय की इस शृंखला को तोड़ नहीं सकता। राज्य एक कृत्रिम संस्था नहीं है और न ही नागरिक जीवन के हजारों लाभदायक एवं समृद्धशाली आविष्कारों में से एक है वरन् यह उस नागरिक जीवन की स्वमेव सम्पूर्णता है तथा मनुष्यों की तरह आवश्यक है।"[1] ये ही उसके तीन ऐसे प्रस्ताव हैं जोकि राज्य और व्यक्ति के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं। मूलर का विचार था कि राज्य के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है।

एडम मूलर के आर्थिक विचारों पर धर्म की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसका मत था कि धर्म के बिना आर्थिक क्रिया अपना ध्येय ही खो देती है। उत्पादन अपने हीत के लिए तथा ईश्वर के हित के लिए किया जाना चाहिए भौतिक परितोषिक पाने के उद्देश्य से नहीं। आर्थिक जीवन में जो भी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उनका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य दैवी शक्ति को भुला देता है। मूलर के मतानुसार श्रम उत्पादन का एक मात्र स्रोत नहीं है वरन् यह तो केवल उत्पादन का केक यँत्र मात्र है जो कि ईश्वर प्रदत्त है। वस्तुत: मूलर के लेखों में यह धार्मिक प्रभाव वर्णन के योग्य है। उसकी पुस्तक "Elemente" का प्रकाशन उसके द्वारा रोमन कैथोलिक चर्च में प्रवेश किये जाने के चार वर्ष बाद हुआ और इसके बाद के सभी लेखों में कैथोलिकवाद का समावेश है जो कि उस समय की आस्ट्रिया की राजनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था।

मूलर का सम्पत्ति, धन, उत्पादन एवं पूंजी का सिद्धान्त अत्यधिक आदर्शवादी है। उसका कथन है कि सम्पत्ति को इस रूप में समझना चाहिए जैसे कि व्यक्तियों और वस्तुओं के बीच अप्रशंसनीय पृथक्करण को हटाना। इनका संगठन एक समृद्धशाली राज्य की विशेषता है और यह केवल सामन्तवाद में ही प्राप्त किया जा सकता है। मूलर ने निरंकुश राज्य के सम्बन्ध में धन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि प्रत्येक वस्तु का व्यक्तिगत तथा एक नागरिक चरित्र होता है अर्थात व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्य होता है। इसी तरह धन भी प्राइवेट और राष्ट्रीय दोनों ही तरह की सम्पत्ति है। उसका मत था कि एक राष्ट्र के धन का अनुमान भार और संख्या में नहीं लगाया जा सकता क्योंकि ये तो केवल यह दिखाते हैं कि धन की वृद्धि सम्भव है। धन का वास्तविक अस्तित्व इसके प्रयोग में निहित है। राज्य को

1 "Every man stands at the centre of civic life : he has behind him a past which must be respected, before him a future which must be cared for. No one can break away from this time chain...Finally the state is not merely an artificial institution, not just one of the thousand useful and pleasurable inventions of civic life, it is the totality of that civic life itself, necessary as soon as there are men, inevatiable." —Adam Muller : Vom Geiste der Gemeinschaft, P.21–22

चाहिए कि वह स्वयं को केवल मात्र दृश्य वस्तुओं से ही सम्बन्धित न रक्खे वरन् सभी भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं, व्यक्तियों एवं सम्बन्धों अर्थात् उन सभी से अपना सम्बन्ध रक्खे जोकि धन का निर्माण करते हैं। क्लासिकल आर्थिक विचार-धारा के अनुसार उत्पादन के अन्तर्गत भौतिक वस्तुओं एवं प्राइवेट स्वामित्व की वृद्धि निहित है। एडम स्मिथ का मत था कि एक राष्ट्र का धन इसके नागरिकों के व्यक्तिगत धन का योग मात्र है और इसीलिए उसने राज्य की अहस्तक्षेपवादी नीति अपनाने का सुझाव दिया जोकि स्वहित को विस्तृत क्षेत्र प्रदान करेगी। परन्तु एडम मूलर के मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य (अ) व्यक्तियों, वस्तुओं एवं आदर्श समाज की उपयोगिता को बढ़ाना तथा (ब) राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ाना है।

प्रो० एरिक् रौल के शब्दों के "मूलर के मतानुसार उत्पत्ति के कारण भूमि श्रम और पूंजी नहीं है वरन् प्रकृति, मनुष्य भूतकाल है। इनमें अंतिम कारक के अन्तर्गत उसने विगत काल में निर्मित समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक पूंजी को, जोकि उत्पादन में मनुष्य और को सहयोग देने के हेतु अब भी उपलब्ध है, सम्मिलित किया है। मूलर का कथन है कि अर्थशास्त्रियों की प्रवृत्ति अध्यात्मिक पूंजी के महत्व को स्वीकार करने की रही है। भूतकाल से उपलब्ध अनुभव का कोष भाषा, व्याख्यान एवं लेखों के अन्तर्गत रक्खा जाता है तथा विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि वे इसे सुरक्षित रक्खें और उसमें वृद्धि करें। ये सभी तत्व उत्पादन में सहयोग प्रदान करते हैं। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव विभिन्न होता है, कृषि-कार्य में भूसम्पत्ति पर बल डाला जाता है, उद्योग में श्रम पर बल डाला जाता है, वाणिज्य में पूंजी पर और विशेषकर इसके मौद्रिक स्वरूप पर बल डाला जाता है तथा विज्ञान में विचारों की पूंजी पर बल डाला जाता है, लेकिन इन सब में दूसरे तत्व सुरक्षित रक्खे जाते हैं। सामन्तवादी व्यवस्था की सामाजिक संरचना उत्पत्ति के इन कारकों के अस्तित्व का प्रकाशन है अर्थात् भूमि कुलीनों के अधिकार में, श्रम श्रमिकों के अधिकार में तथा अध्यात्मिक पूंजी पादरियों के अधिकार में रहती है। प्रारम्भ में भौतिक पूंजी भी पादरियों के अधिकार से सम्बन्धित की जाती थी परन्तु सामन्त-वाद के अएकीकरण के कारण भौतिक और अध्यात्मिक पूंजी के बीच पृथक्कत्व पैदा हो गया। भौतिक पूंजी की धारणा न उत्पत्ति के अन्य कारकों को महत्वहीन बनाना शुरू कर दिया तथा सम्पूर्ण सभ्य जीवन पर सर्वोच्चता प्राप्त करनी आरम्भ कर दी। मूलर ने बताया कि भौतिक पूंजी ने उत्पत्ति के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है तथा अर्थशास्त्री केवल मात्र भूमि, श्रम और पूंजी में भी अन्तर स्थापित करने लगे हैं।"[1]

आर्थिक संरचना के सम्बन्ध में मूलर की प्रवृत्ति क्लासिकल अहस्तक्षेपवादी नीति के विरुद्ध है। संक्षेप में, वह राष्ट्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था की स्थापना

[1] Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, Page 324.

चाहता था और इस ध्येय से वह आयात-निर्यात को प्रतिबन्धित करने तथा आंतरिक उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने का पक्षपाती था। उसका मत था कि राज्य का कर्तव्य आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय राज्य के साथ एकता की भावना पैदा करना तथा राष्ट्रीय गौरव को जागृत करना है। वस्तुओं का आकर्षक गुण अर्थात उपयोगिता हरएक देश में अपना एक विशेष अर्थ रखती हैं। सरकार को चाहिए कि वह राष्ट्रीय आवश्यकताओं की संतुष्टि का विकास करे। मूलर का कथन था कि एक चतुर आर्थिक नीति राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय उपभोग के बीच समरूपता लानी है तथा हरएक नागरिक में राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बनाकर उत्पादन एवं उपभोग के बीच साम्य की स्थापना करनी है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र व्यापार की नीति राष्ट्रीय लगाव को समाप्त कर देती है तथा यह राज्य के हरएक सदस्य को विश्व का एक नागरिक बना देती है। मूलर के राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत विचारों को देखिए, "एक राष्ट्रीय शक्ति का दूसरी राष्ट्रीय शक्ति में विरूद्ध युद्ध में राष्ट्रीय अस्तित्व का सौंदर्य एवं सार अर्थात् राष्ट्र का विचार विशेषकर उन सबको स्पष्ट हो जाता है जो कि इसके भाग्य में भाग लेते हैं।"[1] "दीर्घ शांति के दौरान में सामाजिक इकाई की गहनता का गुण लोप हो जाता है क्योंकि नागरिकों की आंख पूर्णतया आंतरिक क्रियाओं पर लगी रहती हैं। इस इकाई की पुनर्स्थापना एक लम्बे युद्ध के पश्चात् ही सम्भव है जिसके अन्तर्गत शत्रु का मुकाबला करने की आवश्यकता सामाजिक एकता के साथ निहित रहती है।" "निरन्तर रहने वाली शांति राजनीति का एक आदर्श नहीं हो सकता। आराम और सक्रियता की तरह शांति युद्ध को एक दूसरे की पूरक पूर्ति करनी चाहिए"।[2] "सरकारी नीति का प्रथम उद्देश्य युद्ध की गौरव पूर्ण भावना को थामे रखना, इसे शांति की स्थिति से सम्बद्ध करना, शांति की हरएक संस्था में तथा प्रशासन की हरएक शाखा में इसको प्रविष्ट करना होना चाहिए।"[3]

राष्ट्रीय भावना को संरक्षण प्रदान करने के हेतु ही मूलर ने पत्र-मुद्रा के प्रयोग का सुझाव दिया है। उसने बताया कि पत्र-मुद्रा के प्रयोग द्वारा धात्विक द्रव्य

---

1 "In the war of one national power against anotherc not of national insolence againstnational impotence) the essene and the beauty of national existence, that is. the idea of the nation, becomes particularly clear to all those who participate in its fate."

—A. Muller.

2 "Perpetual peace can not be an ideal of politics. Peace and war should supplement each other like rest and motion."

—A. Muller.

[3] ...should have been the first aim of government policy to ...o that proud spirt of war to infuse it into the so called peace and every branch of the administration."

—A. Muller.

एवं अन्य मूल्यवान धातुओं का प्रयोग दूसरे आवश्यक कार्यों में किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त पत्र-मुद्रा का दूसरा लाभ मूलर ने यह बताया कि इसके प्रयोग से राष्ट्रीय ऋण लेने की कोई आवश्यकता नही होगी। पत्र-मुद्रा के प्रयोग का तीसरा लाभ मूलर ने यह बताया कि इसके प्रयोग से समाज को धनी एवं निर्धन वर्गों में विभक्त होने में रुकावट पड़ती है। एडम मूलर के मतानुसार धात्विक मुद्रा विश्ववादी है और यह राष्ट्र के साथ व्यक्ति को विच्छेद करती है। परन्तु पत्र-मुद्रा एक राष्ट्रीय एकता एवं शक्ति की सूचक होती है। उसके मतानुसार राष्ट्रीय साख की वह निर्माणकारी शक्ति है जो कि राष्ट्रीय पूंजी को सक्रियता प्रदान करती है। इस तरह मूलर ने साख को भी राष्ट्रीय कारक स्वीकार किया है तथा पत्र-मुद्रा (राष्ट्रीय मुद्रा) के साथ-साथ राष्ट्रीय साख का भी समान महत्व स्वीकार किया है।

(२) फ्रेड्रिक लिस्ट (Freidrich List)

फ्रेड्रिक लिस्ट का जन्म सन् १७८९ में जर्मनी के रोटलिगन (Reutlingen) नामक स्थान पर एक मोची परिवार में हुआ था। माता-पिता की निर्धनता के कारण लिस्ट को शिक्षा प्राप्त करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १८१८ में वह टुबिंगन (Tubingen) विश्वविद्यालय में राजनीतिक शास्त्र का आचार्य बना दिया गया। इस समय उसे जर्मनी की राजनैतिक-आर्थिक दशा पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने सरकार की स्वतन्त्र व्यापार नीति की कटु आलोचना की तथा सन् १८१९ में उसने जर्मन के उद्योगपतियों एवं व्यापारियों के सहयोग से "जर्मन वाणिज्यिक एवं औद्योगिक संघ" (German Commercial and qndustrial Union) की स्थापना की। इसी समय विषम परिस्थितियों के कारण उसे विश्वविद्यालय से त्याग पत्र देना पड़ा जिसके तुरन्त बाद ही वह "जर्मन वाणिज्यिक एवं औद्योगिक संघ" का सलाहकार बना लिया गया। इस दौरान में लिस्ट को कुछ फ्रांसीसी लेखकों के विचारों को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप वह स्वतन्त्र व्यापार पद्धति का विरोधी तथा संरक्षित व्यापार पद्धति का समर्थक बन गया। १८२० में रोटलिगन की जनता ने लिस्ट को जर्मनी की संसद में अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजा लेकिन उसने सरकार की स्वतन्त्र व्यापार नीति की कटु आलोचना करनी तब भी नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप लिस्ट पर मुकद्दमा चलाया गया और उसे १० माह के कारावास का दण्ड मिला। कारावास से मुक्ती के बाद लिस्ट को अमेरिका जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय अमेरिका की सरकार ने संरक्षित व्यापार की नीति को अपनाये रखा था जिसके फलस्वरूप वह देश दिन दूनी रात चौगनी प्रगति करता जा रहा था। इस दशा में लिस्ट बहुत प्रभावित हुआ तथा उसने अमेरिकन अर्थव्यवस्था का अध्ययन करके अनेक लेख लिखे जो कि १८२७ में "अमेरिकन राजनैतिक-अर्थव्यवस्था की रूप-रेखा" (Outlines of American Political Economy) के नाम से प्रकाशित हुये। १८४१ में उसके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ "राजनैतिक

अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय पद्धति" (National System of Political Economy) का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। लिस्ट का विचार इस ग्रन्थ को तीन भागों में समाप्त करने का था परन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण वह इसे पूर्ण नहीं कर सका तथा। सन् १८४८ में उसने आत्महत्या कर ली।

फ्रैंड्रिक लिस्ट के विचारों पर जर्मनी की तात्कालिक राजनैतिक एवं आर्थिक दशा का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। प्रो० एरिक रोल के शब्दों में, "इंगलिश एवं फ्रेन्च स्टेण्डर्डस के आधार पर निर्णय करते हुये १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी की आर्थिक दशा बहुत पिछड़ी हुई थी। इसका आर्थिक आधार सामंतवादी कृषि था तथा इसमें कुछ आदिवासी उद्योग थे जो कि मध्ययुगीय गिल्ड नियमों से शासित होते थे। राजनैतिक दृष्टि से जर्मनी अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और प्रत्येक राज्य पर स्वतन्त्र शासक शासन करता था। इस प्रकार एक निश्चितआर्थिक नीति का अभाव था। विदेशी व्यापार के क्षेत्र में स्वतन्त्र व्यापार नीति को अपनाया जा रहा था पन्तु अन्तप्रान्तीय व्यापार प्रतिबंधित था जैसा कि फ्रैंड्रिक लिस्ट ने स्वयं कहा है कि जर्मनी के व्यापारी एवं उत्पादक अपने समय को अधिकतर घरेलू चुंगी और करों के अध्ययन में व्यय करते थे। वाह्य जगत के लिये जर्मनी बन्द आर्थिक इकाई नहीं थी। इस देश में केन्द्रीय निर्देशन का सर्वथा अभाव था तथा आधुनिक दशाओं उत्पन्न इंगलैण्ड व फ्रांस के सामान के लिये जर्मनी सदैन एक तैयार बाजार था।"[1]

जर्मन व्यापारियों एवं उद्योगपतियों की दृष्टि अपने सफल विदेशी प्रतिद्वन्दियों की ओर गई तथा जर्मनी के पिछड़ेपन के कारणों को जानने की तीव्र उत्सुकता बढ़ती गई। स्मिथ और रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तों उपयोगितावादियों के दर्शन तथा फ्रांसीसी क्रांति के राजनैतिक सुधारों ने जनता के मस्तिष्क को प्रभावित करना आरम्भ किया। इनके अन्तर्गत प्रगतिशील जर्मन व्यापारीक वर्ग ने अपने निजी हित की व्याख्या पाई। अतएव आर्थिक एकता तथा एकरूपीय व्यापार की चारों ओर से सामान्य मांग की जाने लगी। इस जनमत के फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता का आन्दोलन जागृत हुआ जिसको लिस्ट से और अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। वास्तव में यह आन्दोलन इंगलिश आर्थिक परम्परावाद के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ।

जर्मनी की राजनैतिक आर्थिक दशा के प्रभाव के अतिरिक्त लिस्ट पर अमेरिका की संरक्षण नीति का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। लिस्ट जब अपने देश से भाग कर अमेरिका गया था तो वह उस देश की आर्थिक प्रगति को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। लिस्ट अमेरिका की आर्थिक प्रगति के कारणों की खोज करता हुआ इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अमेरिका की आर्थिक प्रगति का रहस्य इस देश की सरकार द्वारा अपनाई गई संरक्षित व्यापार की नीति ही है। अतएव उसने अपने देश जर्मनी

1 Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, P. 213-14.

की पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था को सुधारने के हेतु सुरक्षित व्यापारिक नीति को आवश्यक बताया। अमेरिका की सरक्षित व्यापार नीति से प्रभावित होने के साथ-साथ लिस्ट पर अमेरिका के विचारकों का भी प्रभाव पड़ा था। अलेक्जेण्डर हामिल्टन (Alexander Hamilton), मैथ्यु केरे (Mathau Carrey), डेनियल रेमण्ड (Danial Raymond) तथा डीन इंगरसोल (Dean Ingersol) आदि समकालीन अमेरिकन विचारकों के विचारों ने लिस्ट की विचारधारा को काफी अश तक प्रभावित किया।

फ्रैड्रिक लिस्ट के आर्थिक विचार (Fconomic Ideas of Friedrich List)
प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों मे, "वास्तव मे उसने प्रचलित प्रणाली मे दो नवीन विचारों का समावेश किया अर्थात् विश्ववादिता के विपरित राष्ट्रीयता का विचार, तथा विनिमय मूल्य के विपरित उत्पादक शक्ति का विचार।"[1]

(क) राष्ट्रीयता का विचार:—एडम स्मिथ (Adam Smith) और उसके अनुयाइयों ने विश्ववादिता (Cosmopolitanism) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण समाज एक इकाई है अथवा एक विशाल कारखाना है और इसमें निवास करने वाले विभिन्न प्रकार का काम करने वाले श्रमिक हैं। इस आधार पर स्मिथ का मत था। कि जो बात सम्पूर्ण जगत के लिए कल्याणकारी है वह समाज मे निवास करने वाले व्यक्तियों के लिए भी कल्याणकारी है। इस तरह परम्परावादी विचारकों ने आर्थिक नियमों को विश्वव्यापी बताया और कहा कि समाज में रहने वाले विभिन्न वर्गों के हित एक दूसरे के विरोधी नही होते अपितु पूरक होते हैं। इन्ही विचारो के आधार पर स्मिथ ने स्वतन्त्र विदेशी व्यापार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। वस्तुतः स्मिथ का विश्ववादिता का विचार इस विश्वास पर आधारित था कि संसार के व्यक्ति एक बड़े समुदाय मे सगठित हो जायेंगे और इस समुदाय से युद्ध आदि अन्तर्राष्ट्रीय अशांति का निष्कासन हो जाएगा। परम्परावादी विचारकों ने केवल मात्र व्यक्तिगत हित की ही गणना की तथा व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता पर किसी भी तरह के हस्तक्षेप को स्वीकार नही किया। परन्तु मनुष्य और मानवता के राष्ट्रीता के इतिहास को इस सम्प्रदाय ने बिल्कुल भुला दिया क्योकि हरएक व्यक्ति किसी न किसी राष्ट्र का एक अग है तथा उसकी समृद्धि बड़ी सीमा तक उस राष्ट्र की राजनैतिक शक्ति पर निर्भर करती है।[1]

फ्रैड्रिक लिस्ट ने स्मिथ के विश्ववादिता के विचार की आलोचना करते हुए

---

1 "In fact, he introduces two ideas that were new to current theory, namely, the idea of nationality as contrasted with that of cosmopolitanism, and the idea of productive power as contrasted with that of exchange value."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 279.

लिया कि सम्पूर्ण समाज को एक इकाई या एक कारखाना मान लेना भारी भूल होगी जोकि विभिन्न राष्ट्रों के हित में नहीं है। उसने बताया कि इस समय विभिन्न राष्ट्रों की शक्ति और हित भिन्न भिन्न हैं और इसलिए एक निश्चित संगठन उनके लिए केवल तभी लाभदायक सिद्ध हो सकता है जबकि वे समानता के स्तर पर खड़े हों। यह संगठन कुछ राष्ट्रों के लिए तो लाभदायक सिद्ध हो सकता है परन्तु दूसरे राष्ट्रों को उन पर निर्भर बना देगा अर्थात संसार को एक इकाई मान लेने का अर्थ यह होगा कि कम विकसित राष्ट्र अधिक विकसित राष्ट्रों पर निर्भर हो जायेंगे और इस तरह उनका आर्थिक शोषण होगा। लिस्ट ने बताया कि अर्थ-शास्त्र का केवल मात्र कार्य विश्ववाद की स्थापना करना नहीं है वरन् उसका मुख्य कार्य यह है कि वे ऐसे मार्गों का प्रकाशीकरण भी करें जिस पर चलकर अविकसित देश अपनी आर्थिक प्रगति कर सकें तथा इस तरह प्रगति की उस सीमा पर पहुंच जायें कि उन्नतिशील देशों से स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने में उन्हें किसी तरह की हानि उठानी न पड़े।[1] इसी प्रकार लिस्ट के मतानुसार विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति से ही संसार की आर्थिक प्रगति सम्भव है।

लिस्ट ने विश्ववादिता के विचार के स्थान पर राष्ट्रीयता के विचार को इतना अधिक महत्व क्यों प्रदान किया, इसका कारण यह है कि आधुनिक युग में आर्थिक दृष्टि से सभी राष्ट्र समान रूप से उन्नत नहीं है। लिस्ट ने आर्थिक प्रगति के अनुसार राष्ट्रों की पांच अवस्थाओं की कल्पना की–(i) वर्बर तथा जंगली अवस्था (Savage Stage), (ii) चारागाही अवस्था (Pastoral Stage), (iii) कृषि अवस्था (Agricultural Stage), (iv) कृषि-उद्योग-अवस्था (Agrtcultural–Manufacturing Stage) तथा (v) कृषि उद्योग-व्यापार अवस्था (Agricultural–Manufacturing-Commercial Stage)। इन पांचों अवस्थाओं में से लिस्ट ने अंतिम अवस्था को सामान्य अवस्था (Normal Stage) बताया और कहा कि यह वह आदर्श है जिसे हर राष्ट्र द्वारा अवश्य प्राप्त करना चाहिए। वास्तव में उसने सामान्य अवस्था वाले देशों को ही उपनिवेशों की खोज करने की आज्ञा प्रदान की अर्थात् ऐसे देश को जोकि अपने विदेशी व्वापार को स्थिर रख सकें तथा अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार कर सके। केवल उसी अवस्था पर कोई राष्ट्र विशाल जनसंख्या का भरण-पोषण कर सकता है, कलाओं एवं विज्ञानों के पूर्ण विकास की गारन्टी कर सकता है तथा अपनी आजादी व शक्ति को सुरक्षित रख सकता है। उसने बताया कि यह सत्य है कि सभी राष्ट्र विकास की सामान्य अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि इस

1 List defines "political or national economy" as "that which, emanading ftom the inea and nature of the nation, teaches how a given nation, in the present state of the world and its own special national relations, can maintain and improve its economical conditions."

—List : Nntional system.

अवस्था को प्राप्त करने के हेतु उस देश के पास विस्तृत क्षेत्र, विस्तृत प्राकृतिक स्रोत, उचित जलवायु जोकि स्वमेव उद्योगों के विकास में सहायक हो, होनी चाहिए। लिस्ट ने बताया कि जहा ये दशाएं उपलब्ध है उस राष्ट्र का यह परम् कर्तव्य है कि वह इस अवस्था को प्राप्त करने के हेतु अपने साधनों को जुटाए। लिस्ट ने बताया कि जर्मनी में विकास की ये सब दशाए उपलब्ध हैं और उसने यह दावा किया कि हॉलैन्ड और डेनमार्क जर्मनी के अंग हैं और इस लिए इन देशों को जर्मनी में सम्मिलित हो जाना चाहिए। इस तरह स्पष्ट है कि अपने देश जर्मनी की उन्नति के हेतु ही लिस्ट ने राष्ट्रीयता के विचार को विशेष महत्व प्रदान किया तथा स्वतन्त्र-व्यापारिक नीति का विरोध करके संरक्षण (Protection) का समर्थन किया।

लिस्ट का सरक्षणवाद एक सार्वभौमिक सुधार का तरीका नही है जोकि हर एक देश में हर एक काल में इस्तेमाल किया जा सके अथवा सभी तरह के उत्पादनों पर लागू किया जा सके। यह तो एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया है जोकि कुछ निश्चित दशाओं में ही लागू किया जा सकता है जोकि निम्नोक्त है :—

(१) लिस्ट के मतानुसार संरक्षणवादी नीति को केवल तभी न्यायप्रद ठहराया जा सकता है जबकि इसका उद्देश्य किसी राष्ट्र की औद्योगिक शिक्षा होता है। इस तरह यह नीति इर्लैण्ड जैसे देश में लागू करने के योग्य नहीं है क्योंकि वहा पर औद्योगिक शिक्षा पहले से ही पूर्ण है। इसके अतिरिक्त सरक्षण की नीति उन देशों द्वारा भी नहीं अपनाई जानी चाहिए जिनके पास औद्योगिक विकास के न तो साधन है और न ही उनकी मनोवृत्ति भी उद्योग-धन्धो का विकास करने की है। उष्ण कटिबंधीय देश कृषि-व्यवसाय के हेतु तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय देश उद्योग-धन्धों के विकास के उपयुक्त होते हैं।[1]

(२) किसी देश को सरक्षित व्यापार की नीति इसलिए भी अपनानी चाहिए कि उस देश के उद्योग धन्धो की उन्नति हो सके तथा उसे प्रतिस्पर्धा से छुटकारा मिल जाए। दूसरी किस्म के राष्ट्रों मे अर्थात् उन राष्ट्रो मे जोकि मानसिक एव भौतिक दशाओ तथा अपनी निजी निर्माण शक्ति स्थापित करने के साधनो से परिपूर्ण हैं तथा इस तरह सभ्यता तथा भौतिक समृद्धि राजनैतिक शक्ति के विकास को उच्चतम मात्रा रखते हैं, परन्तु जोकि विदेशी निर्माण शक्ति की प्रतियोगिता के द्वारा जोकि उसकी अपनी निर्माण शक्ति की अपेक्षा कही अधिक विकसित है, अपनी प्रगति नही कर पाता, केवल इन्ही देशो मे निजी निर्माण शक्ति की स्थापना व सरक्षण के उद्देश्यो से व्यापारिक प्रतिबन्ध न्यायप्रद ठहराए जा सकते

1 "It may in general be assumed that where any technical industry cannot be established by means of an original protection of 40 to 60 percent, and can not continue to maintain itself under a continued protecent, the fundamental conditions of manufacturing power locking-" . —List : National System, P. 251.

हैं। अविकसित देश द्वारा संरक्षण की नीति अपनाने का कारण बताते हुए लिस्ट ने कहा कि "संरक्षण का कारण वैसे ही है जैसे कि एक बच्चा व लड़का एक शक्तिशाली पुरुष से कुश्ती में किसी भी तरह नहीं जीत सकता।"[1] यहाँ लिस्ट का बच्चे से अभिप्राय जर्मनी से है तथा शक्तिशाली पुरुष से अभिप्राय इंगलैण्ड से है और इसी तरह उसके कहने का अभिप्राय वह था कि जर्मनी को संरक्षण की नीति अपना कर इगलैण्ड आदि देशों से होने वाली प्रतियोगिता से अपनी निर्माण शक्ति कि रक्षा करनी चाहिये।

(३) संरक्षण केवल तभी तक न्यायप्रद ठहराए जा सकते हैं जब तक कि किसी देश की निर्माण शक्ति स्वतन्त्र रूप से दूसरे देशों से प्रतियोगिता करने के काबिल न हो जाए" (Protection can be justified ouly untill that manufacturing power is strong enough no longer to have any reason to ear foreign cmpetition and thenceforth only so far as many be necessary for protecting the inland manufacturing power in its very roots)। इस तरह लिस्ट ने संरक्षण की नीति का स्थाई रूप से प्रयोग करने का सुझाव नहीं दिया। उसने बताया कि जो राष्ट्र आर्थिक प्रगति की सामान्य अवस्था को प्राप्त कर चुका हो उसे फिर संरक्षण की नीति नहीं अपनानी चाहिए।

४. संरक्षण की नीति का कभी भी कृषि-व्यवसाय तक विस्तार नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि एक ओर तो किसी देश की कृषिगत-समृद्धि बड़ी सीमा तक निर्माण-उद्योग की उन्नति पर निर्भर करती है जिसका संरक्षण परोक्ष रूप से कृषि को प्रभावित करता है तथा दूसरी ओर कच्चे माल अथवा खाद्यान्न की मूल्य-वृद्धि का परिणाम उद्योग-धन्धों के लिए घातक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त कृषि-व्यवसाय को संरक्षण प्रदान करने से प्रकृत्ति द्वारा प्रदत्त क्षेत्रीय श्रम-विभाजन (Territorial Division of Labour) समाप्त हो जाएगा। लिस्ट के मतानुसार उष्ण कटिबंधीय प्रदेश कृषि-व्यवसाय के निमित्त तथा शीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेश उद्योगों के निमित्त उपयुक्त होते हैं। इस दशा में कृषि-व्यवसाय को संरक्षण प्रदान करने से प्राकृतिक श्रम-विभाजन अस्त-व्यस्त हो जाएगा।

यह स्मरणीय है कि लिस्ट द्वारा कृषि में स्वतन्त्र विनिमय का समर्थन करने का एकमात्र कारण उसकी अपने राष्ट्र जर्मनी के प्रति राष्ट्रीयता की भावना ही थी। उस समय जर्मनी खाद्यान्न का निर्यातकर्त्ता था और इंग्लैण्ड के बने अनाज-नियमों (Corn L~ws) से उसके इस निर्यात-व्यापार को आघात सहन करना पड़ता था। वस्तुत: जर्मनी की कृषि को किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं थी वरन् वह तो बाजार के अभाव से ग्रस्त था। अतएव लिस्ट ने कृषि-व्यवसाय में स्वतंत्र विनिमय की नीति का समर्थन करके इंग्लैण्ड को अपने अनाज नियमों को समाप्त करने के

---

1 "The reason for this protection is the same, as that why a child or a boy in wrestling with a strong man can scarcely be victorious or even offer steady resistance." —List : Ibid, P. 240,

हेतु प्रेरित किया। जर्मनी में सन् १८७९ के अन्त में ही कृषि-व्यवसाय को संरक्षण प्रदान किया गया क्योंकि वहाँ के कृषकों ने यह मांग की थी कि वे विदेशी प्रतियोगिता से निरुत्साहित हो रहे हैं।

(घ) उत्पादन-शक्ति का विचार —इस तरह लिस्ट द्वारा प्रतिपादित व्यापारिक नीति का उद्देश्य किसी राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाना था। एडम स्मिथ तथा उनके शिष्यों का यह मत था कि उपभोग्य वस्तुओं में निहित विनिमय मूल्य (Exchange Value) ही वास्तविक सम्पत्ति है अर्थात् किसी राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति उपभोग्य वस्तुओं के विनिमय मूल्य पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों, में इन विचारकों के मतानुसार यदि किसी राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाना है तो इसके लिए उपभोग्य वस्तुओं की मात्रा बढ़ाना आवश्यक है क्योंकि अधिक विनिमय मूल्य होने से व्यक्ति वस्तुओं का उपभोग भी अधिक मात्रा में कर सकेंगे। लिस्ट ने परम्परावादियों की इस विचारधारा का खण्डन करते हुए कहा कि धन या सम्पत्ति (उपभोग वस्तुओं) को बढ़ाने की अपेक्षा उत्पादन-शक्ति (Productive Power) को बढ़ाना अधिक आवश्यक है और यदि इसके लिए विनिमय मूल्य का बलिदान भी करना पड़े तो भी अच्छा है। इस तरह लिस्ट के मतानुसार वर्तमान के उपभोग की चिन्ता के स्थान पर हमें उन उत्पादन-शक्तियों की चिन्ता करनी चाहिए जोकि भविष्य में अधिक उपभोग्य वस्तुओं की पूर्ति कर सकें। *"धन को निर्माण करने की शक्ति स्वयं धन से अधिक महत्वपूर्ण है ··· यह केवल प्राप्य की वृद्धि एवं अधिकार की ही गारन्टी नहीं करती वरन् खोए जाने वाले की प्रतिस्थापना की भी गारन्टी करती है।"*[1] इस प्रकार लिस्ट ने बताया कि केवलमात्र यह काफी नहीं है कि किसी राष्ट्र के नागरिकों का श्रम व सम्पत्ति विनिमय मूल्य की बड़ी मात्रा को वर्तमान में गारन्टी करें वरन् यह भी आवश्यक है कि श्रम व सम्पत्ति के ये साधन सुरक्षित किए जायें तथा उनके भावी विकास की गारन्टी की जाए। अतएव लिस्ट के अनुसार किसी देश को अपनी उत्पादन-शक्ति जिस पर कि विनिमय-मूल्य निर्भर हैं, पर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा विनिमय-मूल्यों को उत्पादन शक्ति की माग के हेतु अस्थाई बलिदान भी उचित है। यह स्मरणीय है कि इस प्रकार लिस्ट किसी राष्ट्र की भविष्य के चिन्तन से सम्बन्धित नीति और उसकी वर्तमान के चिन्तन से सम्बन्धित नीति के बीच अन्तर स्पष्ट करना चाहता है।"एक राष्ट्र को संस्कृति, कुशलता तथा संयुक्त उत्पादन की शक्तियों को पाने के हेतु भौतिक सम्पत्ति के एक भाग का भी बलिदान कर देना चाहिए, इसे भविष्य के लाभों की गारन्टी के सम्बन्ध में कुछ वर्तमानकालीन लाभों का भी बलिदान कर देना चाहिए।

---

1 "The power of creating wealth is infinitely more important than the wealth itself...It insures not only the possession and the *increas of what has been gained but also the replacement of what* has been lost."
—List.

यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वे कौन कौन सी उत्पादक शक्तियां हैं जिनके संरक्षण के हेतु लिस्ट विनिमय मूल्य के बलिदान तक की बात कहता है ? प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने लिस्ट द्वारा प्रस्तावित उत्पादक शक्तियों में नैतिक एवं राजनैतिक संस्थाओं (Moral and political Institutions), विचार प्रकाशन की आजादी (Freedom of Thought) आत्म मुक्ति की स्वतन्त्रता (Freedom of Conscience), प्रेस की स्वतन्त्रता, (Liberty of Press), जूरी द्वारा मुकदमा करना (Trial by Jury), न्याय प्रकाशन (Publicity of Justice), प्रशासन का नियंत्रण (Control of Administration) तथा सांसदीय सरकार Paritamentary Government) की गणना की है। इन सब उत्पादक शक्तियों का श्रम के ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इनके द्वारा श्रमिक में नैतिकता का विकास होता है तथा उसकी किस्म में भी सुधार होता है।

उक्त सब उत्पादक-शक्तियो से भी श्रेष्ठ लिस्ट ने "निर्माण" (Mannfacturing) नामक उत्पादक शक्ति को ठहराया है क्योंकि उसके विचार से यह उत्पादक शक्ति एक राष्ट्र की नैतिक शक्तियों का सर्वोच्च सीमा तक विकास करती है।[1] कृषि की अपेक्षा निर्माण किसी देश के उत्पादों का अधिक उत्तम उपयोग करता है उद्योगों का अस्तित्व कृषि को शक्तिशाली प्रेरणा प्रदान करता हैं क्योंकि कृषक ऊंचे लगान, बढ़े हुए लाभ तथा उत्तम मजदूरी की मांग द्वारा जोकि कृषिगत उत्पादों की माँग की वृद्धि के पीछे हैं, उद्योगपति की तुलना में अधिक लाभान्वित होता है। उद्योग धन्धों द्वारा उन कृषि उत्पादों के लिए एक स्थिर किस्म का बाजार तैयार कर दिया जाता है जोकि युद्ध अथवा टैरिफ के द्वारा भी सम्भव नहीं हो सकता है। उद्योग-धन्धों का विकास विभिन्न मांगों को जन्म देता है तथा विभिन्न प्रकार की खेती को बढ़ावा देता हैं जिसका परिणाम क्षेत्रीय श्रम-विभाजन में होता है। निमार्ण शक्ति प्रत्येक क्षेत्र की अधिक लाभकारी लाइनों पर विकास करने योग्य बनाती है, जबकि एक विशुद्ध कृषिगत देश में प्रत्येक क्षेत्र को अपने व्यक्तिगत उपभोग के निमित्त उत्पादन करना पड़ता है जिसका अर्थ है श्रम विभाजन की अनुपस्थिति तथा उत्पादन का परिसमीन। यह स्मरणीय है उद्योग के संबंध में लिस्ट और स्मिथ का दृष्टिकोण एक जैसा नहीं है। लिस्ट के लिए उद्योग एक सामाजिक शक्ति है, पूंजी और श्रम की जन्मदात्री है, श्रम व बचत का स्वाभाविक परिणाम नहीं। "यह सत्य है कि वायु बीज को एक स्थल से दूसरे स्थल तक ले जाती है और इस तरह व्यर्थ

"The spirt of striving for a steady increase in mental and acquirements, of emulation and of liberly, characterize a state d to manufactures and commerce...In a country devoted to aw agriclture, dullness of mind, awakwardness of body, obsti- dherence to old nations, customs, methods, and processes, want lture, prosperity, and of liberty prevail."

—List : National System, Ch. XVII.

बंजरभूमि घने जंगल में परिणित हो जाती है। परन्तु क्या यह फोरेस्टर के लिए बुद्धिपूर्ण नीति होती कि वह इस परिवर्तन के लिए वायु की प्रतिक्षा करता रहे।"[1] इस तरह लिस्ट का विचार है कि उद्योग धन्धों का विकास केवल संरक्षण की नीति के द्वारा ही सम्भव है।

लिस्ट के प्रेरक स्रोत तथा अन्य संरक्षणवादी सिद्धांतों पर उसका प्रभाव (Sources of List's Inspiration and His Influence upon Subsequent Protectionist Doctrines)—यहां एक स्वाभाविक प्रश्न यह पैदा होता है कि लिस्ट के संरक्षणवादी विचारों की उत्पत्ति कैसे हुई? यद्यपि फ्रेंचमैन डुपिन (Frenchmen Depin) चेप्टल (Chaptel) के कार्यों ने भी उसे प्रकाशन की कुछ सामग्री प्रदान की, तथापि उसे स्वतंत्र व्यापार की नीति के विरुद्ध करने में अमेरिका ने बहुत योगदान किया जबकि वह फिलाडेलफिया में राष्ट्रीय उद्योग के प्रोत्साहन के ध्येय से स्थापित संस्था के सदस्यों के सम्पर्क में आया। इस संस्था का संस्थापक हेमिल्टन (Hamilton) नामक एक अमेरिकन व्यक्ति था जिसने सन् १७६१ में अमेरिकीन उद्योगों को प्रेरणा देने के ध्येय से संरक्षण स्थापित करने की वकालात की थी। संरक्षण के संबंध में हैमिल्टन का तर्क लिस्ट द्वारा प्रतिपादित "राष्ट्रीय पद्धति" में तर्क से पूर्ण समानता रखता है। फिलाडेलफियन सोसाइटी ने जिसका तात्कालीक अध्यक्ष मैथ्यू केरे (Matthew Carey) था, लिस्ट के अमेरिका पहुंचने के तुरन्त बाद टेरिफ के संशोधन के विनाह पर एक आन्दोलन चलाया। इस संस्था के उपाध्यक्ष इन्गरसोल (Ingersoll) ने लिस्ट को इस आन्दोलन में सम्मिलित होने के हेतु प्रेरित किया। इस आन्दोलन के प्रभाव के अतिरिक्त लिस्ट की संरक्षणवादी विचारधारा को संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाई गई संरक्षण की नीति ने भी प्रभावित किया। लिस्ट ने देखा कि जैसी प्राकृतिक दशाएं और साधन अमेरिका में विद्यमान हैं वैसी ही दशाएं और साधन जर्मनी में भी उपलब्ध हैं। अतएव उसने अपने देश जर्मनी में भी संरक्षण के प्रयोग को अपनाने की इच्छा व्यक्त की। इस तरह लिस्ट का कार्य यद्यपि किसी प्रचलित अमेरिकन प्रणाली से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित न होते हुए भी, प्रथम ग्रन्थ है जोकि नए जगत के आर्थिक अनुभवों के यूरोपियन विचारधारा पर पड़े प्रभाव को व्यक्त करता है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण स्वयं लिस्ट ने अपनी पुस्तक "राष्ट्रीय पद्धति" (National System) में भी किया है

इस दृष्टिकोण से लिस्ट का संरक्षणवाद आधुनिकतम आर्थिक इकाइयों से घनिष्ठ

---

1 "It is true that experience teaches that the wind bears the seed from one region to another, and that thus waste moorlands have been transformed into dense forests; but would it on that account be wise policy for the forester to wait until the wind in the course of ages effects this transformation."

—Friedrich List : National System, P. 87.

रूप से सम्बद्ध दिखाई देता है, तथापि एक निश्चित बन्धन उसे पुराने वणिकवाद से सम्बद्ध कर देता है। लिस्ट का कथन है कि एडम स्मिथ और जे० बी० से भी वणिकवादियों की श्रेणी के विचारक थे क्योंकि उन्होंने एक व्यापारी की नोट-बुक से नकल की गई एक साधारण धारणा अर्थात् सस्ती खरीदारी तथा मंहगे बाजार में बिक्री की शिक्षा को समस्त राष्ट्रों में लागू करने का प्रयास किया। लिस्ट ने वणिकवादी विचारकों को दो वर्गों में विभाजित करते हुये बताया कि प्रथम वर्ग के वे वणिकवादी विचारक हैं जिन्होंने औद्योगिक शिक्षा की महत्ता पर बल डाला जो कि लिस्ट के दर्शन की निर्णायक टिप्पणी बनी। इस विचार ने प्राचीन अनुकूल व्यापार संतुलन के विचार का स्थान ग्रहण कर लिया और यह विचार जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे उदार विचारकों द्वारा भी अपना लिया गया। इसके अतिरिक्त थी, जबकि लिस्ट सत्रहवीं शताब्दी का वणिकवाद स्थिर नीति के हित में प्रयुक्त एक विशेष यन्त्र मात्र था और यह नीति पूर्ण रूपेण राष्ट्रीय का संरक्षणवाद, उसके अपने निजी विचार के अनुसार, एकता के समान स्तर पर राष्ट्रों को एक संघ में सम्मिलित करने के ध्येय से उन्हें निर्देश करने का साधन मात्र था। यह तो केवल मात्र संक्रमणकारी प्रणाली अर्थात् परिस्थितियों से उत्पन्न एक नीति थी। इस तरह सामान्य रूप से देखने में लिस्ट की संरक्षण नीति पर वणिकवादियों की संरक्षण नीति का प्रभाव परिलक्षित होता है। फिर भी दोनों प्रकार की संरक्षण नीतियों में निम्नोक्त विभिन्नता देखने को मिलती है—

(१) वणिकवादियों का मत था कि व्यपारिक शेष को अनुकुल बनाने के हेतु संरक्षण की नीति लागू करनी चाहिए, जबकि लिस्ट का मत था कि एक आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुये देश को विकास की सामान्य अवस्था प्राप्त करने के हेतु संरक्षण की नीति अपनानी चाहिये।

(२) वणिकवादियों के मतानुसार संरक्षण सभी प्रकार के व्यवसायों के हेतु आवश्यक है, जबकि लिस्ट ने बताया कि कृषि-व्यवसाय को संरक्षण के अन्तर्गत नहीं रखना चाहिये।

(३) वणिकवादियों के अनुसार संरक्षण की नीति स्थाई रूप से लागू करनी चाहिये। परन्तु लिस्ट ने बताया कि किसी देश द्वारा संरक्षण की नीति उसी समय अपनानी चाहिये जब तक कि वह आर्थिक विकास की सामन्य अवस्था को न प्राप्त कर ले तथा तदुपरान्त संरक्षण की नीति का परित्याग कर देना चाहिये।

(४) वणिकवादियों के मतानुमार संरक्षण की नीति सभी देशों के लिये आवश्यक है, जबकि लिस्ट के मतानुसार यह नीति केवल शीतोष्ण कटिबंधीय देशों को ही अपनानी चाहिये और यदि यह नीति उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों द्वारा भी अपनाई गई तो प्राकृतिक श्रम-विभाजन पर आघात पहुंचेगा।

लिस्ट ने जिस संरक्षण की नीति को महत्व प्रदान किया था वह वर्तमान युग के हर एक देश के लिये एक साधारण रिवाज बन गई है। लिस्ट द्वारा सुझाई गई संरक्षण की नीति तथा वर्तमान युग में अपनाई जाने वाली संरक्षण नीति में मुख्य अन्तर निम्नोक्त है:—

(१) लिस्ट के मतानुसार किसी देश को विदेशी प्रतियोगिता से बचने के हेतु संरक्षण की नीति अपनानी आवश्यक है। इसके विपरीत आधुनिक विचारधारा के अनुसार किसी देश को आत्मनिर्भर, आत्मपर्याप्त एवं स्वावलम्बी बनाने के हेतु संरक्षण की नीति अपनानी आवश्यक है।

(२) लिस्ट का मत था कि विकास की सामान्य अवस्था पर पहुच जाने के उपरान्त किसी देश को सरक्षण की नीति अपनाने की आवश्यकता नही है। इसके विपरीत वर्तमान युग मे इसका क्षेत्र अधिक विस्तृत है।

(३) लिस्ट का विचार था कि विश्व बधुत्व की भावना पैदा करने के हेतु संरक्षण की नीति आवश्यक है, परन्तु आधुनिक विचारधारा का एक मात्र लक्ष्य राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाना ही है।

(४) लिस्ट ने कृषि-व्यवसाय मे स्वतन्त्र-विनिमय अपनाने का सुझाव दिया था जबकि आधुनिक युग मे कृषि-व्यवसाय को भी संरक्षण प्रदान किया जाता है।

(५) आधुनिक विचारधारा के अनुसार संरक्षण का विचार दो दृष्टिकोणों पर आधारित है अर्थात् आर्थिक स्वराज्य के लिए आवश्यकता (The necessity for Economic Autonomy) तथा राष्ट्रीय उत्पादों के लिये राष्ट्रीय बाजार को सुरक्षित रखने की आवश्यकता (The necessity of National Market for national Products)। इसके विपरीत लिस्ट ने सरक्षण को व्यापारिक नीति की स्थाई सहयोगिनी नही समझा।

लिस्ट का संरक्षणात्मक नीति का समर्थन करने का ध्येय उद्योग के साधन द्वारा विदेशी बाजार के क्षेत्र मे राष्ट्र को स्वतन्त्र बनाने का था। उसने बताया कि एक समृद्धिशाली देश वही है जिसने अपने क्षेत्र मे सर्वोच्च पूर्णता तक उद्योग की विभिन्न शाखाओं का विकास किया हो तथा जिसका क्षेत्र और कृषिगत जनसंख्या औद्योगिक जनसख्या के जीवन की आवश्यक वस्तुओं एवं आवश्यक कच्चे माल की समुचित पूर्ति करने के हेतु पर्याप्त हो।[1] लेकिन उसने यह भी स्वीकार किया कि ऐसे लाभ अपवाद स्वरूप है तथा जिन वस्तुओं का उत्पादन किसी देश के लिए प्राकृतिक दृष्टि से अनुकूल नहीं है उन वस्तुओं का [illegible] करना मूर्खतापूर्ण होगा तथा जिन [illegible] का [illegible] [illegible] ही वस्तुओं का [illegible] आर्थिक

देश विदेशों से उत्पादित की वस्तुओं का आयात करता है तो उस आयात के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बनना चाहिए। लिस्ट ने इस पर भी बल दिया कि परन्तु आयात को केवल घरेलू निर्मित वस्तुओं के हेतु ही सुरक्षित रखना चाहिए, लेकिन साथ यह भी विचारा कि यह पाबन्दी इस प्रकार आंशिक हो जायेंगे क्योंकि एक राष्ट्र अपने ही लिये उद्योग के विकास की बात से है परन्तु कुछ समय बाद उद्योगों एवं व्यक्तियों को निष्क्रियता से बचाने के लिए विदेशी प्रतियोगिता आवश्यक हो जायेगी।[1]

लिस्ट के आर्थिक विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन :—लिस्ट द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के विवेचन से स्पष्ट है कि उसने स्मिथ द्वारा प्रतिपादित की विश्वबंधुत्ववादिता एवं स्वतन्त्र व्यापार की नीति का विरोध किया तथा राष्ट्रवाद एवं ऐतिहासिक पद्धति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। लिस्ट द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में भी अनेक त्रुटियाँ हैं, प्रथम तो लिस्ट द्वारा आर्थिक विकास की विचारधारा का किया गया वर्गीकरण मौलिक नहीं है क्योंकि उससे पूर्व भी एडम स्मिथ ने आर्थिक विकास की तीन अवस्थाओं - कृषि, कृषि-उद्योग तथा कृषि-उद्योग-व्यापार का उल्लेख किया था तथा स्मिथ द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की तीसरी अवस्था वही है जो कि लिस्ट द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की पांचवीं अवस्था है। फिर लिस्ट का यह मत कि एक राष्ट्र क्रमशः प्रगति करता हुआ ही अंतिम अवस्था को प्राप्त करता है, ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं है क्योंकि जापान का एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत है जोकि अपनी कृषि अवस्था से सीधा ही कृषि-उद्योग-व्यापार की अवस्था को पहुंच गया था। दूसरे लिस्ट ने अपनी संरक्षण की नीति के लिए कुछ आवश्यक दशाओं (यथा—परिश्रमी एवं बुद्धिमान जनसंख्या, पर्याप्त प्राकृतिक साधन, विस्तृत बाजार और शीतोष्ण जलवायु) की अनिवार्यता बताई है तथा उपनिवेशवाद का समर्थन किया है जो कि सर्वथा उचित एवं न्यायपूर्ण नहीं है। तीसरे, लिस्ट के द्वारा प्रयुक्त 'सामान्य' शब्द बहुत ही भ्रांतिपूर्ण है जिसके अर्थ के सम्बन्ध में सभी अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। चौथे, लिस्ट द्वारा विनिमय-मूल्य एवं उत्पादन शक्ति के बीच किया गया अन्तर भी अधिक वैधानिक एवं तर्कसंगत नहीं है वस्तुतः ये दोनों विचार परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे पर आधारित हैं।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद भी यह स्वीकार्य है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में लिस्ट का स्थान महत्वपूर्ण है। यद्यपि उसके विचारों का जर्मनी पर तुरन्त प्रभाव नहीं पड़ा, तथापि शनैः शनैः उसके विचार अपना स्थान बनाते गए। केसर विलियम और हिटलर द्वारा अपनाई गई साम्राज्यवादी नीति

ιation which has already attained manufacturing super-
nly protect its own manufactures and merchants against
on and indolence by the free importation of means of
ɔe and raw materials, and by the competition of foreign
factured goods." —List : National system P. '53.

निश्चित रूप से लिस्ट के विचारों से प्रभावित थी। वस्तुतः जर्मनी के आर्थिक एवं राजनैतिक विकास का श्रेय भी लिस्ट की विचारधारा को है। लिस्ट ही वह प्रथम विचारक था जिसने जर्मनी में राष्ट्रीयता के बीज का रोपण किया तथा एकता को जन्म दिया। कैरे (Carey) तथा मिल (J. S. Mill) पर भी लिस्ट के विचारों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है तथा अमेरिकन रिपब्लिक पार्टी की आर्थिक प्रणाली भी लिस्ट के विचारों से प्रभावित है। लिस्ट ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने ऐतिहासिक तुलना का क्रमबद्ध प्रयोग अर्थशास्त्र में प्रदर्शन के एक साधन के रूप में किया। यद्यपि उसे इस प्रणाली का संस्थापक नहीं ठहराया जा सकता, तथापि वह ऐतिहासिक सम्प्रदाय का निर्माण करने वालों के वर्ग में समान स्थान अवश्य रखता है। इसके अतिरिक्त लिस्ट ने कुछ नवीन दृष्टिकोणों का भी अर्थशास्त्र में समावेश किया।

लिस्ट ही वह प्रथम विचारक है जिसने राष्ट्र के महत्व की स्थापना की और बताया कि व्यक्ति और संसार के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान राष्ट्र का है। लिस्ट के मतानुसार राष्ट्र नैतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संगठन है तथा व्यक्ति व राष्ट्र के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि राष्ट्र की समृद्धि से ही व्यक्ति की उन्नति होती है। लिस्ट के बाद से ही राष्ट्रीय समस्याओं ने महत्व ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त लिस्ट ने ही सर्वप्रथम राजनीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का स्पष्टीकरण किया और बताया कि व्यवहार में इन दोनों शास्त्रों को एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि आजकल ऐसा कौन व्यक्ति है जोकि आर्थिक समृद्धि पर राजनैतिक शक्ति के प्रभाव को मानने से इंकार कर दे। इसी कारण से लिस्ट ने सरकार को आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने का सुझाव दिया, ताकि एक राष्ट्र का धन उसकी भलाई के कार्यों में ही व्यय हो सके तथा उसका दुरुपयोग या अपव्यय न हो सके। एक सरकार को देश की राजनैतिक एकता बनाए रखने के साथ-साथ स्थानीय हितों को सामान्य हित का पूरक बनाकर, आंतरिक व्यापार की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाए रखकर, राष्ट्रीय आधार पर रेलों और नहरों का संगठन करके, केन्द्रीय बैंक के ऊपर देखभाल करके तथा व्यापारिक विधान समरूपी कोड के ध्येय द्वारा अपनी आर्थिक एकता कायम करे।"[1]

अन्त में, लिस्ट ने राष्ट्रीय विकास के स्थिर विचार को गतिशील बनाया। उसके द्वारा आर्थिक प्रगति की दशाओं का ध्यानपूर्ण निरीक्षण अन्तराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में उतना ही महत्वपूर्ण योगदान है जितना योगदान सिसमाण्डी ने राष्ट्रीय कल्याण के अध्ययन के लिए किया। लेकिन जहाँ सिसमाण्डी ने आर्थिक प्रगति में रुकावट की इच्छा प्रकट की है वहाँ लिस्ट ने इसको अनवरत रखने का समर्थन किया है तथा सरकार का यह कर्तव्य निर्धारित किया है कि वह देश की भावी समृद्धि

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 296.

की मात्रा के आधार पर निश्चित होता है अथवा भविष्य में होने वाले उत्पादन मे निहित होने वाले श्रम पर आधारित होता है। कैरे के शब्दों मे, "मूल्य किसी वांछित वस्तु को प्राप्त करने से पूर्व अपनाए गए दबाव का अनुमान है" (Value is the estimate of the resistance to be overcome before we can enter upon the possession of the thing desired.)। इस तरह कैरे का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को अपनी आवश्यकता-पूर्ति के हेतु प्रकृति से साधन जुटाने पड़ते हैं जिसमे उसे पर्याप्त शक्ति व्यय करनी पडती है तथा इस व्यय की गई शक्ति के अनुसार ही वस्तु का मूल्य कम या अधिक हुआ करता है। कैरे ने बताया कि प्रकृति का दबाव सभ्यता के विकास के साथ-साथ कम होता जाता है क्योंकि पूंजी की मात्रा बढ़ने पर प्रकृति का दबाव कम होता जाता है।

(ख) सामाजिक प्रगति एवं वितरण (Social Progress and Distribution):—कैरे का कथन है कि सामाजिक प्रगति के साथ-साथ उत्पादन का परिमाण बढ़ता जाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनों का पुरुष्कार भी बढ़ता जाता है अर्थात् सामाजिक प्रगति के साथ-साथ पूंजी की मात्रा बढ़ने के कारण लगान, ब्याज, मजदूरी और लाभ की मात्रा बढ़ती जाती है। इस प्रकार उत्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि होती जाती है जिसके फलस्वरूप उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार भी बढ़ता जाता है। परन्तु यहा उसने एक महत्वपूर्ण बात यह बताई कि इस प्रक्रिया मे पूंजी के पुरस्कार की अपेक्षा श्रम का पुरस्कार अधिक बढ़ता जाता है। अपने इस विचार को उसने एक तालिका द्वारा भी व्यक्त किया है :—[1]

	कुल उत्पादन (Total Product)	पूंजी का हिस्सा (Capital's Share)	श्रम का हिस्सा (Labour's Share)
प्रथम भूमि	१००	८०	२०
द्वितीय भूमि	२००	१२०	८०
तृतीय भूमि	३००	१५०	१५०

प्रो० हैने के "शब्दों मे यह निष्कर्ष उसके मूल्य सिद्धान्त तथा उसकी आशावादिता पर आधारित है . श्रम की उत्पादकता बढ़ती है जिसके कारण वस्तुओं का उत्पादन करने के हेतु अपेक्षाकृत कम श्रम की आवश्यकता पड़ती है और इस तरह भूत या वर्तमान मे उत्पादो के लिये कम श्रम दिया जाएगा। इस तरह पूंजी की

1 "Illustrated by Prof. Haney : History of Economic thought, P. 320.

तुलना में व्यक्ति का मूल्य बढ़ जाता है।"[1]

(ग) लगान का सिद्धान्त (Theory of Rent)—कैरे ने रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान सिद्धान्त के ऐतिहासिक आधार का खण्डन किया है। रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त में बताया था कि मनुष्य ने सर्वप्रथम उत्तम किस्म की उर्वरा भूमि पर खेती की तथा जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्न की माँग बढ़ने पर अपेक्षाकृत कम उर्वरा भूमि पर खेती करनी आरम्भ की। परन्तु कैरे ने रिकार्डों के इस आधार की आलोचना करते हुए बताया कि सर्वाधिक उर्वरा भूमि पहिले से ही घने जंगलों एवं घास-फूस से आच्छादित रहती है। अतएव मनुष्य ने सर्वप्रथम सबसे घटिया किस्म की बलुअर भूमि पर खेती करना शुरू किया होगा क्योंकि इस भूमि पर खेती करना सहज होता है तथा इस भूमि पर खेती करने के हेतु श्रम एवं पूंजी की भी कम आवश्यकता होती है। कैरे ने बताया कि जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ खाद्यान्न की माँग बढ़ने पर मनुष्य ने अधिक उर्वरा भूमि (जो कि पहिले से ही घास-फूस से आच्छादित थी उसे साफ करके) खेती करना प्रारम्भ किया। प्रो० हेने के शब्दों में, 'कैरे ने इस मत का प्रतिपादन किया कि अनुभव यह बताता है कि सर्व प्रथम मनुष्यों ने सर्वाधिक घटिया किस्म की भूमि पर खेती करना शुरू किया क्योंकि इस भूमि पर खेती करना सरल होता है। मनुष्यों ने पहाड़ियों पर खेती करा शुरू किया तथा जब घटिया किस्म की भूमि का शोषण हो चुका तथा जनसंख्या और ज्ञान की वृद्धि हुई तो उन्होंने शनैः शनैः नदियों की घाटियों में खेती करनी आरम्भ कर दी। इस तरह अन्त में सर्वाधिक उर्वरा भूमि पर खेती की गई। श्रम निरन्तर अधिक उत्पादक होता जाता है, धन की वृद्धि होती है तथा मनुष्य की प्रगति होती है।"[2] इस विचार का प्रतिपादन करके कैरे ने रिकार्डो के सिद्धान्त का विरोध

---

1 "This conclusion rests upon his theory of value and his optimism : labour increases in productiveness, less labour is required to produce things and so less labour will be given for products of past or present. Accordingly the value of man rises as compared with capital." —Haney. Ibid, P. 320-21.

2 "Carey maintains that experlence shows that at first men take up poor soils, because they are light and sandly and easer to cultivate. Men begin to culivate the hills and when the poorest land is exhausted and numbers and knowledge have increased, they work down towards the rivers and make use of the rich valleys. The last settlers, therefore, recive the best land. Labour becomes continually more productive, wealth increses, and men progresses."

—Prof. Haney : Ibid, P. 322.

किया। प्रो० हेने के मतानुसार कैरे ने रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त को समझने मे गलती की क्योकि उसने यह कारण खोजने का प्रयास नही किया कि मनुष्यों ने ऐसा क्यो किया ? वस्तुतः मनुष्यों ने अपनी सुरक्षा और बीमारियो से बचने के हेतु ही ऐसा किया होगा। व्यावहार मे ऐसा कौन कृषक हो सकता है जोकि अच्छी से अच्छी भूमि की छाँट का अवसर प्राप्त होने पर भी ऐसी भूमि को ही खेती के लिए छाँटेगा जिस पर उसे कम से कम बदले मे उत्पादन प्राप्त होगा। फिर भी यह स्वीकार्य है कि कैरे के इस मत के प्रतिपादन से रिकार्डो के लगान सिद्धान्त मे निहित दोषों का निवारण हो गया।[1]

(घ) जनसख्या का सिद्धान्त (Theory of Population)—माल्थस ने अपने जनसख्या-सिद्धान्त मे बताया था कि यदि कोई अवरोध प्रस्तुत न किया जाए तो जनसख्या ज्यामितीय क्रम (Geometrical Ratio) मे बढती है तथा खाद्य-सामग्री समानान्तर क्रम (Arithmetical Ratio) मे बढ़ती है और इस तरह एक समय वह आ जाता है जबकि जनसख्या की माँग की पूर्ति के हेतु खाद्य-सामग्री अपर्याप्त रह जाती है। इस भयानक दशा से बचने के हेतु माल्थस ने प्रतिबन्धक रुकावटों (Preventive Checks) को अपनाने का सुझाव दिया था। हेनरी चार्ल्स कैरे ने माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा कि माल्थस द्वारा प्रतिपादित जनसख्या-सिद्धान्त ईश्वरीय गुणो के विरुद्ध है क्योकि ईश्वर ने मनुष्य जाति को समृद्धिशाली बनने तथा पृथ्वी को सम्पन्न बनाने का आदेश दिया है[2]। कैरे ने ने बताया कि खेती करने से निम्न श्रेणी के कीटो की मृत्यु हो जाती है जिसके फलस्वरूप कार्बोनिक ऐसिड की कमी पड़ जाती है तथा इस कमी को पूरा करने के हेतु जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक है। इस तरह कैरे के मतानुसार माल्थस का जनसख्या सिद्धान्त प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। प्रो० हेने के शब्दों में, "भूमि पर खेती करने पर निम्न प्रजाति के जानवरो की मृत्यु हो जाती है तथा कार्बोनिक एसिड की पूर्ति की प्रवृत्ति घटने की हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि विश्व को कार्बोनिक एसिड से परिपूर्ण बनाने के हेतु मानव प्रजाति की वृद्धि भी उसी मात्रा में हो।"

कैरे ने बताया कि उत्पादन की मात्रा बढाने के हेतु भी जनसख्या की वृद्धि आवश्यक है क्योंकि इससे श्रम विभाजन अधिक सुगम हो जाता है। कैरे की दृष्टि

1 "Cary attacked Ricardo with so much force and ability that it compelled economists to go over again the whole ground of the theory of rent. The result has been a correction and amplification. This is Carey's service." —Haney : Ibid, P. 324.

2 "Be fruitful and multiply', said the Lord, 'and replenish the earth and subdue it." —Carey.

भूमि को उर्वर बनाए रखने के हेतु भूमि से उचित खाद्य का प्रयोग आवश्यक है क्योंकि यदि ऐसा नही किया जाएगा तो भूमि के वास्तविक लाभो की प्राप्ति किसी भी तरह सम्भव नही है।

सारांश रूप मे, यह कहा जा सकता है कि फ्रैड्रिक लिस्ट की तरह कैरे ने भी स्वतन्त्र व्यापार नीति का विरोध करके संरक्षणवाद का समर्थन किया। कैरे के आर्थिक विचारों का अमेरिका पर अच्छा प्रभाव पड़ा जिसके कारण उसे अमेरिकन सम्प्रदाय का प्रवर्तक (Founder of American School) कहा जाता है।

—: o :—

११

प्राउढन और सन् १८४८ का समाजवाद

(Proudhon and the Socialism of 1848)

प्राक्कथन—"सिसमाण्डी की अपेक्षा प्राउढन अधिक प्रसिद्ध है तथा सामाजिक विचारधारा पर उसका प्रभाव बहुत विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है। वह सिंडिकेलिसट एवं अराजकतावादी सिद्धान्तों के मुख्य प्रेरकों में से एक है। राजनैतिक सिद्धान्तविज्ञ के रूप में उसका कार्य एक अर्थशास्त्री के कार्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण रहा है और चूंकि वह अनेक विशेष अध्ययनों का विषय रहा है, इसलिए उसके सिद्धान्तों का संक्षिप्त दिग्दर्शन ही पर्याप्त होगा।"* वास्तव में "आर्थिक विचारधारा के इतिहास में प्राउढन के स्थान की व्याख्या सरलता से नहीं की जा सकती। सभी समाजवादियों की तरह वह सम्पत्ति के अधिकार की आलोचना से अपना कार्य प्रारम्भ करता है। प्राउढन ने सम्पत्ति के अधिकार को वर्तमान सामाजिक पद्धति का वास्तविक आधार बताया तथा हरएक अन्याय का वास्तविक कारण भी इसी को समझा। इस तरह उसने सम्पत्ति की आलोचना उन अर्थशास्त्रियों के विरोध में प्रारम्भ की जिन्होंने इसको सुरक्षा प्रदान की थी।"*

परन्तु वर्तमान सामाजिक प्रणाली में सुधार किस प्रकार किया जाए यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस सन्दर्भ में रोवर्ट ओवन(Robert Owen), सेन्ट साइमन

---

1 "Proudhon is better known than Sismondi and has had a vastly more important influence on socialist thought. He it one of the main inspires of syndicalist and anarchist doctrine, But his role as political theorist has been more importont than as economis, and because he has been the subject of many specialist studies a short summary of his theories will suffice."

—Eric Roll : History of Economic Thought, P. 240.

2 "Proudhon comes next, though his place in the history of economic doctrines is not easily defined. Like all socialists, he begins with a criticism of the rights of property. The economists had carefully avoided discussing them, and political economy had become a mere resume of the results of private property. Proudhon regarded these rights as the very basis of the present social system and the real cause of every injustice. Accordingly he start with a criticism of private property in opposition the economists who defended it." —Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 298.

(Saint-Simon), चार्ल्स फूरियर (Charles Fourier), कैबेट (Cabet) तथा लुई ब्लैंक (Louis Blanc) आदि अनेक समाजवादी विचारकों ने वर्तमान सामाजिक प्रणाली को सुधारने के हेतु उपाय बताये। प्राउढन ने इन सभी प्रयत्नों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वे सब उपाय समान रूप से अनुपयोगी थे। इस प्रकार प्राउढन समाजशास्त्रियों के साथ-साथ अर्थशास्त्रियों का भी कटु आलोचक बन गया। दूसरे लेखकों ने व्यक्तिगत सम्पत्ति से उत्पन्न समस्या का समाधान करने की दिशा में उत्पादन एवं वितरण की प्रचलित पद्धतियों को एकदम समाप्त करने का सुझाव दिया था, परन्तु प्राउढन ने इनमें केवल मात्र सुधार करने का सुझाव दिया। इस दृष्टि से प्राउढन की विचारधारा अर्थशास्त्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

प्राउढन द्वारा पूँजीवाद तथा दूसरे समाजवादी विचारकों के संबंध में की गई आलोचना का गुण समझने के हेतु तथा उसकी यथार्थ नीति एवं सिद्धान्त की जानकारी के हेतु उसकी जीवनी का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है। पियरी जोसेफ प्राउढन (Pierrie Joseph Proudhon) का जन्म फ्रांस में एक निम्न-मध्यम श्रेणी के परिवार में हुआ था। पारिवारिक निर्धनता के कारण उसे अल्पायु में ही जीविका कमाने को बाध्य होना पड़ा। सर्वप्रथम वह एक प्रेस में प्रूफरीडर बना और कुछ समय बाद उसने अपने धन से अलग प्रेस स्थापित कर ली। सख्त परिश्रम करते रहने के कारण उसे पुस्तकों के अध्ययन से विशेष प्रेम हो गया तथा ज्ञान के लिये उसकी आत्मिक पिपासा ने उसके निर्देशक का कार्य किया। अल्पावस्था से प्राउढन ने सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में विशेष रुचि ली। उसने स्वयं को एक आलोचक मस्तिष्क वाला प्रदर्शित किया जो कि स्वीकृत विचारों पर भी हमला करने से नहीं डरता था। ३१ वर्ष की आयु में उसने अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक "सम्पत्ति क्या है ?" (What is Property ?) प्रकाशित कराई। सन् १८४६ में उसने अपनी दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक "दुर्भाग्य का दर्शन" (Philosophy of Misery) प्रकाशित कराई। श्रमिक वर्गीय आन्दोलन से सम्पर्क रखने के कारण उसने सन् १८४८ के क्रांतिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और इसने उसके सिद्धान्त का आलोचनात्मक स्वरूप निर्धारित किया। अपनी प्रसिद्धि बढ़ने पर प्राउढन निम्न सदन का सदस्य चुन लिया गया जहां उसने अपनी विनिमय अधिकोषण (Exchange Bank) की योजना को प्रस्तुत किया जोकि लोकसभा द्वारा पारित न हो सकी। सन् १८४९ में उसने पीपुल्स बैंक (People's Bank) की स्थापना की लेकिन उसकी यह योजना भी फेल हो गई।

"प्राउढन की सम्पूर्ण विचारधारा के अन्तर्गत एक नैतिक विचार अर्थात् न्याय का विचार अन्तर्निहित है। उसने बार-बार न्याय को मानव जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त बताया है। लेकिन इस न्याय को प्राप्त कैसे किया जाए, इस संदर्भ में उसने अरस्तू की एक धारणा का प्रयोग किया है। न्याय समानता, साम्य आदि के

समान ही है। सामाजिक जीवन के अन्तर्गत स्वाभाविक रूप से अनेक अशोधनीय उलझनें निहित हैं। कैन्ट और हीगल के विचार प्राउढन के इस सिद्धान्त के प्रेरक रहे हैं कि मानवीय क्रियाओं में विरोधाभास एक आन्तरिक सिद्धान्त है। प्राउढन की खोज परिवर्तित सामाजिक संस्थाओं की राजनैतिक साधनों के लिए नहीं है वरन् उस सही विचार की खोज है जोकि यथार्थ रूप में विरोधाभासों और उलझनों का निराकरण कर सके। यह विचार विरोधी शक्तियों के एक साम्य के रूप में न्याय की एक धारणा है। समाज अपनी शक्तियों का पूर्णतम उपयोग केवल तभी कर सकता है जबकि इसको बनाने वाली शक्तियाँ साम्य की अवस्था में पहुँच जायें।"*

व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं समाजवाद की आलोचना (Criticism of Private Property and Socialism):—प्राउढन द्वारा रचित ग्रन्थ "सम्पत्ति क्या है" ? (What is Property) का संक्षिप्त निष्कर्ष यह है कि सम्पत्ति एक चोरी है (Property is theft)। प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या उसने सब तरह की सम्पत्ति को चोरी समझा। उसकी दृष्टि में व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की एक आवश्यक दशा है। चूंकि उसने इस मत को स्वीकार किया कि श्रम ही धन का एक मात्र स्रोत है और यही सम्पत्ति का निर्माणकर्ता है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने श्रम के फलों का उपभोग कर सके। उसका सम्पत्ति को बुरा समझने का अभिप्राय अनार्जित सम्पत्ति से था। उसका मत था कि लगान, ब्याज और लाभ का उन्मूलन करना चाहिए परन्तु सम्पत्ति को सुरक्षित रखना चाहिए।[1] हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राउढन ने यह बात स्वीकार नहीं की थी कि ब्याज लेना सदैव ग़ैर कानूनी है। वैस्टियाट की तरह उसने भी यह बात

---

1 "One moral idea underlines the whole of Proudhon's thought the idea of justice. Again and again Proudhon speaks of justiceas the supreme principle of human life. But how is justic to be achieved in society ? Here a.ı Aristotelian concept is used. Justice is the same as reciprocity, equality, equilibrium. Social life, nature itself even, contain irremovable contradictions. The antinomies of Kant, later the thesis-antithesis of Hegal are proudhons inspiration for the theory that contradiction is the eternal principle in human affairs. Having raised contradition to this exalted status, Proudhon's search for the political means of changing social institutions, but for the discovery of the right idea which would abolish contradictions in the abstract. That idea is the concept of justice as an equi- opposing forces. Society can only make the fullest use of its when these forces of which it is composed are in equili-

—Eric Roll, Ibid, P. 24-42

†, Eric Roll : History of Economic Thought, Page 242.

स्वीकार की है कि ब्याज लेना भूतकाल मे आवश्यक था परन्तु वर्तमान में इससे अवश्य छुटकारा मिलना चाहिए।

"हरएक समाजवादी की तरह प्राउढन ने भी केवल मात्र श्रम को ही उत्पादक समझा तथा भूमि और पूंजी को श्रम के बिना अनुपयोगी बताया। इसलिए सम्पत्ति स्वामी के द्वारा अपनी पूंजी के उपयोग के बदले में उत्पत्ति मे से एक अंश की मांग करना सर्वथा अन्यायपूर्ण है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि पूंजी स्वयं मे उत्पादक है, जबकि वास्तव में पूंजीपति जो कुछ प्राप्त करता है उसके बदले में वह कुछ भी नहीं देता।"[2] प्राउढन के विचार से यह सब चोरी है। उसकी सम्पत्ति की अपनी परिभाषा इस प्रकार है, "उद्योग अथवा अन्य के श्रम के फलों के उपभोग का अधिकार अथवा स्वेच्छानुसार उन फलों का अन्तरण दूसरों को करना" (The right to enjoy the fruits of industry, or of the labour of other or to dispose of those fruits to others by will)। प्राउढन का विचार था कि उत्पादन में से श्रमिक को भाग देने के बाद जो सूद, लगान और लाभ बचा रहता है वह वास्तव मे श्रमिक का ही भाग है। उसका मत है कि व्यक्ति अलग-अलग काम करके कम उत्पादन कर पाते हैं परन्तु जब वे एकत्रित होकर सामूहिक रूप से काम करते हैं तो वे अपेक्षाकृत कई गुना उत्पादन कर पाते हैं। इसी कारण पूंजीपति अधिकाधिक श्रमिकों को एकत्रित करके उनसे अधिक उत्पादन कराने में सफल हो जाता है परन्तु वह उन्हें मजदूरी के रूप मे उतना ही उत्पादन का भाग देता है जितना कि वे अकेले-अकेले करके प्राप्त कर लेते। इस तरह श्रमिकों को उनका भाग देने के बाद जो शेष रहता है अर्थात लाभ, वह शोषण का प्रतीक है।

प्राउढन का यह विचार भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि इस अतिरेक को जिसे उसने श्रम का अधिकार बताया है, व्यवसायक का अधिकार है। फिर भी उसके विचारों से यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि वह सूद, लगान और लाभ के पक्ष मे नही था। प्राउढन के मतानुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति मे केवल वही सम्पत्ति सम्मिलित की जा सकती है जिसे कि व्यक्ति ने स्वयं परिश्रम के द्वारा प्राप्त किया है। यहां एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति मे अन्तर्निहित शोषण को कैसे समाप्त किया जाए? प्राउढन ने विशेषकर लगान से सम्बन्धित अनेक सुझाव प्रस्तुत किए
का सुझाव नहीं दिया
करता है लेकिन वह

... that labour alone was productive. Land and capital without labour were useless. Hence the demand the proprietor for a share of the produce as a return for the service which his capital has yielded is radically false. It is based upon the supposition that capital by itself is productive, where as the capitalist is taking payment for it literally receives something for nothing." —*Gide & Rist, Ibid, P, 301.*

सम्पत्ति का विरोध नहीं करता। वह सम्पत्ति को आवश्यक दशा बताता है कि जिसके बिना समाज का पालन पोषण असम्भव है। वह चाहता था कि सम्पत्ति का प्रयोग समाज के हित में किया जाए न कि इसके द्वारा समाज के अन्य वर्गों का अहित किया जाए उसने सम्पत्ति के अधिकार का उन्मूलन नहीं किया वरन् उसे केवल अर्जित आय तक ही सीमित रखा। इस प्रकार उसने ब्याज, लगान और लाभ आदि अनार्जित आय का विरोध किया।

प्राउढन ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का जो इतना कड़ा विरोध किया उसका समाजवादियों ने बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। जिस समय प्राउढन व्यक्तिगत सम्पत्ति की आलोचना करता है तथा लगान ब्याज व लाभ को अनार्जित बताकर इन्हें शोषण का प्रतीक बताता है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह पूर्णरूपेण समाजवादी ही हो तथा इसी भ्रम में पड़कर कुछ विचारक उसे समाजवादियों की श्रेणी में रखते हैं। परन्तु वास्तव में उसने समाजवाद और समाजवादी विचारकों की कटु आलोचना की है, समाजवादियों की तरह प्राउढन व्यक्तिगत सम्पत्ति के अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहता वरन उसको सुरक्षित रखना चाहता है। समाजवाद की कटु आलोचना करते हुये प्राउढन लिखता है कि "समाजवाद कुछ भी नहीं है। यह न तो कभी कुछ रहा है और न कभी कुछ होगा" (Socialism is mere nothing. It never has been and never will be anything.) इसके अतिरिक्त प्राउढन श्रम-विभाजन, सामूहिक प्रयत्न, प्रतियोगिता, साख, सम्पत्ति तथा आर्थिक स्वतन्त्रता आदि विभिन्न आर्थिक शक्तियों के अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहता वरन वह तो इन्हें कायम रखना चाहता है तथा साथ-साथ इनके बीच उत्पन्न होने वाले संघर्ष को बचाना चाहता है। "श्रम का विभाजन, सामूहिक प्रयास, प्रतियोगिता, विनिमय, साख, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता आदि वास्तविक आर्थिक शक्तियां हैं अर्थात् धन की कच्ची सामग्री हैं जो कि मनुष्यों को एक दूसरे का दास बनाए बिना, उत्पादक को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करती है, उसके श्रम को हल्का करती है, वास्तविक [illegible] उसके उत्पादन को त्रिगुणित करती है जो कि व्यक्तिगत [illegible] पर आधारित नहीं है परन्तु जो कि मनुष्यों को अन्य [illegible] की अपेक्षा अधिक [illegible] में [illegible] रखती है।"

ये

त

व्यक्तिगत हित के स्वतन्त्र खेल की प्रतिस्थापना प्रेम के द्वारा चाहते हैं, परन्तु यह सब कुछ प्राउढन को संतुष्ट नहीं करता। प्राउढन समुदायों और संगठनों का इस आधार पर बहिष्कार करता है कि इनसे श्रमिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है। उसने बताया कि "श्रम की शक्ति सामूहिक प्रयत्न या श्रम के विभाजन का परिणाम है" (Labour's power is just the result of collective force and division of labour.)। प्राउढन ने स्वतन्त्रता को आर्थिक शक्ति मानते हुये बताया कि, "आर्थिक पूर्णता श्रमिकों की यथार्थ स्वतन्त्रता पर निर्भर है जिस प्रकार कि राजनैतिक पूर्णता नागरिकों की यथार्थ आजादी पर निर्भर करती है"

of the

indepen-

ता है कि,

"स्वतन्त्रता मेरी प्रणाली का पूर्ण योग है—विचार प्रकाशन की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता श्रम की स्वतन्त्रता, वाणिज्य की स्वतन्त्रता, अध्यापन की स्वतन्त्रता, उद्योग व श्रम के उत्पादकों का स्वतन्त्र अंतरण अर्थात् स्वतन्त्रता सब जगह और सदैव निश्चित और यथार्थ है" (Liberty in the sum total of my system—liberty of conscience, freedom of the Press, freedom of labour, of commerce, and of teaching, the free disposal of the products of lobour and industry—liberty, infinite, absolute, every where and for ever.)।

प्राउढन ओवन और फूरियर की योजनाओं द्वारा आयोजित सामाजिक इकाइयों से सहमत नहीं था। उसका विश्वास था कि ध्येय की प्राप्ति इन सामाजिक इकाइयों के निर्माण द्वारा सम्भव नहीं है वरन् इसके लिये धीरे-धीरे प्रयत्न करना होगा। इसीलिये वह अन्य सहयोगी समाजवादियों की तरह व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन करना नहीं चाहता है। लुई ब्लैंक की तरह वह सरकारी हस्तक्षेप का भी समर्थक नहीं था क्योंकि उसका यह विश्वास था कि सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन ही होता है, उसकी प्राप्ति नहीं होती। यही कारण है कि प्राउढन ने सरकार तथा सामूहिक स्वामित्व के अस्तित्व को नहीं माना है। प्राउढन ने साम्यवाद की आलोचना करते हुये लिखा है कि, "साम्यवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति का एक अधोमुखी स्वरूप है। साम्यवाद असमानताओं को जन्म देता है परन्तु सम्पत्ति की अपेक्षा भिन्न प्रकृति की विशेषताओं को ही सम्पत्ति शक्तिशाली के द्वारा शक्तिहीन का शोषण है, जबकि साम्यवाद शक्तिहीन के द्वारा शक्तिशाली का शोषण है" (Communism is merely an inverted form of private property. Communism gives rise to inequalities, but of a different character from those of property. Property is the exploitation of the weak by the strong, communism of the strong by the weak.) । प्राउढन

के विचार से व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण एक प्रकार की डकैती है। उसने बताया कि साम्यवाद दुर्भाग्य का धर्म है" (Communism is the religion of misery.) तथा "व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था और साम्यवाद के बीच जमीन-असमान का अन्तर है"(Between the institution of private property and communism there is a world of difference.)।

"इस प्रकार समाजवाद की आलोचना प्राउढन को अपनी निजी पद्धति के वास्तविक आधार को परिभाषित करने में मदद करती है...एक ओर सम्पत्ति से प्राप्त की गई अनार्जित आय का दबाव है—एक ऐसी आय जोकि रैसीप्रोसल सर्विस के सिद्धान्त के प्रत्यक्ष विरोध में है। दूसरी ओर सम्पत्ति की भी सुरक्षा की जानी चाहिये, कार्य की स्वतन्त्रता तथा विनिमय के अधिकार की सुरक्षा की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में, सम्पत्ति की संस्था या स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का उन्मूलन किये बिना ही सम्पत्ति के मौलिक गुण का उन्मूलन कर देना चाहिये।[1]

वास्तव में प्राउढन एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता था जोकि न्याय एवं स्वतन्त्रता पर आधारित हो। वह सभी वर्गों को समान समझता था और उनमें समानता की भावना पैदा करना चाहता था। उसका विचार था कि समानता केवल भ्रातृत्व की भावना को बनाये रखने के हेतु ही आवश्यक नहीं है वरन् न्याय की दृष्टि से भी आवश्यक है, लेकिन यह समानता ऐसी स्थिति में स्थापित नहीं हो सकती जबकि समाज में एक वर्ग सम्पत्ति से प्राप्त अनार्जित आय का ही अधिकारी हो। उसने बताया कि आर्थिक असमानता की अवस्था में मनुष्यों में पारस्परिक भ्रातृत्व एवं परस्पर सेवा करने की भावना जागृत नहीं हो सकती। इसीलिये उसने निजी सम्पत्ति को अनिवार्य दशा मानते हुये लगान, लाभ, ब्याज (अनार्जित आय) के उन्मूलन का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि समाज में हरएक व्यक्ति के पास निजी सम्पत्ति होनी चाहिये क्योंकि इस दशा में एक का दूसरा शोषण नहीं कर सकेगा तथा उनके अन्दर भ्रातृत्व की भावना का विकास होगा। इसीलिये प्राउढन छोटे-छोटे टुकड़ों को श्रमिकों के बीच वितरित करने का पक्षपाती था ताकि प्रत्येक के अधिकार में साम्य की स्थापना हो सके। जहां तक उसके राजनैतिक

---

1 "And so a criticism of socialism helps Proudhon to define the postive basis of his own system...On the one hand there is this suppression of the unearned income derived from property—a revenue which is in direct opposition to the principle of reciprocal service. On the other hand, property itself must be preserved, liberty of work and right of exhange must be secured. In other words, the fundamental attribute of property must be remoued without damaging the institution of Property itself or endangering the principle of Liberty."

—Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 307.

दृष्टिकोण का सम्बन्ध है वह राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने के विपक्ष मे है क्योंकि उसके विचार से हरएक प्रकार का राजनैतिक सगठन कुछ इस प्रकार के नियम बनाता है जिनसे श्रमिकों की स्वतन्त्रता मे बाधा उपस्थित होती है। इसीलिये वह साम्यवाद और समाजवाद की आलोचना करता है।

सन् १८४८ की समाजवादी क्रांति(Socialistic Revolution of 1848): सन् १८३० से लेकर १८४८ तक फ्रास में अनेक समाजवादी विचारक हुए जिनमे रोवर्ट ओवन (Robert Owen), चार्ल्स फूरियर (Charles Fourier), लुई ब्लैक (Louis Blanc) तथा सेन्ट साइमन (Saint Simon) आदि प्रमुख थे। इन समाजवादी विचारको ने अपने नवीन समाजवादी विचार और कार्यक्रम जनता के सम्मुख रक्खे। सैद्धान्तिक रूप में जनता इन सिद्धान्तो और कार्यक्रमों से बहुत प्रभावित हुई क्योंकि ये योजनाए बड़ी आकर्षक थी तथा जनहित की भावना से ओत-प्रोत थी, परन्तु व्यवहार मे ये योजनाए कहां तक सफल हो सकती थी इनसे जनता सर्वथा अनभिज्ञ थी। अतएव आवश्यकता इस बात की थी कि इन कार्यक्रमों को कार्यरूप में परिणित करके इनकी सत्यता की जाच की जाए। सन् १८४८ मे इसी प्रकार का एक अवसर समाजवादियों को प्रदान किया गया जिससे वे अपनी योजनाओं की व्यवहारिक सफलता का प्रदर्शन करें। सन् १८४८ मे फरवरी से लेकर जून तक एक क्रान्ति हुई जिसमें सभी समाजवादी सूत्रों को क्रियान्वित किया गया। इन योजनाओ के प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कोई भी काम असम्भव नहीं है तथा सभी समाजवादी सूत्र सफल हो जायेंगे, लेकिन इसके बाद शीघ्र ही योजनाओं की अल्पकालीन सफलता की सीमायें दृष्टिगत होने लगी एव समाजवादियों की निन्दा व आलोचना होनी भी प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार सन् १८४८ की क्रान्ति समाजवाद के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस समय के मध्यवर्गीय व्यक्ति समाजवाद के विषय मे सोचना-विचारना भी खतरे से खाली नही समझते थे और इस तरह समाजवाद का महत्व नष्टप्राय: हो चुका था। रेबोड (Reyboud) ने सन् १८५२ मे समाजवाद के विषय मे लिखते हुये कहा था कि आजकल समाजवाद के विषय में कुछ कहना मृत्यु का राग अलापना है। इसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। यदि मानव समाज समाजवाद का फिर से प्रयोग करेगा तो उसका कुछ भिन्न स्वरूप होगा।

कार्ल मार्क्स से पूर्व जितने भी समाजवादी हुए थे उनके हाथों में समाजवाद ने बहुत कम सफलता प्राप्त की थी। इसीलिए काल मार्क्स ने उत्तरकालिन समाजवादियो को काल्पनिक समाजवादी (Utopians) तथा उनके समाजवाद को कल्पना करने वालों का समाजवाद (Socialism of Utopians) कहकर पुकारा था। इस तरह मार्क्स ने काल्पनिक समाजवाद के विपरीत वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific socialism) का निर्माण किया। अब हम संक्षेप मे यह देखेंगे कि सन् १८४८ की क्रांति में समाजवादियों ने किन-किन सूत्रों को क्रियान्वित किया था।

इस समाजवादी क्रांति में प्रयुक्त सबसे पहला सूत्र (Formula) "काम करने का अधिकार" (The right to work) था जो कि मौलिक रूप में फूरियर (Fourier) का सूत्र था, जिसका विकास कन्सीडरेन्ट (Considerant) ने किया था और जो लुई ब्लैंक (Louis Blanc) और दूसरे समाजवादियों द्वारा भी अपनाया गया था। प्राउढन ने बताया कि फरवरी की क्रांति का प्रमुख सूत्र यही था कि "मुझे काम करने का अधिकार दो और मैं तुम्हें सम्पत्ति का अधिकार दूंगा" (Give me the right to work, and I will give you the right of property)। यही विचार युद्धोत्तरकालीन बेरोजगारी में "पूर्णरोजगार" (Full Employment) के नए सूत्र के रूप में पुनरावृत हुआ था।

श्रमिकों का विचार था कि अस्थाई सरकार (Provisional Government) का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह इस सूत्र को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करे इसी उद्देश्य से २५ फरवरी को पेरिस के श्रमिकों का एक छोटा समूह होटल डी विले (Hotal de Ville) आया तथा सरकार से अपने अधिकारों की मांग करने लगा परन्तु सरकार ने शीघ्र ही उस मांग को स्वीकार कर लिया। इसके बाद एक राजाज्ञा (Decree) घोषित की गई कि, "फ्रेंच रिपब्लिक की अस्थाई सरकार प्रत्येक श्रमिक का उसके श्रम द्वारा अस्तित्व की गारन्टी करती है। यह पुनः सब नागरिकों को काम करने की गारन्टी देती है।" दूसरे दिन एक दूसरी राजाज्ञा घोषित की गई जिसके अनुसार राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना करने का निश्चय नए सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप देने के हेतु किया गया। इन कारखानों में प्रवेश पाने के हेतु पेरिस की किसी नगरपालिका के कार्यालय में नाम लिखाने की शर्त रखी गई।

सन् १८४१ में लुई ब्लैंक (Louis Blanc) ने अपने प्रमुख ग्रन्थ "श्रम का संगठन" (Organization of Labour) में सामाजिक कारखानों (Social worksaops) को स्थापित करने की मांग की। जैसा की हम पहले वर्णन कर चुके हैं सामाजिक कारखानों में सहकारी आधार पर उत्पादन होना था जबकि राष्ट्रीय कारखाने निष्क्रियों को रोजगार देने के लिए होते। सन् १७९० और १८३० के दौरान में "चैरिटी वर्क्सशॉप्स" के नाम से इस प्रकार की अनेक संस्थाएं स्थापित की गई। इन संस्थाओं को स्थापित करने वाला फ्रांसीसी सरकार का सार्वजनिक कार्य का मंत्री मैरी (Marie) था। अप्रैल तक इस कारखानों में काम करने वालों संख्या ९९,४०० तक हो गई। कुछ दिनों तक तो इन व्यक्तियों को काम मिलता वाद में इनको काम मिलना कठिन हो गया। चूंकि राष्ट्रीय कारखानों की लुई ब्लैंक के विचार के आधार पर की गई थी इसलिए इन ों के विफल हो जाने पर सर्वत्र लुई ब्लैंक की निन्दा की जाने लगी। परन्तु पूर्वक देखा जाए तो इन कारखानों की असफलता के लिए लुई ब्लैंक

की विचारधारा उत्तरदाई नही थी क्योकि एक तो लुई ब्लैंक के सामाजिक कारखानों और इस युग के राष्ट्रीय कारखानों मे जमीन-ग्रासमान का अन्तर था। लुई ब्लैंक के सामाजिक कारखानों का उद्देश्य श्रमिकों में सहयोग की भावना जागृत करके मिल-कर उत्पादन करना था, जबकि राष्ट्रीय कारखानों का उद्देश्य केवल निष्क्रिय व्यक्तियों को काम देना था — उनमें किसी प्रकार की भावना जागृत करना नहीं। दूसरे इन कारखानों को लुई ब्लैंक के द्वारा सगठित न किया जाकर मैरी के द्वारा संगठित किया गया था। तीसरे इन कारखानों का प्रबन्ध ऐमिल थॉमस (Emile Thomas) के हाथ में था जोकि इस प्रकार के सगठनों का कट्टर विरोधी था जिसके कारण उसने इन संगठनों को विफल सिद्ध करने मे कोई कसर बाकी नहीं छोडी। अंत में क्रांति के युग की अस्थाई सरकार की जल्दबाजी भी इन कारखानों की विफलता के हेतु उत्तरदाई थी। फिर इस दौरान मे क्राति के कारण बेकार व्यक्तियों की संख्या में भी अधिक वृद्धि हो गई थी जिसके कारण उन सबको काम मिलना बहुत कठिन हो गया था।

अतएव इन राष्ट्रीय कारखानो के विफल हो जाने के बाद २१ जून १८४८ को एक राजाज्ञा घोषित की गई कि देश के समस्त १७ से लेकर २५ वर्ष तक के बेकार व्यक्ति या तो सेना मे भरती हो जाएं अथवा नगर छोडकर देहात चले जायें जहाँ कि खुदाई का काम शेष है। इन दोनो ही प्रस्तावों को नागरिकों ने ठुकरा दिया तथा २३ जून को उन्होने सरकार के विरुद्ध क्रांति कर दी। तीन दिन के भीतर इस क्राति को बड़ी कठिनाई से दबाया गया जिसमे सैकड़ो श्रमिक मृत्यु को प्राप्त हुए तथा सम्पूर्ण देश मे एक घातक सा छा गया। इन सबके लिए लुई ब्लैंक को उत्तरदाई समझा गया और उसे देश से निष्काषित कर दिया गया। सागरा रूप में, "समाजवादी निस्तेज हो चुके थे। लुईब्लैंक को देश से निकाल दिया गया, कन्सीडरेन्ट ग्रस्वस्थ तथा प्राउढन को अपने विरोधियो को चौकन्ना करने मे तथा मित्रो से समझौता करने मे भय लगता था।"[1] सन् १८४८ के संविधान की प्रस्तावना की ८ वी धारा मे यह व्यवस्था की गई कि "गणतन्त्र मैत्रिक सहयोग के साधन द्वारा अपने इच्छुक नागरिको की या तो उन्हे यथासम्भव काम देकर या उन व्यक्तियो को प्रत्यक्ष सहायता देकर जोकि काम करने के योग्य नहीं हैं तथा उनका कोई मददगार भी नहीं है, सहायता करेगा।"

"कार्य के अधिकार के सूत्र" के असफल हो जाने पर एक दूसरे सूत्र पर प्रयोग किया गया अर्थात "श्रम-सगठन" (Organization of Labour) के सूत्र का प्रयोग किया गया क्योंकि इस सूत्र को भी समाजवादियो द्वारा बड़ी प्रशंसा की गई थी। यद्यपि प्रारम्भ मे सरकार इस सूत्र को कार्यान्वित करना नही चाहती थी, परन्तु बहुत वाद-विवाद के बाद लुई ब्लैंक की अध्यक्षता मे एक श्रम-आयोग (Labour Commission) की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने काम के अनुसार श्रमिकों

को मजदूरी देने तथा उनके काम के घन्टे कम करने का सुझाव रखा। परन्तु व्यवहार में प्रथम सूत्र की तरह इस द्वितीय सूत्र को भी सफलता नहीं मिल सकी। अंत में क्रांति के युग में "श्रमिकों की सत्ता" (Workmen's Association) नामक एक अन्य सूत्र पर प्रयोग किया गया। वस्तुत प्राउढन के अतिरिक्त अन्य सभी समाजवादियों ने इस सूत्र को कार्य रूप में परिणित करने पर बल डाला था। २६ फरवरी को अस्थाई सरकार ने यह घोषणा की कि हरएक श्रमिक को काम करने के अधिकार को पाने के अतिरिक्त श्रमिकों के संगठन में सम्मिलित हो जाना चाहिए ताकि वे श्रम का पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। अतएव बुचेंज (Buchez) के नेतृत्व में सुनारों और जौहरियों की एक सभा बनाई गई तथा इसी प्रकार की एक सभा लुई ब्लैंक के नेतृत्व में दर्जियों, सूत कातने वालों तथा बेल बुनने वालों की बनाई गई। कुछ समय तक तो इन सभाओं को बहुत सा सरकारी काम मिलता रहा तथा राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने भी इन्हें बहुत सी साख प्रदान की लेकिन कुछ समय बाद इन संस्थाओं की साख-स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। इसका कारण यह था कि राष्ट्रीय सभा ने श्रमिकों की इन सभाओं को एक मंत्री के आधीन कर दिया था तथा एक काउन्सिल डी एन्करेजमेन्ट (Council de Encouragement) की नियुक्ति की गई जिसका कार्य इन श्रमिक सभाओं को ऋण देने की पूर्ति निर्धारित करना था। इसके बाद इस काउन्सिल ने इन सभाओं को ऋण देने की जो शर्तें निर्धारित की वे इन सभाओं को उधार लेने वालों के प्रतिकूल होने के कारण इन सभाओं को नामंजूर थीं। अतएव इन सभाओं को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा तथा इनकी साख स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। इन सभाओं के अतिरिक्त उपभोक्ताओं को सस्ती वस्तु प्रदान करने वाली सहकारी समितियां भी बन्द हो गई।

सारांश रूप में १८४८ की फ्रांसीसी क्रांति समाजवाद के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस दौरान में व्यक्तियों ने समाजवाद और समाजवादियों की कड़ी निन्दा की क्योंकि उनकी समस्त योजनाओं को कार्यन्वित किया गया परन्तु उनकी कोई भी योजना सफल सिद्ध न हो सकी। वस्तुतः यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो इन योजनाओं की विफलता का कारण उस समय की फ्रांस की राजनैतिक दशा तथा इन योजनाओं की कार्यन्वित करने वाले व्यक्तियों की जल्दबाजी थी। इसके अतिरिक्त बहुत सी योजनाओं को कार्यन्वित करने का भार ऐसे व्यक्तियों था जोकि इन योजनाओं के विरोधी थे और जिन्होंने इन योजनाओं को विफल करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। अतएव फूरियर, सेन्ट साइमन तथा ब्लैक आदि के काल्पनिक समाजवाद का अन्त हो गया तथा उसके स्थान पर ...क समाजवाद (Scientific Socialism) का जन्म हुआ जिसका संस्थापक ... मार्क्स (Karl Marks) था।

विनिमय बैंक सिद्धान्त (The Exchange Bank Theory)—सन् १८४८ की क्रान्ति ने प्राउढन को बिल्कुल असावधान नहीं रक्खा यद्यपि वह इस क्रान्ति को एकाएक उत्पन्न होने वाला आन्दोलन मानता था। बहुत शीघ्र ही वह इस नतीजे पर पहुँचा कि वास्तविक समस्या राजनैतिक न होकर आर्थिक है, लेकिन उसने यह भी स्वीकार किया कि जनसमूह की शिक्षा शांतिपूर्ण समाधान की खोज करने के हेतु अपर्याप्त है। इस क्रान्ति के सम्बन्ध मे प्राउढन ने लिखा, "मैं उस गरीब श्रमिक के ऊपर रो पड़ता हूं जिसकी दैनिक रोटी पर्याप्त रूप से अनिश्चित है और जोकि अब कई वर्षों से दुर्भाग्यता का सामना कर रहा है। मैंने उसकी सुरक्षा का भार ग्रहण कर लिया है परन्तु मैं पाता हूं कि उसको सुरक्षा प्रदान करने मे शक्तिहीन हूं। मैं मध्यवर्ग के ऊपर भी दु:खी हूँ जिसके शासन की मैंने इतनी साक्षी की है और जोकि श्रमिकों के विरुद्ध हो गया है। मेरी इस वर्ग के साथ व्यक्तिगत सहानुभूति है परन्तु उसके विचारों तथा परिस्थितियों ने मुझे विरोधी बना दिया है। यह क्रांति सामाजिक क्रांति में एक नई पृथकता का प्रारम्भ करती है जिसे कोई समझ नहीं सकता।"[1]

प्राउढन ने बताया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की यह प्रमुख बुराई है कि वह अपने स्वामी को विना कुछ परिश्रम किये ही आय प्राप्त करा देती है। आय प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है—द्रव्य पर ब्याज प्राप्त करना। अतएव यदि द्रव्य पर ब्याज समाप्त कर दिया जाए तथा श्रमिकों को विना ब्याज के पूंजी मिलने लगे तो समाज मे शोषण की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है। उसने बताया कि द्रव्य पर ब्याज प्राप्त करना एक ऐसी क्रिया है जिसमे द्रव्य का स्वामी बिना कुछ खोए ही द्रव्य को वार-वार बेचकर उससे आय प्राप्त कर लेता है। वह सम्पत्ति-स्वामी के इस अधिकार को समाप्त करना चाहता था तथा व्यक्तियों को ब्याज-रहित पूंजी की व्यवस्था करना चाहता था। इसके लिये उसने एक विनिमय बैंक स्थापित करने की एक योजना बनाई। इस बैंक का प्रमुख उद्देश्य समाज मे व्याप्त शोषण

1 "I have wept over the poor workman, whose daily bread is already sufficiently uncertain and who has now suffered misery for many years. I have undertaken his defence, but I find that I am *powerless to succour him* I have mourned over the bourgeois, whose ruin I have witnessed and who has been driven to bankruptcy and goaded to opposition to the proletrait. My personal inclination is to sympathize with the bourgeois, but a natural antagonism to his ideas and the play of circumstances have made me opponent. I have gone in mourning and paid penance for the spirit of the old Republic long before there were 'any signs of its offspring. This Revolution which was to *restore the public order merely marks the* begining of a new departure in social revolution which no one understands." —Proudhon

को समाप्त करना था। प्राउढन ने बताया कि द्रव्य विनिमय का माध्यम है और यदि सबके पास आवश्यकतानुसार धन हो और उन्हें धन के बदले में कुछ न देना पड़े तो हमारी समस्या का बहुत समाधान हो सकता है। उसके विचार से द्रव्य की तरह बैंक-साख पर भी कोई ब्याज नहीं लेना चाहिये क्योंकि साख भी विनिमय का साधन मात्र है। उसने बताया कि ब्याज रहित साख का निर्माण एक विनिमय बैंक (Exchange Bank) की स्थापना के द्वारा किया जा सकता है।

प्राउढन ने बिना पूंजी के ही विनिमय बैंक स्थापित करने की योजना बनाई ताकि उधारकर्त्ताओं को ब्याज का भार सहन न करना पड़े। उसने बताया कि इस (i) विनिमय बैंक का कार्य कागजी नोटों का निर्माण करना तथा वितरण करना होगा, (ii) इस बैंक द्वारा निर्गमित नोट सर्वग्राह्य होंगे, (iii) पूंजी की आवश्यकता के समय श्रमिक इस बैंक से रुक्का (Promissory Note) लिखकर मुद्रा ले सकेंगे, (iv) इन कागजी नोटों पर किसी तरह का ब्याज होने की व्यवस्था नहीं होगी, (v) श्रमिक द्वारा ली गई राशि के वापिस कर दिये जाने के साथ उसके द्वारा प्रदत्त रुक्का रद्द समझ लिया जायेगा। इस तरह श्रमिक का उत्पादन या व्यापारिक कार्य बिना ब्याज दिये ही पूर्ण हो जायेगा।

प्राउढन का विश्वास था कि इस प्रकार का विनिमय बैंक द्रव्य को चलन से बाहर कर देगा। ब्याज के समाप्त हो जाने पर शनैः शनैः अनुपार्जित आय भी समाप्त हो जायेगी। इन विचारों को ध्यान में रखते हुये सन् १८४९ में प्राउढन ने एक "जनता बैंक" (People's Bank) की स्थापना की लेकिन दुर्भाग्यवश उसका यह बैंक फेल हो गया। वस्तुतः उसकी विनिमय बैंक की योजना जितनी सरल एवं आकर्षक प्रतीत होती थी व्यवहार में उतनी ही जटिल एवं विकट सिद्ध हुई। उसकी विनिमय बैंक योजना में अनेक त्रुटियां निहित थीं। विनिमय बैंक द्वारा छापे गये विनिमय पत्र केवल एक सीमित क्षेत्र में ही चलन में रह सकते थे। दूसरे विनिमय बैंक के सदस्यों में मनमुटाव होने पर तथा आर्थिक संकट के समय दिवालिया होने की भी आशंका थी। लेकिन इन विनिमय-पत्रों के चलन की सफलता सदस्यों के दिवालिया न होने पर निर्भर थी। फिर प्राउढन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विनिमय बैंक में पर्याप्त अन्तर था। सिद्धान्त रूप में उसने बताया था कि उसका विनिमय बैंक ब्याज रहित पूंजी देने की व्यवस्था करेगा तथा इस बैंक का निर्माण अन्य बैंक्स या कम्पनियों की तरह पूंजी के आधार पर नहीं होगा, जबकि व्यवहार में उसके द्वारा स्थापित पीपुल्स बैंक में २% से लेकर ४% तक पूंजी पर ब्याज की व्यवस्था की गई तथा इस बैंक को प्रारम्भ करने के हेतु उसे १८ हजार फ्रैंक्स की पूंजी उधार लेनी पड़ी। इसके अतिरिक्त प्राउढन की यह धारणा दोषपूर्ण थी कि द्रव्य केवलमात्र विनिमय का माध्यम है क्योंकि विनिमय के माध्यम से भी अधिक द्रव्य का कार्य मूल्य-संचय का है जिसके बिना पूंजी का एकत्रीकरण

सम्भव नहीं है जिसके अभाव में उद्योग-धन्धों का विकास नहीं हो सकता। अन्त में उसने बताया था कि विनिमय बैंक पूंजी उधार लेने वालों की जमा की हुई वस्तुओं तथा उनके रुक्कों के आधार पर ही विनिमय पत्रों का निर्गमन करेगा और उन पर नियंत्रण रखेगा, जबकि व्यवहार में विनिमय-पत्रों के निर्गमन पर नियंत्रण रखना बहुत कठिन होता है तथा उनके अधिक मात्रा में निर्गमन हो जाने से वस्तुओं के मूल्यों में अधिक वृद्धि हो जाने तथा उपभोक्ताओं को आर्थिक संकट का सामना करने की सम्भावना बनी रहती है। इस तरह उसका विनिमय बैंक एक काल्पनिक योजना थी जिसको कार्यरूप में परिणित करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। पोपुलर बैंक के फेल हो जाने पर प्राउडन को अपने बैंक की त्रुटियां ज्ञात हो गई थीं और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस योजना के द्वारा सामाजिक बुराइयों को दूर करना एक कठिन कार्य है।

———

१२

परम्परावाद की पुनर्व्यंजना

(Re-Statement of Classicism)

प्राक्कथन—परम्परावादी विचारधारा का प्रारम्भिक विकास इंगलैंड और फ्रांस के विभिन्न विचारकों द्वारा हुआ था। एडम स्मिथ एवं रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित विचारों की अनेक विचारकों ने समालोचना की तथा उनमें संशोधन किया। इंगलैंड के विचारकों ने इन सिद्धान्तों में थोड़ा-बहुत ही संशोधन करना उचित समझा परन्तु समाजवादी आलोचकों ने इस विचारधारा की कटु आलोचना की। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की आलोचनाओं के बावजूद यह स्पष्ट हो गया कि परम्परावादी विचारधारा पर पुनः विचार किया जाए तथा इस सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्तों में यथोचित संशोधन किया जाए। परम्परावाद की पुनर्व्यंजना करने वाले अर्थशास्त्रियों में जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill), जे० बी० से (J. B. Say), एन० डब्लू० सीनियर (N. W. Senior) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं तीन विचारकों के आर्थिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

(१) जे० बी० से (Jean Baptiste Say)

उनमें निहित विषमताओं एवं त्रुटियों को दूर करने का उसने भरसक प्रयत्न किया। उसके प्रमुख आर्थिक विचारों का विवेचन हम निम्नोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :—

(क) अर्थशास्त्र की परिभाषा (Definitionof Economics)—एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र को धन का अध्ययन करने वाला विज्ञान (Economics is the science of wealth) बताया था। जे०बी० से ने स्मिथ द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा को स्वीकार करते हुये बताया कि अर्थशास्त्र केवल मात्र एक सैद्धान्तिक एवं वर्णनात्मक (Theoritical and Descriptive) विज्ञान है। उसने बताया कि अर्थशास्त्री का कार्य केवल मात्र आर्थिक तथ्यों का निरीक्षण करना (To Observe), विश्लेषण करना (To Analyge) तथा वर्णन करना (To Describe) करना है, उसका काम किसी प्रकार की सलाह देना (To Advice) नहीं है। इस तरह जे० बी० से ने अर्थशास्त्र को कला (Art) मानने से इंकार कर दिया तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्र को पूर्वापेक्षाकृत और भी सकीर्ण बना दिया। फ्रैंक नैफ के शब्दों में, "से के लिए राजनैतिक अर्थव्यवस्था किसी भी तरह एक व्यावहारिक कला नहीं है। विज्ञान के सिद्धान्त प्रकृति से निकाले गए हैं, उनकी स्थापना नहीं की गई अर्थात् उनकी खोज की गई है और उनका उल्लघन नहीं किया जा सकता।"[1]

(ख) उत्पादन सम्बन्धी विचार (Ideas relating to Productin)—जे० बी० से ने निर्बाधवादियों के मत का खण्डन करते हुए लिखा कि उत्पादन का अभिप्राय किसी वस्तु के निर्माण से नहीं है अपितु उत्पादन का अभिप्राय किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि से है। उसने बताया कि किसी वस्तु का निर्माण करना या नष्ट करना मानव शक्ति से बाहर की बात है : मनुष्य तो केवल मात्र किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि कर सकता है। अपने इसी विचार के कारण जे०बी० से ने रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित मूल्य के सिद्धान्त (Ricardian Theory of Valve) को अस्वीकार कर दिया तथा इसके स्थान पर उपयोगिता के आधार पर मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। एडम स्मिथ ने भूमि, श्रम और पूजी (Land, Labour and Capital) उत्पत्ति के केवल तीन ही साधन बताए थे तथा साहसी व पूंजीपति को एक ही व्यक्ति माना था। जे० बी० से ने स्मिथ के इस विचार का विरोध करते हुए बताया कि पूंजीपति और साहसी एक ही व्यक्ति नहीं होता वरन् ये दोनों उत्पत्ति के विभिन्न साधन है तथा दोनों के कार्य भी पृथक् पृथक् हैं। जहां एक ओर पूंजीपति का कार्य ब्याज के बदले में पूंजी जुटाने का है, वहां दूसरी ओर साहसी का कार्य उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को उत्पादन-कार्य के हेतु जुटाने तथा व्याव-

---

1 "For say. political economy is not at all practical art. The principles of the science are derived from nature-not established, therefore, but discovered and they may not be violated with impuinty." —J. B. Say.

सायिक लाभ-हानि को सहन करना है जो कि उसकी निजी योग्यता एवं बुद्धि पर निर्भर करती है। इस प्रकार स्मिथ द्वारा प्रतिपादित भूमि, श्रम और पूंजी उत्पत्ति के तीन साधनों में जे० बी० से ने साहस नामक चौथा साधन और जोड़ दिया।

(ग) धन सम्बन्धी विचार (Ideas relating to wealth) – एडम स्मिथ ने 'धन' की परिभाषा के अन्तर्गत केवल मात्र भौतिक वस्तुओं को ही सम्मिलित किया था। जे. बी. से ने स्मिथ के इस संकुचित विचार का विरोध करते हुए बताया कि धान की परिभाषा के अन्तर्गत भौतिक वस्तुओं (Material Goods) के साथ-साथ अभौतिक वस्तुओं (Immaterial Goods) को भी सम्मिलित करना चाहिए।

(घ) बाजार का सिद्धान्त (Principle of Market)— जे० बी० से ने बताया कि द्रव्य तो विनिमय का माध्यम (Medium of Exchahge) मात्र है तथा वास्तविक रूप में तो वस्तुओं का वस्तुओं से ही विनिमय होता है। उसने बताया कि विनिमय कार्य में बाधा तो उसी समय पैदा होती है जबकि एक वस्तु के बदले में वांछनीय वस्तु प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन एवं विनिमय के हेतु दूसरी वस्तु के उत्पादन एवं विनिमय की आवश्यकता होती है। जब किसी वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जाता है तब यदि किसी दूसरी वस्तु का भी उत्पादन बढ़ाया जाए तो अत्युत्पत्ति की स्थिति पैदा नहीं हो सकती। जे. बी. से के शब्दों में, "उत्पादन की सम्पूर्ण पूर्ति तथा उसकी सम्पूर्ण माँग आवश्यक रूप से बराबर होनी चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण मांग का अर्थ वस्तुओं के पूर्ण समूह से अधिक कुछ नहीं है जिनका उत्पादन किया गया है।"[1] आगे चलकर उसने बताया कि बाजार का विस्तार होने से वस्तुओं की माँग बढ़ती है जिसके कारण सभी व्यापारिक देशों को लाभ की प्राप्ति होती है। जे. बी. से का यह भी विश्वास था कि बाजार के क्षेत्र-विस्तार से भ्रातत्व की भावना का उदय होगा क्योंकि हरएक व्यक्ति या राष्ट्र को दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिसके कारण वे पारस्परिक हित-चिन्तन करते हैं। यह ...्य है कि जे. बी. से की दृष्टि में आयात किसी भी देश के लिए हानिकारक नहीं है क्योंकि जो देश किसी देश से वस्तुओं का आयात करता है वह निश्चय रूप से इसके बदले में स्वदेशी माल का निर्यात भी करेगा, इस तरह बाजार-सिद्धान्त पर जे. बी. से का इतना विश्वास था कि वह इसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व की नीति बदलने की कल... ा था (The theory of the markets will change the whole p... orld.)।

... otal supply of products and the total demand for them ...iry be equal, for the total demand is nothing but the ...f commodities which have been produced : a general ...ould consequently be an absurdity." —J. B. Say.

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि परम्परावादी अर्थशास्त्र के फ्रांसीसी समुदाय के मुख्य प्रवर्तक जे. बी. से का आर्थिक विचारों के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। रिकार्डो के मूल्य-सिद्धान्त का खण्डन सर्वप्रथम उसी ने किया तथा ऐसे अनेक विचार प्रतिपादित किए जिन्होंने आगामी अर्थशास्त्रियों के लिये निर्देशक का कार्य किया।

(२) एन० डब्ल्यू० सीनियर (Nassau William Senior)

सीनियर का जन्म सन् १७६० में इंगलैण्ड में हुआ था। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रिकार्डो (Ricardo) से लेकर जे० एस० मिल (J S. Mill) तक के बीच में केवल सीनियर ही एक मात्र परम्परावादी अर्थशास्त्री हुआ है जिसकी गणना कुशाग्र बुद्धि वालों में की जा सकती है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में सीनियर ने वकालात की परन्तु बाद में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजनैतिक अर्थशास्त्र के आचार्य पद पर इनकी नियुक्ति हो गई। इस विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करने से राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर सीनियर का पूर्ण अधिकार हो गया और इसी कारण उसने आर्थिक सिद्धान्तों का विश्लेषण एवं निरूपण सफलतापूर्वक किया है। सन् १८३६ में सीनियर ने अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के विज्ञान की रूप-रेखा" (An Out Line of the Science of Political Economy) प्रकाशित किया जो कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण देन है तथा इसमें वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर ही उसे परम्परावादी सम्प्रदाय का प्रमुख विचारक कहा गया है। सीनियर की विचारधारा पूर्वकालीन एवं समकालीन विचारों एवं परिस्थितियों से प्रभावित हुई थी।

सीनियर के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Senior)—सीनियर द्वारा प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्तों एवं विचारों का आलोचनात्मक विवेचन निम्नोक्त प्रकार है:—

(क) अर्थशास्त्र का क्षेत्र एवं अध्ययन प्रणाली (Scope and Method of Political Economy):—सीनियर के मतानुसार अर्थशास्त्र केवल मात्र एक विशुद्ध विज्ञान है जिसका एक मात्र कार्य आर्थिक क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाले आर्थिक सिद्धान्तों की व्याख्या करना तथा सत्य की खोज करना है। सीनियर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों में पाई जाने वाली सुझाव की प्रवृत्ति अर्थात् अर्थशास्त्र के कला-पक्ष को समाप्त करने के पक्ष में है और इस प्रकार वह अर्थशास्त्र को केवल मात्र "कारण और परिणाम" (Cause and Effect) का सम्बन्ध ज्ञात करने वाला विज्ञान ठहराता है। इस प्रकार सीनियर ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत संकुचित बना दिया है। जहाँ तक अर्थशास्त्र की अध्ययन-पद्धति का सम्बन्ध है, सीनियर ने निगमन प्रणाली (Deductive Method) को ही महत्ता प्रदान की है। उसका कथन है कि कुछ सर्वविदित सर्वमान्य सत्यों को चुनकर ही एक अर्थशास्त्री को तर्क द्वारा अपने निष्कर्षों का प्रतिपादन करना चाहिए। इस दशा में यदि ठीक एवं संगत तर्कों का

सहारा लिया गया तो उनसे निकाले गए निष्कर्ष भी सत्य एवं सर्वमान्य सिद्ध होंगे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सीनियर ने बताया कि निम्नोक्त चार सत्य ही अर्थशास्त्र के अध्ययन के आधार हैं:—

(i) प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव कम त्याग करके अतिरिक्त धन प्राप्त करने का इच्छुक होता है।[1]

(ii) श्रम तथा अन्य यन्त्रों की शक्ति, जोकि धन का उत्पादन करती है, उनके उत्पादों का उपयोग पुनः उत्पादन के साधन के रूप में करके, को निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है।[2]

(iii) जनसंख्या का सिद्धान्त परीक्षण पर आधारित है।

(iv) कृषि-व्यवसाय में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है।

यद्यपि सीनियर द्वारा बताए गए चारों सत्य विश्व व्यापी एवं सर्वमान्य नहीं हैं, तथापि उसके प्रयत्न से यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि उसने अर्थशास्त्र के क्षेत्र और उसकी अध्ययन प्रणाली को एक बड़ी सीमा तक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है।

(ख) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value):—सीनियर के पूर्ववर्ती परम्परावादी विचारकों के मूल्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में विनिमय-मूल्य (Value in Exchange) को महत्ता प्रदान करते हुए उत्पत्ति-लागत सिद्धान्त (Cost of production theory) या श्रम सिद्धान्त (Labour theory of Value) की स्थापना की थी। परन्तु सीनियर ने मूल्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में भिन्न विचारों का प्रदर्शन कराया। उसके मतानुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता तथा अभाव (Utility and Scarcity) पर निर्भर करता है। यह स्मरणीय है कि सीनियर ने उपयोगिता के पक्ष पर विशेष प्रकाश नहीं डाला क्योंकि उसके मतानुसार उपयोगिता बहुत सी अनेक बातों एवं दशाओं पर निर्भर करती है।

(ग) एकाधिकार का सिद्धान्त (Theory of Monopoly):—सीनियर द्वारा प्रतिपादित एकाधिकार का विचार अर्थशास्त्र के लिए एक महत्वपूर्ण देन है। उसने बताया कि एकाधिकार समान प्रतियोगिता (Equal Competition) की विलोम दशा है अर्थात जब प्रत्येक व्यक्ति को उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त करने की स्वतन्त्रता नहीं होती है तो इस दशा को एकाधिकारी अवस्था कहते हैं। सीनियर ने तीन प्रकार की एकाधिकारी अवस्था की कल्पना की—(i) अपूर्ण एकाधिकार

---

1 "Every man desires to obtain additional wealth with as little crifice as possible." —Senior.

2 "The powers of labour, and of other instruments which prouce wealth, may be indefinitely increased by using their products the means of further production." —N. W. Senior.

(Unexclusive Monopoly) मर्यादित अनेक सुविधाओं के कारण बड़े-बड़े उद्योग-पतियों की उत्पत्ति-लागत छोटे-छोटे उद्योगपतियों की उत्पत्ति लागत से कम होती है, (ii) पूर्ण एकाधिकार (Absolute Monopoly) अर्थात् किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक हो, (iii) भूमि का एकाधिकार (Monopoly of Land) अर्थात् जब भूमि पर कुछ ही व्यक्तियों का अधिकार हो। सीनियर की दृष्टि में भूमि पर मिलने वाला लगान भी एकाधिकार का लाभ ही है।

(घ) मजदूरी का सिद्धांत (Theory of wages)--सीनियर के मतानुसार किसी देश में मजदूरी का निर्धारण विदेशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले उद्योगों (निर्यात-उद्योगों) में प्रदान की जाने वाली मजदूरी के आधार पर होता है। चूंकि निर्यात उद्योगों में मजदूरी श्रम की किस्म पर आधारित होती है, इसलिए प्रत्येक देश में निर्यात-उद्योगों में प्रदत्त मजदूरी भिन्न होती है। आयातकर्ता देश में मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में सीनियर कहता है कि आयातकर्ता देश निश्चित रूप से अपने देश के श्रमिकों को अधिक मजदूरी प्रदान करेगा ताकि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी देश की तरह ही एक निर्धारित समयावधि में अधिक से अधिक उत्पादन कर सके। यह स्मरणीय है कि बाद में चलकर सीनियर का मजदूरी-सिद्धान्त "मजदूरी कोष सिद्धान्त" का ही एक अंग मात्र बनकर रह गया है। प्रो० एरिक रोल (*Eric Roll*) के शब्दों में, "उसका मजदूरी से सम्बन्धित व्यवहार बहुत कुछ अस्पष्ट सा है। उसने उत्पादन-लागत सिद्धान्त का विकास इस सम्भावना से नहीं किया क्योंकि इस संदर्भ में श्रम के मूल्य सिद्धान्त से विच्छेद कम प्रभावशाली प्रतीत होगा और उसने अपने मजदूरी के विश्लेषण से जनसंख्या को पूर्णतया पृथक रखा। सम्पूर्ण रूप में वह उत्पादकता-सिद्धांत की ओर से और लोग फील्ड के दृष्टिकोण के समरूप में झुका हुआ प्रतीत होता है लेकिन उसने इसके अतर्गत मजदूरी कोष सिद्धान्त की गणना की जोकि कुछ समय तक आर्थिक सिद्धान्त की एक कठिनमय विशेषता रहा। यह विचार कि मजदूरी का निर्धारण एक कोष के द्वारा होगा बिल्कुल नया नहीं था लेकिन इसका प्रयोग स्मिथ और रिकार्डो द्वारा भी किया गया था। सीनियर ने इस विचार की पूर्ण रूपेण अभिव्यक्ति की, कि औसत रूप में किसी वर्ष में श्रमिक द्वारा प्राप्य वास्तविक मजदूरी जनसंख्या के आकार तथा श्रमिक-जनसंख्या के निर्वाह के हेतु पृथक् रखी गई वस्तुओं की मात्रा के बीच का अनुपात होनी चाहिए। इसको सीनियर ने मजदूरी का वास्तविक कारण बताया, मजदूरी के लिए पृथक् रखे गए कोष का निर्धारण पुनः होना था। यद्यपि सीनियर इस समस्या की गहनता में नहीं गया, तथापि उसने समस्या के तत्वों की व्याख्या अवश्य की। इनमें प्रथम तत्व था, श्रम की उत्पादकता जिसके निधारकों का उसने कुछ सीमा तक विश्लेषण किया। दूसरा तत्व था श्रम व लाभ का सम्बन्ध। इस प्रकार सीनियर मजदूरी के सिद्धात को पूजी के सिद्धान्त पर निर्भर बना दिया।"[1]

1 Prof. Eric Roll : History of Economic Thought, P. 347.

सहारा लिया गया तो उनसे निकाले गए निष्कर्ष भी सत्य एवं सर्वमान्य सिद्ध होंगे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सीनियर ने बताया कि निम्नोक्त चार सत्य ही अर्थशास्त्र के अध्ययन के आधार हैं:—

(i) प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव कम त्याग करके अतिरिक्त धन प्राप्त करने का इच्छुक होता है।[1]

(ii) श्रम तथा अन्य यन्त्रों की शक्ति, जोकि धन का उत्पादन करती है, उनके उत्पादों का उपयोग पुनः उत्पादन के साधन के रूप में करके, को निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है।[2]

(iii) जनसंख्या का सिद्धान्त परीक्षण पर आधारित है।

(iv) कृषि-व्यवसाय में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है।

यद्यपि सीनियर द्वारा बताए गए चारों सत्य विश्व व्यापी एवं सर्वमान्य नहीं हैं, तथापि उसके प्रयत्न से यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि उसने अर्थशास्त्र के क्षेत्र और उसकी अध्ययन प्रणाली को एक बड़ी सीमा तक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है।

(ख) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value):—सीनियर के पूर्ववर्ती परम्परावादी विचारकों के मूल्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में विनिमय-मूल्य (Value in Exchange) को महत्ता प्रदान करते हुए उत्पत्ति-लागत सिद्धान्त (Cost of production theory) या श्रम सिद्धान्त (Labour theory of Value) की स्थापना की थी। परन्तु सीनियर ने मूल्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में भिन्न विचारों का प्रदर्शन कराया। उसके मतानुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता तथा अभाव (Utility and Scarcity) पर निर्भर करता है। यह स्मरणीय है कि सीनियर ने उपयोगिता के पक्ष पर विशेष प्रकाश नहीं डाला क्योंकि उसके मतानुसार उपयोगिता बहुत सी अनेक बातों एवं दशाओं पर निर्भर करती है।

(ग) एकाधिकार का सिद्धान्त (Theory of Monopoly):—सीनियर द्वारा प्रतिपादित एकाधिकार का विचार अर्थशास्त्र के लिए एक महत्वपूर्ण देन है। उसने बताया कि एकाधिकार समान प्रतियोगिता (Equal Competition) की विलोम दशा है अर्थात जब प्रत्येक व्यक्ति को उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होती है तो इस दशा को एकाधिकारी अवस्था कहते हैं। सीनियर ने तीन प्रकार की एकाधिकारी अवस्था की कल्पना की—(i) अपूर्ण एकाधिकार

---

1 "Every man desires to obtain additional wealth with as little sacrifice as possible."
—Senior.

2 "The powers of labour, and of other instruments which produce wealth, may be indefinitely increased by using their products as the means of further production."
—N. W. Senior.

अनुसार उत्पत्ति एवं वितरण करने की आर्थिक प्रक्रिया की प्रवृत्ति के विरोध के कारण विद्यमान होती है। इस तरह की दुर्गति सरकारी क्रिया का एक महत्वपूर्ण विषय है। यह केवल अधिकार ही नहीं वरन् सरकार का स्वाभिमान पूर्ण कर्तव्य था।"[12] सारांश रूप मे यह कहा जा सकता है कि सीनियर एक बुद्धिमान एवं दूरदर्शी अर्थशास्त्री था। उसमें आलोचना करने की शक्ति तो थी परन्तु उसमें क्रियात्मक अथवा सृजनात्मक शक्ति का सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि वह अपनी तर्कशीलता के द्वारा कई प्रचलित सिद्धांतो का खण्डन करने मे तो सफल हुआ है परन्तु किसी नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन नही कर सका। उसने लगान, मजदूरी, एकाधिकार एवं पूंजी आदि के सम्बन्ध मे दोषों को प्रदर्शित करते हुये सुन्दर सुझाव तो प्रस्तुत किये हैं परन्तु किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन नही किया है। इस अभाव के पश्चात् भी आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे सीनियर का महत्वपूर्ण स्थान है। उसने एक ओर पूंजी को उत्पत्ति के साधनों मे सम्मिलित कराने तथा लाभ के औचित्य को सिद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, वहीं दूसरी ओर उसने अर्थशास्त्र को अस्पष्ट एवं विशुद्ध स्वरूप प्रदान करने मे महान योगदान किया है। अतएव अनेक कमियों के बाद भी सीनियर एक महान विचारक था।

(३) जे० एस० मिल (John Stuart Mill)

जॉन स्टुअर्ट मिल विशुद्ध क्लासिकल अर्थशास्त्र तथा उदार दर्शन का एक बहुत बड़ा समर्थक था। लगभग आधी शताब्दी के राजनैतिक एवं आर्थिक वाद-विवादों को समाप्त करने का उसका कार्य परिवर्तित आर्थिक दशाओ द्वारा बनाये गये अपर्याप्त सिद्धान्तों की अनएकीकृत प्रक्रिया को पूर्ण बनाने के हेतु आवश्यक था। मिल की स्थिति के अनुमान दो प्रतिवादो की ओर प्रवृत्त होते हैं। विद्यार्थियों की अनेक संततियो के लिये उसके "सिद्धान्त" आर्थिक विचारधारा के अविवादास्पद बाइबिल थे। उन्होने क्लासिकल थ्योरी की अंतिम सिन्थेसिस का प्रतिनिधित्व किया तथा उत्तर-रिकारडियन लेखकों के द्वारा किये गये सुधारों का विवेचन किया। उसके विचार विस्तृत एवं क्रमबद्ध हैं तथा कुछ अपवादों को छोड़कर अपनी उत्पत्ति बिना कि वाद-विवाद के प्रदान करते हैं जो कि निश्चितता के अभाव को और मजबूत

'as not an uncompromising
estatements he limited the
...tional 'police' duties. But
he soon found—significantly as the result of dealing with social problems of the more backward economy of Ireland that distress might exist inspite of the tendency of the economic process to create an output and a distribution in accordance with the worker's own exertion and foresight. Such distress was properly a matter for government action. It was not only a right, but even the imperious duty of Government to alleviate it."

—Eric Roll, Ibid, P. 350.

अनुसार उत्पत्ति एवं वितरण करने की आर्थिक प्रक्रिया की प्रवृत्ति के विरोध के कारण विद्यमान होती है। इस तरह की दुर्गति सरकारी क्रिया का एक महत्वपूर्ण विषय है। यह केवल अधिकार ही नहीं वरन् सरकार का स्वाभिमान पूर्ण कर्तव्य था।"[1] सारांश रूप मे यह कहा जा सकता है कि सीनियर एक बुद्धिमान एवं दूरदर्शी अर्थशास्त्री था। उसमें आलोचना करने की शक्ति तो थी परन्तु उसमें क्रियात्मक अथवा सृजनात्मक शक्ति का सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि वह अपनी तर्कशीलता के द्वारा कई प्रचलित सिद्धांतों का खण्डन करने मे तो सफल हुआ है परन्तु किसी नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं कर सका। उसने लगान, मजदूरी, एकाधिकार एवं पूंजी आदि के सम्बन्ध में दोषों को प्रदर्शित करते हुये सुन्दर सुझाव तो प्रस्तुत किये हैं परन्तु किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है। इस अभाव के पश्चात् भी आर्थिक विचारधारा के इतिहास में सीनियर का महत्वपूर्ण स्थान है। उसने एक ओर पूंजी को उत्पत्ति के साधनों मे सम्मिलित कराने तथा लाभ के औचित्य को सिद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, वहीं दूसरी ओर उसने अर्थशास्त्र की अस्पष्ट एवं विशुद्ध स्वरूप प्रदान करने में महान योगदान किया है। अतएव अनेक कमियों के बाद भी सीनियर एक महान विचारक था।

(३) जे० एस० मिल (John Stuart Mill)

जॉन स्टुअर्ट मिल विशुद्ध क्लासिकल अर्थशास्त्र तथा उदार दर्शन का एक बहुत बड़ा समर्थक था। लगभग आधी शताब्दी के राजनैतिक एव आर्थिक वाद-विवादों को समाप्त करने का उसका कार्य परिवर्तित आर्थिक दशाओं द्वारा बनाये गये अपर्याप्त सिद्धान्तो की अनएकीकृत प्रक्रिया को पूर्ण बनाने के हेतु आवश्यक था। मिल की स्थिति के अनुमान दो प्रतिवादों की ओर प्रवृत्त होते हैं। विद्यार्थियों की अनेक संततियों के लिये उसके "सिद्धान्त" आर्थिक विचारधारा के अविवादास्पद बाइबिल थे। उन्होंने क्लासिकल थ्योरी की अतिम सिन्थेसिस का प्रतिनिधित्व किया तथा उत्तर-रिकार्डियन लेखकों के द्वारा किये गये सुधारों का विवेचन किया। उसके विचार विस्तृत एवं क्रमबद्ध हैं तथा कुछ अपवादों को छोड़कर अपनी उत्पत्ति बिना कि वाद-विवाद के प्रदान करते हैं जो कि निश्चितता के प्रभाव को और मजबूत

1 "It has been shown that Senior was not an uncompromising advocate of laissez faire. In his earliest estatements he limited the sphere of government action to the *traditional 'police' duties. But* he soon found—significantly as the result of dealing with social problems of the more backward economy of Ireland that distress might exist inspite of the tendency of the economic process to create an output and a distribution in accordance with the worker's own *exertion and foresight. Such* distress was properly a matter for government action. It was not only a right, but even the imperious duty of Government to alleviate it,"

—Eric Roll, Ibid,

महानुभावों का प्रभाव पड़ा था जिसके कारण एक ओर उस पर परम्परावादी प्रभाव दिखाई देता है तो दूसरी ओर समकालीन एवं समाजवादी प्रभाव भी परिलक्षित होता है अर्थात् मिल के आर्थिक विचार परम्परावादी-समाजवादी दोनों प्रकार के हैं। इसी कारण मिल को परम्परावादी विचारों एवं समाजवादी विचारों को जोड़ने वाली कड़ी कहा गया है। स्कॉट (Scott) के शब्दों में, "मिल का राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त पूर्वोपर किए गए कार्य को विस्तृत एवं समाप्त करते हुए तथा भविष्य के नवीन विकास के हेतु मार्ग खोलते हुए, पूर्णतया एक संक्रमणकारी कार्य था।"[1] प्रो० जीड एन्डरिस्ट के शब्दों में, "उसके साथ क्लासिकल अर्थशास्त्र को कुछ दशाओं में पूर्णता प्राप्त भी कहा जा सकता है तथा कुछ दशाओं में पतन का प्रारम्भ भी कहा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी का मध्याह्न, पर्वतीय चोटी का संकेतक है जिसने उसके व्यक्तित्व को इतना आकर्षक बना दिया है वह है उसका नाटकीय विवेचन तथा चेतना जिसको उसने दो सम्प्रदायों या दो विषयों के बीच नियत किया। कुछ विचारकों के लिए वह उपयोगितावादी सम्प्रदाय से सम्बद्ध था, जबकि कुछ अन्य विचारकों के मतानुसार वह सेन्ट साइमन और ऑगस्ट काम्टे की विचारधारा के सम्पर्क में था। अपने जीवन के पूर्वार्द्ध तक वह एक व्यक्तिवादी दिखाई देता है लेकिन उत्तरार्द्ध में वह समाजवादी बन गया, यद्यपि उसने स्वतन्त्रता में अपना विश्वास वैसा ही रखा। उसके लेख विरोधाभासों, पूर्ण परिवर्तनों आदि से परिपूर्ण हैं। मिल की पुस्तक क्लासिकल सिद्धान्तों को विकसित रूप में प्रदर्शित करती हैं, परन्तु इसमें ये सिद्धान्त नई विचारधारा की ओर उन्मुख दिखाई भी पड़ते हैं।"[2] मिल के शब्दों में, "यदि साम्यवाद इसके सभी

1 'Mill's Principles of Political Economy was preeminently a transitional work samming up and expounding what had been done before and opening the way for the new development of the future."
—Scott.

2 "With him classical economics may be said in someway to [illegible] The [illegible] What [illegible] rance [illegible] even [illegible] which [illegible] d; the [illegible] y outlined by Saint Simon and Auguste Comte. During the first half of his life he was a stern individualist; but the second found him inclined to socialism, though he still remained his faith in liberty. His writings are full of contradictions, of sudden, complete changes, such as the well known volteface on the wages question. Mill's book exhibits the classical doctrines in their final crystalline form, but already they were showing signs of dissolving in the new current."
—Gide & Dist : History of Economic Doctrines, P. 357-58.

ment a necessary one, and no one can foresee the time when it will be indispensable to progress)। उसने यह भी स्वीकार किया कि सहकारिता सर्वोत्तम आदर्श है (Cooperation is the noblest ideal) और यह मानवीय जीवन को विरोधी हितों में [illegible] वर्गों के [illegible] वाली [illegible] पूर्ण दशा में परिवर्तित कर देता है (It transforms human life from a conflict of classes struggling for opposite interests to a rivalry rivalry in the pursuit of a good Common to all) अतः हम मिल के आर्थिक विचारों को निम्नोक्त तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) मिल के परम्परावादी विचार (Mill's Classical Doctrives)

(ख) मिल के परम्परावादी विरोधी विचार (Mill's Anti-Classical Doctrines);

(ग) मिल के समाजवादी विचार (Mill's Socialistic Doctrives)।

(क) मिल के परम्परावादी विचार—सन् १८४८ तक जब कि मिल की प्रसिद्ध पुस्तक "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त" (Principles of Political Economy) का प्रकाशन हुआ, मिल को पूर्णरूपेण परम्परावादी विचारों का समर्थक पाते हैं। इस पुस्तक के अन्तर्गत उसने परम्परावाद के विरुद्ध की गई आलोचनाओं का खण्डन करके तथा सिद्धान्तों के दोषों को सुधार कर उन्हें पूर्ण एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। मिल द्वारा स्वीकृत एवं संशोधित प्रमुख परम्परावादी विचार निम्नोक्त हैं :—

(i) स्वहित का सिद्धान्त (The Law of Self-interest)—इस नियम को [illegible] सिद्धान्त (Hedonistic Principle) का भी नाम दिया जाता है।

जिसका उपयोग क्लासिकल सम्प्रदाय द्वारा नहीं किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार हरएक व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है तथा इसी भावना से प्रभावित होकर वह आर्थिक कार्य करता है। इस तरह यह एक मनोवैज्ञानिक नियम है जिसके अनुसार हरएक व्यक्ति कम से कम परिश्रम करके अथवा न्यूनतम त्याग द्वारा अधिकतम संतुष्टि या लाभ प्राप्त करना चाहता है। इस मौलिक सिद्धान्त के गुण के कारण ही क्लासिकल सम्प्रदाय को व्यक्तिवादी सम्प्रदाय (Individualist School) माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार परम्परावादियों की यह धारणा थी कि वह अपने हित के साथ-साथ समाज का भी हित करता है। विभिन्न आलोचकों ने इस स्वहित के नियम की आलोचना करते हुए बताया था कि यह नियम समाज में स्वार्थपरता को जन्म देने वाला है जो कि सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से सर्वथा हानिकारक है। आलोचकों ने बताया कि व्यक्ति और समाज के हित परस्पर विरोधी हैं। अतएव यदि समाज का कल्याण करना है तो व्यक्तियों को अपने निजी हितों का बलिदान करना पड़ेगा। परन्तु मिल ने आलोचकों के इस विरोध का उत्तर देते हुए कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपना हित करता है तो इसका *अभिप्राय: यह नहीं कि वह दूसरों का अहित कर रहा है।*[1] व्यक्तिवाद किसी भी तरह सहानुभूति को पृथक् नहीं करता तथा एक सामान्य व्यक्ति इसे कृतज्ञता का साधन समझता है जबकि वह दूसरों को खुशी प्रदान कर सकता है।

रिकार्डो (Ricardo) और माल्थस (Malthus) का तो ऐसा विश्वास था कि व्यक्तिवाद किसी तरह एक दूसरे के हित का बलिदान नहीं मांगता, परन्तु मिल ने बताया कि सम्पूर्ण त्याग द्वारा दूसरों का हित चिन्तन भी न्याय संगत नहीं है।[2] मिल ने बताया कि धन का वितरण संघर्ष को जन्म देता है। परन्तु उसने यह भी बताया कि यदि व्यक्तिवाद एवं स्वतन्त्रतावाद को भली भांति समझ लिया जाए तो संघर्ष उत्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिए वह चाहता है कि व्यक्तियों को एक सीमा तक ही अपना हित-चिन्तन करना चाहिए और यदि समाज के सभी सदस्य इस नीति को अपनायेंगे तो किसी प्रकार के संघर्ष की उत्पत्ति नहीं होगी।[3]

---

1 "In the golden rule of Jesus of Nazareth we read the complete spirt of the ethics of utility. To do as you would be done by and to love your neighbour as yourself continue the ideal perfection of utilitarian morality." —*J. S. Mill.*

2 "It is only a very imperfect state of the world's arrangements that any one can best serve the happiness of others by the absolute socrifice of his own," —J. S. Mill.

3 "Eduction and opinion will so use that power as to establish in the mind of every individual an indissoluble association between the happiness and the good of the whole." —J. S. Mill.

विचारकों ने भी इस नियम से बहुत कम विरोध प्रकट किया है। इस नियम के अनुसार जनसंख्या की अपेक्षा खाद्य-सामग्री बहुत मन्द गति से बढती है। समाजवादी विचारको ने इस नियम का खण्डन करते हुये बताया कि वैज्ञानिक युग मे खाद्य-सामग्री जनसख्या की अपेक्षा तेजी से बढ़ती है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने जनसख्या के सिद्धान्त को अधिक क्रियात्मक रूप प्रदान किया। समाजवादियो की आलोचना का उत्तर देते हुए मालथस ने कहा कि "यह कहना मिथ्यापूर्ण है कि मानव जाति की अभिवृद्धि के साथ-साथ सभी मुख अपने साथ हाथ लेकर भी पैदा होते हैं। नये मुखों को पुरानों के बराबर ही भोजन की आवश्यकता होती है लेकिन वे हाथ उतना अधिक उत्पादन नही कर पाते "।[1] जनसख्या के सिद्धान्त को अधिक व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करने के हेतु मिल ने माल्थस द्वारा प्रतिपादित विचारो मे भी परिवर्तन कर दिया है। उसने निर्धन व्यक्तियों को अविवाहित रहने तथा स्त्रियो को पूर्ण आजादी और समानता का अधिकार प्रदान करके बढ़ती हुई जनसख्या को रोकने की सिफारिश की है। मिल के मतानुसार अत्यधिक जनसख्या राष्ट्र की समृद्धि में बाधक है तथा राष्ट्र का उत्थान तभी हो सकता है जबकि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसख्या को नियंत्रितकर दिया जाए। "यह स्मरणीय है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का पक्का समर्थक होते हुए भी मिल जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की दिशा मे सरकारी हस्तक्षेप की वकालत करता है। अनेक देशों के वे कानून सरकार की न्यायिक शक्ति से ऊपर नहीं हैं जोकि विवाह करने की इस शर्त पर आज्ञा देते हैं कि दोनों पार्टियों के पास एक परिवार के निर्वाह के हेतु पर्याप्त साधन हो। वे कानून स्वतन्त्रता के उल्लघन की तरह सदेहजनक नही हैं।"

(४) मांग पूर्ति का सिद्धान्त (The Law of Demand and Supply):— उत्पादकों एवं उत्पादित सेवाओ के यथा-श्रम, भूमि और पूंजी के मूल्य को निर्धारित करने वाले नियम की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है · कीमत वस्तु की मांग से प्रत्यक्ष दिशा में परिवर्तित होती है जबकि पूर्ति से विपरित दिशा मे परिवर्तित होती है। मिल द्वारा प्रदत्त अर्थविज्ञान को एक महत्वपूर्ण योगदान यह प्रदर्शित करना था कि यह गणितीय सूत्र केवल मात्र दोषयुक्त चक्र है। यदि यह सत्य है कि वस्तु की माग-पूर्ति कीमतो मे परिवर्तन के कारण है तो यह भी सत्य है कि कीमत भी माग पूर्ति के परिवर्तन की कारण है। इस विचार को मिल यह कहकर ठीक करता है कि कीमत उस सीमात पर स्थिर होती है जहा कि पूर्ति की मात्रा मांग की मात्रा के बराबर है। मूल्य सम्बन्धी सभी परिवर्तन इस साम्य के चारों ओर होते रहते हैं। इस तरह मिल ने मांग-पूर्ति के सिद्धान्त को वैज्ञानिक आवरण पहिनाया

1 "It is in vain to say that all mouths which the increase of mankind calls into existence bring with them hands. The new mouths require as much food as the old ones and the hands do not produce as much."
—J.

तथा मूल्य की धारणा का आविष्कार करते हुए उन्होंने अर्थशास्त्र में एक नये सिद्धांत का समावेश किया।

"मांग व पूर्ति का नियम मूल्य के परिवर्तनों की व्याख्या करता है परन्तु स्वयं मूल्य की धारणा को प्रकाशित करने में विफल रहता है। इसका एक मौलिक कारण उत्पत्ति-व्यय में देखा जा सकता है। स्वतन्त्र प्रतियोगिता की विधि के अन्तर्गत मूल्य के उच्चावचन उस स्थिर बिन्दु की ओर प्रवृत्त होते हैं जिस तरह कि समुद्र समतल की ओर प्रवृत्त होता रहता है लेकिन वह कभी एक निश्चित समतल पर नहीं रहता"।[1]

एक अस्थिर मूल्य मांग-पूर्ति के परिवर्तनों पर निर्भर करता है जबकि एक स्थिर, प्राकृतिक अथवा सामान्य मूल्य उत्पत्ति-लागत से नियमित होता है—क्लासिकल मूल्य का सिद्धान्त ऐसा था। मिल इस सिद्धान्त से पूर्णतया संतुष्ट था जैसा कि उसके ही शब्दों से स्पष्ट है "प्रसन्नता की बात यह है कि मूल्यों के सिद्धांत में परिवर्तन या भावी किसी भी लेखक को कोई बात स्पष्ट करने के हेतु बाकी नहीं रह गई है, इस विषय का सिद्धान्त पूर्ण है।"[2] यह स्मरणीय है कि वस्तुओं के मूल्य का नियम मुद्रा के मूल्य पर भी लागू होता है। मुद्रा का भी एक अस्थिर मूल्य होता है जिसका निर्धारण चलन में मुद्रा के परिणाम तथा विनिमय कार्यों के हेतु इसकी मांग अर्थात् मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) के द्वारा होता है। परन्तु मुद्रा का एक प्राकृतिक मूल्य भी होता है जिसका निर्धारण मौद्रिक धातु के लागत-व्यय द्वारा होता है।

(५) **मजदूरी का नियम (The Law of wages)**:—उक्त प्रकार का नियम ही मजदूरी का निर्धारण करता है। अस्थिर मजदूरी मांग व पूर्ति पर अर्थात् श्रमिकों को काम पर लगाने के हेतु आवश्यक पूंजी की मात्रा (मजदूरी कोष) और रोजगार की तालाश में श्रमिकों की संख्या पर आधारित होती है। इस सिद्धान्त की व्याख्या कॉबडिन (Cobden) ने बड़े सुन्दर शब्दों में की है, "मजदूरी बढ़ती है जबकि दो मालिक एक व्यक्ति के पीछे दौड़ते हैं और गिरती हैं, जबकि दो

---

1 "The law of demand and supply explains the variations of value, but fails to illuminate the conception of value itself. A more fundamental cause must be sought, which can be found in cost of production. Under a regine of free competition the fluctuations in value tend towards this fixed point, just as "the sea tends to a level: but it never is at one exact level."

—Gide & Rist : Ibid, P. 365.

2 "Happily there is nothing in the laws of value which remains for the present or any future writer to clear up, the theory of the subject is complete."

—J. S. Mill.

ध्वनित एक ही मालिक के पीछे दौड़ते है।'[1] इसी प्रकार मिल के शब्दों मे "मजदूरी श्रम-जनसख्या तथा श्रम की खरीदारी के हेतु पूंजी या अन्य कोष के बीच के अनुपात पर निर्भर करती है तथा प्रतियोगिता के शासन के अन्तर्गत किसी दूसरी वस्तु से प्रभावित नहीं हो सकती।"[2]

प्राकृतिक या जीवन-निर्वाह मजदूरी दीर्घकाल मे श्रम के लागत-व्यय के द्वारा निर्धारित होती है तथा अस्थिर मजदूरी की प्रवृत्ति इस साम्य-बिन्दु के बराबर आने की रहती है। परम्परावादियो के इस सिद्धात को आगे चलकर विद्वानो ने "लोह नियम,' (Iron Law) की सज्ञा दी जिसके अनुसार मजदूरी की दर पूर्णतया मजदूरी-कोष पर निर्भर रहती है तथा इसका श्रमिक की आवश्यकता या उसके काम के चरित्र या कार्य करने की उसकी इच्छा से कोई सम्बन्ध नही है। इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी की दर मे वृद्धि केवल तभी सम्भव है जबकि या तो बचत के द्वारा पूंजी की वृद्धि को प्रोत्साहित किया जाए अथवा श्रमिकों की कामेच्छा पर नियन्त्रण लगाकर उनकी सख्या को कम किया जाए। मजदूरी के सम्बन्ध मे मिल ने जीवन-निर्वाह सिद्धान्त (Law of Subsistence) का प्रतिपादन किया। इस सिद्धात के अनुसार दीर्घकाल मे श्रमिक की मजदूरी केवल मात्र उतनी होगी जिससे कि वह अपनी जीविका का निर्वाह कर सके। इसका कारण यह है कि यदि दीर्घकाल मे मजदूरी की दर ऊंची होगी तो श्रमिकों की जनसख्या मे तेजी से वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप मजदूरी पुनः घटकर उसी सीमा पर आ जाएगी।

(६) लगान का सिद्धांत (The Law of Rent) :—प्रतिस्पर्धा का नियम विनिमय मूल्य के घटने की ओर उस सीमा तक प्रवृत्त होता है जब तक कि यह उत्पत्ति-लागत के बराबर न हो जाए। लेकिन मान लिया यदि किसी मामले मे दो लागत-व्यय हैं तो इन दोनो मे से कौनसी लागत-व्यय कीमत का निर्धारण करेगी ? इस दशा मे कीमत का निर्धारण ऊंची लागत-व्यय के द्वारा होगा तथा इससे कम लागत-व्यय के सभी उत्पादनो मे एक सीमान्त की प्राप्ति होगी। रिकार्डो ने बताया था कि यह बात कृषिगत-उत्पादो के साथ-साथ कुछ औद्योगिक वस्तुओं के सबध मे भी लागू होती है। इस लगान-सिद्धात के अन्तर्गत मिल ने व्यक्तिगत योग्यता (Personal Ability) के तत्व को सम्मिलित कर दिया। 'कोई उत्पादक या व्यापारी अपने व्यापार की उत्तम दशाओ अथवा उत्तम व्यवस्थाओ के माध्यम से जो अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है, वह भी इसी प्रकार के है। यदि उसके सभी प्रतियोगियो को ये सामदायकताएं उपलब्ध हो और वे उनका प्रयोग करें तो वस्तुओं

1 "Wages rose whenever two masters ran after the same man, and fell whenever two men ran after the same master." —Cobden.

2 "Wages depend, then, on the proportion between the number of the labouring population and the capital or other funds devoted to the purchase of labour, and cannot under the rule of competition be affected by any thing else." J. S. Mill.

के गिरते हुए मूल्य के द्वारा लाभ का अन्तरण ग्राहकों की ओर हो जाएगा वह इसे अपने लिए अपने अधिकार में रखता है ताकि वह अपनी वस्तुओं कम लागत पर बाजार में लाने में सफल हो सके जबकि उसके मूल्य का निर्धारण ऊंची लागत-व्यय के द्वारा किया जाए।" इस तरह व्यक्तिगत-योग्यता के तत्व को लगान-सिद्धांत में सम्मिलित करके मिल ने इस सिद्धांत के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया तथापि वह इसका क्षेत्र सीनियर की अपेक्षा विस्तृत नहीं कर सका जिसने कि स्थिर पूंजी और प्राकृतिक गुणों के कारण मिलने वाली आय को भी "लगान" कहकर सम्बोधित किया।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय का सिद्धांत (The Law of International Exchange) :—स्वतन्त्रवादी विचारक रिकार्डो (Ricardo) और डूनोयर (Dunoyer) के मतानुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यक्तिगत विनिमय को नियमित करने वाले नियमों का विषय है तथा दोनों ही दशाओं के परिणाम भी समान होते हैं अर्थात् दोनों पार्टियों के हेतु श्रम की बचत। एक पार्टी उस वस्तु से जिसकी लागत व्यय अपेक्षाकृत कम है उस वस्तु का जिसकी लागत व्यय अपेक्षाकृत अधिक है, विनिमय करती है। यह स्पष्ट है कि व्यापार से प्रत्येक पार्टी को लाभ होता है, परन्तु यह पूर्ण स्पष्ट नहीं है कि दोनों पार्टियों में लाभ का वितरण समान रूप से हो सकता है या नहीं। सामान्य रूप से यह विश्वास किया जाता है कि यदि कोई असमानता विद्यमान होती है तो अधिक लाभ की प्राप्ति निर्धन देश को अर्थात् ऐसे देश को जिसके पास प्रकृति के उपहार कम हैं अथवा जिसका औद्योगिक विकास नहीं हुआ है, प्राप्त होता है। रिकार्डो के शब्दों में "पूर्ण स्वतंत्र व्यापारिक प्रणाली के अन्तर्गत हर एक देश अपनी पूंजी और श्रम को ऐसे कार्यों पर लगाता है जोकि हरएक के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हो सके। व्यक्तिगत लाभ का यह नियम सम्पूर्ण की सार्वभौमिक भलाई के साथ सम्बद्ध है। उद्योग को प्रोत्साहन देकर, कौशल को इनाम देकर तथा प्रकृति द्वारा प्रदत्त विशेष शक्तियों का क्षमतापूर्ण उपयोग करके यह श्रम का वितरण बहुत मितव्ययी और क्षमतापूर्ण ढंग से करता है, जबकि सामान्य उत्पादन की वृद्धि द्वारा यह सामान्य हित का विस्तार करता है और सम्पूर्ण सभ्य विश्व के अन्तर्गत राष्ट्रों के सार्वभौमिक हित को एक ·· बंधन में बाँध देता है। यह वह सिद्धान्त है जोकि इस बात का निर्णय ा है कि शराब फ्रांस और पुर्तगाल में बनाई जायेगी, अनाज का उत्पादन .रका में किया जायेगा तथा दूसरी वस्तुओं का निर्माण इंगलैंड में किया ।।"

यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कही जा सकती है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के ... सभी मूल्य लागत-व्यय के स्तर तक घट जायेंगे तथा उत्पादों का इस रूप में निमय किया जाएगा कि एक वस्तु के उत्पादन में लगी श्रम की मात्रा सदैव दूसरी में लगी बराबर श्रम की मात्रा से बदली जाएगी। परन्तु इस दशा में विनिमय हां प्राप्त होगा ? इस सम्बन्ध में रिकार्डो ने बताया कि यही बात (कि को समान मात्रा से ... ाता है) व्यक्तिगत विनिमय के सम्बन्ध में

सत्य है तो विभिन्न देशों के बीच कोई विनिमय कार्य नही होगा क्योंकि इस दशा में एक देश से दूसरे देश को श्रम व पूंजी का अन्तरण व्यर्थ ही होगा। परन्तु यदि दो देशों में किन्हीं वस्तुओ की लागत-व्यय भिन्न-भिन्न है तो उनके बीच विनिमय कार्य सम्पन्न हो सकता है।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त (Theory of Comparative cost) को स्वीकार करते हुये कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय का सिद्धान्त माँग-पूर्ति के नियम पर आधारित है। वस्तुओ के मूल्य स्वमेव परिवर्तित होकर इस प्रकार ठीक हो जाते हैं कि दोनो देशो मे मांगी जाने वाली वस्तुओ की मात्रा समान हो जाती है। मिल का भी ऐसा विश्वास था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से निर्धन देश को अधिक लाभ प्राप्त होगा। "यह स्पष्ट है कि जो देश अपने विदेशी व्यापार सर्वाधिक लाभदायक दशा मे ले जा सकते हैं, वे हैं जिनकी वस्तुओ की विदेशो मे माँग बहुत अधिक है परन्तु जो स्वयं विदेशी वस्तुओं की माग बहुत कम करते हैं।"[1]

(ख) मिल के परम्परावादी विरोधी विचार—यह पहले कहा जा चुका है कि जहा एक ओर मिल ने परम्परावादी विचारो को परिष्कृत करके उन्हें वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है, वहा दूसरी ओर उसने परम्परावादी विचारो का विरोध भी किया है। उसके परम्परावादी-विरोधी विचार निम्नोक्त हैं—

(i) आर्थिक नियम (Economic Laws)—परम्परावादी विचारको ने आर्थिक नियमो को सार्वभौमिक घोषित करते हुये यह बताया था कि आर्थिक नियम प्राकृतिक नियमो की तरह ही आर्थिक-जगत मे कार्य करते हैं। मिल ने परम्परावादियो के इस विचार का विरोध करते हुये बताया कि ये नियम उस स्थल पर तो कार्य करते हैं जहा प्राकृतिक शक्तिया काय करती है, परन्तु उस स्थल पर कार्य नहीं करते जहां मनुष्य की इच्छाशक्ति कार्य करती है। इस प्रकार आर्थिक नियम प्राकृतिक नियमों की तरह उत्पादन क्षेत्र मे तो लागू होते हैं, परन्तु वितरण क्षेत्र मे लागू नही होते। इसलिये मिल ने बताया कि आर्थिक नियम सार्वभौमिक (Universal) नही होते।

(ii) अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Political Economy)—परम्परावादी विचारको के मतानुसार अर्थशास्त्र आर्थिक तथ्यो के सम्बन्ध मे कारण एव परिणाम का सम्बन्ध बताने वाला एक विशुद्ध विज्ञान है। मिल ने परम्परावादियों के इस मत का विरोध करते हुये बताया कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान तो है ही परन्तु साथ ही साथ कला भी है क्योंकि इसका कार्य मानव-कल्याण एवं समाज की प्रगति के मार्ग

1 "It still appears that the conutries which carry on their foreign trade on the most advantageous terms are those whose commodities are most in demand by foreign countries and which have themsalves the least demand for foreign commodities." —J. S. Mill.

का भी समावेश है। इस तरह मिल ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र का अधिक विस्तृत कर दिया।

(iii) आर्थिक गतिशीलता (Economic Dynamics)—परम्परावादी विचारकों ने एक स्थिर (Static) समाज की कल्पना की तथा आर्थिक समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण भी स्थिर समाज की पृष्ठभूमि में किया। मिल ने परम्परावादियों के इस विचार का भी विरोध करते हुए बताया कि समाज गतिशील (Dynamic) है अतः आर्थिक समस्याओं का अध्ययन भी गतिशील समाज की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिये।

(iv) संरक्षण की नीति (Policy of protection)—स्वतन्त्रवादी सम्प्रदाय के अन्य लेखकों की अपेक्षा मिल का व्यवहार संरक्षणवादियों के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण रहा है। मिल की विचारधारा संरक्षणवादियों को एक बौद्धिक तर्क भी प्रस्तुत करती है। यह देखते हुए कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ मांग-पूर्ति पर निर्भर करते हैं, उसने बताया कि कोई देश एक भिन्न प्रकार की नीति के द्वारा लाभ प्राप्त कर सकता है। उसने बताया कि जब नई वस्तुओं की अधिक मांग हो तो नए उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसने यह विचार भी प्रस्तुत किया कि आयात कर की वसूली सदैव ही उपभोक्ताओं से नहीं करनी चाहिए वरन् उसका पूर्ण आंशिक भाग विदेशी व्यापारियों से वसूल करना चाहिये। अन्त में, यद्यपि मिल स्वतन्त्र-व्यापार का समर्थक था, तथापि वह लिस्ट से इस बात में समान था कि उसने भी शिशु-उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने का पक्षानुमोदन किया।

(v) सरकारी हस्तक्षेप (State Interference)—परम्परावादी विचारक आर्थिक क्षेत्र में किसी भी अंश तक सरकारी हस्तक्षेप नहीं चाहते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि व्यक्ति अपना निजी हित अच्छी तरह से जानता है, परन्तु मिल ने परम्परावादियों के इस विचार का विरोध करते हुये बताया कि जनकल्याण के प्रश्नों में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है तथा वह सरकारी हस्तक्षेप का विरोध उस सीमा तक ही करता है जब तक कि उसके द्वारा समाज के किसी वर्ग का अहित होता है।

(vi) मजदूरी का नियम (The Law of wages)—आरम्भ में मिल ने रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित मजदूरी सिद्धांत को मान्यता प्रदान करते हुये "मजदूरी कोष सिद्धान्त" (Wages Fund Theory) का विवेचन किया था जिसकी तात्कालिक अर्थशास्त्रियों लौंग (Longe) और थोर्टन (Thorton) द्वारा कटु आलोचना की गई। परिणामतः मिल ने अपना मजदूरी सिद्धान्त वापिस ले लिया क्योंकि वह निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि मजदूर अपने संगठन के द्वारा अपनी मजदूरी की दर बढ़ाने में सफल हो सकते हैं।

(ग) मिल के समाजवादी विचार—अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में मिल पर

समाजवादी विचारो का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण उसने परम्परावादी सिद्धान्तों का विरोध करना तथा समाजवादी विचारो का विवेचन करना प्रारम्भ किया। यह स्मरणीय है कि मिल को पूर्णरूपेण समाजवादी विचारक नही कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि मिल के समाजवादी विचारों में भी व्यक्तिवाद की छाप दिखाई देती है और इसीलिये प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide and Rist) ने मिल के समाजवादी विचारो को व्यक्तिगत-समाजवादी कार्यक्रम (Individualist-Socialist Programme) कहकर पुकारा है। इस कार्यक्रम की पूर्ति के हेतु मिल ने तीन विचार प्रस्तुत किये हैं—

(i) मजदूरी प्रणाली का उन्मूलन तथा सहकारी उत्पादक सगठन की प्रतिस्थापना (Abolition of Wage system and the substitution of a Cooperative Association of Producers),

(ii) भूमि-कर के द्वारा लगान का समाजीकरण (Socialization of rent by means of a tax on Land), तथा

(iii) उत्तराधिकार के नियमों को प्रतिबन्धित करके धन की विषमताओं को कम करना (Lessening of the inequalities of wealth by ristrictions on the rights of Inheritance).

मिल ने बताया कि समाज की वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिकों को उचित मजदूरी नही मिल सकती क्योंकि उत्पादकों की शोषण-प्रवृत्ति सदैव ही उन्हे श्रमिकों को कम मजदूरी देने को प्रवृत्त करती है। अतएव मजदूरी की वर्तमान प्रणाली को उन्मूलित करके मिल ने इसके स्थान पर उत्पादक सहकारी समितियो को संगठित करने का सुझाव प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की समितियों का स्वरूप क्या होगा, इस सम्बन्ध मे मिल ने लिखा है कि, "इस दशा को प्रतिस्थापित करने हेतु यह आवश्यक है कि एक ऐसे सगठन का निर्माण किया जाए जिसमे पूंजीपति मुख्य न हों तथा व्यवस्था मे श्रमिको की आवाज को सुनवाई हो अर्थात् श्रमिकों का एक ऐसा संगठन जो कि समानता के स्तर पर पूंजी के सामूहिक स्वामित्व के द्वारा उत्पादन कार्य पूर्ण करें तथा अपने द्वारा निर्वाचित एवं पदच्युत योग्य व्यवस्थापकों के अन्तर्गत कार्य करें।[1]

मिल ने लगान को भूस्वामी की अनुपार्जित आय घोषित करते हुए यह

---

1 "It is necessary to replace this condition of things by a form of association which, if mankind continue to improve, must be expectsd in the end to predominate, and is not that which can exist between a capitalist as chief and working people without a voice in the management, but the association of the labourers themselves on terms of equality, collective owning the capital with which they carry on their operations, end working under managers elected and removable by themselves." —J. S. mill.

सुझाव दिया कि व्यक्तिगत शोषण को रोकने की दिशा में लगान का समाजीकरण एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इसके अतिरिक्त उसने भूस्वामियों पर भूमि कर (Land Tax) लगाने का भी सुझाव दिया है ताकि भूस्वामियों द्वारा प्राप्त की गई अनार्जित आय सरकारी कोष में जा सके।

समाज में धन के वितरण की विषमता को समाप्त करने की दिशा में मिल ने उत्तराधिकार के नियमों को प्रतिबंधित करने का सुझाव दिया है। उसने बताया कि सरकार द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति की एक सीमा निर्धारित की जाए तथा इससे अतिरिक्त सम्पत्ति सरकार द्वारा अपने अधिकार में ग्रहण कर ली जाए।

मिल के आर्थिक विचारों का मूल्यांकन—प्रो० हेने के शब्दों में "कोई भी विद्यार्थी मिल के विचारों को समझे बिना आर्थिक विचारधारा के इतिहास को नहीं समझ सकता। प्रथम स्थान में उसके लेखों ने एक संतति को काफी सीमा तक प्रभावित किया। वह एक महान् व्याख्याकर्त्ता था तथा उसका "सिद्धान्त" इंगलिश बोले जाने वाले जगत में आर्थिक सिद्धान्तों के मार्गदर्शी विचार के रूप काफी लम्बे समय तक स्वीकार किया गया।"[1] वस्तुतः यदि कोई व्यक्ति उन विचारों की सूची तैयार करे जिन्होंने अर्थशास्त्र को कुछ न कुछ नवीन विचार प्रदान किया हो तो निचश्चियात्मक रूप से उस सूची में मिल को सम्मिलित नहीं किया, जा सकतातथापि यह स्वीकार्य है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में मिल का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार मिल के आर्थिक विचारधारा के इतिहास में निम्नोक्त तीन महत्वपूर्ण योगदान हैं—

(i) "उसने उपयोगिता के विचार को संस्थाओं और नीतियों में लागू करके परम्परावादी अर्थशास्त्र को 'प्राकृतिक नियम' और 'प्राकृतिक अधिकार' की धारणाओं से मुक्त कर दिया।"

(ii) "उसने व्यक्ति एवं समाज के बीच के सम्बन्ध को महत्ता प्रदान की, सामाजिक दृष्टिकोण के अर्न्तनिहित सिद्धान्तों का विकास किया तथा सरकार व उद्योग के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट किया।"

(iii) "जॉन स्टुआर्ट मिल को सामाजिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन का श्रेय मिलना चाहिए। मिल की महत्ता आर्थिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में इतनी दिखाई नहीं पड़ती जितनी कि अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से

"Neverth eless, one can not understand the history of econo- ht without understanding Mill. In the first place, his ad great influence for over a generation. He was a great or, and his 'Principles' was long accpeted in the English ing world as the leading statement of economic doctrines."

—*Prof. Haney.*

सम्बन्ध स्थापित करने में तथा सामाजिक नीतियों के निर्धारण में दिखाई पड़ती है।"[1]

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट ने जॉन स्टुअर्ट मिल को एक निराशावादी विचारक के रूप में देखा है। उन्हीं के शब्दों में, "मिल को निराशावादियों में ही स्थान दिया जाना चाहिए, विशेषकर इसलिए कि उसकी प्रकृति वस्तुओं के अन्धकारयुक्त पात्र को देखते ही रहे हैं। न केवल जनसंख्या के नियम ने उसे भय से परिपूर्ण कर दिया बल्कि उसको क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम सम्पूर्ण आर्थिक विज्ञान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण साध्य दिखाई दिया तथा उसका समस्त कार्य भावी प्रगति के ऊपर उदासीन प्रभावों से परिपूर्ण है।"[1]

निष्कर्ष रूप में प्रो० वी० एम० एब्राहम (*V. M. Abraham*) के शब्दों में[1]

---

1 "John Stuart Mill deserves recognition as a great expositor of social and econom'c doctrines. His claim to greatness in economics, however, lies not in his doctrinal contribution, but in his thought concerning the postulates and assumptions, of economics, and its relation to the social sciences in general and social policy,"

—Prof. Haney.

1 "Mill might well have been given a place among the Pessimists, especially as he inherits their tendency to see the darker side of things. Not only did the law of population fill him with terror but the law of diminishing returns seemd to him the most important proposition in the whole of economic science, and all his works abound with melancholy reflections upon the futility of progress."

Gide and Rist.

1 "Mill's services to the development of economic doctrines were great His achievement in his 'Principles' was in giving the distorted, mutilated post-Ricardian economic science a scientific form. It was he who could wave together the various threads of the mutilated classical economic doctrines, the utilitarian principles and the socialist theories into a single system. Like Malthus he too emphasised the importance of the human element in economic analysis. It was he who replaced the classical pessimism with the necessary optimism and made political economy an optimistic science. By giving necessary modifications to the notions of self-interest, free competition, law of population, demand and supply, wages, rent and profit and the dynamic and static nature of society, Mill throughly revised the whole economic principles. Hence his service to political economy was very similar to that Adam Smith. With these Mill earned an everlasting reputation the in field of the devlopment of Economic thought."

—V. M. Abroham Hi story of economic Thought, P. 134.

सुझाव दिया कि व्यक्तिगत शोषण को रोकने की दिशा में लगान का समाजीकरण एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इसके अतिरिक्त उसने भूस्वामियों पर भूमि कर (Land Tax) लगाने का भी सुझाव दिया है ताकि भूस्वामियों द्वारा प्राप्त की गई अनार्जित आय सरकारी कोष में जा सके।

समाज में धन के वितरण की विषमता को समाप्त करने की दिशा में मिल ने उत्तराधिकार के नियमों को प्रतिबंधित करने का सुझाव दिया है। उसने बताया कि सरकार द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति की एक सीमा निर्धारित की जाए तथा इससे अतिरिक्त सम्पत्ति सरकार द्वारा अपने अधिकार में ग्रहण कर ली जाए।

मिल के आर्थिक विचारों का मूल्यांकन—प्रो० हेने के शब्दों में "कोई भी विद्यार्थी मिल के विचारों को समझे बिना आर्थिक विचारधारा के इतिहास को नहीं समझ सकता। प्रथम स्थान में उसके लेखों ने एक संतति को काफी सीमा तक प्रभावित किया। वह एक महान् व्याख्याकर्त्ता था तथा उसका "सिद्धान्त" इंगलिश बोले जाने वाले जगत में आर्थिक सिद्धान्तों के मार्गदर्शी विचार के रूप काफी लम्बे समय तक स्वीकार किया गया।"[1] वस्तुतः यदि कोई व्यक्ति उन विचारों की सूची तैयार करे जिन्होंने अर्थशास्त्र को कुछ न कुछ नवीन विचार प्रदान किया हो तो निचश्चियात्मक रूप से उस सूची में मिल को सम्मिलित नहीं किया, जा सकतातथापि यह स्वीकार्य है कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में मिल का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार मिल के आर्थिक विचारधारा के इतिहास में निम्नोक्त तीन महत्वपूर्ण योगदान हैं—

(i) "उसने उपयोगिता के विचार को संस्थाओं और नीतियों में लागू करके परम्परावादी अर्थशास्त्र को 'प्राकृतिक नियम' और 'प्राकृतिक अधिकार' की धारणाओं से मुक्त कर दिया।"

(ii) "उसने व्यक्ति एवं समाज के बीच के सम्बन्ध को महत्ता प्रदान की, सामाजिक दृष्टिकोण के अन्तर्निहित सिद्धान्तों का विकास किया तथा सरकार व उद्योग के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट किया।"

(iii) "जॉन स्टुअर्ट मिल को सामाजिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन का श्रेय मिलना चाहिए। मिल की महत्ता आर्थिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में इतनी दिखाई नहीं पड़ती जितनी कि अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से

---

1 "Neverth eless, one can not understand the history of economic thought without understanding Mill. In the first place, his writings had great influence for over a generation. He was a great expositor, and his 'Principles' was long accpeted in the English speaking world as the leading statement of economic doctrines."

—Prof. Haney.

१३

ऐतिहासिक सम्प्रदाय

(Historical School)

प्राक्कथनः—ऐतिहासिक सम्प्रदाय लगभग ४० वर्ष तक जर्मन भाषा बोले जाने वाले देशों में आर्थिक विचारधारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय रहा। इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ सन् १८४३ से होता है जबकि रोशर (Roscher) की महत्वपूर्ण पुस्तक 'Grundriss" प्रकाशित हुई। जे० बी० से (J. B. Say) और रिकार्डो (Ricardo) के उत्तराधिकारियों ने विज्ञान की यथार्थ प्रवृति को, इस के तथ्यों को सैद्धांतिक साम्यों की अल्प संख्या तक घटाकर एक नया मोड़ प्रदान किया था। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय, लाभ की दर, मजदूरी और लगान की दरों की समस्याओं को ऐसे ही सैद्धांतिक साम्य समझा गया जिनकी व्याख्या गणितीय शुद्धता के आधार पर की गई थी। उनकी यथार्थता को स्वीकार करते हुए भी हमें यह मानना पड़ेगा कि वे उचित होने से बहुत दूर हैं तथा विभिन्न आर्थिक घटकों की व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन मैक्कलोक (Mcculloch) सीनियर (Senior), स्टोर्च (Storch,), रौ (Rau), गारनियर (Garnier) और रोसी (Rossi) अर्थात इंगलैंड और फ्रांस के रिकार्डो के तत्कालिक शिष्यों ने पुराने सूत्र को ही दोहराया। इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था की नवीन प्रणाली कुछ वास्तविकता सत्यों की व्याख्या तक ही सीमित थी। यह सत्य है कि जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) अपवाद स्वरूप था। इस अपवाद को छोड़कर हम श्मोलर (Schmoller) के शब्दों में कह सकते हैं कि एडम स्मिथ के समय के बाद राजनैतिक अर्थ व्यवस्था रक्तहीनता के रोग से पीड़ित दिखाई देती है।[1] टॉयनबी (Thynbee) ने अपनी पुस्तक "रिकार्डो और पुरातन राजनैतिक अर्थव्यवस्था"। (Ricardo and Old Political Economy) इस विश्वास की बहुत सुन्दर व्याख्या की है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा जर्मन भाषा बोले जाने वाले सभी देशों को प्रभावित करती रही। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सभी जर्मन अर्थशास्त्रियों को सम्मिलित किया जाता है। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परादी सिद्धान्तों को विभिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं नवीन आर्थिक विकास के प्रतिकूल पाकर उनका विरोध किया तथा साथ ही साथ आर्थिक संस्थाओं और आर्थिक नियमों के बीच के सम्बन्धों को स्पष्ट किया। इन विचारकों

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 383.

कहा जा सकता है कि, "आर्थिक सिद्धान्तों के विकास की दिशा में मिल की सेवायें महान थी। उसके 'सिद्धांत' में उसका कार्य उत्तर रिकार्डियन अर्थ-विज्ञान को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करना था। यह वह था जो कि विभिन्न क्लासिकल आर्थिक सिद्धान्तों रूपी धागों को, उपयोगितावादी सिद्धान्तों तथा समाजवादी सिद्धान्तों को एक प्रणाली के अन्तर्गत बुन सका। माल्थस की तरह उसने भी आर्थिक विश्लेषण में मानवीय तत्व की महत्ता पर बल डाला। यह वह था जिसने क्लासिकल निराशावाद को आवश्यक आशावाद से प्रतिस्थापित किया तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था को एक आशावादी विज्ञान बताया। स्वहित, स्वतन्त्र प्रतियोगिता, जनसंख्या का नियम, मांग और पूर्ति, मजदूरी लगान और लाभ तथा समाज की गतिशील व स्थिर प्रकृति आदि विचारों में संशोधन करके, मिल ने सम्पूर्ण आर्थिक सिद्धान्तों का संशोधन किया। इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था के हेतु उसकी सेवा एडम स्मिथ की सेवा के समान थी। इन योगदानों के साथ मिल ने आर्थिक विचारधारा के विकास क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।"

———

१३

ऐतिहासिक सम्प्रदाय

(Historical School)

प्राक्कथन:—ऐतिहासिक सम्प्रदाय लगभग ४० वर्ष तक जर्मन भाषा बोले जाने वाले देशों में आर्थिक विचारधारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय रहा। इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ सन् १८४३ से होता है जबकि रोशर (Roscher) की महत्वपूर्ण पुस्तक 'Grundriss" प्रकाशित हुई। जे० बी० से (J. B. Say) और रिकार्डो (Ricardo) के उत्तराधिकारियों ने विज्ञान की यथार्थ प्रवृति को, इस के तथ्यों को सैद्धांतिक साम्यों की मल्प संख्या तक घटाकर एक नया मोड़ प्रदान किया था। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय, लाभ की दर, मजदूरी और लगान की दरों की समस्याओं को ऐसे ही सैद्धांतिक साम्य समझा गया जिनकी व्याख्या गणितीय शुद्धता के आधार पर की गई थी। उनकी यथार्थता को स्वीकार करते हुए भी हमें यह मानना पड़ेगा कि वे उचित होने से बहुत दूर हैं तथा विभिन्न आर्थिक घटकों की व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन मैक्कलोक (Mcculloch) सीनियर (Senior), स्टोर्च (Storch,), रो (Rau), गारनियर (Garnier) और रोसी (Rossi) अर्थात इंगलैंड और फ्रांस के रिकार्डो के तत्कालिक शिष्यों ने पुराने सूत्र को ही दोहराया। इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था की नवीन प्रणाली कुछ वास्तविकता सत्यों की व्याख्या तक ही सीमित थी। यह सत्य है कि जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) अपवाद स्वरूप था। इस अपवाद को छोड़कर हम श्मोलर (Schmoller) के शब्दों में कह सकते हैं कि एडम स्मिथ के समय के बाद राजनैतिक अर्थ व्यवस्था रक्तहीनता के रोग से पीड़ित दिखाई देती है।[1] टॉयनबी (Thynbee) ने अपनी पुस्तक "रिकार्डो और पुरातन राजनैतिक अर्थव्यवस्था"। (Ricardo and Old Political Economy) इस विश्वास की बहुत सुन्दर व्याख्या की है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा जर्मन भाषा बोले जाने वाले सभी देशों को प्रभावित करती रही। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सभी जर्मन अर्थशास्त्रियों को सम्मिलित किया जाता है। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परादी सिद्धान्तों को विभिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं नवीन आर्थिक विकास के प्रतिकूल पाकर उनका विरोध किया तथा साथ ही साथ आर्थिक संस्थाओं और आर्थिक नियमों के बीच के सम्बन्धों को स्पष्ट किया। इन विचारकों

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P, 383.

कहा जा सकता है कि, "आर्थिक सिद्धान्तों के विकास की दिशा में मिल की सेवायें महान थी। उसके 'सिद्धांत' में उसका कार्य उत्तर रिकार्डियन अर्थ-विज्ञान को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करना था। यह वह था जो कि विभिन्न क्लासिकल आर्थिक सिद्धान्तों रूपी धागों को, उपयोगितावादी सिद्धान्तों तथा समाजवादी सिद्धान्तों को एक प्रणाली के अन्तर्गत बुन सका। माल्थस की तरह उसने भी आर्थिक विश्लेषण में मानवीय तत्व की महत्ता पर बल डाला। यह वह था जिसने क्लासिकल निराशावाद को आवश्यक आशावाद से प्रतिस्थापित किया तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था को एक आशावादी विज्ञान बताया। स्वहित, स्वतन्त्र प्रतियोगिता, जनसंख्या का नियम, मांग और पूर्ति, मजदूरी लगान और लाभ तथा समाज की गतिशील व स्थिर प्रकृति आदि विचारों में संशोधन करके, मिल ने सम्पूर्ण आर्थिक सिद्धान्तों का संशोधन किया। इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था के हेतु उसकी सेवा एडम स्मिथ की सेवा के समान थी। इन योगदानों के साथ मिल ने आर्थिक विचारधारा के विकास क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।"

१३

ऐतिहासिक सम्प्रदाय

(Historical School)

प्राक्कथनः—ऐतिहासिक सम्प्रदाय लगभग ४० वर्ष तक जर्मन भाषा बोले जाने वाले देशों में आर्थिक विचारधारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय रहा। इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ सन् १८४३ से होता है जबकि रोशर (Roscher) की महत्वपूर्ण पुस्तक 'Grundriss" प्रकाशित हुई। जे० बी० से (J. B, Say) और रिकार्डो (Ricardo) के उत्तराधिकारियों ने विज्ञान की यथार्थ प्रवृति को, इस के तथ्यों को सैद्धांतिक साम्यों की अल्प संख्या तक घटाकर एक नया मोड़ प्रदान किया था। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय, लाभ की दर, मजदूरी और लगान की दरों की समस्याओं को ऐसे ही सैद्धांतिक साम्य समझा गया जिनकी व्याख्या गणितीय शुद्धता के आधार पर की गई थी। उनकी यथार्थता को स्वीकार करते हुए भी हमें यह मानना पड़ेगा कि वे उचित होने से बहुत दूर हैं तथा विभिन्न आर्थिक घटकों की व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन मैक्कलोक (Mcculloch) सीनियर (Senior), स्टोर्च (Storcb,), रौ (Rau), गारनियर (Garnier) और रोसी (Rossi) अर्थात इंगलैंड और फ्रांस के रिकार्डो के तत्कालिक शिष्यों ने पुराने सूत्र को ही दोहराया। इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था की नवीन प्रणाली कुछ वास्तविकता सत्यों की व्याख्या तक ही सीमित थी। यह सत्य है कि जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) अपवाद स्वरूप था। इस अपवाद को छोड़कर हम श्मोलर (Schmoller) के शब्दों में कह सकते हैं कि एडम स्मिथ के समय के बाद राजनैतिक अर्थ व्यवस्था रक्तहीनता के रोग से पीड़ित दिखाई देती है।[1] टॉयनबी (Thynbee) ने अपनी पुस्तक "रिकार्डो और पुरातन राजनैतिक अर्थव्यवस्था"। (Ricardo and Old Political Economy) इस विश्वास की बहुत सुन्दर व्याख्या की है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा जर्मन भाषा बोले जाने वाले सभी देशों को प्रभावित करती रही। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सभी जर्मन अर्थशास्त्रियों को सम्मिलित किया जाता है। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परावादी सिद्धान्तों को विभिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं नवीन आर्थिक विकास के प्रतिकूल पाकर उनका विरोध किया तथा साथ ही साथ आर्थिक संस्थाओं और आर्थिक नियमों के बीच के सम्बन्धों को स्पष्ट किया। इन विचारकों

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 383.

ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में ऐतिहासिक प्रणाली (Historical Method) को विशेष महत्व प्रदान किया और इसी कारण विचारकों का यह सम्प्रदाय आर्थिक विचारधारा के इतिहास में "ऐतिहासिक सम्प्रदाय" (Historical School) के नाम से प्रसिद्ध है। प्रो० हेने के शब्दों में "नवीन सम्प्रदाय के विचारकों ने देखा कि आर्थिक जीवन राजनैतिक या सामाजिक जीवन से पृथक नहीं है वरन् सभी सभ्यताओं के साथ घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं, अर्थात यह सभी मनुष्यों के साथ एक समान नहीं है वरन् विभिन्न कालों एवं दशाओं के अंतर्गत विभिन्न समाजों एवं राष्ट्रों के हेतु भिन्न-भिन्न है। उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों के एकपक्षीय सिद्धातों का विरोध किया तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था के अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया।"[1]

ऐतिहासिक सम्प्रदाय का उदभव एवं विकास (The Origin and Depelopment of the Historical School)—ऐतिहासिक सम्प्रदाय के संस्थापन का एकमात्र श्रेय डब्लू० रोशर (Wilhelm Roscher) को है जिसने सन् १८४३ में "Grundriss zu Vorlesungen iiber die Stattswirts chaffnach geschichtlicher Methode" नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक की भूमिका में वह कहता है कि "हमारा उद्देश्य साधारणतया उस आर्थिक विषय की व्याख्या करना है जिसकी व्यक्तियों ने इच्छा प्रकट की है, उन ध्येयों की व्याख्या करना है जिनका उन्होंने अनुगमन किया है तथा उन कारणों को देना है कि ऐसे ध्येय क्यों छांटे गए। यह खोज केवल तभी सम्भव है जबकि हम इसे राष्ट्रीय जीवन के अन्य विज्ञानों, वैधानिक एवं राजनैतिक इतिहास तथा सभ्यता के इतिहास के निकट सम्पर्क में रखते हैं।"[2]

---

1 "The thinkers of the new school saw that economic life is not isolated from political and social life, but has close connections with all civilization, that is not the same with all men, but varies in different societies and nations under different circumstances and at different times. They revolted against the onesided and rationalistic doctrines of their predecessors, and proceded to formulate an historical method for political economy."

—Haney : History of Economic Thought, P. 539.

2 "Our aim is simply to describe what people have wished for and felt in matters economic, to describe the aims they have followed and the success they achieved—as well as to give the reasons why such aims were chosen and such triumphs won. Such research can only be accomplished if we keep in close touch with the other sciences of national life, with legal and political history of civilization."

—Roscher.

इस तरह रोशर ने समकालीन तथ्यों एवं मतों के अध्ययन को जोड़कर प्रचलित सिद्धान्त को पूर्ण बनाने का प्रयास किया तथा क्लासिकल सिद्धान्तों में वर्णित विभिन्न तथ्यों एवं विचारों का विरोध किया। रोशर ने आर्थिक सिद्धान्तों के विवेचन में ऐतिहासिक प्रणाली को अपनाने का प्रयोग किया जिस तरह कि सैविग्नी (Savigny) ने न्यायशास्त्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने के हेतु इस प्रणाली का सफल प्रयोग किया। लेकिन जैसा कि कार्ल मेंजर (Karl Manger) ने भी स्पष्ट संकेत किया है, समानता केवल मात्र बाहरी है। सेविग्नी ने विद्यमान संस्थाओं के स्वाभाविक उद्गम एवं प्रकृति का कुछ प्रकाश पाने की चाह से इतिहास का उपयोग किया था, जबकि रोशर ने इतिहास का प्रयोग केवल मात्र आर्थिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने तथा निर्वचन के हेतु नियमों की पूर्ति करने के रूप में किया। स्मौलर के विचार से रोशर का कार्य राजनैतिक अर्थव्यवस्था को सिद्धान्तों को सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की जर्मनी परम्परा केमरावाद (Cameralist) से सम्बद्ध करने का प्रयास था। केमरावादियों ने विद्यार्थियों को प्रशासन एवं वित्त के सिद्धान्तों के सिद्धान्तों में संलग्न किया। इंगलैण्ड और फ्रांस में जो राजनैतिक अर्थव्यवस्था करारोपण और व्यापारिक व्यवस्थापन से सम्बन्धित व्यावहारिक समस्याओं में संलग्न हो गई। लेकिन एक जर्मनी जैसे देश में जोकि इंगलैण्ड और फ्रांस की तुलना में औद्योगिक दृष्टि से अधिक पिछड़ा हुआ था, इन समस्याओं ने विभिन्न स्वरूप धारण किया तथा इस दशा में क्लासिकल सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन होना भी आवश्यक था जिस काम को रोशर ने पूरा किया।

सन् १८४८ में दूसरे जर्मन लेखक ब्रूनो हिल्डेब्रान्ड (Bruno Hildebrand), ने एक अधिक प्रभावशाली कार्यक्रम प्रस्तुत किया और अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Die Nationalokonomie der Gagenwart und Zukunft" में क्लासिकल सम्प्रदाय, का अधिक मौलिक विरोध किया। उसने बताया कि इतिहास न केवल विज्ञान को पूर्ण रूप प्रदान करेगा वरन् यह साथ ही साथ इसके पुनर्निर्माण में भी सहयोग देगा। इस प्रकार अर्थशास्त्र राष्ट्रीय विकास का विज्ञान बन गया। हिल्डेब्रान्ड ने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक एवं विश्वव्यापी नियमों की कटु आलोचना की तथा रोशर पर भी यह अपराध लगाया कि उसने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित नियमों के स्थायित्व को स्वीकार करने में बड़ी भूल की थी। लेकिन हिल्डेब्रान्ड का निरंकुशवाद रोशर के निर्वाचनवाद के समान प्रभावयुक्त नहीं है, उसके द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की तीन अवस्थाओं प्राकृतिक अर्थव्यवस्था, द्रव्य अर्थ-व्यवस्था और साख अर्थव्यवस्था के विचारों को अपवादस्वरूप छोड़ते हुए। इसके अतिरिक्त हिल्डेब्रान्ड उत्पत्ति और वितरण के क्लासिकल सिद्धान्तों को सुधारे बिना सांख्यिकी या इतिहास के विशेष प्रश्नों के समाधान में जुटा रहा।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के आलोचनात्मक विचारों को पूर्ण बनाने का कार्य कार्ल नीस (Karl Knies) ने सन् १८५३ में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "ऐतिहासिक

(i) इस सम्प्रदाय के विचारकों के द्वारा कार्ल नीस एवं हिल्डेब्रान्डद्वारा प्रस्तुत आर्थिक नियमों में सन्निहित निरपेक्षवाद का खंडन किया गया। इस सम्प्रदाय के सदस्यों ने प्राकृतिक-सामाजिक नियमों तथा समानताओं के स्थायित्व का बहिष्कार नहीं किया और बताया कि इस सम्बन्ध में आवश्यक खोज करना अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य है।[1] इन विद्वानों ने केवल इस बात का विरोध किया कि इतिहास का आविष्कार निगमनात्मक प्रणाली के द्वारा सम्भव नहीं है। इस प्रकार इस दिशा में वे अपने पूर्ववर्तियों द्वारा की गई सभी आलोचनाओं से सहमत हैं।[2]

(ii) इन विचारकों ने सिद्धान्त की अपेक्षा व्यावहार को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया। अपने इसी लक्ष्य के कारण इन विद्वानों ने आर्थिक सिद्धान्त और आर्थिक इतिहास (Economic Theory and Economic History) के बीच भेद करना भी स्वीकार नहीं किया।

सारांश रूप में ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों को दो प्रमुख वर्गों में

---

1 "We know now that physical causation is something other than machanical, but it bears the same stamp of necessity."
—Schmoller.

2 "We have knowledge of the laws of history, although we sometimes speak of economic andstatistical laws." "We can not even say whether the economic life of humanity possesses any element, or whether it is making for progress at all." —Schmoller.

विभक्त किया जा सकता है—(अ) प्राचीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Older Historical School) तथा (ब) नवीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Younger Historical School)। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत रोश्चर (Roscher), हिल्डेब्रान्ड (Hildebrand) तथा कार्ल नीश (Karl Knies) को सम्मिलित किया जाता है जबकि द्वितीय वर्ग का प्रमुख नेता श्मोलर (Schmoller) था। प्राचीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परावादी सम्प्रदाय के निम्नोक्त तीन विचारकों की कटु आलोचना की:—

(i) इन विचारकों ने परम्परावादियों के विश्ववादिता के नियम का इतिहास के आधार पर खडन किया और बताया कि हरएक राष्ट्र की प्राकृतिक एवं आर्थिक दशाओं में पर्याप्त अन्तर होता है जिसके कारण सभी देशों में एक समान आर्थिक नियमों का लागू होना जरूरी नही है।

(ii) इन विचारकों ने परम्परावादियो के स्वहित के सिद्धान्त का भी खण्डन किया और बताया कि व्यक्ति अपना हरएक कार्य स्वहित की भावना से प्रेरित होकर ही नही करता वरन् उस पर *देश प्रेम, भ्रातृ-भाव, सगति, परोपकार आदि मनोवृत्तियों* का भी प्रभाव पड़ता है।

(iii) अन्त में, इन विचारकों ने परम्परावादियों द्वारा प्रयुक्त अध्ययन की निगमन प्रणाली (Deductive Method) का भी विरोध किया तथा इसके स्थान पर ऐतिहासिक अथवा आगमन प्रणाली (Inductive Method) को अपनाने पर बल डाला। निगमन प्रणाली का विरोध करते हुए इन विचारकों ने कहा कि यदि कोई विद्यार्थी अपनी मान्यताओं को गलत स्थापित करता है तब उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष भी गलत साबित होगे। प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में, "इस सम्प्रदाय के सदस्यो ने दोषपूर्ण एवं निरकुश निगमन प्रणाली का विरोध किया और यद्यपि उन्होने अपनी एक नई प्रणाली का प्रतिपादन किया तथा स्वतन्त्र अन्वेषण की उनकी स्वतन्त्र भावना अधिक मूल्यवान सकारात्मक परिणामो वाली थी, तथापि उनके कार्य का नकारात्मक पहलू काफी विस्तृत था। उन्होंने अर्थशास्त्र में नियमो के अस्तित्व का बहिष्कार नही किया परन्तु उन्होने निरकुशवाद और भावात्मक प्रणाली का विरोध किया।"[1]

यह स्मरणीय है कि प्राचीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारको ने परम्परा-

1 "Its members were attacking and tearing down the faulty abstract deductive methods which they found predominant, and while they formulated a method of their own, and their spprit of free investigctian had most valuable positive results, still the negative aspect of their work was very large. They did not deny the existence of law in economics, but they attacked absolutism and abs'ract deduction from ideal postulates." —Haney.

वादी विचारों की कटु आलोचना तो की लेकिन उन्होंने अपना कोई रचनात्मक विचार प्रस्तुत नहीं किया। इस क्षेत्र में नवीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने प्रशंसनीय कार्य किया। प्रो० हेने के मतानुसार न"वीन सम्प्रदाय ने ऐतिहासिक प्रणाली का पुनः विकास और प्रयोग किया तथा ऐसा करने में उन्होंने स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया जिसकी स्वीकृति प्राचीन सम्प्रदाय नहीं दी गई थी। उन्होंने निषेधात्मक कार्य भी किया लेकिन यह अधिकतर उन्हीं के हेतु किया गया तथा उन्होंने अपनी प्रणाली के प्रयोग द्वारा यथार्थ निष्कर्ष निकालने का कार्य अधिक किया। वे प्राचीन सम्प्रदाय से इस बात में भिन्नता रखते हैं कि वे अर्थशास्त्र के अप्रभावी नियमों के स्थायित्व का वहिष्कार करने में दूर चले गए।"[1]

ऐतिहासिक विचारों का समावेश परम्परावादियों में भी दिखाई देता है। माल्थस (Malthus), सिसमाण्डी (Sismandi), सेन्ट साइमन (Saint Simon) आदि विचारकों ने ऐतिहासिक आधार के महत्व को भली भांति समझा था, परन्तु जर्मनी और दूसरे देशों की अर्थव्यवस्थाओं में अनेक नवीन समस्याएं (व्यावसायिक एवं श्रम सम्बन्धी) जन्म ले रही थीं जिनका परम्परावादियों के पास कोई समाधान नहीं था और यह आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रही थी कि समकालीन आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर आर्थिक विचारों का प्रतिपादन किया जाये। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु जर्मनी में ऐतिहासिक सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसने आर्थिक अध्ययन की प्रणाली में इतिहास का समावेश करके उसे सत्य के अधिक निकट ला दिया।

निम्नोक्त में हम प्रमुख ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों के आर्थिक विचारों की संक्षिप्त आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

(१) विलियम रोश्चर (Wilheim Roscher)

विलियम रोश्चर का जन्म सन् १८१७ में जर्मनी में हुआ। इतिहास और राजनीति के अध्ययन के प्रति उसकी रुचि प्रारम्भ से ही आगाढ़ थी और उसने इन विषयों का गहराई से अध्ययन भी किया। रोश्चर ने परम्परावादी सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्तों एवं विचारों का अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इन विचारों एवं सिद्धान्तों के अन्तर्गत अनेक दोष निहित हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल (Hegal) की विचारधारा से प्रभावित होकर रोश्चर ने इस मत

---

1 "The younger groups sough to develop ond apply the historical method further, and in so doing they took a positive stand that the older group would have not sanctioned. They, too, carried on a negatvie work : but this had been la rgely done for them, and in their several ways they took it as their task to get more positive results from a petty exclusive application of their method. They differed from the older group in that they went so far as to deny the existance of non-empirical laws in economics,"
—*Haney*.

का प्रतिपादन किया कि ऐतिहासिक अनुभव ही राजनैतिक अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। इस तरह वह इतिहास की सहायता से अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का पक्षपोषक था। वस्तुत: ऐतिहासिक सम्प्रदाय को स्थापित करने का मूल श्रेय विलियम रोश्चर को ही जाता है जिसने सन् १८४३ मे अपना प्रमुख ग्रन्थ "ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर राजनैतिक विज्ञान पर दिये गये लैक्चर्स की रूपरेखा" (Outline of Lectures on Political Science according to the Historical Method) प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ मे उसने रिकार्डियन सम्प्रदाय की कटु आलोचना की तथा उसकी आलोचना का मुख्य दृष्टिकोण अर्थशास्त्र का क्षेत्र, उद्देश्य एवं अध्ययन प्रणाली थी। रोश्चर ने बताया कि उसका बताया हुआ मार्ग सत्य की प्राप्ति मे निर्देशन अवश्य प्राप्त होगा।

अपनी पुस्तक मे रोश्चर ने यह बताया कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था एक विज्ञान है तथा इसके अध्ययन के हेतु अन्य सामाजिक विज्ञानों का सहारा लिया जाना चाहिये। उसने अर्थशास्त्र के अध्ययन मे इतिहास, राजनीति और विधानशास्त्र की सहायता लेना अधिक आवश्यक ठहराया। रोश्चर ने बताया कि आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर ही किसी राष्ट्र की आर्थिक दशा का पूर्णज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उसका मत था कि आर्थिक नियमो के प्रतिपादन मे विभिन्न समाजो एवं व्यक्तियों का अध्ययन अत: आवश्यक है। इस दिशा मे उसने भूतकालीन समाजों एवं व्यक्तियों के जीवन का अध्ययन भी आवश्यक ठहराया क्योंकि उनके भूतकालीन आर्थिक जीवन और हमारे वर्तमान कालीन आर्थिक जीवन मे सम्बन्ध स्थापित करके अर्थात् भूत और वर्तमान की तुलना द्वारा अधिक सत्य आर्थिक नियमों का प्रतिपादन किया जा सकता है। रोश्चर ने बताया कि आर्थिक अध्ययन की ऐतिहासिक प्रणाली अल्प समय में ही किसी आर्थिक संस्था को अच्छा या बुरा सिद्ध नही कर सकती क्योंकि यह सम्भव है कि कोई संस्था किसी देश विशेष के लिये बुरी हो परन्तु वह किसी दूसरे देश के लिये अच्छी हो। यह स्मरणीय है कि रोश्चर ने किसी भी आर्थिक नियम को पूर्णतया सत्य अथवा विश्वव्यापी नहीं ठहराया। उसने कहा कि विश्वव्यापी आर्थिक नियमो के प्रतिपादन का प्रयत्न व्यर्थ है और केवल मात्र राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं का ही अध्ययन किया जाना चाहिये।

इस प्रकार रोश्चर ने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित विश्ववादिता के नियम का खण्डन किया तथा उनके द्वारा अपनाई गई अध्ययन की निगमन प्रणाली (Deductive Method) के स्थान पर आगमन प्रणाली या ऐतिहासिक प्रणाली (Inductive or Historical Method) को मान्यता प्रदान की। सक्षेप मे, रोश्चर केवल इतिहास की सहायता के द्वारा ही राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं का निराकरण करना चाहता था। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने रोश्चर की विचारधारा की आलोचना

करते हुये बताया है कि उसके विचार वैज्ञानिक नहीं हैं।[1]

(२) ब्रूनो हिल्डरब्रान्ड (Bruno Hilderbrand)

हिल्डर ब्रान्ड का जन्म सन् १८१२ में जर्मनी में हुआ था। उसने दर्शनशास्त्र और इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था। सन् १८४८ में उसने अपनी पुस्तक "वर्तमान एवं भावी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था" (The National Economyı of the Present & future) एक अधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किया। पुस्तक की प्रस्तावना में उसने कहा कि, "उसके कार्य का उद्देश्य राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था में वांछनीय ऐतिहासिक दृष्टिकोण के लिये रास्ता खोलना है तथा राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था के विज्ञान को राष्ट्रों के आर्थिक विकास की व्याख्या करने वाले सिद्धांतों के एक निकाय में परिणित करना है।"[2] हिल्डरब्रान्ड ने परम्परावादी सम्प्रदाय के विचारों की कटु आलोचना की है तथा इस क्षेत्र में वह रोश्चर से भी आगे बढ़ गया है। उसने परम्परावादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित विश्ववादिता के नियम की विशेष रूप से आलोचना की तथा रोश्चर पर आरोप लगाते हुये कहा कि उसने इन विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के स्थायित्व को स्वीकार करने में भारी भूल की थी। उसने लिखा कि, "अर्थविज्ञान को आर्थिक घटक के गुणन में स्थिर नियमों को खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसका कार्य यह दिखाना है कि आर्थिक जीवन के समस्त रूपान्तरणों के बावजूद भी मानवता ने किस तरह विकास किया है तथा इस आर्थिक जीवन ने मानव जाति की पूर्णता में किस तरह योगदान किया है। इसका कार्य राष्ट्रों तथा सम्पूर्ण रूप में मानव जाति के आर्थिक विकास का अनुगमन करना है तथा वर्तमान आर्थिक सभ्यता के साथ-साथ वर्तमान आर्थिक समस्याओं के आधार की खोज करना है।"[3]

---

1 "Roscher's innovation was the outcome of a pedagogic rather than of a purely scientific demand and he was instrumental reviving a university tradition rather than in creating a new scientific mevement."

—*Gide & Rist.*

2 "The object of my work is to open a way for an essentially hisorical stand point in political economy and to transform the science of political economy into a body of doctrines dealing with the economic development of nations."

—*Hilderbrand.*

3 "Economic science need not attempt to find the unchangeable, indentical law aimed the multiplicity of economic phenomenon. Its task is to show how humanity has progressed despite all the transformations of economic life and how this economic life has contributed to the perfection of mankind. Its task is to follow the economic evolution of nations as well as of humanity as a whole, and to discover the basis of the present economic, civilization as well as of the problems that now await solution."

—*Hilderbrand.*

हिल्डेब्राण्ड अर्थशास्त्र को समूर्तदर्शी (Micro) विज्ञान के रूप में देखना चाहता था। उसने आर्थिक नियमों के प्रतिपादन में नैतिकता को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। हिल्डेब्राण्ड ने आर्थिक विकास की तीन अवस्थाओं की कल्पना की—(१) प्राकृतिक अर्थव्यवस्था (Natural Economy), (२) द्रव्य अर्थव्यवस्था (Money Economy) तथा (३) साख अर्थव्यवस्था (Credit Economy)। यह स्मरणीय है कि हिल्डेब्राण्ड ने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति और वितरण सम्बन्धी सिद्धांतों को उसी रूप में स्वीकार करके अपने वायदे को पूरा नहीं किया।[1]

(३) कार्ल नीस (Karl Knies)

कार्ल नीस का जन्म सन् १८२१ में जर्मनी में हुआ था। उसके द्वारा रचित प्रसिद्ध पुस्तक "ऐतिहासिक दृष्टिकोण से राजनैतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy from the Historical Point of View) सन् १८५३ में प्रकाशित हुई। उसने न केवल प्राकृतिक नियमों के अस्तित्व पर आपत्ति की वरन् आर्थिक विकास के नियमों की विद्यमानता पर भी सन्देह किया। नीस के विचार से राजनैतिक अर्थव्यवस्था किसी राष्ट्र के विभिन्न कालीन आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों का एक इतिहास मात्र है। उसने बताया कि प्रयोग सिद्ध जीवन के समस्त सिद्धान्तों के सत्य निर्धारित मान्यताओं पर आधारित होते हैं, परन्तु पारस्परिक परिणाम एक समान नहीं होते क्योंकि आधारभूत मान्यताएं समय-स्थान एवं दशाओं के अनुरूप बदलती रहती है।[2]

अध्ययन की प्रणाली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए नीस ने कहा कि रोस्चर द्वारा अपनाई गई ऐतिहासिक पद्धति उपयुक्त नहीं है। उसने बताया कि रोस्चर का सम्पूर्ण ध्यान ऐतिहासिक सामग्री की ओर ही केन्द्रित रहा है और इस तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था के समीप सुन्दर स्थल की सृष्टि तो हो गई परन्तु आर्थिक सिद्धान्तों का परिष्कार नहीं हो सका। कार्ल नीस आर्थिक एवं भौतिक नियमों के बीच अन्तर स्पष्ट करना चाहता था और उसका विश्वास था कि ऐतिहासिक प्रणाली को विशेष महत्व प्रदान न करके आर्थिक समस्याओं का

---

1 "In fact, he never produced the positive work which he had promised, and on the occasion on which he left criticism for specialized historical statistical study, he seems to have taken most of the classical conclusions for granted." —Eric Roll.

2 "The truth of all theories which have their foundation in empirical life rests upon concrete hypotheses. Relatity in the validity of their conclusions or judgements is a necessary result of the circumstance that those hypotheses do not remain identical nor occur constantly in all times, places aud circumstances." Karl knies.

आगमन और निगमन दोनों प्रणालियों की आवश्यकता होती है।[1] उसने बताया कि इतिहास, अनुभव तथा परीक्षण के आधार पर तथ्यों एवं आँकड़ों को एकत्रित करना चाहिए तथा इनकी सहायता से आर्थिक नियमों का प्रतिपादन करना चाहिए। प्रो० हेने के मतानुसार "अपनी विचार धारा के परिपक्व होने के साथ-साथ श्मोलर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उचित प्रणाली ऐतिहासिक और सांख्यिकी परीक्षण से प्राप्त आगमन प्रणाली का मानवीय प्रकृति की सम्पत्ति से प्राप्त निगमन प्रणाली के साथ समन्वय किया जाना है।"[2]

श्मोलर ने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित विश्ववादिता के सिद्धान्त का भी खण्डन किया। उसने बताया कि हरएक देश की प्राकृतिक एवं आर्थिक दशाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अतएव यह आवश्यक नहीं कि जो आर्थिक नियम एक देश की आर्थिक परिस्थितियों में लागू होता है वह दूसरे देश की आर्थिक दशाओं में भी लागू हो सके। इस तरह श्मोलर ने बताया कि आर्थिक नियम सापेक्षिक (Relative) हैं जो कि देश और काल के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। अन्त में, श्मोलर ने परम्परावादियों के स्वहित के सिद्धान्त का विरोध करते हुए बताया कि मनुष्य में केवल मात्र स्वहित की भावना ही नहीं पाई जाती वरन् उसमें अनेकानेक भावनाओं का उद्वेग होता है क्योंकि उसपर सामाजिक पर्यावरण (Social Envicrnment) अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इस तरह श्मोलर ने अर्थशास्त्र को समाजशास्त्र (Socialogy) का एक अंग स्वीकार करके यह सुझाव रक्खा कि मनुष्य के सम्पूर्ण पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही अर्थशास्त्र को आगे बढ़ना चाहिए।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के आलोचनात्मक विचार (The Critical Ideas of The Historical School)—ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विभिन्न विचारकों के विचारों में अन्तर होना स्वाभाविक है तथा विचारों के अन्तर के आधार पर ही सम्पूर्ण ऐतिहासिक सम्प्रदाय को दो विभिन्न शाखाओं अर्थात् प्राचीन एवं नवीन ऐतिहासिक शाखाओं में विभाजित किया जाता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परावादी विचारकों पर तीन आरोप लगाए हैं—

(i) उनके सिद्धान्तों की विश्ववादिता की मान्यता ठीक नहीं है (It is pointed out that their belief in the *universality of doctrines is not easily justified*).

---

1 "Induction and deduction *are both necessary for the science,* just as the right and left foot are needed for walking." —Schmoller.

2 "As his thought matured, Schmoller came to hold that the proper method is combination of induction from historical and statistical observation with deduction from the known properties of human nature." —*Prof. Haney.*

समाधान ऐतिहासिक दृष्टिकोण से करना चाहिए ।[1] प्रो० हेने के मतानुसार कार्ल नीस ने प्राकृतिक एवं सामाजिक घटनाओं में अन्तर स्पष्ट करते हुए तथा वितरण सम्बन्धी समस्याओं में आधुनिक सामाजिक संस्थाओं के महत्व पर बल डालते हुए जर्मन ऐतिहासिक सम्प्रदाय की सामान्य प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया है ।[2]

यह स्मरणीय है कि कार्ल नीस के कार्य को इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों ने उस समय तक महत्व प्रदान नहीं किया जबकि नवीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Younger Historical School) ने उसकी पुस्तक की ओर अपना ध्यान आकर्षित नहीं किया जिसका सन् १८८३ में एक नया संस्करण प्रकाशित हुआ था ।

(४) गस्टैव श्मौलर (Gustav Schmoller)

गस्टैव श्मौलर का जन्म सन् १८३८ में जर्मनी में हुआ था । उसके द्वारा रचित महत्वपूर्ण पुस्तक "सामान्य आर्थिक सिद्धान्त की रूप रेखा" (Outline of General Economic Theory) सन् १९०० में प्रकाशित हुई । श्मौलर नवीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय का प्रमुख नेता था । उसका कहना था कि आर्थिक इतिहास और सांख्यिकी की सहायता से सम्पूर्ण अनुभववाद (Empiricism) की स्थापना की जा सकती है तथा इसी की सहायता से वास्तविक राजनैतिक अर्थव्यवस्था की स्थापना की जा सकती है । अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए प्रणाली सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करते हुए श्मौलर ने बताया कि आगमन और निगमन दोनों ही प्रणालियां आवश्यक हैं । उसने बताया कि इन दोनों प्रणालियों में से किसी एक प्रणाली के सहारे रहना उचित नहीं है क्योंकि यदि हमारी आधारभूत मान्यताएं ठीक नहीं हैं तब तर्कों द्वारा प्रस्तुत किए गए निष्कर्ष भी ठीक सिद्ध नहीं होंगे । यह स्मरणीय है कि श्मौलर प्राचीन ऐतिहासिक शाखा के विचारकों से भी सहमत नहीं थे क्योंकि उन्होंने परम्परावादियों की आलोचना तो की परन्तु वे अपनी किसी विशिष्ट प्रणाली का प्रतिपादन नहीं कर सके । श्मौलर ने दोनों अध्ययन प्रणालियों के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा कि जिस प्रकार चलने के लिए दांये और बांये दोनों पैरों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अर्थविज्ञान के अध्ययन के हेतु

आगमन और निगमन दोनों प्रणालियों की आवश्यकता होती है।[1] उसने बताया कि इतिहास, अनुभव तथा परीक्षण के आधार पर तथ्यों एवं आँकड़ों को एकत्रित करना चाहिए तथा इनकी सहायता से आर्थिक नियमों का प्रतिपादन करना चाहिए। प्रो० हेने के मतानुसार "अपनी विचार धारा के परिपक्व होने के साथ-साथ श्मोलर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उचित प्रणाली ऐतिहासिक और सांख्यिकी परीक्षण से प्राप्त आगमन प्रणाली का मानवीय प्रकृति की सम्पत्ति से प्राप्त निगमन प्रणाली के साथ समन्वय किया जाना है।"[2]

श्मोलर ने परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित विश्वादिता के सिद्धान्त का भी खण्डन किया। उसने बताया कि हरएक देश की प्राकृतिक एवं आर्थिक दशाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अतएव यह आवश्यक नहीं कि जो आर्थिक नियम एक देश की आर्थिक परिस्थितियों में लागू होता है वह दूसरे देश की आर्थिक दशाओं में भी लागू हो सके। इस तरह श्मोलर ने बताया कि आर्थिक नियम सापेक्षिक (Relative) है जो कि देश और काल के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। अत में, श्मोलर ने *परम्परावादियों के स्वहित के सिद्धान्त का विरोध करते हुए बताया कि मनुष्य में* केवल मात्र स्वहित की भावना ही नहीं पाई जाती वरन् उसमें अनेकानेक भावनाओं का उद्गम होता है क्योंकि उसपर सामाजिक पर्यावरण (Social Envicronment) अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इस तरह श्मोलर ने अर्थशास्त्र को समाजशास्त्र (Socialogy) का एक अंग स्वीकार करके यह सुझाव रक्खा कि मनुष्य के सम्पूर्ण पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही अर्थशास्त्र को आगे बढ़ना चाहिए।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के आलोचनात्मक विचार (The Critical Ideas of The Historical School)—ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विभिन्न विचारकों के विचारों में अन्तर होना स्वाभाविक है तथा विचारों के अन्तर के आधार पर ही सम्पूर्ण *ऐतिहासिक सम्प्रदाय* को दो विभिन्न शाखाओं अर्थात् प्राचीन एवं नवीन ऐतिहासिक शाखाओं में विभाजित किया जाता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परावादी विचारकों पर तीन आरोप लगाए हैं—

(i) *उनके सिद्धान्तों की विश्ववादिता की मान्यता ठीक नहीं है* (It is pointed out that their belief in the universality of doctrines is not easily justified).

---

1 "Induction and deduction are both necessary for the science, just as the right and left foot are needed for walking." —Schmoller.

2 "As his thought matured, Schmoller came to hold that the proper method is combination of induction from historical and statistical observation with deduction from the known . . human nature."

(ii) अहमवाद पर आधारित उनका मनोविज्ञान अपूर्ण है (Their psychology is said to be too crude, based as it is simply upon egoiosm).

(iii) उनके द्वारा निगमन प्रणाली का प्रयोग या बहिष्कार पूर्णतया अन्याय-पूर्ण है (Their use, or rather abuses of the deduction method is said to be wholly unjustifiable).

(i) ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने बताया कि स्मिथ (Smith) और उसके अनुयाइयों द्वारा सबसे बड़ा अपराध यह किया गया कि उन्होंने अपने सिद्धांतों की विश्ववादिता पर बल डाला। परम्परावादियों की शिक्षाओं की इस विशेषता को हिल्डरब्रान्ड ने 'विश्ववाद" (Universalism) की संज्ञा दी तथा कार्ल नीस ने 'निरंकुशवाद" (Absolutism) की संज्ञा दी। ऐंग्लो-फ्रेंच सम्प्रदाय (Anglo-French School) का ऐसा विश्वास था कि उनके द्वारा प्रतिपादित आर्थिक नियम सभी स्थानों और सभी कालों में कार्यान्वित होते हैं तथा इन पर आधारित राजनैतिक अर्थव्यवस्था की पद्धति भी अपने कार्यान्विन में सार्वभौमिक है। दूसरी ओर ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने बताया कि आर्थिक नियम सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से परिवर्तनशील हैं। व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक दृष्टि से आर्थिक नियम किसी विशेष समय और स्थान में ही लागू हो सकते हैं. प्रत्येक देश काल में इनका क्रियाशील होना स्वाभाविक नहीं हैं। उदाहरण के लिये स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धांत (Laisseze faire Doctrine) को लीजिये। इस सिद्धांत में निःसंदेह सत्यता निहित है, परन्तु हरएक देशकाल में इस नियम का कार्यशील होना सम्भव नहीं है क्योंकि आर्थिक प्रगति की दौड़ में पिछड़े हुए देशों के लिये स्वतन्त्र व्यापार की नीति अहितकर सिद्ध होगी अर्थात् ऐसे देशों का कल्याण तो स्वतन्त्र व्यापार की नीति की अपेक्षा संरक्षित व्यापार की नीति को अपनाने में निहित है। व्यावहारिक दृष्टि से भी आर्थिक नियमों में केवल सापेक्षिक (Relative) मूल्य ही होता है। इसके अतिरिक्त परम्परावादी विचारकों ने आर्थिक नियमों को भौतिक एवं रासायनिक नियमों के अनुरूप बताया था। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने इस सम्बन्ध में आपत्ति प्रकट करते हुये बताया कि आर्थिक नियम भौतिक एवं रासायनिक नियमों के अनुरूप स्थाई नहीं होते बल्कि देश-काल के अनुरूप परिवर्तनीय होते हैं। कार्ल नीस के शब्दों में, "आर्थिक जीवन की दशाएं आर्थिक सिद्धांत के स्वरूप एवं प्रकृति का निर्धारण करती हैं। प्रयुक्त तर्कों एवं उनसे निकाले गये निष्कर्षों की दोनों ही प्रक्रियाएं ऐतिहासिक विकास की उत्पाद हैं। तर्क आर्थिक जीवन के तथ्यों पर आधारित होते हैं और परिणाम ऐतिहासिक समाधान के सूचक होते हैं। अर्थशास्त्र का सामान्यीकरण केवल मात्र ऐतिहासिक व्याख्याएं तथा सत्य की प्रगतिशील घोषणाएं हैं। विकास की प्रत्येक दशा में सामान्यीकरण का प्रत्येक [illegible] एक सापेक्षिक सत्य है। कोई अकेला सूत्र अथवा ऐसे सूत्रों का कोई समूह

प्रतिमें होने का दावा नहीं कर सकता।" प्राश्ले (Ashley) ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है, "राजनैतिक अर्थव्यवस्था पूर्णरूपेण वास्तविक सिद्धांतों की एक निकाय नहीं है वरन् न्यूनाधिक मूल्यवान सिद्धांतों एवं सामान्यीकरण की निकाय है"'इस प्रकार वर्तमान प्राधुनिक सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से सत्य नहीं है, वे भूतकालीन परिस्थितियों के लिये ही सम्भव है क्योंकि भूतकाल मे ऐसी दशायें नहीं थी जिनकी इनमे कल्पना की गई है और ये परिवर्तनशील भावी दशाओं के लिए भी सत्य नहीं है।"[1] इस प्रकार इस सम्प्रदाय के विचारकों का कहने का अभिप्राय यह है कि ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ नवीन तथ्य एवं परिवर्तन आते रहते हैं और उन्हीं के अनुरूप आर्थिक नियमों को बदलना पड़ता है। इस प्रकार आर्थिक नियम सामान्य न होकर विशिष्ट होते हैं जोकि विशिष्ट दशाओं मे ही क्रियाशील होते हैं।

इस तरह स्पष्ट है कि जहां तक आर्थिक नियमों का सम्बन्ध है ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों के विचार तर्कसंगत हैं, परन्तु उनका यह कहना गलत है कि भौतिक एवं रासायनिक नियम अटल और विश्वव्यापी है। प्रो० मार्शल ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये नियम भी पूर्वकल्पनाओं (Assumptions) पर आधारित हैं तथा प्रतिबंधित (Conditional) होते हैं। वस्तुतः भौतिक एवं आर्थिक नियमों में अन्तर केवल इतना है कि भौतिक नियम अपेक्षाकृत स्थिर अधिक होते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत की गई आलोचना एक बड़ी सीमा तक उचित है।

एक स्थल पर प्रो० मार्शल ने भी जे० एस० मिल के विचार को स्वीकार करके आर्थिक नियमों को "आर्थिक प्रवृत्तियों की व्याख्या" (Statement of Economic tendencies) बताया है।

जहाँ तक विशुद्ध राजनैतिक अर्थव्यवस्था के संस्थापकों का संबन्ध है, यद्यपि उनकी पद्धति ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों की पद्धति से सर्वथा भिन्न है, तथापि उन्होंने समान निवारण के उपाय अपनाए हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि विज्ञान के निष्कर्ष पूर्वकल्पनाओं पर आधारित होते हैं तथा ये निष्कर्ष कुछ समय के हेतु ही सत्य सिद्ध होते हैं। वालरस (Wasras) के शब्दों मे, "विशुद्ध अर्थशास्त्र को

1 "Political economy is not a body of absolutely true doctrines, revealed to the world at the end of the last and the begining of the present century, but a number of more or less valuable theories and generalizations...Modern economic theories, therefore, are not universally true, they are true neither for the past, when the conditions they postulate did not exist, nor for the future, when, unless society becomes stationary, the conditions will have changed."

अपने विनिमय, मांग-पूर्ति, पूंजी और आय के अभिमत वास्तविक जीवन से ग्रहण करने हैं तथा इन धारणाओं से उसे आदर्श का निर्माण करना है जिसके ऊपर अर्थशास्त्री अपनी तर्क-शक्ति को व्यवहृत करता है।"[1] विशुद्ध अर्थशास्त्र प्रतियोगिता के प्रभावों का अध्ययन वास्तविक जीवन की अपूर्ण दशाओं के अन्तर्गत नहीं परन्तु एक काल्पनिक बाजार की क्रियाशीलता के अंतर्गत करता है जहां कि हरएक व्यक्ति अपने निजी हित को समझता हुआ पूर्ण पब्लिसिटी के अन्तर्गत उन्हें प्ररित करता है।

(ii) ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों पर दूसरा आरोप उनके संकुचित दृष्टिकोण तथा अपर्याप्त मनोविज्ञान के विरुद्ध लगाया है। एडम स्मिथ और उसके अनुयाइयों का मत था कि व्यक्ति प्रत्येक आर्थिक क्रिया निजी-हित की भावना से प्ररित होकर करता है तथा अंतिम उद्देश्य लाभार्जन होता है। परन्तु ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने बताया कि आर्थिक जगत में व्यक्तिगत हित एक मात्र प्रेरणा नहीं होता है अपितु स्वार्थ के अतिरिक्त मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं को उसकी अनेक आकांक्षाएं, सामाजिक बन्धन, देश-प्रेम, दया-भावना, रीति-रिवाज आदि अनेकानेक तत्व भी प्रभावित करते हैं। परम्परावादी विचारकों ने यह बताया था कि व्यक्ति स्वहित की भावना से प्ररित होकर कार्य करता है। उनकी इस धारणा को कार्लनीस ने अहमवाद (Egoism) की संज्ञा प्रदान की। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने इस संदर्भ में कहा है कि यदि हम व्यक्तिगत-हित की भावना को अहमवाद की संज्ञा न भी प्रदान करें तब भी ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों द्वारा परम्परावादियों पर लगाया गया यह आरोप सत्य ही प्रतीत होता है। लेकिन यहां पर ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने यह बड़ी भूल की कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था का प्राथमिक उद्देश्य जनसमूह की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करना है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने समूह का अध्ययन किया था, व्यक्ति का नहीं। कुछ व्यक्तियों को अपवाद स्वरूप छोड़कर व्यक्तिगत हित की भावना सभी जनसमुदाय में पाई जाती है।[2] प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) का भी यहीं मत है कि व्यक्तियों को आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में स्थिर रूप से प्रभावित करने वाली केवल स्वार्थ ही प्रवृत्ति ही होती है। उसने कहा कि, 'यह मान्यता उन लेखकों के व्यवहार को जिन्होंने इसे अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भिक विन्दु स्वीकार किया न्यायोचित ठहराने तथा व्याख्या करने के हेतु कुछ करती है" (This Consideration doess omething to explain and to justify the condust of those writers who took this as the starting point of the irstudy of economics.)।

1 "Pure economics has to borrow its notion of exchange of demand and supply, of capital and renenue, from actual life and out of those conceptions it has to build the ideal or abstract type upon which the economist exercise his reasoning power." —Walras.

2 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 397.

यह स्मरणीय है कि ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों द्वारा परम्परावादी सम्प्रदाय के अहमवाद पर लगाये गये आरोप ने एक लम्बे समय तक अर्थशास्त्रियों को प्रभावित किया है। आधुनिक युग के अर्थशास्त्री जैसा कि मार्शल ने कहा है 'आर्थिक या कल्पित मनुष्य के अध्ययन की अपेक्षा वास्तविक मनुष्य के अध्ययन से सम्बन्धित है और यदि आधुनिक अर्थशास्त्री मानवजाति को प्रभावित करने वाली लाभ की भावना पर अधिक ध्यान देते भी हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि ये विचारक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को "अहमवाद के प्राकृतिक इतिहास" (Natural History of Egoism) तक सीमित करना चाहते हैं, अपितु इसका कारण यह कि वर्तमान जगत में केवल द्रव्य ही व्यापक स्तर पर मानवीय प्रवृत्तियों को मापने का एकमात्र साधन है।

(iii) ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने परम्परावादियों द्वारा अपनाई गई निगमन प्रणाली (Deductive Mehood) की भी आलोचना की जोकि उनके द्वारा की गई क्लासिकवादियों के संकुचित मनोविज्ञान की आलोचना से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। इन विचारकों ने बताया कि निगमन प्रणाली के स्थान पर आगमन प्रणाली का अपनाना उचित है क्योंकि निगमन प्रणाली पूर्वकल्पित मान्यताओं पर आधारित है जिसमें दोषपूर्ण परिणाम निकलने की सम्भावना अधिक रहती है। परन्तु आगमन प्रणाली के अंतर्गत तथ्यों के संग्रहण, निरीक्षण आंकड़ों के एकत्रीकरण तथा ऐतिहासिक घटनाचक्रों के अध्ययन के द्वारा अधिक ठोस परिणाम निकाले जा सकते हैं। वास्तव में ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों द्वारा निगमन प्रणाली के स्थान पर केवल मात्र आगमन प्रणाली को अपनाने का सुझाव देना उतना ही दोषपूर्ण है जितना दोषपूर्ण परम्परावादियों द्वारा आगमन प्रणाली के स्थान पर केवल मात्र निगमन प्रणाली को ही अपनाने का सुझाव देना है। वस्तुतः जैसा कि श्मोलर (Schmoller) ने कहा है अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए निगमन (Deductive) और आगमन (Inductive) दोनों ही प्रणालियों की उतनी ही समान महत्ता है जितनी कि भ्रमण के लिए दायें और बायें पैर की आवश्यकता है। प्रसिद्ध लेखक बूचर (Bucher) के शब्दों में, "यह सर्वाधिक संतुष्टि का विषय है कि विशेष-सामग्री के उद्योगी एकत्रीकरण के पश्चात् वर्तमान वाणिज्य की आर्थिक समस्याएं विगत काल में ग्रहण की गई तथा पुरानी पद्धति को विकसित करने एवं सुधारने का प्रयास उसी रूप में किया गया जिस रूप में यह प्रकट हुई थी। अन्वेषण की एक मात्र पद्धति जोकि हमें वाणिज्यिक घटक के गूढ़ कारणों तक पहुंचा देगा, एकांगी है इसी प्रकार आगमन की एकमात्र पद्धति भी वर्तमान समाज की अनेक आर्थिक समस्याओं का पूर्ण अध्ययन नहीं कर सकती"।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रचनात्मक विचार (The Positive Ideas of the Historical School) :—ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों के आलोचनात्मक विचारों को महत्ता प्राप्त करने का मूल कारण यह है कि इन विचारकों का अर्थ-

विषमता एवं वास्तविकता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। इसी कारण परम्परावादियों को यान्त्रिक प्रणाली को संकीर्ण कह कर उसकी आलोचना की गई वस्तुतः यह प्रणाली व्यवहारिक दृष्टि से समाज के लिये उपयोगी नहीं थी क्योंकि आर्थिक जगतमें निरन्तर परिवर्तन होने के कारण उसकी परिस्थितियों मे भी परिवर्तन हो जाता है जिनमें नवीन आर्थिक समस्याओं का उद्गम और विकास होता है जिनके सकाधान का यान्त्रिक प्रणाली मे कोई रास्ता नही बताया गया था।

परम्परावादियों के दृष्टिकोण के विपरीत ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने आर्थिक जगत की विषम समस्याओं का समाधान चेतनायुक्त (Organic) प्रणाली के द्वारा करने का प्रयास किया है। इन विचारकों ने बताया कि आर्थिक जगत में अनेक तरह की आर्थिक सस्थाएं होती है जिनके भिन्न-भिन्न किस्मो के कार्य होते है। फिर समाज में अनेक वर्ग होते हैं और इस तरह समाज के विभिन्न वर्गो के हितों में सघर्ष तक भी पाया जाता है। इसी प्रकार स्वतन्त्र प्रतियोगिता की क्रियाशीलता मे अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं जिसके कारण वास्तविक जगत में स्वतंत्र प्रतियोगिता कही भी नही पाई जाती। इसके अतिरिक्त सरकार की आर्थिक नीति भी सदैव बदलती रहती है तथा एक देश के व्यापारिक सम्बन्ध विभिन्न देशों के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदायवादी आर्थिक जगत की इन वास्तविक समस्याओं का अध्ययन करने के पक्षपाती थे।

इन सब बातों के संबंध मे यांत्रिक प्रणाली कुछ भी नही बताती। यह प्रणाली राष्ट्रों को विलग करने वाले आर्थिक विभेदों की व्याख्या करने का कोई प्रयास नही करती। इसका मजदूरी का सिद्धांत विभिन्न वर्गीय श्रमिकों के बारे मे अथवा इतिहास के उत्तरोत्तर काल मे उनकी खुशहाली के बारे मे कुछ भी नहीं बतलाता। इसका ब्याज का सिद्धान्त उन विभिन्न स्वरूपों के बारे मे कुछ नही बताता जिनके अन्तर्गत विभिन्न कालों मे ब्याज का उद्भव हुआ अथवा धात्विक एवं पत्र मुद्रा के क्रमिक विकास के बारे में भी यान्त्रिक प्रणाली मौन है। इसका लाभ का सिद्धान्त उद्योग के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों, इसके केन्द्रीयकरण एवं विस्तार इसकी व्यक्तिवादी एवं समूहवादी प्रवृत्ति आदि की सर्वथा उपेक्षा करता है। फिर इस प्रणाली के द्वारा व्यापारिक, औद्योगिक एवं खेतीहर लाभों के बीच अन्तर करने का भी कोई प्रयास नहीं किया गया। क्लासिकल अर्थशास्त्री उन सर्वभौमिक एवं स्थिर आर्थिक घटनाओं की खोज मे थे जिनका समाधान वे कुछ निश्चित नियमों के द्वारा कर सकें।

यान्त्रिक प्रणाली की धारणा की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसमें मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का चित्रण उसके पर्यावरण से विलग करके किया गया मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर उसके पर्यावरण का निर्णायक प्रभाव पड़ता है। आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति तथा इनसे उत्पन्न प्रभाव भौतिक और सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक दशाओं के अनुरूप विभिन्न होते है। एक देश

स्थिति, इसके प्राकृतिक स्रोत, इसके निवासियों का वैज्ञानिक एवं कलात्मक प्रशिक्षण उनका नैतिक एवं बौद्धिक चरित्र तथा उनके शासन की पद्धति भी आर्थिक संस्थाओं की प्रगति तथा वहां के निवासियों की खुशहाली की मात्रा का निर्धारण करती हैं। सामाजिक विकास की हरएक अवस्था में एक अथवा दूसरे तरीके से धन का उत्पादन किया जाता है, वितरण किया जाता है परन्तु प्रत्येक मानवीय समाज एक पृथक चेतनायुक्त इकाई का निर्माण करता है जिसमें ये कार्य एक विशेष तरीके से किए जाते हैं। अतएव यदि हम इस जीवन के सभी विभिन्न पहलुओं को समझाना चाहते हैं तो हमें इसकी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन उन परिस्थितियों के संदर्भ में करना पड़ेगा जिनसे वे प्रभावित होती हैं। रोश्चर के शब्दों में, "राष्ट्रीय जीवन अन्य प्रकार के अस्तित्व की तरह, एक सम्पूर्णता को संगठित करता है जिसके विभिन्न अंग परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होते हैं। किसी अकेले पहलू की पूर्ण समझदारी के लिए इस सम्पूर्ण का अध्ययन आवश्यक होता हैं। भाषा, धर्म, कला और विज्ञान, कानून, राजनीति और अर्थशास्त्र सभी का अध्ययन आवश्यक है।"[1] इस तरह ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने परम्परावादियों के अमूर्त सिद्धान्तों का खण्डन किया तथा अर्थशास्त्र को समाजशास्त्र का एक प्रमुख अंग बताया।

ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों का दूसरा रचनात्मक विचार यह है कि उन्होंने सामाजिक पर्यावरण को परिवर्तनशील बताकर परम्परावादियों द्वारा कल्पित स्थिर अर्थव्यवस्था का खण्डन किया। इन विचारकों ने बताया कि सामाजिक पर्यावरण सदैव समान नहीं रहता अपितु वह समय-समय पर परिवर्तित होता रहता है। सामाजिक दशा का परिवर्तन समय के परिवर्तन एवं विकास के अनुरूप होता रहता है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि किन्हीं भी दो युगों में सामाजिक स्थिति एकसी नहीं रहती जो दशा एक युग विशेष में रहती है वह दूसरे में अपना परिवर्तन कर लेती है और साथ ही साथ विगत युग की दशा से प्रभावित भी होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि यदि हम वर्तमान युग की आर्थिक दशा का अध्ययन करना चाहें तो हमें भूतकालीन आर्थिक एवं सामाजिक दशा का ज्ञान प्राप्त करना भी जरूरी होगा। जिस प्रकार प्रकृति शास्त्रियों (Naturalists) और भूगर्भ-शास्त्रियों (Geologist) ने वर्तमान को समझाने के हेतु ग्लोब के उद्भव की व्याख्या करने की कल्पना का आविष्कार किया है, उसी प्रकार अर्थशास्त्र के विद्यार्थी को भी विगतकाल की ओर लौटना पड़ेगा बशर्ते वह आज के औद्योगिक जीवन को

---

1 "National life, like every other form of existence, forms a whole of which the different parts are very intimately connected. Complete understanding even of a single aspect of it requires a careful study of the whole. Language, religion, arts and sciences, law, politics and economics must all be laid under tribute."

—Roscher.

समझना चाहता है। हिल्डेब्रान्ड के शब्दों में, "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते सभ्यता का शिशु तथा इतिहास की उपज है। उसकी आवश्यकताएं, उसका बौद्धिक दृष्टिकोण, उसका भौतिक पदार्थों से सम्बन्ध तथा अन्य व्यक्तियों के साथ उसके सम्बन्ध सदैव एकसे ही नहीं रहते। भूगोल उन पर प्रभाव छोड़ता है, इतिहास उन्हें सुधारता है, जबकि शिक्षा की प्रगति उन्हें पूर्णरूपेण परिवर्तित कर सकती है।[1]

इस तरह ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने आर्थिक संस्थाओं के ऐतिहासिक अध्ययन को महत्ता प्रदान करके अर्थशास्त्र के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया तथा विद्वानों को ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी के महत्व से परिचित कराया। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रचनात्मक विचारों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका लक्ष्य पूर्णरूपेण प्राकृतिक (Natural) और वास्तविक (Legitimate) है।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रचनात्मक विचारों की समालोचना (Criticism of the positive Ideas of Historical School):—प्रथमावलोकन में ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रचनात्मक विचार बड़े आकर्षक प्रतीत होते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये विचार सर्वथा दोष रहित हैं। प्रथम बात तो यह है कि क्या विज्ञान का उद्देश्य हमें समाज के वास्तविक एवं ठीक चित्र को प्रस्तुत करना है, जैसा कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों का विचार था? वस्तुतः बिना सामान्य अनुमान के, अरस्तू के मतानुसार किसी विज्ञान की स्थापना नहीं हो सकती तथा साथ ही साथ विज्ञान को वर्णन की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् एक विज्ञान या तो वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक (Explanatory or Descriptive) होना चाहिये। इसी तथ्य से प्रभावित होते हुये प्रो० मार्शल (Marshall) ने कहा है कि 'इतिहास केवल संयोगों एवं निष्कर्षों को बताता है, लेकिन अकेले तर्क के द्वारा ही व्याख्या की जा सकती है तथा उनसे शिक्षाएं प्राप्त की जा सकती है" (History tells of squences and coincidences but reason alone can interpret and draw lessons from them)। अतएव आलोचकों का कहना है कि परम्परावादियों द्वारा प्रतिपादित विचार ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक हैं। फिर यह भी कहा जाता है कि इतिहास स्वयं भी स्पष्ट नहीं है, यह वास्तविक घटनाओं का सही विश्लेषण नहीं करता और इस कारण यह कभी भी अर्थशास्त्र का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। अतः इतिहास अर्थशास्त्र के अध्ययन में सत्य के निकट पहुँचने में सहायक अवश्य हो सकता है परन्तु इसके द्वारा अर्थशास्त्र की स्थापना सम्भव नहीं है।

---

1 "Man as social being is the child of civilization and a product of history. His wants, his intellectual outlook, his relation to material objects, and his connexion with other human beings have not always been the same. Geography influences them, history modifies them, while the progress of education may entirely transform them."
—Hildebrand.

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचार-धारा ने काफी सीमा तक आगामी अर्थशास्त्रियों को प्रभावित किया है जिसके फल-स्वरूप आर्थिक नियमों के क्रमिक विकास में इस विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा का ही प्रभाव था कि आगामी विद्वानों ने आर्थिक संस्थाओं के अध्ययन को विशेष महत्व प्रदान किया। यह स्वीकार्य है कि ऐतिहासिक सम्प्रदाय ने अतिशय कल्पना तत्व को कम किया तथा आर्थिक नियमों के प्रतिपादन में समय व स्थान के महत्व की स्थापना की। यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह विचारधारा ही नव-परम्परावाद (Neo-Classicism) के उद्गम के लिये उत्तरदाई है। प्रसिद्ध नव-परम्परावादी विचारक मार्शल (Ma·shall) की विचारधारा पर ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त कॉम्टे (Comte), रिचार्ड जोन्स (Richard Jones), कीन्स (Keynes), इन्ग्राम (Ingram) आदि विद्वानों पर भी ऐतिहासिक सम्प्रदाय की विचारधारा ने स्पष्ट प्रभाव छोड़ा है।

———

१४

राज्य समाजवाद

(State Socialism)

प्राक्कथन—उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण तक आर्थिक जगत मे प्रत्येक प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप को निन्दनीय समझा गया तथा आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic liberty) और व्यक्तिगत प्रेरणा (Individual Initiative) का बोलबाला रहा। परन्तु उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दिनो मे जर्मनी मे एक विरोधी आन्दोलन ने जन्म लिया जिसमे आर्थिक स्वतन्त्रतावाद एवं व्यक्तिगत प्रेरणा का विरोध किया गया तथा प्रत्येक प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप को नैतिक कारणों से आवश्यक ठहराया गया। इस काल मे लगभग हरएक देश मे सरकारी क्रियाओं के विस्तार का समर्थन करने वाले साधारण लोगो और अर्थशास्त्रियों की संख्या बढ़ती गई तथा दो विश्व युद्धो के बाद तो ऐसे व्यक्तियो का निश्चित रूप से बहुमत हो गया है। कुछ लेखको के लिए विचारधारा का यह परिवर्तन एक नवीन सिद्धान्त के निर्माण का सूचक था। इस नवीन विचारधारा को अर्थात् "राज्य समाजवाद" (State Socialism) को जर्मनी मे "कुर्सी का समाजवाद" (Socialism of the Chair) की तथा फ्रांस मे "हस्तक्षेपवाद" (Interventionism) की संज्ञा दी गई।

वास्तव मे यह केवल मात्र आर्थिक प्रश्न ही नहीं है वरन् व्यावहारिक नीतियों का एक प्रश्न है जिसके ऊपर विभिन्न अर्थशास्त्री अपनी सैद्धान्तिक पूर्वधारणाओं

1. "The mineteenth century opeued with a feeling of contempt for government of every kind, and with unbounded confidence on the part of at least every publicist in the virtue of economic liberty and individual initiative. It closed a mid the clamour for state intervention in all matters affecting economic of social organization. In every country the uumher or public men and of economists who favour an extension of the economic function of government has been continually growing, and after two world wars, such men are certainly in the majority. To some writers with [change of opinion has seemed sufficiently important to warrant special treatment as a new doctrine, variously known as State Socialism or the Socialism of the Chair in Germany and Interventionism in France."

—Gide & Rist : History of Econ' [illegible]

या व्यक्तियों की छोटी संख्या के हित में नहीं है क्योंकि इन कार्यों एवं संस्थाओं से व्यक्ति या व्यक्तियों की छोटी संख्या को व्यय के अनुपात में लाभ प्राप्त नहीं हो सकता, यद्यपि परोक्ष रूप में सम्पूर्ण समाज को इनसे बड़ा लाभ प्राप्त होता है।"

(The sovereign sohuld undertake the duty of erecting and maintaining certain public works and certain public inssitutions, which it can never be for the interest of any individual, or small number of individuals, to erect and maintain, because the profit could never repay the expense to any individual or small number of individuals, though it may frequent by do much moret han repay it to agreat society.) दूसरी ओर वेन्टिग्टन ने राज्य के केवल दो कर्तव्य ही निर्धारित किए अर्थात् सार्वजनिक सुरक्षा की व्यवस्था करना (To Guard Public Security) तथा सामान्य भूमि का प्रबन्ध करना (To Administer the Common Land)। इस दृष्टिकोण से राजकीय हस्तक्षेप की समस्या, विशुद्ध आर्थिक हस्तक्षेप को छोड़ते हुए राज्य की प्रकृति, क्षेत्र एवं कार्यों के निर्धारण का प्रश्न बन जाता है तथा व्यक्तिगत स्वभाव और सामाजिक परम्पराएँ आर्थिक तर्क शक्ति या आर्थिक घटक की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भाग अदा करती हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ लेखकों ने यह सोचा कि अर्थशास्त्र का एक उद्देश्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं उसके अधिकारों की सुरक्षा करना था।

परन्तु कुछ समय बाद इस विचारधारा की प्रतिक्रिया हुई तथा विरोधी सम्प्रदाय के लेखकों ने सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन किया। सन् १८५६ में फ्रेंच लेखक ड्यूपो व्हाइट (Dupont White) ने अपनी एक पुस्तक के द्वारा राजकीय क्रिया के ह्रास के विरुद्ध सुरक्षा की। उसके विचार जर्मन के राज्य समाजवादियों के विचारों से मिलते-जुलते थे। लेकिन उस समय जनमत उसके विरुद्ध था तथा जनता ऐसे व्यक्ति की आवाज सुनना नहीं चाहती थी जो कि राजनीति के क्षेत्र में तो उदार हो लेकिन राज्य की शक्ति बढ़ाने और उसे आर्थिक कार्य सौंपने की तीव्र इच्छुक हो। अतएव इस विषय पर जनमत को बदलने के हेतु अधिक अनुकूल दशाओं की आवश्यकता थी। यह समय उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आया तथा ये तत्व जर्मनी में अनुकूल सिद्ध हुए जहाँ कि प्रतिक्रिया स्वयं दिखाई दी।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान में हम अर्थशास्त्रियों की एक ऐसी संख्या पाते हैं जिन्होंने स्मिथ के अबन्धवाद (Laissez Faire) के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी उसके कार्य क्षेत्र को सीमित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सोचा कि अबन्धवाद की सर्वोच्चता सदैव उचित नहीं है तथा कुछ मामलों में सरकारी हस्तक्षेप जरूरी है। दूसरी ओर इस काल में समाजवादियों की एक ऐसी संख्या भी थी जो कि व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा उत्पादन की स्वतन्त्रता को बुरा मानते थे लेकिन

श्रमिकों के माध्यम से तात्कालिक सरकार ने इस सम्बन्ध में अपील करने का प्रयास नहीं किया। राज्य समाजवाद इन दोनों प्रचलित विचारधाराओं से प्रभावित हुआ।

अबन्धवाद की अर्थशास्त्रियों द्वारा की गई आलोचना (The Economists' Criticism of Laissez Faire) :—अबन्धवाद के सिद्धान्त की आलोचना एडम स्मिथ के काल से ही प्रारम्भ हो गई थी। इस सिद्धान्त का समर्थन स्मिथ ने सार्वजनिक एवं निजी हित के सन्दर्भ में किया था। इस सिद्धान्त के द्वारा स्मिथ ने यह प्रदर्शित किया कि प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य-स्तर किस तरह लागत-व्यय के स्तर के बराबर हो जाता है, वस्तु की पूर्ति किस तरह अपने आप मांग के अनुरूप हो जाती है तथा किस तरह पूंजी प्राकृतिक रूप से अधिक लाभप्रद व्यवसायों में प्रवाहित होती है। यह स्मरणीय है कि यद्यपि रिकार्डो (Ricardo) और माल्थस (Malthus) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के पक्के समर्थक थे, तथापि उन्होंने अपनी सहमति स्मिथ के अबन्धवाद के सिद्धान्त को प्रदान नहीं की। सिसमाण्डी ने स्वतन्त्र प्रतियोगिता की कड़ी आलोचना की और बताया कि समाज में शक्तिशालियों द्वारा शक्तिहीनों का शोषण प्रतियोगिता के कारण ही होता है। इस तरह सिसमाण्डी ने स्मिथ के आशावादी विचार को दोषपूर्ण बताया। सन् १८३२ में जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक हरमैन (Hermann) ने क्लासिकल सिद्धान्तों की कटु आलोचना की और बताया कि व्यक्तिगत हित किस तरह सार्वजनिक कल्याण के मार्ग में बाधक है तथा व्यक्तिगत हित का सामान्य-समृद्धि की दिशा में किया गया योगदान किस तरह अपर्याप्त होता है। फ्रैड्रिक लिस्ट ने अपने विषय का आधार तत्कालिक हित को बनाया जो कि व्यक्ति को तथा राष्ट्र के स्थाई हित को निर्देशित करता है। इस प्रकार राष्ट्रीय हित की स्थापना करके लिस्ट ने आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक बताया।

जॉन स्टुआर्ट मिल (John Stuart Mill) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "सिद्धात" (Principles) के पांचवे भाग में हितों की समानता के सिद्धान्त की व्याख्या करने तक से भी इन्कार किया है। अहस्तक्षेप के प्रश्न पर उसने निजी-हित की एक आर्थिक प्रवृत्ति का तर्क प्रस्तुत किया है परन्तु शीघ्र ही वह इस प्रवृत्ति की कमजोरियों को स्वीकार कर लेता है तथा एकाधिकार को रोकने और श्रमिकों की दशा को सुधारने की दिशा में सरकारी हेस्तक्षेप को आवश्यक ठहराता है। उसने अपनी दूसरी पुस्तक "स्वतन्त्रता" (Liberty) में भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है कि "व्यापार एक सामाजिक विधान है, प्रत्येक व्यापांरी का बरतावा समाज के न्याय से आता है और जिस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सिद्धान्त स्वतन्त्र-व्यापार के सिद्धान्त में सन्निहित नहीं है, उसी प्रकार इस सिद्धांत की सीमाओं के सम्बन्ध में उत्पन्न मुख्य प्रश्नों में से है, उदारणार्थ-मिलावट की धोखादेही को रोकने के हेतु सार्वजनिक नियंत्रण की कितनी मात्रा की आवश्यकता है, भयानक व्यवसायों में

लगे श्रमिकों की सुरक्षा के हेतु व्यवस्था कितनी की जाये···लेकिन इन उद्देश्यों के हेतु उन व्यक्तियों को कानूनन नियंत्रित करना सिद्धान्त मे स्वीकार्य है।" फांसीसी विद्वान केवालियर (Chevaliar) ने मिल के सरकारी न्यायोचित कर्त्तव्य सम्बन्धी विचार को और आगे बढ़ाते हुये कहा कि जिन विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि आर्थिक व्यवस्था की स्थापना व्यक्तिगत हित के माध्यम से कार्य शील प्रतियोगिता की सहायता द्वारा की जा सकती है, वे विचारक या तो अपने तर्कों में न्याय शास्त्र के विरुद्ध हैं। अथवा अपने उद्देश्यों में अबौद्धिक है। उसके विचार से सरकार राष्ट्रीय सगठन की प्रबन्धक है तथा इसका कर्त्तव्य सामान्य हित के मामले मे हस्तक्षेप करना है। लेकिन सरकार के कर्त्तव्य और स्वाधिकार ग्रामीण पुलिसमैन की तरह नही हैं। सार्वजनिक क्रियाओं के क्षेत्र में इस सिद्धात को लागू करते हुये यह बताता है कि वे न्यूनाधिक रूप में राजकीय मामले है तथा अच्छे काम की गारंटी उस समय अधिक है जबकि राज्य इन मामलों को स्वय अपने हाथ मे लेता है।[1]

सन् १८६३ में अन्य फ्रांसीसी विचारक कूर्नों (Curnot) ने अपने अपनी पुस्तक "Principes de la Theorie des Richesses" मे इस समस्या का गहराई से अध्ययन किया है। वह कहता है कि इन सामान्य हित अर्थात् आर्थिक आदर्श (Economic Optimum) की स्पष्ट परिभाषा देना क्या सम्भव है और क्या स्वतत्र प्रतियोगिता की प्रणाली अन्य सभी प्रणालियो से उत्तम है। कूर्नों ने बताया कि यह समस्या अघुलनशील (Insoluble) है। उत्पादन का निर्धारण माग से होता है जोकि स्वय धन के वितरण तथा उपभोक्ताओं के फैशन पर निर्भर करती है। यदि स्थिति ऐसी है तो एक आदर्श वितरण की रूपरेखा तैयार करना अथवा समाज के लिये अधिक अनुकूल फैशन निश्चित करना असम्भव होगा। इस तरह सिसमांडी की तरह कूर्नों भी अनेक मामलो मे सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक ठहराता है। यह स्मरणीय है कि इन सब विद्वानो ने सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करते हुये भी स्वतंत्रता को मौलिक सिद्धांत के रूप मे अपनाया। यद्यपि इन सब विचारको को राज्य समाजवाद का संस्थापक नही कहा जा सकता, तथापि इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन विद्वानों ने राज्य समाजवाद को उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान की।

राज्य समाजवाद का समाजवादी उद्भव (The Socialistic Origin of State Socialism) राज्य समाजवाद केवलमात्र एक आर्थिक सिद्धांत ही नही है अपितु इसका एक सामाजिक और नैतिक आधार भी है तथा इसका निर्माण न्याय के निश्चित आदर्श एवं राज्य व समाज के कार्य की विशेष धारणा के ऊपर हुआ है। इन आदर्श और धारणा को राज्य समाजवाद ने अर्थशास्त्रियों से प्राप्त नहीं किया वरन् समाजवादियों और विशेषकर रॉडबर्ट्स (Roobertus) और लासैल

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines P. 414.

(Lassalle) ने प्राप्त किया । इन दो विचारकों का उद्देश्य वर्तमान राज्य की शक्तियों को लोगों के हित में प्रयुक्त करते हुए वर्तमान और भावी समाज के बीच समझौता करना था । इन दोनों विचारकों ने परम्परावादी सम्प्रदाय के स्वतन्त्र प्रतियोगिता, अबन्धवाद, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आदि विचारों का खण्डन किया तथा सरकारी हस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया । इस तरह इन दोनों विचारकों को राज्य समाजवाद के पूर्वगामी कहा जा सकता है ।[1]

रोडबर्ट्स (Rodbertus)

जॉन कार्ल रोडबर्ट्स (Johaun Karl Rodbertus) का जन्म सन् १८०५ में जर्मनी में हुआ था । गॉटिंगन (Gottingen) और बर्लिन (Berlin) विश्व-विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करके वकालत प्रारम्भ की परन्तु सन् १८३४ में एक जमींदारी खरीदकर वह वकील से जमींदार बन गया । सन् १८४८ में वह प्रशिया की लोकसभा का एक सदस्य निर्वाचित हुआ । सन् १८७५ में रोडबर्ट्स की मृत्यु हो गई । आर्थिक विचारधारा के इतिहास में रोडबर्ट्स का अपना विशेष स्थान है । वस्तुत: समाजवादी विचारकों में मार्क्स के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण स्थान रोडबर्ट्स को ही प्राप्त है । उसने एक ऐसी धारा का निर्माण किया जिसके द्वारा सिसमोंडी (Sismondi) और सेन्ट साइमोनियन्स (Saint Simonions) द्वारा कथित विचार शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश के विचारकों तक पहुंचे । उसके द्वारा रचित प्रथम पुस्तक "हमारी आर्थिक दशायें" (Our Economic Conditions) सन् १८४२ में प्रकाशित हुई । परन्तु इस समय उसका कार्य जनता के प्रकाश में नहीं आया और यह तब हो सका जबकि सन् १८६२ में लासैल ने अपने ग्रंथ में उसे जर्मन का एक बड़ा अर्थशास्त्री कहकर घोषित किया और जबकि वैगनर (Wagner) और रुडोल्फ मेयर (Rudolf Mayer) जैसे रूढ़िवादी लेखकों ने अपना ध्यान उसके कार्य की ओर आकर्षित किया । इस तरह विगत शताब्दी के जर्मन लेखक उससे अत्यंत प्रभावित हुये । 'यह सत्य है कि उसके विचार मुख्यत: पूर्वकालिक फ्रेंच लेखकों के विचार हैं जिन्होंने उस समय अपने विचार व्यक्त किये जबकि आंदोलन अपनी बौद्धिक ध्वनि खो चुका था तथा जुलाई मोनार्की (July Monarchey) के संघर्ष में विलीन हो गया था, लेकिन रोडबर्ट्स की स्पष्ट तर्कशक्ति तथा क्रमबद्ध पद्धति जोकि उसके अर्थशास्त्र संबंधी ज्ञान से सम्बद्ध थी और जोकि उसके सभी पूर्ववर्तियों की तर्कशक्ति एवं पद्धति से उत्तम थी, ने इन विचारों को ऐसा स्थायित्व प्रदान किया जो कभी पहले प्राप्त नहीं था । समाजवाद का यह रिकार्डो, "जैसा कि उसे वैगनर ने कहा हैं, ने अपने पूर्ववर्तियों के सिद्धांतों के निमित्त वही कार्य किया जैसा

1 Prof Gide and Rist: Ibid, —Page 417.

कि कार्य करने में रिकार्डो अपने पूर्ववर्तियों अर्थात् माल्थस और एडम स्मिथ के निमित्त करने में सफल हुआ। उसने उनके कार्य से अच्छे परिणाम निकाले तथा उनके मौलिक प्रमाणों पर बल डाला।[1]

रौडबर्ट् स की विचारधारा पर औद्योगिक आन्दोलन के दुष्परिणामों, यथा-अत्युत्पादन की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, श्रमिकों के शोषण की समस्या, सेवायोजकों एवं श्रमिकों के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्ष की समस्या, श्रमिकों को नाना प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने की समस्या आदि विभिन्न समस्याओं ने प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त उसकी विचारधारा पर फ्रांस के समाजवादी विचारकों, यथा-सेन्ट साइमन (Saint Simon), सेन्ट साइमोनियनस (Saint Simonians), प्राउडन (Proudhon) और सिसमाण्डी (Sismondi) के विचारों का गम्भीर प्रभाव पड़ा था। इस प्रकार रोडबर्ट् स समाजवादी विचारकों एवं तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित हुआ था और उसके अपने स्वभाव के अनुरूप शान्तिपूर्ण ढंग से इन समस्याओं के निराकरण का प्रयत्न किया है।

प्रो० जीड एण्ड रिस्ट के शब्दों में "रोडबर्ट् स का जिस वातावरण में पालन-पोषण हुआ था उससे यह जाहिर होता था कि वह उस जनतन्त्रवादी और मौलिक समाजवाद में संलग्न नहीं होना चाहिये था जिसका प्रचार काफी जनप्रिय हो गया था और जिसका सार्वजनिक प्रतिनिधि कार्ल मार्क्स (Karl Marx) था। मार्क्स ने समाजवाद और क्रांति, आर्थिक सिद्धान्त और राजनैतिक क्रिया को असण्डनीय माना था। दूसरी ओर रोडबर्ट् स एक स्वतन्त्र भूस्वामी था और इसका राजनैतिक विश्वास "सवैधानिक सरकार" और "राष्ट्रीय एकता" इन दो शब्द समुदायों में निहित था। लेकिन बिस्मार्कियन नीति द्वारा ग्रहण की गई सफलता ने उसे अपने जीवन के अंतिम समय राजतंत्र के निकट ला दिया था। उसका आदर्श एक ऐसा समाजवादी दल था जिसने सभी राजनैतिक क्रियाओं की घोषणा की हो और जिसका सम्पूर्ण ध्यान सामाजिक प्रश्नों पर केन्द्रित हो। उसका विचार था कि भावी दल एकदम राजतन्त्रीय, राष्ट्रीय और समाजवादी होना चाहिये अथवा किसी

1 "His ideas; it is true, are largely those of the earliest French socialists, who wrote before the movement had lost its purely intellectual tone and become involved in the struggle of the Jaly Monarchy, but his clear logic and his systematic method, coupled with his knowledge of economics, which is in every way superior to that of his predecessors, gives to these ideas a degree of permanence which they had never enjoyed before. This "Ricardo of Socialism" as Wagnercalls him did for his predecessors doctrines what Ricardo had succeeded in doing for those of Malthus and Smith, He magnified the good results of their work and emphasized their fundamental postulates." —Gide & Rist : Ibid; P. 418.

भी दर पर रूढ़िवादी और समाजवादी होना चाहिये। लेकिन साथ ही साथ वह उस समाजवादी-जनतन्त्रीय दल का भी पक्षपाती था जिसका उद्देश्य आर्थिक सुधार करना हो।"[1]

राजतंत्रीय नीति की अपने समाजवादी कार्यक्रम के साथ संधि करने की सम्भावना के उसके विश्वास के अतिरिक्त, उसने समाजवादियों की आर्थिक शिक्षाओं का परिहार किया। उसके तर्कपूर्ण मस्तिष्क ने उनकी स्थिति की कभी भी प्रशंसा नहीं की और उसकी कुर्सी के समाजवादियों (Socialists of the Chair) के प्रति अपूर्व घृणा थी। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने यह स्वीकार किया कि व्यवहार में समाजवाद को स्वमेव अस्थाई उपकरणों से सन्तुष्ट रहना चाहिए, यद्यपि उसका ऐसा विश्वास कभी नहीं हुआ कि इस तरह का समझौता सम्पूर्ण समाजवादी सिद्धान्त की रचना करता है। रोडबर्टस ने सन् १८७२ के सम्मेलन (Eiseuach Congress of 1872) में कुर्सी के समाजवादियों का सहयोग देने से इन्कार कर दिया और उसने इस समाजवाद को हर्षप्रधाननाटक (Comedy) की संज्ञा दी।

रोडबर्टस का सम्पूर्ण सिद्धान्त श्रम-विभाजन द्वारा निर्मित समाज की एक अवयवी धारणा पर आधारित है। उसने बताया कि एडम स्मिथ ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को व्यक्त किया कि समाज के सभी सदस्य ऐसे नियमों में परस्पर बंधे हुए हैं कि उनके कारण वे समाज के महत्वपूर्ण अंग बन जाते हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति आर्थिक समाज का एक अंग बन जाता है वैसे ही उसका निजी हित केवल ऊपर ही निर्भर नहीं रहता अपितु उसकी खुशहाली विशेषकर समाज के कार्यों एवं प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है। एडबर्ट्स ने सामाजिक कार्यों को तीन भागों में विभक्त किया–(i) मांग को पूरा करने के हेतु उत्पादन करने की व्यवस्था करना (The adaptation of Production to meet demond)। (ii) उपलब्ध साधनों के स्तर तक उत्पादन बनाए रखना (The mainteucnce of Produation at least up to the standard of the existing resources), (iii) उत्पादकों के बीच सामान्य उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (The Just Distribution of the common Pro-duce among the Producers)।

परम्परावादी विचारकों ने सामाजिक अवयव को एक जीवित वस्तु माना और बताया कि प्राकृतिक नियम का स्वतन्त्र कार्यशीलन इसके ऊपर वैसा ही लाभदायक प्रभाव रखता है जैसा प्रभाव मानवीय शरीर के ऊपर रक्त का स्वतन्त्र परिभ्रमण रखता है। इन विद्वानों के विचार से प्रत्येक सामाजिक कार्य निय मितता से होता रहेगा बशर्ते "स्वतन्त्रता" की सुरक्षा की जा सके। रोडबर्ट्स ने परम्परावादियों की इस मान्यता को गलत सिद्ध किया और कहा कि, "कोई भी राज्य किसी चेतन प्रयत्न के बिना प्राकृतिक नियम के द्वारा समुदाय की आवश्यकता की पूर्ति संतोषजनक नहीं कर सकता। राज्य एक ऐतिहासिक अवयव है अथवा एक विशेष प्रकार

1 Source : History of Economic Doctrines, P. 418–19.

का सगठन है जिसका निर्धारण स्वय राज्य के सदस्यो द्वारा होना चाहिए । प्रत्येक राज्य को अपने निजी कानून पास करने चाहिए तथा अपना निजी सगठन विकसित करना चाहिए । राज्य के सावयव स्वाभाविक रूप से विकसित नही हो सकते । वे राज्य द्वारा सुरक्षित, नियमित एव शक्ति सम्पन्न होने चाहिए ।"

(No State is sufficiently lucky or perhaps unfortunate enough to have the natural needs of the community satisfied by natural law without any couscious effort on the part of any one The State is an historical organism, and the particular kind of organization which it passes must be determine for it by the members of the State itself. Each State must pass its own law and develop its own organization. The organs of the State do not grow up spontaneously. They must be fostered, strengthened, and controlled by the State.)

सन् १८३७ के बाद हम रोडबर्टस को प्राकृतिक स्वतन्त्रता की पद्धति को राज्य निर्देशन की पद्धति से प्रतिस्थापित करने का समर्थन करते हुए पाते हैं तथा तथा उसका सम्पूर्ण कार्य ऐसी पद्धति के कार्यान्वियन को न्यायोचित ठहराने ठहराने का ही एक प्रयास है । निम्नोक्त मे हम रोडबर्टस द्वारा उल्लिखित सामाजिक कार्यो के उक्त तीनो भागो का आलोचनात्मक विवरण देंगे:—

(१) मांग और पूर्ति का सतुलन:—परम्परावादी विचारको का मत था कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन स्वमेव माग के अनुरूप हो जाता है क्योकि जब कभी किसी वस्तु की माग बढ़ती है जिसके कारण उस वस्तु का मूल्य बढ़ने लगता है तो तुरन्त ही उत्पादक अधिकतम लाभ पाने की प्रेरणा मे उस वस्तु का उत्पादन बढ़ा देते हैं और इस तरह कुछ समय मे ही वस्तु की पूर्ति उसकी मांग के बराबर हो जाती है इसी प्रकार यदि किसी समय किसी वस्तु की मांग कम हो जाती है जिसके कारण उस वस्तु का मूल्य गिरने लगता है । तो तुरन्त ही उत्पादक इस हानि से बचने के हेतु उत्पादन कम कर देते हैं और अनन्त वस्तु की पूर्ति उसकी मांग के अनुरूप हो जाती है । इस तरह परम्परावादियों का विचार था कि अल्पकाल मे माग व पूर्ति के बीच असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है परन्तु दीर्घकाल मे इन दोनो शक्तियो के बीच सतुलन स्थापित होने की प्रवृति होती है । परन्तु रोडबर्टस इस विचार का समर्थक नही था । उसने बताया कि स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत उत्पादन सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप नही होता अपितु प्रभावशाली मांग (Effective Demand) के अनुरूप के होता है जिसका अर्थ यह है कि केवल वे ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकते हैं जिनके पास कुछ धन है और जिन व्यक्तियों के पास अपने श्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है तथा उनके श्रम की कोई माग भी नहीं हो, वे व्यक्ति सामाजिक उत्पादन मे कोई भी भाग पाने के अधिकारी नही होते । दूसरी ओर वह व्यक्ति जो कुछ आय कमाता है भले ही उसने इनके लिए कोई काम न किया हो, अपनी

भी दर पर रूढ़िवादी और समाजवादी होना चाहि
उस समाजवादी-जनतन्त्रीय दल का भी पक्षपाती था कि
करना हो।"[1]

राजतंत्रीय नीति की अपने समाजवादी कार्य
सम्भावना के उसके विश्वास के अतिरिक्त, उसने समाज
का परिहार किया। उसके तर्कपूर्ण मस्तिष्क ने उनकी
नही की और उसकी कुर्सी के समाजवादियों (Sociali
अपूर्व घृणा थी। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने यह स्व
समाजवाद को स्वमेव अस्थाई उपकरणों से सन्तुष्ट
ऐसा विश्वास कभी नहीं हुआ कि इस तरह का स
सिद्धान्त की रचना करता है। रोडवर्टस ने सन् १८७
Congress of 1872) में कुर्सी के समाजवादियों का
दिया और उसने इस समाजवाद को हर्षप्रधाननाटक (C

रोडवर्टस का सम्पूर्ण सिद्धान्त श्रम-विभाजन
अवयवी धारणा पर आधारित है। उसने वताया कि ए
तथ्य को व्यक्त किया कि समाज के सभी सदस्य ऐसे
कि उनके कारण वे समाज के महत्वपूर्ण अंग वन जा
आर्थिक समाज का एक अंग वन जाता है वैसे ही उस
निर्भर नहीं रहता अपितु उसकी खुशहाली विशेषकर
पर निर्भर करती है। एडवर्टसने सामाजिक कार्यों को
(i) मांग को पूरा करने के हेतु उत्पादन करने की व्य
tion of Production to meet demond) । (ii
उत्पादन वनाए रखना (The mainteucnce
the standard of the existing reso
उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (T'
Pro-duce among the Prod

सिसमाण्डी ने भी कुल और विशुद्ध उत्पादन के बीच अन्तर करते हुए उक्तभेद की व्याख्या की है। तभी से अनेक लेखकों ने इसभेद का स्पष्टिकरण किया है तथा इसका आर्थिक विचारधारा के इतिहास में कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

यह स्मरणीय है कि रोडबर्टस ने अधिकतम विशुद्ध उत्पादन की धारणा से जो निष्कर्ष निकाले हैं वे आलोचना के विषय रहे हैं। यदि हम उसके इस मत को स्वीकार कर लें कि सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि (व्यक्तिगत माँग नहीं) उत्पादन में निर्णायक कारक है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि वर्तमान समाज सरलता से प्रत्येक व्यक्ति की माँग को संतुष्ट नहीं कर सकता। परन्तु यदि समाज अपने सदस्यों पर आवश्यकताओं के पंचायती स्तर को (जिसकी संतुष्टि की जानी चाहिए) नहीं थोपता है अर्थात् दूसरे शब्दों में यदि माग और उपभोग को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो यह उस प्रणाली को अपनाकर ही हो सकता है जोकि उत्पादन की वर्तमान और भावी लगान-योग्यता (Rentablity) के बीच अंतर स्थापित करती है। विक्रय-कीमत और वास्तविक लागत-व्यय के बीच का अन्तर सामूहिकवादी समाज के द्वारा भी इस बात की जानकारी को एक प्रणाली के रूप में मान्यता प्राप्त होनी चाहिए कि किसी वस्तु से प्राप्त सतुष्टि इसमें सलग्न श्रम की मात्रा के बराबर होनी चाहिए। पैटरो (Patero) ने इस तथ्य का प्रमाण यह यह दिखाते हुए दिया है कि सामूहिकवादी समाज किस तरह सामाजिक माग को पूर्णतया सतुष्ट करने के हेतु कीमत की सूचनाओं का लेखा रक्खेगी।

(२) उपलब्ध साधनों के अनुरूप उत्पादन—समाज के दूसरे कार्य अर्थात् उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग करने के सम्बन्ध में रोडबर्टस ने वर्तमान काल में उत्पादकों में चेतन निर्देशन के अभाव तथा आर्थिक प्रशासन की सामान्य विशेषता अर्थात् यंत्रिकता से सम्बन्धित सेन्ट साइमोनियनस द्वारा की गई आलोचना को ही दोहराया है। वह इस सम्बन्ध में सिसमाण्डी के इस कथन से पूर्णतः सहमत हैं कि उत्पादन पूर्णतया पूंजीपति सम्पत्ति स्वामी के हित पर निर्भर करता है। इस मामले में उसने अपने नेताओं का अनुसरण किया तथा इस विषय में अपना कोई योगदान नहीं किया।[1]

(३) उत्पादकों के बीच उत्पादन का न्यायोचित वितरण—उक्त दो कार्यों के अतिरिक्त रोडबर्टस ने एक तीसरे आर्थिक कार्य का उल्लेख किया है जिसको समाज द्वारा पूरा किया जाना चाहिए और जिसे रोडबर्टस ने सब कार्यों से उत्तम ... किया है। यह तीसरा आर्थिक कार्य है—सामजिक उत्पादन का न्यायोचित ... सिसमाण्डी तथा अन्य समाजवादी लेखकों के विचारों में विश्वास करते ... वितरण की समस्या का समाधान तथा आर्थिक सकट जैसे आर्थिक घटक को अर्थशास्त्र की सबसे भंयकर समस्या है। रोडबर्टस के मतानुसार न्यायोचित ... प्रत्येक श्रम के उत्पादन की सुरक्षा करनी चाहिए। परन्तु साथ ही साथ ...

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P.

इच्छा के उद्देश्य के हेतु अपनी मांग को प्रभावशाली बना सकता है। परिणामतः बहुत से अधिक इच्छुक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को भी सन्तुष्ट नहीं कर पाते जबकि दूसरे विलासता में डूबे रहते हैं। इस प्रकार रोडवर्टस का कहने का अभिप्राय यह हैं कि अत्युत्पत्ति की दशा अकाल के वर्तमान स्वरूप अर्थात् बेकारी को जन्म देती है और जिसका निराकरण केवल मात्र सार्वजनिक या व्यक्तिगत उदारता के द्वारा ही सम्भव है। अतएव उसने माँग के अनुरूप उत्पादन को सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन से प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा। पहली बात तो उस समय को मालूम करने आती है जिसे हरएक व्यक्ति उत्पादक कार्य में देने को तैयार हो तथा दूसरी बात यह ज्ञात करने की है कि उसी समय पर वस्तुओं की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी। उसने विचारा कि मनुष्यों की आवश्यकताएं सामान्य रूप में एक श्रेणी (Series) है तथा आवश्यक उद्देश्यों की संख्या व किस्म की गणना सरलतापूर्वक की जा सकती है। अतएव उस समय को जानते हुए जो कि समाज उत्पादक कार्य में देने को तैयार है, विभिन्न उत्पादकों के बीच उत्पादों को बांटने में कोई विशेष परेशानी नहीं होगी।

"वस्तुतः रोडबर्टस ने जो प्रस्ताव रखा है उसको कार्य रूप में लाना बहुत कठिनमय है। रोडबर्टस द्वारा अभिव्यक्त आवश्यकताओं की समानता की श्रेणियां केवल कल्पना लोक में ही मिल सकती हैं। व्यवहारिक जगत में जो कुछ हम देखते हैं वह यह है कि सामूहिक आवश्यकताओं की एक तुच्छ संख्या व्यक्तिगत आवश्यकताओं की बड़ी किस्म से सम्बद्ध होती है। वस्तुतः हरएक व्यक्ति की अपनी पृथक् आवश्यकताएं और अभिरुचि होती है। इस दशा में सामाजिक आवश्यकता को उत्पादन का आधार बना देने का अर्थ है—माँग और उपयोग की स्वतन्त्रता को दबा देना। यह आवश्यकताओं के एक पंचायती स्तर की सूचना है जिसकी संतुष्टि की जानी चाहिए और जो कि हरएक व्यक्ति पर लागू करना है। इस तरह सुधार का उपाय बुराई से अधिक हेयकर है।"[1]

परन्तु सामाजिक आवश्यकता और प्रभावशाली मांग के बीच का विरोध किसी भी तरह उसके तर्क को स्थिर नहीं करता। वस्तुतः रोडबर्टस का तर्क यह होना चाहिए कि आज का पूंजीवादी उत्पादक अपने व्यवसाय की व्याख्या अपने निजी हित की दृष्टि से करता है और उसका व्यक्तिगत हित उसे अपने यंत्रों को उन वस्तुओं के उत्पादन-कार्य में लगाने का बाध्य करता है जिनसे उसे अधिकतम विशुद्ध आय प्राप्त होती है। वह लाभ की मात्रा से अधिक संबन्धित होती है, उत्पत्ति की मात्रा-वृद्धि से बहुत कम। वह सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के हेतु उत्पादन नहीं करता वरन् इसलिए करता है कि इससे उसे लाभ या लगान की प्राप्ति होती है। लाभार्जन (Profit making) और उत्पादकता (Productivity) के बीच के इस भेद ने अनेक अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट किया है।

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 421-22

सिसमाण्डी ने भी कुल और विशुद्ध उत्पादन के बीच अन्तर करते हुए उक्तभेद की व्याख्या की है। तभी से अनेक लेखकों ने इसभेद का स्पष्टिकरण किया है तथा इसका आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

यह स्मरणीय है कि रोडबर्टस ने अधिकतम विशुद्ध उत्पादन की धारणा से जो निष्कर्ष निकाले है वे आलोचना के विषय रहे हैं। यदि हम उसके इस मत को स्वीकार कर लें कि सामाजिक आवश्यकताओ की संतुष्टि (व्यक्तिगत मांग नही) उत्पादन मे निर्णायक कारक है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि वर्तमान समाज सरलता से प्रत्येक व्यक्ति की मांग को संतुष्ट नही कर सकता। परन्तु यदि समाज अपने सदस्यो पर आवश्यकताओं के पचायती स्तर को (जिसकी संतुष्टि की जानी चाहिए) नही थोपता है अर्थात् दूसरे शब्दो मे यदि माग और उपभोग को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो यह उस प्रणाली को अपनाकर ही हो सकता है जोकि उत्पादन की वर्तमान और भावी लगान-योग्यता (Rentablity) के स्थापित करती है। विक्रय-कीमत और वास्तविक लागत-व्यय के बीच सामूहिकवादी समाज के द्वारा भी इस बात की जानकारी को एक प्रणाली के मे मान्यता प्राप्त होनी चाहिए कि किसी वस्तु से प्राप्त सतुष्टि इसमे संलग्न श्रम की मात्रा के बराबर होनी चाहिए। पैटरो (Patero) ने इस तथ्य का प्रमाण यह यह दिखाते हुए दिया है कि सामूहिकवादी समाज किस तरह सामाजिक माग को पूर्णतया सतुष्ट करने के हेतु कीमत की सूचनाओ का लेखा रक्खेगी।

(२) उपलब्ध साधनों के अनुरूप उत्पादन—समाज के दूसरे कार्य अर्थात् उपलब्ध साधनो का अधिकतम उपयोग करने के सम्बन्ध मे रोडबर्टस ने वर्तमान काल मे उत्पादकों मे चेतन निर्देशन के अभाव तथा आर्थिक प्रशासन की सामान्य विशेषता अर्थात् पैत्रिकता से सम्बन्धित सेन्ट साइमोनियनस द्वारा की गई आलोचना को ही दोहराया है। वह इस सम्बन्ध मे सिसमाण्डी के इस कथन से पूर्णतः सहमत है कि उत्पादन पूर्णतया पूंजीपति सम्पत्ति स्वामी के हित पर निर्भर करता है। इस मामले मे उसने अपने नेताओं का अनुसरण किया तथा इस विषय मे अपना कोई योगदान नहीं किया।[1]

(३) उत्पादकों के बीच उत्पादन का न्यायोचित वितरण—उक्त दो कार्यो के अतिरिक्त रोडबर्टस ने एक तीसरे आर्थिक कार्य का उल्लेख किया हैं जिसको समाज द्वारा पूरा किया जाना चाहिए और जिसे रोडबर्टस ने सब कार्यो से उत्तम स्वीकार किया है। यह तीसरा आर्थिक कार्य है–सामाजिक उत्पादन का न्यायोचित वितरण। सिसमाण्डी तथा अन्य समाजवादी लेखको के विचारो मे विश्वास करते हुए कि वितरण की समस्या का समाधान तथा आर्थिक सकट जैसे आर्थिक घटक की व्याख्या अर्थशास्त्र की सबसे भयकर समस्या है। रोडबर्टस के मतानुसार न्यायोचित वितरण प्रत्येक श्रम के उत्पादन की सुरक्षा करनी चाहिए। परन्तु साथ ही साथ उसने यह

1 Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 123.

भी स्वीकार किया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता और व्यक्तिगत सम्पत्ति के वर्तमान साम्राज्य के अन्तर्गत उत्पादित धन का न्यायोचित वितरण सम्भव नहीं है।

आर्थिक विचारधारा की यांत्रिक प्रणाली के अनुसार साहसी श्रम, भूमि और पूंजी की सेवाओं को क्रय करता है तथा उसके सामूहिक प्रयत्न द्वारा किए गए उत्पादन को बेचता है। इन सेवाओं के बदले में वह जो कीमत चुकाता है (अर्थात् मजदूरी, लगान और ब्याज) और जो कीमत वह उपभोक्ताओं से प्राप्त करता है उनका निर्धारण मांग और पूर्ति की प्रतिक्रिया द्वारा होता है। मजदूरी, लगान और ब्याज के चुकाने के बाद जो कुछ शेष रहता है वही साहसी का लाभ है। उत्पादन का वितरण विनिमय रूपी यंत्र के माध्यम द्वारा होता है तथा इसकी कार्यशीलता का परिणाम प्रत्येक उत्पादक सेवा के बाजारू मूल्य को सुरक्षित रखना होता है। लेकिन क्या व्यवहार में विभिन्न उत्पादक सेवाओं के स्वामियों के बीच उत्पाद्रित धन का न्यायोचित वितरण होता है? यदि हम वर्तमान समाज की उत्पादन-प्रणाली का ध्यान पूर्वक मनन करें तो हमें ज्ञात होगा कि श्रमिक का शोषण हरएक भूस्वामी और हरएक पूंजीपति द्वारा किया जाता है। यद्यपि रोडर्बट्स ने बौद्धिक कार्य को अवमूल्यित नहीं ठहराया तथा निर्देशन शक्ति की महत्ता को कम नहीं समझा, तथापि उसने बौद्धिक प्रयाश को अशोषण योग्य साधन बताया और कहा कि इसकी लागत उसी प्रकार शून्य है जिस तरह की प्राकृतिक शक्ति की लागत शून्य होती है। उसके विचार से केवल शारीरिक श्रम (Manual Labour) के अन्तर्गत ही समय और शक्ति का ह्रास होता है अर्थात् ऐसा बलिदान होता है जिसको प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। परिणामतः रोडबर्ट्स ने उपभोग के विलम्बन में निहित बौद्धिक या नैतिक प्रयत्न को स्वीकार नहीं किया और वह स्मिथ की पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Nations) के प्रारम्भिक पैराग्राफ की व्याख्या करने लगता है, "हरएक राष्ट्र का वार्षिक श्रम एक कोष है जो कि मौलिक रूप से उस राष्ट्र की सभी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं की पूर्ति करता है जिन्हें वह वर्ष पर्यन्त तक उपभोग करता है और जिसमें या तो सदैव उसी श्रम का तात्कालिक उत्पादन या उसकी सहायता से दूसरे राष्ट्रों से किया गया क्रय-माल सम्मिलित रहता है।"

इस सम्बन्ध में रोडबर्ट्स की मनोवृत्ति एवं कार्ल मार्क्स की मनोवृत्ति का अन्तर भी उल्लेखनीय है। मार्क्स ने इंगलिश समाजवादियों के विचारों का विशेषकर तथा राजनैतिक अर्थव्यवस्था का सामान्य रूप से अध्ययन किया था। उसका एक उद्देश्य श्रम को समस्त मूल्य का स्रोत मानते हुए विनिमय के एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था। रोडबर्ट्स जिसने कि अपने विचार सेन्ट साइमोनियनस से प्राप्त किए थे, ने अपना ध्यान उत्पादक की ओर केन्द्रित किया था और उसने श्रम को प्रत्येक उत्पादन का वास्तविक स्रोत माना। रोडबर्ट्स ने कभी भी यह निश्चितपूर्वक नहीं कहा कि श्रम स्वमेव मूल्य का निर्माता है, लेकिन

दूसरी ओर उसने इससे इंकार भी नहीं किया। उसने सदैव यह विचार रखा कि सामाजिक प्रगति किसी उत्पाद के मूल्य और इस उत्पाद में लगे श्रम की मात्रा की समानता में निहित होनी चाहिए।[1] फिर यदि यह सत्य है कि श्रमिक ही एकमात्र वस्तु का निर्माता है लेकिन भूमि के स्वामी और पूंजीपति जो कि उत्पादन में कोई अंशदान नहीं करते, विनिमय को ऐसा स्वरूप देने के योग्य होते हैं कि वे उसमें से अपना भी हिस्सा निकाल लेते हैं, तब यह स्पष्ट है कि वर्तमान प्रणाली की समानता से सम्बन्धित हमारे निर्णय पर पुनः विचार होना चाहिये। रोडबर्ट्स ने इस तरह श्रमिक वर्ग के शोषण का मूल कारण वर्तमान सामाजिक पद्धति को बताते हुए कहा है कि वर्तमान सामाजिक पद्धति निजी भूस्वामियों और पूंजीपतियों के वितरित धन में अंश के दावे को मान्यता प्रदान करती है जबकि ये दोनों वर्ग धनोत्पादक में कोई अंशदान नहीं करते। इस तरह रोडबर्ट्स ने वितरण के पहलू की दोहरी व्याख्या की है। आर्थिक दृष्टि से विनिमय उत्पत्ति के हरएक साधन भूमि, पूंजी और श्रम को बाजार में अनुमानित उनके क्रमशः मूल्य के अनुपात में उत्पादित धन में से हिस्सा पाने का अधिकारी बना देता है। सामाजिक दृष्टि से विनिमय वास्तविक उत्पादकों अर्थात् श्रमिकों से उनके द्वारा मेहनत से उत्पन्न की गई वस्तुओं का एक भाग अलग कर देता है। इस अंश को रोडबर्ट्सने "लगान" की संज्ञा दी है जिसके अन्तर्गत पूंजीपति और भूस्वामी दोनों की आय सम्मिलित है।

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट का कथन है कि रोडबर्ट्स के अतिरिक्त अन्य किसी अर्थशास्त्री ने समस्या के दोहरे पहलुओं को स्पष्ट रूप से प्रकाश में नहीं रखा। दोनों दृष्टिकोणों के बीच के आन्तरिक विरोध को थामते हुए उसने इनके द्वारा उपस्थित की जाने वाली कठिनाइयों पर बल डाला। यद्यपि न्याय वितरण की इस प्रक्रिया को रोक सकता है लेकिन इस विषय में समाज उदासीन है बशर्ते उसकी अपनी आवश्यकताएं सन्तुष्ट होती रहें। समाज तो केवल इन उत्पादों और सेवाओं के बाजारू मूल्य का ही लेखा रखता है परन्तु उनकी उत्पत्ति अथवा उनमें सम्मिलित मौलिक प्रयत्नों अर्थात् उद्योगी श्रमिक के कठिनमय दिन और विलासी पूंजीपति का पारितोषक पाने का प्रयास की ओर कोई ध्यान नहीं देता। रोडबर्ट्स का विशेष गुण इस सत्य को पुराने अस्पष्ट विचारों से पृथक् करना तथा इस सत्य को स्पष्ट

1 "The coincidence between the value of the products and the quantity of labour involved in their production is simply the most ambitions ideal that economics has ever formulated." —Rodbertus.

रूप से अपने अनुयायी अर्थशास्त्रियों की निगाह में लाना था।[1]

रोडबर्ट्‌स द्वारा की गई आलोचना केवल यहीं समाप्त नहीं होती, यद्यपि वितरण सम्बन्धी सामाजिक एवं विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोणों के बीच के अन्तर का प्रदर्शन इसके विशेष गुण का परिचायक है। हम रोडबर्ट्‌स द्वारा इससे निकाले गये व्यावहारिक निष्कर्षों को नहीं भुना सकते। रोडबर्ट्‌स का दृष्टिकोण मजदूरी और ब्याज, ऊंचे या नीचे लगान की दर के निर्धारण के तरीके से ही सम्बन्धित नहीं है अपितु उसका दृष्टिकोण मुख्यतः श्रमिकों एवं श्रमिकों के बीच आय के अनुपातिक विभाजन से सम्बन्धित है। पहला प्रश्न विशुद्ध आर्थिक है तथा दूसरी सामाजिक समस्या की तुलना में द्वैतीयक महत्व का है। यह विश्वास करते हुये कि उसने श्रमिक वर्ग के शोषण की सम्भावना को व्यक्त कर दिया है, अब समस्या यह निर्धारण करने की है कि क्या यह समस्या निरन्तर जारी रहेगी। क्या आर्थिक प्रगति इस आशा का कोई क्षेत्र निर्धारित करती है कि लगान या अनार्जित आय शनैः शनैः विलुप्त हो जाएगी। वैस्टियाट (Bastat) और कैरे (Carey) ने सारात्मक उत्तर दिया है। उनका मत था कि पूंजी को जाने वाला अंश शनैः शनैः कम होता जा रहा है और इस तरह श्रम का अंश बढ़ता जा रहा है। रिकार्डो (Ricardo) ने भी इसी समस्या की व्याख्या की और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि खाद्यान्न की बढ़ती हुई लागत के अनुसार भूस्वामी का हिस्सा बढ़ता चला जाता है जे० बी० से० (J. B. Say) ने अपने ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में स्वभेव अपने सम्मुख ऐसा प्रश्न रक्खा है लेकिन उसका कोई उत्तर नहीं पा सका। रोडबर्ट्‌स ने उक्त निष्कर्षों में से किसी भी निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया अपितु वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ-साथ पूंजीपतियों। व्यवस्थापकों एवं भूस्वामियों का भाग तो बढ़ता जाता है परन्तु श्रमिकों का भाग घटता चला जाता है। जैसा कि हम पहले विवेचन कर चुके हैं मजदूरी की दर श्रम-बाजार में मांग व पूर्ति की प्रतिक्रिया के द्वारा निर्धारित होती है। श्रम की बाजारू कीमत की तरह सामान्य मूल्य के चारों

1 "No economist ever put the twofld aspect of the problem in a clearer light. Laying hold of the eternal opposition between the respective standpoints, he emphasizes the difficulties which they present to so many minds. Justice would relate distribution to merit, ut society is indlfferent provided its own needs are satisfled. Society mply takes account of the market value of these products and ervices without ever showing the least concern for their origin or fforts which they may originally have involved the weary day of the industrious labourer and the effortless lounge of the lazy capitalist being similarly rewarded. Rodbertus's great merit was to seprate this truth from the other issues so frequently confused with it in the writing of the earlier economists and to bring it clearly befor the notice of his fellow economists." —Gide & Rist : Ibide, P. 426.

और चक्कर काटती रहती है और यह सामान्य मूल्य रिकार्डो की आवश्यक मजदूरी से उत्पादक के अंश का माप उसके द्वारा उत्पादित मात्रा से नहीं होता वरन् उस मात्रा से होता है जोकि उसकी जनशक्ति को बनाए रखने तथा उसके बच्चो के पालन-पोषण के हेतु आवश्यक है। इसी विचार को आगे चलकर लासँल (Lassalle) ने लोह नियम (Brazen Law) कहकर पुकारा है।

ऐसे नियम को स्वीकृति प्रदान करते हुये और यह मानते हुये कि श्रम द्वारा उत्पादित धन का परिमाण सदैव बढ़ रहा है, एक साधारण गणितीय गणना इस प्रदर्शन के हेतु पर्याप्त है कि श्रमिको द्वारा प्राप्त की गई कुल मात्रा समान रहती है जोकि सम्पूर्ण उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ ह्रास की परिचायक है।

आर्थिक सकटो (Economic Crisis) की व्याख्या करने मे भी रोडबर्ट्स ने ऐसे ही प्रमाण का सहारा लिया है। उत्पादक वस्तुओ का उत्पादन उस समय तक बढ़ता रहता है जब तक कि वह सामाजिक माग की पूर्ण क्षमता को छू नही लेता। "अन्य वर्ग बाजार की सामाजिक उत्पादन की मात्रा के उस अनुपात मे प्रभावित कर सकते हैं जोकि उनको दी गई है। लेकिन उत्पादक विभिन्न वर्गीय माँगो के साइज में उत्पादित वस्तुओ की मात्राओ का निर्धारण कर सकते हैं।" रोडबर्ट्स के मतानुसार जब उत्पादन की वृद्धि और विस्तार होता है, श्रमिको का हिस्सा गिरता जाता है और इस तरह श्रमिक वर्ग की कुछ उत्पादो के हेतु माग स्थिर रूप से उत्पादन-स्तर से नीचे रहती है। इस दशा मे अति-उत्पादन (Over-production) की समस्या के कारण आर्थिक संकट उपस्थित हो जाता है। रोडबर्ट्स का आर्थिक सकट का सिद्धान्त सिसमाण्डी के आर्थिक संकट के सिद्धान्त के तुल्य है जोकि आर्थिक संकट की व्याख्या करने के बजाय साधारण रूप से एक बुराई की ओर सकेत करता है। इसका वैज्ञानिक मूल्य सिसमाण्डी के अन्य आनुपातिक वितरण के सिद्धान्त के मूल्य के समतुल्य है। इस सिद्धान्त जिसके ऊपर रोडबर्ट्स ने इतना बल डाला है, की रूपरेखा उसने अपनी पुस्तक "Forderungen" मे दी है तथा दूसरी पुस्तक "Soziale Briefe" मे इस सिद्धान्त को विकसित स्वरूप दिया है और इस सिद्धान्त को अपनी पूर्ण पद्धति का मौलिक विन्दु कहा है। इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने के सदर्भ में उसने सांख्यिकी प्रमाण भी दिये हैं लेकिन इसका महत्व रोडबर्ट्स की कल्पना से अधिक नही है।

सर्वप्रथम अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियो द्वारा उसके सिद्धान्त के आधार अर्थात् "मजदूरी का लोह नियम" (The Iron Law of Wages) की अकाट्यता पर सन्देह किया जाता है और यदि इस आधार को सत्य भी मान लिया जाए तो यह भी मानना पड़ेगा कि कुल उत्पादन मे से श्रमिकों का भाग केवल एक तथ्य पर ही निर्भर नही करता अपितु दो तथ्यो पर निर्भर करता है—अर्थात् मजदूरी की दर और श्रमिकों की सख्या। इस सदर्भ मे वैस्टियाट और रोडबर्ट्स द्वारा की गई भूल के समान है। वैस्टियाट ने कुल उत्पादन मे से पूंजीपति का हिस्सा केवल एक तथ्य के

आधार पर अर्थात् श्रम को इस के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास किया है। लेकिन इस मूल्य को स्वीकार करते हुए रोडबर्टस द्वारा पूंजी और [illegible] के [illegible] में आवश्यक [illegible] है तथा [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] किए [illegible] के विकास [illegible], इतिहासकारों [illegible] यह सिद्ध करता है कि रोडबर्टस दोनों में समय विस्तृत और इस सम्बन्ध में [illegible] के [illegible] आर्थिक [illegible] के भाग को प्रकृति प्रदत्त को नहीं दे और [illegible] बाद [illegible] के बाद [illegible] में [illegible] सिद्ध हुई है। यहां यह बात ध्यान रखने योग्य है कि [illegible] पूंजीपतियों [illegible] नहीं हुई अर्थात् श्रम पूंजी के विषय के [illegible] में [illegible] नहीं हुई है।

रोडबर्टस ने आर्थिक प्रशासन और सामाजिक उत्पादन के संबंध में कुछ व्यावहारिक विचार भी दिये हैं। वह कहता है कि श्रमिक को [illegible] पर समाज का [illegible] द्वारा [illegible] चाहिये। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को [illegible] में कुछ न कुछ उत्पादन करना चाहिये। वस्तुओं का मूल्य उन पर व्यय किये गये श्रम और समय की मात्रा पर निर्भर होना चाहिये। वस्तुओं का उत्पादन लाभ मूल्य पर आधारित करके नहीं किया जाना चाहिये अपितु समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ही उत्पादन किया जाना चाहिये। श्रमिकों से अतिरिक्त समय (Over-Time) काम नहीं लिया जाना चाहिए और यदि उनसे अतिरिक्त समय काम भी लिया जाय तो उस काम का उन्हें उचित पुरस्कार दिया जाना चाहिये। यह स्पष्ट है कि रोडबर्टस इन सब कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करता है और इस प्रकार एक उत्कट समाजवादी एक राज्य समाजवादी बन जाता है। इस प्रणाली में वह उपभोग और उत्पादन की प्रक्रिया पर कठोर नियंत्रण का भी पक्षपाती नहीं है। वह कहता है कि, "इस प्रकार की पद्धति के अन्तर्गत उतनी ही अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता रहेगी जितनी स्वतन्त्रता समाज के किसी अन्य स्वरूप में रह सकती है।" (There would be as much personal freedom under a system of this kind as in any other form of society)। लेकिन साथ ही साथ वह इस बात को भी स्वीकार करता है कि समाज में कुछ सीमा तक प्रतिबन्ध भी आवश्यक है। यहां पर यह बात महत्वपूर्ण है कि रोडबर्टस अपनी किस्म की सामाजिक प्रणाली की स्थापना क्रांति के द्वारा नही करना चाहता अपितु वह एक विकासात्मक क्रम (Evolutionery Process) को अपनाता है जिसके लिये वह इतिहास का सहारा लेता है। रोडबर्टस के शब्दों में, "जैसा कि मेरा विश्वास है इतिहास समझौतों की एक श्रेणी से अधिक कुछ नहीं है उसी प्रकार वर्तमानकालीन अर्थ विज्ञान की प्रथम समस्या श्रम, पूंजी और सम्पत्ति के बीच एक प्रकार का कार्यशील समझौता प्रभावशाली बनाने की है" (And So Ibelieve that sust as history is nothing but a series of compromises, the first problem that awaits economic science at the

present moment is that of effecting some kind of a working ... mise between labour, Capital, and property.) । १८ सितम्बर १८७३ भार० मेयर (R. Meyer) को लिखे अपने एक पत्र मे वह घोषणा करता है कि "सबसे बड़ी समस्या हमारी वर्तमान पद्धति से शांति पूर्ण विकास के .. गुजरने की है जोकि भूमि और पूंजी मे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित है, सामाजिक क्रम की यह उत्तम अवस्था इतिहास के प्राकृतिक कोर्स से सफल होगी जोकि केवल मात्र आय के स्वामित्व पर निर्भर होगी और जोकि स्वमेव सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओ मे दिखाई दे रही है।" (The great problem is to help us to pass by a peaceful evolution from our present system, which is based upon private property in land and capital, to that superior social order which must succeed in the natural course of history, which will be based upon desert ... the mere ownership of income, and which is already showing in various aspects of social life, as if it were already on the poi of coming in to operation.)

रोडबर्ट्स का उद्देश्य सामान्य विकास के अन्तर्गत श्रमिकों को एक हिस्सा देना था और इसी प्रकार की उन्होने योजना भी बनाई। परन्तु इसमे अनेक व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक कठिनाइयां उत्पन्न होने की सम्भावना है। एक तो वर्तमानकालीन समाज और भावी सामूहिकवाद के बीच समझौते को प्रभावशाली बनाना आश्चर्य की बात है। परन्तु इससे इस बात पर प्रकाश अवश्य पडता है कि रोडबर्ट्स का राज्य की सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभुता पर अटल विश्वास था और वह सरकार को प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा पूरी करने योग्य समझता था। लेकिन साथ ही साथ इससे यह भी प्रतीत होता है कि वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता रूपी आर्थिक प्रवृत्ति की ओर से उदासीन है। यह उदासीनता शनैः शनैः प्रतिवादी विरोध मे विलीन हो जाती है, यद्यपि केन्द्रीयकृत प्रशासन मे उसका विश्वास दृढ होता जा है। उसके इस विश्वास का पता उसके द्वारा प्रतिपादित राज्य के औरगैनिक सिद्धान्त से चलता है। राडबर्ट्स के शब्दों में, 'राज्य क्षमता और महत्व दोनों मे उन्नति करता जाता है, और इसका कार्य विस्तृत और गहन होता जाता है। राज्य अपनी एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी अवस्था मे गुजरने मे केवल मात्र पेचदगी की बडी मात्रा का ही प्रतिनिधित्व नही करता, प्रत्येक कार्य किसी विशेष सावयव द्वारा बड़ी मात्रा मे किया जाता है तथा प्रत्येक कार्य मे समरूपता की मात्रा बढ़ती जाती है। सामाजिक अवयव, उसकी बढ़ती हुई किस्मों के अतिरिक्त, एक दूसरे पर बढती हुई निर्भरता की स्थापना करता है तथा किसी केन्द्रीय अवयव से जुड़ा रहता है। दूसरे शब्दों में अवयवी हाइआर्ची मे प्राप्त सामाजिक अवयव द्वारा विशेष ग्रेड उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसके हेतु श्रम-विभाजन और केन्द्रीयकरण लाये गये हैं"

(The State advances both in magnitude and efficiency, and its action, while increasing in scope, grows in intensity as well. The State in its passage from on evolutionary stage to another presents us not merely with a greater degree of complexity, each function being to a greater and greater extent discharged by some special-organ, but also with an increasing degree of harmony. The social organisms, despite their ever-increasing variation, are placed in growing dependence upon one another by being linked to some central organ. In other words, the particular grade that a social organism occupies in the orgainic hierarchy depends upon the degree to which division of labour and centralization have been carried.)

"रोडबर्टस का विश्वास था कि उत्पादन और वितरण सामाजिक कार्य हैं तथा व्यक्तिवाद को समाप्त करना केन्द्रीयकरण अथवा राज्य के बड़े नियंत्रण के हेतु आवश्यक है। दूसरी ओर राज्य समाजवादी उसके व्यक्तिगत सम्पत्ति और अनार्जित आय के विरोध सम्बन्धी विचारों से सहमत नहीं होते।"[1] फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रोडबर्टस ने सिद्धान्तों के समक्ष राज्य समाजवाद की रूप-रेखा प्रस्तुत की।

फर्डीनान्ड लासेल (Ferdinand Lassalle)

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Prof. Gide and Rist) के शब्दों में, "नवीन सामाजिक सिद्धान्त की सुदृढ़ आधार शिला के ऊपर राज्य समाजवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का रोडबर्टस का प्रयत्न कुछ सीमा तक सफल रहा, परन्तु इन नवीन विचारों में जीवन-शक्ति भरने का कार्य लासेल के लिये सुरक्षित था।"[2]

रोडबर्टस की भांति लासेल भी एकमात्र सैद्धांतिक विचारक नहीं था अपितु वह एक कुशल प्रचारक (श्रमिक वर्ग का नेता तथा कुशल राजनीतिज्ञ भी था। उसने बर्लिन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की जहां कि वह अपनी कुशाग्र बुद्धि और

---

1 "It was his belief that production and distribution could only be regarded as social function, and that the breakdown of individualism implied a need for greater centralization or a greater [illegible]e of State control. On the other hand, the State Socialists [illegible] to associate themselves with the radical condemination of [illegible]te property and unearned income, both of which are features [R]odbertur's teaching."

—Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 432-33.

2 "Rodbertur's efforts to establish a doctrine of State Socialism [o]n the firm foundation of a new social theory had already met [wi]th a certain measure of success, but it was reserved for Lassalle [to] infuse vitality into these new ideas."

—Prof. Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 433.

प्रतिभा के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। प्राय: विश्वविद्याल मे वह "The ! lous Child" के नाम से विख्यात था। विश्वविद्यालय छोड़ने के दौरान मे उस कार्ल मार्क्स (Karl Marx) का सक्रिय प्रभाव पड़ा था जिसके परिणाम स्व उसने सन् १८४८ मे होने वाली क्रांति मे सक्रिय लिया। दो वर्ष क्रांति भाग लेने के बाद लासॅल ने सन् १८६० तक तर्कशास्त्र, नी एवं साहित्य का अध्ययन किया। सन् १८६२ मे उसने अपने शांतिपूर्ण जीवन समाप्त करके पुन: राजनीति में प्रवेश किया। इस समय जर्मनी का सम्पूर्ण प्रशियन लिबरल पार्टी (Prussian Liberal Party) के विरोध से ग्रस्त लासॅल ने सरकार तथा मध्यम वर्ग दोनों की कटु आलोचना की। श्रमिक वर्ग ओर मुखातिब होते हुये लासॅल ने उन्हे एक नया दल सगठित करने का दिया जो कि विशुद्ध राजनैतिक प्रश्नो से सर्वथा अलग रहे तथा जिसका ध्यान आर्थिक प्रश्नो पर केन्द्रित रहे। अपने सतत् प्रयत्नो के द्वारा वह शीघ्र ही वर्ग का परम् हितैषी बन गया। सन् १८६३ मे लासॅल ने "सार्वभौमिक श्रमिक सघ" (Universal-German Workingmen's Association) की स्थापना की। इस संघ ने जर्मनी मे "सामाजिक जनतत्रीय दल" (Social Democratic Party) के रूप मे कार्य किया। जब लासॅल अपनी प्रसिद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुच चुका था तभी वह द्वन्द मे बुरी तरह घायल हुआ तथा जिसके परिणाम स्वरूप १३ अगस्त सन् १८६४ को ३६ वर्ष की अल्पायु मे उसकी मृत्यु हो गई।

लासॅल पर रोडबर्टस ओर कार्ल मार्क्स जैसे प्रसिद्ध समाजवादी विचारको का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कुछ आलोचको ने तो लासॅल को जर्मनी का लुई ब्लैंक (Louis Blanc of Germany) कह कर पुकारा है। यह स्मरणीय है कि अधिक कार्यव्यस्तता के कारण लासॅल अपने जीवनकाल मे अधिक ग्रन्थों की रचना नही कर पाया। उसके द्वारा रचित "उपार्जित अधिकारो की प्रणाली" नामक ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा लिखे गये लेख और दिये गये भाषण भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। लासॅल की ओजस्वी एव प्रवाहमयी भाषा, शैली एव संगठित विचारधारा को देखकर ही उसे तात्कालिक विद्वानों ने एक सफल लेखक के रूप मे स्वीकार किया।

लासॅल के समाजवाद और कार्ल मार्क्स के समाजवाद मे एक बड़ी सीमा तक साम्य देखने को मिलता है। वह भी राजकीय हस्तक्षेप की नीति मे विश्वास करता था और उसका विचार था कि सामाजिक विकास के दौरान मे व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक सस्था का लोप स्वयं हो जावेगा। वस्तुत: लासॅल व्यावहारिक परिणामो पर झुका हुआ क्रियाशील व्यक्ति था। इस समय विशेष पर जर्मनी का श्रमिक वर्ग राजनैतिक अस्तित्व की सम्भावना पर जाग्रत था और जो मार्ग इसे अपनाना चाहिये था वह भी अनिश्चित था। सन् १८६३ मे श्रमिको की एक सस्था ने अपने

साथियों को एक किस्म की जनरल कांग्रेस में सम्मिलित होने की प्रेरणा दी। उन्होंने पुन: लासैल और दूसरे प्रसिद्ध डैमोक्रेट्स से श्रम सम्बंधी प्रश्नों पर सलाह देने की अपील की। इस दशा में लासैल को अपना निजी राजनैतिक हल स्थापित करने, जिसका वह स्वयं नेता हो, का अवसर मिला। आगामी प्रश्न एक योजना निश्चित करना था। लासैल ने कहा कि "श्रमिकों की कुछ चीज निश्चित होनी चाहिये" तथा दूसरी ओर "जनता के सम्मुख हमें अपना अंतिम उद्देश्य रखना सम्भव नहीं है।" अपने प्रचार में किसी आदर्श का भार डाले विना ही उसने अपना सम्पूर्ण प्रयास दो भागों पर केन्द्रित किया जिनमें से एक राजनैतिक थी और दूसरी आर्थिक अर्थात् एक ओर मताधिकार और दूसरी ओर राज्य द्वारा प्रदत्त सहयोग के आधार पर उत्पादक सहकारी संस्थाओं की स्थापना करना।"[1]

लासैल पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalistic Economic System) का कट्टर विरोधी था। उसने इस प्रणाली का सर्वाधिक भयंकर दोष यह वताया कि इसके अन्तर्गत पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का अत्यधिक शोषण किया जाता है। एक ओर पूंजीपति श्रमिकों को मजदूरी प्रदान करने में "मजदूरी के लौह सिद्धांत" (The Iron Law of Wages) को अपनाता है तथा दूसरी ओर अपने लाभ की मात्रा वढाता जाता है। क्रमश: वढ़ती हुई आय में श्रमिक वर्ग का भाग आनुपातिक दृष्टि ये कम होता जाता है। वस प्रकार पूंजीवादी आर्थिक पद्धति के अन्तर्गत पूंजी (उत्पादन का निष्क्रिय साधन) श्रम (उत्पादन का सक्रिय साधन) को शोषित करने में सफल हो जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना करते हुए लासैल ने वताया कि इस व्यवस्था में उत्पादन किसी निश्चित माँग पर आधारित न होकर अनुमान पर आधारित होता है जिसके भयंकर परिणाम (वेकारी, भुखमरी, आर्थिक संकट आदि) समाज को सहन करने पड़ते हैं। अतएव पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के दोषों को समाप्त करने के उद्देश्य से लासैल ने उत्पादक सहकारी समितियों, श्रमिक संघों, सामाजिक नियंत्रण एव राज्य द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन का समर्थन किया है। राज्य की हस्तक्षेप नीति के सम्वन्ध में फ्रैंक फोर्ट (Frank Fort) में १९ मई सन् १८६३ को लासैल ने स्वयं श्रमिक वर्ग के सम्मुख भाषण में वताया कि, "राजकीय हस्तक्षेप इस आन्दोलन में सम्मिलित सिद्धान्त का प्रश्न है यही विचार है जिसने मुझे वल प्रदान किया है और इसी में मजदूरी के प्रति किए गए युद्ध का सम्पूर्ण सार निहित है"।[2]

लासैल के कार्यक्रम से तात्कालिक विद्वत समाज वहुत प्रभावित हुआ। उसके

...f Gide and Rist Ibid, Page 434.

...te intervention is the one question of principle involved ...ign. Th... ...e consideration that has weighed with ... there lies ... ...ssue of ... ...le which I am about to ..."

—Lassalle.

द्वारा मित्रों को लिखे गए पत्रों जोकि उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए, से यह प्रदर्शित होता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित सुधार काफी महत्वपूर्ण थे। इस तथ्य पर बल डालने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उसकी योजना ब्लैंक की योजना पर आधारित थी तथा उसने रोडबर्टस को एक पत्र में यह घोषणा भी की थी कि कि वह अपनी योजना को बदलने के हेतु बिल्कुल तैयार था बशर्ते इसकी जगह कोई उत्तम योजना प्रस्तुत की जा सके। समुदाय का यह विचार ऐसा था जोकि किसी भी तरह जर्मनी के उदार दल के लिए अनजान नहीं था और न ही इसने इस समय सर्वप्रथम श्रमिक वर्ग को उद्वेलित किया था। लासैल के प्रतिद्वन्द्वी शुल्जे डीलिज (Schulze Delitzch, ने सन् १८४६ में एक सक्रिय आन्दोलन प्रारम्भ किया था और वह शिल्पकारों को, उन्हें सस्ती वस्तुएं प्रदान करने के उद्देश्य से, विशाल संख्या में सहकारी साख समितियां स्थापित करने में सफल हुआ था। लेकिन ऐसे संगठनों को किसी भी तरह की सरकारी सहायता नहीं मिली।

रोडबर्टस के सभी प्रमुख लेखों में सरकारी हस्तक्षेप का आधारभूत विचार निहित है। उसका मत था कि पूंजीवादी प्रणाली के समर्थकों का यह कथन कि राज्य को केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सुरक्षा का काम ही करना चाहिए, केवल उसी दशा में हितकारी सिद्ध हो सकता है जबकि समाज का हरएक व्यक्ति समान रूप से शक्तिशाली, बुद्धिमान, सभ्य और धनवान हो। लेकिन जहां पर ऐसी स्थिति नहीं है वहां पर तो कमजोर व्यक्ति केवल शक्तिशालियों की दया पर रहते हैं तथा राज्य की दशा रात के चौकीदार से अधिक नहीं है। वस्तुतः राज्य का अस्तित्व दूसरे उद्देश्यों के लिए भी है। मानवजाति का इतिहास दुर्भाग्य, अज्ञानता, भुखमरी, कमजोरी आदि को समाप्त करके प्राकृतिक शक्तियों के विरुद्ध स्वतन्त्रता स्थापित करने की एक लम्बी कहानी है। इस संघर्ष में अकेला व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता और इसीलिए संगठन आवश्यक है। यह संगठन ही राज्य का निर्माण है जिसका उद्देश्य मानवजाति के भाग्य की साधना करना है अर्थात् संस्कृति की उस ऊंची मात्रा को प्राप्त करना है जिसके योग्य मानवता के पुन. विकास की शिक्षा देने का एक साधन है।"[1]

इस प्रकार लासैल ने श्रम-संगठनों को नियमित करने एवं पूंजीवादी व्यवस्था के सभी दोषों को उन्मूलित करने का भार राज्य के कंधों पर सौंप दिया है और यही कारण है कि उसे जर्मनी समाजवाद का लुई ब्लैंक कहा जाता है। लासैल के मतानुसार राज्य का कर्तव्य शांति, व्यवस्था और सुरक्षा करना तो है ही, साथ ही साथ देश के सामाजिक स्तर को उठाना, निर्धनता को दूर करना, समाज में श्रमिक वर्ग को सबल बनाना आदि भी राज्य के महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस संदर्भ में लासैल जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल (Hegal) का पक्का अनुयाई प्रतीत होता है और उसकी प्रतिभा और वाक्-चातुर्य ने ही हीगल के विचारों को नए प्रकाश के साथ जर्मन-

1 Prof. Gide & Rist ; Ibid, Page 436.

जनता के समक्ष रक्खा है ।[1]

लासैल के पश्चात् राज्य समाजवाद की प्रगति (The Progress of State Socialism after Lassalle) :—राज्य समाजवाद का निर्माण युग वैसे तो लासैल (Lassalle) के जीवनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था, तथापि उसके वास्तविक स्वरूप का निर्माण लासैल की मृत्यु के आठ वर्ष पश्चात हुआ । सन् १८७२ में जर्मनी के आइजनाक (Elseuach) नामक स्थान पर एक कांग्रेस हुई जिसमें राज्य साम्यवाद के वास्तविक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया । इस सम्मेलन में भाग लेने वाले जर्मनी के आचार्य, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ और विधिवेत्ता थे जिनमें वैगनर (Wagner), श्मौलर (Schmoller), शेफिल (Shaffie) तथा बूचर (Bucher) प्रमुख थे । इन सब सदस्यों ने मिलकर एक प्रस्ताव पास किया जिसमें उन्होंने मानचेस्टर विचारधारा (Mauchester Ideas) के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा किया । अपने प्रस्ताव में इन विचारकों ने राज्य को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया और राज्य को मानव समाज को शिक्षित करने वाली एक ऐसी नैतिक संस्था बताया जिसके उद्देश्य के अन्तर्गत समस्त देशवासी सभ्यता के उच्चतम लाभों को प्राप्त कर सकें । दूसरे, इन विद्वानों ने अपनी राजनैतिक विचारधारा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के हेतु कुछ वैज्ञानिक सामग्री भी एकत्रित की । उन्होंने बताया कि इसके लिये एक संघ की स्थापना की जानी चाहिए । वह कुर्सी के समाजवाद (Socialism of the Chair) का प्रारम्भ था जोकि कुछ समय बाद यत्र-तत्र परिवर्तन करने के उपरान्त राज्य समाजवाद (State Socialism) के नाम से विख्यात हुआ ।

सरकारी हस्तक्षेप की नीति पर आधारित राज्य समाजवाद को जन्म देने वाले अनेक कारक थे जोकि उस समय जर्मनी में विद्यमान थे । एक तो रोडबर्टस (Rodbertus) और लासैल (Lassalle) के नियमों का तात्कालिक जर्मनी पर गहरा प्रभाव पड़ा था । इन विद्वानों के विचारों से प्रभावित होकर व्यक्ति तात्कालिक समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के हेतु राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य समझने लगे थे । इनमें से लासैल ने श्रमिकों की दशा सुधारने की दिशा में एक "विश्वव्यापी जर्मन श्रमिक संघ" (Universal German Workingmen's Association)

1 "The formula savours of metaphysics rather than of economics. There is striking similarity between it and the formula employed by Hegel, the philosopher. Lassalle was really a disciple of Hegel and Fichte. Through the influence of Lassalle the theories of the German idealists came into conflict with the economist's and his incomparable eloquence contributed not a little to the rising tide of indignation with which the Manchester ideas cameto be regarded."
—Gide & Rist : Ibid, 436-37.

की स्थापना की थी जिसमे जर्मन जनता बहुत प्रभावित हुई थी। फिर तात्कालिक विचारकों द्वारा राष्ट्रीयता के विचार को अधिक मान्यता प्रदान की गई थी जिसके कारण साधारण जनता में भी राष्ट्रीयता की भावना जागृत होने लगी। इसके साथ ही साथ बौद्धिक दृष्टिकोण से भी जर्मन जनता सरकारी हस्तक्षेप को अनिवार्य समझने लगी थी। इसी दौरान में सन् १८६६ और १८७० मे बिस्मार्क (Bismark) के राजनैतिक सुधारों के कारण जर्मन जनता उसके विचारो, सिद्धांतों और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई तथा जर्मनी मे शनै. शनैः उदार दल (Liberal Party) के नेताओं का प्रभाव कम होने लगा। इसी प्रकार तात्कालिक जर्मनी मे ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारक हिल्डेब्रान्ड (Hildebrand) के विचारों का भी गहरा प्रभाव पड़ा था। अत में, इस युग में मार्क्स (Marx) के क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित होकर जर्मनी मे एक नए सामाजिक जनतन्त्रीय दल (Social Democratic Party) का निर्माण किया गया जिसने आगे चलकर काफी महत्वपूर्ण कार्य किया। इन सब बातों के कारण जर्मनी में सभी वर्गों का ध्यान श्रमिक वर्ग की ओर आकर्षित हो रहा था और सामान्य जनता को यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि सरकारी हस्तक्षेप के बिना राज्य समाजवाद के उद्देश्य की प्राप्ति नही की जा सकती।

राज्य समाजवादियों ने सरकारी हस्तक्षेप के समर्थन में अनेक तर्क प्रस्तुत किए। उन्होंने बताया कि व्यक्तियो की अपेक्षा राज्य अधिक शक्तिशाली होता है। अनेक ऐसी आर्थिक समस्यायें हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से सुलझाना बडा कठिन होता है तथा ऐसी समस्याओं को हल करने के हेतु राज्य की सहायता अनिवार्य है। सिसमाण्डी (Sismondi), सेन्ट साइमन (Saint Simon) तथा अन्य समाजवादियों की तरह उन्होंने स्वतन्त्र प्रतियोगिता से उत्पन्न होने वाली बुराइयों पर प्रकाश डाला और बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत समाज के गिने-चुने व्यक्तियों का ही हित होता है। अतएव बहुसंख्यक समाज के हित के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। श्रम-प्रसंविदा (Labour Contract) की आलोचना करते हुए राज्य समाजवादियो ने कहा कि साधनहीन श्रमिकों की सौदा करने की क्षमता (Bargaining Capacity) बहुत कम होती है, जबकि उनकी तुलना में पूंजीपतियों की सौदा करने की क्षमता बहुत अधिक होती है। चूंकि श्रमिकों के पास जीविका चलाने का अन्य कोई साधन नही होता, इसलिये विवश होकर इन्हें जो कुछ मिल जाता है उसी पर सन्तोष करना पड़ता है जिसका परिणाम होता है—पूंजीपतियों द्वारा श्रमिक वर्ग का शोषण। राज्य समाजवादियों ने बताया कि आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में तो सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य ही है, इसके अतिरिक्त कुछ सामूहिक आवश्यकतायें भी ऐसी होती हैं जिनमें सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। वैगनर (Wagner) ने इतिहास के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि देश-काल की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार राज्य के विभिन्न कार्य रहे हैं जिसके कारण राज्य के कार्यों को निश्चित करना कठिन है। फिर भी उसने राज्य

के दो आवश्यक जार्य ठहराये श्रमिको के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने का कार्य और पूंजीपतियों की पूंची-संचय करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करना।[1] राज्य समाजवादियों ने बताया कि राज्य के इन कार्यों का देश के उत्पादन और वितरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। वितरण के सम्बन्ध में इन विचारकों ने बताया कि निजी सम्पत्ति, लाभ और ब्याज का भी समाज में अपना महत्व है: अतएव इनके अस्तित्व को समाप्त नहीं करना चाँहिए, तथापि श्रमिकों को उनके परिश्रम के वदले में इतना पुरुस्कार अवश्य मिलना चाहिए जिनसे उनकी जीवनरक्षक कुशलतावर्धक और प्रतिष्ठारक्षक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। दूसरे शब्दों में, श्रमिकों को उनके कार्य के अनुसार पारिश्रमिक मिलना चाहिये तथा करारोपण के द्वारा वितरण को हरएक युग की नैतिक भावनाओं के अनुरूप ठीक कर देना चाहिये।

वैगनर ने उत्पादन के सम्बन्ध में कूर्नों (Curnot) और मिल (Mill) की धारणाओं ही अधिक उचित ठहराया अतएव राज्य को अपने हाथों में उन समस्त उद्योगों और प्राकृतिक साधनों को ग्रहण करना चाहिए जो कि जनहित से सम्वन्धित हों। इसके अतिरिक्त उन उद्योगों का संचालन भी राज्य के हाथों में आ जाना चाहिये जो कि एकाधिकारी प्रवृत्ति के हों अथवा जिनका संचालन व्यक्तिगत हाथों में कुशलतापूर्वक या धनाभाव के कारण न हो सकता हो।

कुछ कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी में राज्य समाजवाद को वांछनीय सफलता नहीं मिल सकी। इस युग के क्रान्तिकारी समाजवादियों ने राज्य समाजवाद की कटु आलोचना की। दूसरे, इस युग में विभिन्न समाजवादी अपनी-अपनी नीतियों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन में लगे हुये थे जिसके कारण राज्य समाजवादियों को आलोचना के अतिरिक्त कोई समर्थन प्राप्त नहीं हो सका। फिर इन विचारकों की योजना सैद्धान्तिक दृष्टि से जितनी सीधी-सादी थी उतनी व्यावहारिक दृष्टि से सरल और सुगम नहीं थी। इन सव दशाओं में भी राज्य समाजवादियो को जो सफलता प्राप्त हुई वह अपने समय और परिस्थिति के अनुसार थी। वह स्मरणीय है कि राज्य समाजवाद को उन्नीसवीं शताब्दी की अपेक्षा बीसवीं शताब्दी में अधिक सफलता मिली।

---

1 "Logically State Socialism must undrtake two tasks which are closely connected with one another. In the first place it must raise the lower strata of the working classes. and in the second place it must put a check upan the excessive accumulation of wealth among certain strata of saciety or by certain members of the propertied classes." —Wagner.

१५

मार्क्सवाद

(Marxism)

प्राक्कथन—मार्क्सवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था जिसके प्रवर्तक कार्ल हेनरिक मार्क्स (Karl Heinrich Marx) तथा उनके घनिष्ठ मित्र फ्रेडरिक एंजिल्स (Friedrich Engels) थे। मार्क्सवादी विचारधारा एक विशाल पृष्ठ-भूमि पर आधारित है जिसमें दर्शनशास्त्र, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र के अनेकों सिद्धान्तों का समावेश है। कार्ल मार्क्स के प्रमुख अनुयायियों में कोटस्की (Kautsky), रोजालक्जेमबर्ग (Rosa Luxemburg) लेनिन (Lenin) और स्टालिन (Stalin) मुख्य हैं। इन अनुयायियों ने संसार के विभिन्न देशों में और विशेषकर जर्मनी, वर्तमान रूस और चीन में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार किया है। वस्तुतः, मार्क्सवादी विचारधारा सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक है। यह मार्क्सवादी सिद्धान्तों की व्यावहारिकता का ही ज्वलन्त उदाहरण है कि विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों में श्रमिक वर्ग के शक्तिशाली संगठन बने हुए हैं। मार्क्सवादी विचारधारा की नींव कार्ल मार्क्स और एंजिल्स ने रक्खी थी और इसी विचारधारा को बीसवीं शताब्दी में कुछ दूसरे रूप में परिवर्तित किया। इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए मुख्य बात यह है कि मार्क्सवादी विचारकों ने पुरानी आर्थिक विचारधारा का परिष्कार किया है अथवा उसे अधिक व्यावहारिक बनाने के हेतु वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है।

कार्ल मार्क्स का जन्म ५ मई १८१८ में जर्मनी के ट्रीव्ज (Treves) नामक स्थान पर एक यहूदी (Jew) परिवार में हुआ था। उसने अपनी शिक्षा बोन (Bonn), बर्लिन (Berlin) और जेना (Jena) विश्वविद्यालयों में प्राप्त की थी जिसके पश्चात् वह एक पत्रकार बन गया और शीघ्र ही वह एक दैनिक समाचार-पत्र "Rhenish Times" का सम्पादक बन गया। सम्पादक बन जाने पर उसने क्रान्तिकारी कदम उठाया तथा उसके समाचारपत्र का मुख्य उद्देश्य श्रमिक वर्ग का हित-चिन्तन बन गया। सन् १८४३ में सरकार द्वारा उसका समाचार-पत्र जब्त कर लिया गया और मार्क्स को जर्मनी से भागकर पेरिस और बाद में ब्रूसेल्स जाना पड़ा। यहां पर उसकी प्रूढन (Proudhon) और केबेट (Cabet) से भेंट हुई और उसे सेन्ट साइमन (Saint Siman) और चार्ल्स फूरियर (Charles Fourier) के विचारों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। सन् १८४८ की क्रान्ति के दौरान में, जिसमें कि मार्क्स ने सक्रिय भाग लिया, पुनः जर्मनी वापिस आने पर मार्क्स को

पुनः देश से निष्कापित कर दिया गया और अब वह इंगलैंड में रहने लगा। उसने अपना शेष जीवन यहीं व्यतीत किया। १४ मार्च १८८३ में मार्क्स की मृत्यु हो गई।

"यद्यपि मार्क्स" "अन्तर्राष्ट्रीयता" (International) नामक संघ का प्रसिद्ध संस्थापक और निर्देशक था जिस संगठन ने १८६३ और १८७२ के बीच में प्रत्येक यूरोपियन सरकार के हृदय में भय का संचार कर दिया था, तथापि वह अपने प्रतिद्वन्दी बैकुनिन (Bakunin) की तरह एक मात्र क्रांतिकारी नहीं था और लासैल (Lassalle)की तरह जनता का प्रासिद्ध निर्वाचित अधिकारी भी नहीं था। वह विशेषकर एक विद्यार्थी, प्राउढन की तरह एक प्रभावशाली जनक, एक यात्री तथा बौद्धिक संस्कृति का एक व्यक्ति था।"[1]

मार्क्स द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ "दास कैपिटल" (Dis Kapital) है जिसका केवल प्रथम भाग ही उसके जीवन काल में १८६७ प्रकाशित हो पाया था तथा अन्य दो भाग उसकी मृत्यु के बाद सन् १८८५ और १८९४ में एंजिलस के प्रयास से प्रकाशित किए गए। उसके ग्रन्थ का चौथा भाग जोकि विभिन्न भागों में विभक्त है उसके शिष्य कोटस्की द्वारा प्रकाशित कराया गया था। इस पुस्तक ने उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधारा को अत्याधिक प्रभावित किया। मार्क्स की अन्य पुस्तकें— "हीगल के अधिकारों के दर्शन की आलोचना की प्रस्तावना" (Introduction to a Critique of Hegel's Philosophy of Rights) "दर्शनशास्त्र की निर्धनता प्राउढन की एक आलोचना" (The Poverty of Philosophy—a Criticism of Proudhon) "स्वतन्त्र विनिमय के प्रश्न पर वार्तालाप" (Discourse upon the question of Free Exchange), "राजनैतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना में योगदान" (A Coutribution to the Critique of Political Economy), तथा "समाजवादी घोषणा पत्र" (The Communist Mainfesto) आदि भी आर्थिक विचारधारा के इतिहास में प्रमुख स्थान रखती हैं।

यह एक वाद-विवाद का प्रश्न रहा है कि क्या कार्ल मार्क्स फ्रेंच समाजवादियों से प्रभावित हुआ और यदि प्रभावित हुआ हो तो किस सीमा तक? यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मार्क्स पर प्राउढन की विचारधारा का प्रभाव पड़ा था। दूसरी ओर एन्टन मेंजर का मत है कि मार्क्स इंगलिश समाजवादियों, विशेषकर थामसन से प्रभावित हुआ था। इसके अतिरिक्त मार्क्स पर उसके साथी

1 "Althouh Marx was one of the founders and directors of the famous associotion known as the "International" which was the terror of every European Government between 1863 and 1172, he was not a mere revolutionary like his rival Bakunin, nor was he a ribune of the people like Lassalle. He was essentially a ., an effectionate father, like Produho'n an indefatigable , and a man of great intellectual culture."

—Gide and Rist, Ibid, P. 452.

एँजिल्स का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मार्क्स के विचारों के विकास में ऐंजिल्स ने कितना भाग अदा किया।[1] सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्स की विचारधारा पर परम्परावादी अर्थशास्त्र, हीगलवाद (Hegelianism), भौतिकवाद (Materialism), उपयोगितावाद (Utiltarianism), प्रारम्भिक समाजवाद और जर्मनी के क्रान्तिकारी विचारों का प्रभाव पड़ा था। इन सबसे उसने बिखरे हुए सूत्रों को एकत्रित करके उन्हें वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपने विचारों के प्रतिपादन में मार्क्स ने जर्मनी की प्रचलित विचारधारा (German Philosophy), फांसीसी भौतिकवाद और इंलैण्ड की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का एक बड़ी सीमा तक सहारा लिया है। प्रो० जीड एण्ड रिस्ट तथा प्रो० हेने का विचार है कि कार्ल मार्क्स कोई मौलिक विचारक नहीं था अपितु उसने तो अपने चारों ओर यत्र-तत्र बिखरे हुए तन्तुओं को एकत्रित करके उन्हें ऐसा सुदृढ वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया कि वे आर्थिक विचारधारा के इतिहास की अद्वितीय वस्तु बन गई कार्ल मार्क्स के अतिरेक श्रम और अतिरेक मूल्य के सिद्धांतों (Theories of Surplas Labour and Surplus Value) पर परम्परावादी विचारकों एडम स्मिथ (Adam Smith) और रिकार्डो (Ricardo) के मूल्य-सिद्धान्त और लगान सिद्धान्त की अमिट छाप है। अन्त में मार्क्स की विचारधारा पर जर्मनी की तात्कालिक आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ा था। इसी प्रभाववश उसने सन् १८४८ में "कम्यूनिस्ट मैन्यूफेस्टो" (Communist Monifesto) नामक ग्रन्थ की रचना की तथा १८६४ में "अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ" (International Workmen's Association) की स्थापना की।

मार्क्सवाद की सामान्य विशेषताएं (General Characteristics of Marxlsm)—मार्क्सवाद की सामान्य विशेषताएं निम्नोक्त हैं :—

(अ) सर्वप्रथम, मार्क्सवाद अपनी शिक्षाओं को वैज्ञानिक समाजवाद का शीर्षक प्रदान करने का दावा करता है। मार्क्सवादी विचारक अपने समाजवाद को कोरी कल्पना और केवल मात्र आदर्शों की चमक में ही स्थापित करना नहीं चाहते अपितु उन्होंने पूंजीवाद के पतन और समाजवाद के अभ्युदय के हेतु वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किए हैं। मार्क्सवादियों की एक अभिलाषा उस अचेतन विकास की महत्ता को व्यक्त करना है जिसके माध्यम से समाज ने अपना विकास पाया है तथा उस आदर्श को प्रदर्शित करना है जिसकी ओर सामाजिक विकास की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

"परिणाम यह है कि मार्क्सवादी प्राकृतिक नियमों की एक धारणा रखता है जोकि इसके पूर्ववर्तियों के दृष्टिकोण की अपेक्षा क्लासिकल दृष्टिकोण के अधिक निकट है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। मार्क्सवादी सिद्धान्त

1. Prof. Gide & Rist : Ibid, Page 453.

पुनः देश से निष्कापित कर दिया गया और अब वह इंगलैंड में रहने लगा। उसने अपना शेष जीवन यहीं व्यतीत किया। १४ मार्च १८८३ में मार्क्स की मृत्यु हो गई।

"यद्यपि मार्क्स" "अन्तर्राष्ट्रीयता" (International) नामक संघ का प्रसिद्ध संस्थापक और निर्देशक था जिस संगठन ने १८६३ और १८७२ के बीच में प्रत्येक यूरोपियन सरकार के हृदय में भय का संचार कर दिया था, तथापि वह अपने प्रतिद्वन्दी बैकुनिन (Bakunin) की तरह एक मात्र क्रांतिकारी नहीं था और लासैल (Lassalle) की तरह जनता का प्रासिद्ध निर्वाचित अधिकारी भी नहीं था। वह विशेषकर एक विद्यार्थी, प्राउढन की तरह एक प्रभावशाली जनक, एक यात्री तथा बौद्धिक संस्कृति का एक व्यक्ति था।"[1]

मार्क्स द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ "दास कैपिटल" (Dis Kapital) है जिसका केवल प्रथम भाग ही उसके जीवन काल में १८६७ प्रकाशित हो पाया था तथा अन्य दो भाग उसकी मृत्यु के बाद सन् १८८५ और १८९४ में ऐंजिल्स के प्रयास से प्रकाशित किए गए। उसके ग्रन्थ का चौथा भाग जोकि विभिन्न भागों में विभक्त है, उसके शिष्य कोटस्की द्वारा प्रकाशित कराया गया था। इस पुस्तक ने उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधारा को अत्याधिक प्रभावित किया। मार्क्स की अन्य पुस्तकें—"हीगल के अधिकारों के दर्शन की आलोचना की प्रस्तावना" (Introduction to a Critique of Hegel's Philosophy of Rights) "दर्शनशास्त्र की निर्धनता-प्रांउढन की एक आलोचना" (The Poverty of Philosophy—a Criticism, of Proudhon) "स्वतन्त्र विनिमय के प्रश्न पर वार्तालाप" (Discourse upon the question of Free Exchange), "राजनैतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना में योगदान" (A Coutribution to the Critique of Political Economy), तथा "समाजवादी घोषणा पत्र" (The Communist Mainfesto) आदि भी आर्थिक विचारधारा के इतिहास में प्रमुख स्थान रखती हैं।

यह एक वाद-विवाद का प्रश्न रहा है कि क्या कार्ल मार्क्स फ्रैंच समाजवादियों से प्रभावित हुआ और यदि प्रभावित हुआ हो तो किस सीमा तक? यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मार्क्स पर प्राउढन की विचारधारा का प्रभाव पड़ा था। दूसरी ओर एन्टन मेंजर का मत है कि मार्क्स इंगलिश समाजवादियों, विशेषकर थामसन से प्रभावित हुआ था। इसके अतिरिक्त मार्क्स पर उसके साथी

---

1 "Althouh Marx was one of the founders and directors of the famous associotion known as the "International" which was the terror of every European Government between 1863 and 1172, he was not a mere revolutionary like his rival Bakunin, nor was he a famous tribune of the people like Lassalle. He was essentially a a student, an effectionate father, like Produho'n an indefatigable traveller, and a man of great intellectual culture."

—Gide and Rist, Ibid, P. 452.

ऐंजिल्स का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मार्क्स के विचारों के विकास में ऐंजिल्स ने कितना भाग अदा किया।[1] सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्स की विचारधारा पर परम्परावादी अर्थशास्त्र, हीगलवाद (Hegelianism), भौतिकवाद (Materialism), उपयोगितावाद (Utilitarianism), प्रारम्भिक समाजवाद और जर्मनी के क्रान्तिकारी विचारों का प्रभाव पड़ा था। इन सबसे उसने बिखरे हुए सूत्रों को एकत्रित करके उन्हें वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपने विचारों के प्रतिपादन में मार्क्स ने जर्मनी की प्रचलित विचारधारा (German Philosophy), फ्रांसीसी भौतिकवाद और इंगलैण्ड की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का एक बड़ी सीमा तक सहारा लिया है। प्रो० जीड एन्ड रिस्ट तथा प्रो० हेने का विचार है कि कार्ल मार्क्स कोई मौलिक विचारक नहीं था अपितु उसने तो अपने चारों ओर यत्र-तत्र बिखरे हुए तन्तुओं को एकत्रित करके उन्हें ऐसा सुदृढ़ वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया कि वे आर्थिक विचारधारा के इतिहास की अद्वितीय वस्तु बन गई कार्ल मार्क्स के अतिरेक श्रम और अतिरेक मूल्य के सिद्धांतों (Theories of Surplas Labour and Surplus Value) पर परम्परावादी विचारकों एडम स्मिथ (Adam Smith) और रिकार्डो (Ricardo) के मूल्य-सिद्धान्त और लगान सिद्धान्त की अमिट छाप है। अन्त में मार्क्स की विचारधारा पर जर्मनी की तात्कालिक आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ा था। इसी प्रभाववश उसने सन् १८४८ में "कम्यूनिस्ट मैन्यूफेस्टो" (Communist Monifesto) नामक ग्रन्थ की रचना की तथा १८६४ में "अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ" (International Workmen's Association) की स्थापना की।

मार्क्सवाद की सामान्य विशेषताएं (General Characteristics of Marxism)—मार्क्सवाद की सामान्य विशेषताएं निम्नोक्त हैं :—

(अ) सर्वप्रथम, मार्क्सवाद अपनी शिक्षाओं को वैज्ञानिक समाजवाद का शीर्षक प्रदान करने का दावा करता है। मार्क्सवादी विचारक अपने समाजवाद को कोरी कल्पना और केवल मात्र आदर्शों की चमक में ही स्थापित करना नहीं चाहते अपितु उन्होंने पूंजीवाद के पतन और समाजवाद के अभ्युदय के हेतु वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किए हैं। मार्क्सवादियों की एक अभिलाषा उस अचेतन विकास की महत्ता को मुक्त करना है जिसके माध्यम से समाज ने अपना विकास पाया है तथा उस आदर्श को प्रदर्शित करना है जिसकी ओर सामाजिक विकास की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

"परिणाम यह है कि मार्क्सवादी प्राकृतिक नियमों की एक धारणा रखता है जोकि इसके पूर्ववर्तियों के दृष्टिकोण की अपेक्षा क्लासिकल दृष्टिकोण के अधिक निकट है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। मार्क्सवादी सिद्धान्त

1 Prof. Gide & Rist : Ibid, Page 453.

प्राकृतिक नियम का विचार परम्परावादी अर्थशास्त्रियो के प्राकृतिक नियम सम्बन्धी विचार से मेल खाता है । रिकार्डों की तरह ही मार्क्स ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन मे भाववाचक (Abstract) शैली को अपनाया है। मार्क्सवादी विचारधारा के ऊपर परम्परावादी विचारधारा के इस प्रभाव को देखकर ही कुछ आलोचकों ने तो मार्क्स को परम्परावादी शाखा का अन्तिम अर्थशास्त्री कहा है। उनका कथन है कि परम्परावाद से प्रभावित होकर ही मार्क्स ने अपनी पुस्तक का नाम एडम स्मिथ की पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (The Wealth of Nations) के नाम के अनुरूप "दास कैपिटल" (Das Kapital) रखा है । इसी प्रकार लेबरियोला (Labriola) ने कहा है कि "दास कैपिटल समाजवाद की प्रस्तावना होने के स्थान पर केवल मध्यम श्रेणी के अर्थशास्त्र का उपसहार है" (Das-kapital instead of being the prologue to the communal critique, is simply the epilogue of bourgeois economics.) । सोरल (Sorel) का भी कथन है कि "मार्क्सवाद वास्तव में काल्पनिक सिद्धान्त की अपेक्षा मैनचेस्टर सिद्धान्त का अधिक नजदीकी है" (Marxism is really much more akin to the Manchester doctrine than to the Utopian.)

मार्क्सवाद ने उन व्यक्तिगत अर्थशास्त्रियो पर हमला करते हुए जो कि अपनी शिक्षाओं की पूर्ण महत्ता समझाने मे अभ्यस्त हैं, न केवल राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्रति अतिन्यून आदर दिखाया है, बल्कि यह पूंजीवाद के हेतु भी समान अनुराग का विश्वासघात करता है । यह उस कार्य के प्रति बड़ा सम्मान प्रकट करता है जो कि इसने पूर्ण किया है तथा अपने द्वारा सामूहिकवाद के मार्ग की तैयारी मे अदा किए गए भाग के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट करता है । लेकिन मार्क्सवादियो का पुराने अर्थशास्त्रियो के साथ एक भयानक झगड़ा भी है । उन्होने यह सोचा कि राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्रारम्भिक लेखको ने सामाजिक अवयव की सापेक्षिक अनित्य प्रकृति, जिसका कि वे अध्ययन कर रहे हैं, को कभी भी स्वीकार नही किया । यह इसलिए भी सम्भव था क्योंकि वे लेखक प्रवृत्ति से रूढ़िवादी थे तथा मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के हितैषी थे । उन्होने सदैव यह पढ़ाया और उन्होने इस बात पर पूर्ण यकीन किया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और प्रोलेट्रियनवाद आधुनिक जगत की स्थिर विशेषताएं हैं तथा सामाजिक सगठन की नियति सदैव मध्यम श्रेणी की आधार शिला पर रहेगी । परन्तु मार्क्सवादी विचारक पुराने विचारको की इस मान्यता को स्वीकार करने वाले नहीं थे ।

(ब) मार्क्सवादी सम्प्रदाय पूर्वकालीन समाजवाद मे इस बात मे भी भिन्न है कि यह न्याय (Justice) और बन्धुत्व (Fraternity) की मान्यता पर आधारित है जिसने कि फ्रांसीसी समाजवाद मे एक महत्वपूर्ण भाग अदा किया है । यह आदर्शों की अपेक्षा वास्तविकता को तथा भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व देता है। मार्क्स के शब्दो मे "साम्यवादियो के सैद्धान्तिक निष्कर्ष किसी भी तरह से

श्रमिक वर्ग शक्ति प्राप्त कर ले। यह बताया जा चुका है कि धनी और निर्धन वर्गों के बीच इस प्रकार का संघर्ष सदैव से समाजवाद में समाविष्ट था लेकिन उचित वितरण की दशा में इस प्रकार के संघर्ष का निषेध किया जाता था। लेकिन मार्क्स-वादियों ने इस संघर्ष को "वर्ग-युद्ध (Class War) की संज्ञा दी और बताया कि यह वर्ग युद्ध तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रमिक वर्ग राजनैतिक सत्ता प्राप्त न कर ले।

(द) मार्क्सवाद की अंतिम विशेषता इसका क्रान्तिकारी चरित्र (Revolutionary Character) है जोकि इसमें निहित वर्ग-युद्ध से ही स्पष्ट हो जाता है। मार्क्सवादियों का यह विश्वास है कि सच्चे शब्दों में समाजवाद की स्थापना शांति, समझौता या सहकारिता के तरीकों से ही नहीं की जा सकती। अतएव शोषित मजदूरों, निर्धनता में पिसते हुए व्यक्तियों एवं बेकार नवयुवकों तथा अतृप्त उपभोक्ता के हेतु मार्क्सवाद का यह सन्देश है कि वह क्रांति करके पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दे और इस तरह वास्तविक समाजवाद की स्थापना करे। यह स्मरणीय है कि मार्क्सवादियों ने क्रांति के अन्तर्गत हिंसात्मक तरीकों को भी मान्यता प्रदान की।

कार्ल मार्क्स के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Karl Marx):— कार्ल मार्क्स के द्वारा प्रतिपादित मुख्य आर्थिक विचार एवं सिद्धान्त निम्नोक्त हैं :—

(१) अतिरेक श्रम और अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus-Labour and Surplus Value) :—इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का मार्क्स का उद्देश्य यह बताना था कि किस तरह सम्पत्तिस्वामी वर्ग सदैव गैर-सम्पत्तिस्वामी वर्ग के श्रम के ऊपर जीवित रहता है। यद्यपि मार्क्स का यह विचार एकदम नवीन नहीं था क्योंकि उससे पूर्व सिसमाण्डी (Sismondi), सेन्ट साइमन (Saint Simon), प्राउधन (Proudhon) और रोडबर्टस (Rodbertus) के लेखों में भी इस विचार को खोजा जा सकता है, लेकिन इन लेखकों की आलोचना का निष्कर्ष सदैव आर्थिक होने के बजाय सामाजिक था तथा उनके विरोध का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत सम्पत्ति की सत्ता और इसका अन्याय था। दूसरी ओर कार्ल मार्क्स ने स्वमेव अर्थ-विज्ञान के विरुद्ध विशेषकर विनिमय की धारणा के विरुद्ध चार्ज लगाया। वह यह साबित करता है कि जिसे हम शोषण कहते हैं वह सदैव विद्यमान रहता है क्योंकि यह विनिमय, जोकि एक आर्थिक आव-श्यकता है की एक अनिवार्य उपज है।

इस संदर्भ में आर्थिक मूल्य के निरीक्षण से प्रारम्भ करना अधिक सुविधा जनक होगा। मार्क्स ने बताया कि श्रम न केवल मूल्य का कारण और माध्यम ही है वरन् यह इसका वास्तविक सार भी है। यद्यपि एडम स्मिथ (Adam Smith) और रिकार्डो (Ricardo) ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया परन्तु उन्होंने इस विचार को हिचकिचाहट के साथ कहा, जबकि मार्क्स ने इस बात को कहने में कोई

आवश्यकता होती है। अतएव श्रम-शक्ति के उत्पादन के हेतु आवश्यक श्रम-समय जीविका के साधनों के उत्पादन के लिये आवश्यकता के अनुसार स्वयं घटता जाता है। दूसरे शब्दों में श्रम-शक्ति का मूल्य श्रमिक की जीविका-निर्वाह के हेतु आवश्यक साधनों के मूल्य के बराबर है।''

आगे चलकर मार्क्स ने बताया कि श्रमिक की जीविका निर्वाह के हेतु जितने मूल्य की आवश्यकता होती है वास्तव में वह उससे कही अधिक मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन करता है। उपरोक्त उदाहरण मे उसकी जीविका-निर्वाह का मूल्य १० घण्टे के श्रम के मूल्य के बराबर नही होगा अपितु इससे बहुत कम होगा। सामान्य दशाओं के अन्तर्गत मानवीय श्रम उपभोग की गई वस्तुओं के मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य का उत्पादन करता है। इस धारणा से वह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक के द्वारा कमाई गई मजदूरी आवश्यक रूप से उसकी जीविका के साधनों के मूल्य के बराबर होगी। यह तारगो (Turgot) और रिकार्डो (Ricardo) द्वारा प्रारम्भ किया गया प्राचीन क्लासिकल सिद्धान्त है जिसको मार्क्स के समकालीन एवं प्रतिद्वन्दी लासैल (Lasaslle) ने मजदूरी का लौह नियम'' (Brazen Law of wages) की सज्ञा दी। मार्क्स ने बताया कि श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य पूजीपति के अधिकार में चला जाता है जो कि इस मूल्य का अन्तरण करता है तथा श्रमिक को केवल इतना मूल्य ही लौटाकर देता है जो कि उस वस्तु के उत्पादन में उसको कार्यशील समय के अन्तर्गत जीवित रखने के हेतु आवश्यक होता है। बीच का अन्तर पूजीपति की जेब मे चला जाता है। उक्त उदाहरण के अनुसार उत्पादित वस्तु दस घण्टे के श्रम के बराबर मूल्य में बेची जाती है जबकि श्रमिक को ५ घन्टे के श्रम के बराबर मूल्य दिया जाता है। इन दोनों मूल्यों के अन्तर को मार्क्स ने "अतिरेक-मूल्य" (Surplus-Value) की सज्ञा दी है।[1]

इस प्रकार मार्क्स के अनुसार पूजीपति श्रमिक से दस घण्टे काम कराता है और उसे केवल पाच घण्टे का मूल्य अदा करता है तथा अन्य पाच घण्टों का उसके लिये कोई मूल्य नही होता। पहले पाच घण्टो के दौरान मे श्रमिक अपनी मजदूरी के बराबर कमा लेता है लेकिन पाचवे घण्टे की समाप्ति पर वह अपने लिये कुछ भी नही कमाता। इन अतिरिक्त घण्टों का श्रम जिनके दौरान में अतिरेक-मूल्य का उत्पादन किया जा रहा है और जिसके लिये श्रमिक कुछ भी नही पाता, मार्क्स ने

1 "The value produced by the labour passes into the hands of the capitalist, who disposes of it and gives back to the labour enough to pay for the food consumed by him during the time he was producing the commodity. The difference goes into the capitalist's pocket. The product is sold as the equivalent af ten hour's labour, but the labourer receives the equivalent of five hours only. Marx speaks of this as surplus value (Mehrwerth), a term that has become exceedingly popular since." —Gide & Rist, Ibid, P. 56,

हिचकिचाहट अनुभव नहीं की । यद्यपि उसने इस बात से इन्कार नहीं किया उपयोगिता मूल्य की एक आवश्यक दशा है और उपयोग मूल्य (Value in use) के संबन्ध में केवल यही एक वास्तविक निर्धारक है । लेकिन एकमात्र उपयोगिता विनिमय मूल्य (Value in Exchange) की व्याख्या करने के हेतु पर्याप्त नहीं है क्योंकि विनिमय की प्रत्येक क्रिया में कुछ समान तत्व होता है अर्थात विनिमयित वस्तुओं के बीच समानता की कुछ माप निश्चय होती है जोकि उपयोगिता का परिणाम नहीं है क्योंकि उपयोगिता की मात्रा हरएक वस्तु में भिन्न भिन्न होती है। विनिमयित वस्तुओं मे निहित समान तत्व या गुण उनमे प्रयुक्त श्रम की मात्रा का ही परिणाम है इस प्रकार प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसमें निहित मानवीय श्रम की मात्रा के बराबर है और विभिन्न वस्तुओं के बीच मूल्य की भिन्नता भी इसीलिए पाई जाती है क्योंकि विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में लगी श्रम की मात्राएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं । इस प्रकार सब वस्तुओं में निहित सामान्य तत्व या गुण श्रम ही है जिसके आधार पर मार्क्स वस्तु का मूल्य निर्धारण करना चाहता है ।[1]

इस बात का स्पष्टीकरण हम किसी कारखाने के ऐसे कर्मचारी के उदाहरण से कर सकते हैं जो कि प्रतिदिन १० घण्टे काम करता है । उसके श्रम के उत्पादन का विनिमय मूल्य क्या होता ? यह १० घण्टे के श्रम बराबर होगा भले ही उत्पादित वस्तु कपड़ा या कोयला या कुछ भी क्यों न हो । और जब इस वस्तु का स्वामी या पूंजीपति उस वस्तु को वास्तविक मूल्य पर बेचेगा तो यह दस घण्टे के श्रम के बराबर होगा । दूसरी ओर श्रमिक को थोड़ी सी मजदूरी दे दी जाती है जो कि उस कीमत का प्रतिनिधित्व करती है जो कि पूंजीपति उसकी श्रम-शक्ति के उपलक्ष में अदा करता है और पूंजीपति उस वस्तु को अपनी इच्छानुसार अन्तरित करने का अधिकार रखता है । इसका मूल्य भी उसी प्रकार निर्धारित होता है जिस तरह कि अन्य विनिमय योग्य वस्तुओं का मूल्य निर्धारित होता है । सारांश रूप में श्रम-शक्ति या शारीरिक श्रम एक वस्तु की भांति है और इसका मूल्य इसके उत्पादन के हेतु आवश्यक श्रम के घण्टों से निर्धारित होता है । इस प्रकार स्वमेव श्रमिक की दृष्टि में श्रम-शक्ति एक वस्तु का स्वरूप ग्रहण कर लेती है जो कि उसकी सम्पदा है । परिणामतः उसका श्रम मजदूरी-श्रम बन जाता है···व्यक्ति की दृष्टि से श्रम-शक्ति के अन्तर्गत उसका स्वयं का पुर्नउत्पादन अथवा श्रमिक के निर्वाह का समावेश होता है । अपने निर्वाह के हेतु उसे खाद्य की एक निश्चित मात्रा की

1 "We say 5 beds=1 house. What is that equal something, that common substance, which admits of the value of the beds being expressed by a house ? Such a thing, in truth, cannot exist, says Aristotle. And why not ? Compared with the beds the house does represent something equal to them, in so far as it represents what is really equal, both in the beds and the house. And that is human labour."

—Das Kapital, P. 29.

आवश्यकता होती है। अतएव श्रम-शक्ति के उत्पादन के हेतु आवश्यक श्रम-समय जीविका के साधनों के उत्पान के लिये आवश्यकता के अनुसार स्वयं घटता जाता है। दूसरे शब्दों में श्रम-शक्ति का मूल्य श्रमिक की जीविका-निर्वाह के हेतु आवश्यक साधनों के मूल्य के बराबर है।''

आगे चलकर मार्क्स ने बताया कि श्रमिक की जीविका निर्वाह के हेतु जितने मूल्य की आवश्यकता होती है वास्तव मे वह उससे कहीं अधिक मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन करता है। उपरोक्त उदाहरण मे उसकी जीविका-निर्वाह का मूल्य १० घण्टे के श्रम के मूल्य के बराबर नही होगा अपितु इसमे बहुत कम होगा। सामान्य दशाओं के अन्तर्गत मानवीय श्रम उपभोग की गई वस्तुओं के मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य का उत्पादन करता है। इस धारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक के द्वारा कमाई गई मजदूरी आवश्यक रूप से उसकी जीविका के साधनो के मूल्य के बराबर होगी। यह तारगो (Turgot) और रिकार्डो (Ricardo) द्वारा प्रारम्भ किया गया प्राचीन क्लासिकल सिद्धान्त है जिसको मार्क्स के समकालीन एवं प्रतिद्वन्दी लासेल (Lasaslle) ने मजदूरी का लौह नियम" (Brazen Law of wages) की संज्ञा दी। मार्क्स ने बताया कि श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य पूंजीपति के अधिकार मे चला जाता है जो कि इस मूल्य का अन्तरण करता है तथा श्रमिक को केवल इतना मूल्य ही लौटाकर देता है जो कि उस वस्तु के उत्पादन मे उसको कार्यशील समय के अन्तर्गत जीवित रखने के हेतु आवश्यक होता है। बीच का अन्तर पूंजीपति की जेब मे चला जाता है। उक्त उदाहरण के अनुसार उत्पादित वस्तु दस घण्टे के श्रम के बराबर मूल्य मे बेची जाती है जबकि श्रमिक को ५ घन्टे के श्रम के बराबर मूल्य दिया जाता है। इन दोनों मूल्यों के अन्तर को मार्क्स ने "अतिरेक-मूल्य" (Surplus-Value) की संज्ञा दी है।[1]

इस प्रकार मार्क्स के अनुसार पूंजीपति श्रमिक से दस घण्टे काम कराता है और उसे केवल पांच घण्टे का मूल्य अदा करता है तथा अन्य पांच घण्टों का उसके लिये कोई मूल्य नहीं होता। पहले पांच घण्टो के दौरान मे श्रमिक अपनी मजदूरी के बराबर कमा लेता है लेकिन पांचवे घण्टे की समाप्ति पर वह अपने लिये कुछ भी नहीं कमाता। इन अतिरिक्त घण्टों का श्रम जिनके दौरान मे अतिरेक-मूल्य का उत्पादन किया जा रहा है और जिसके लिये श्रमिक कुछ भी नहीं पाता, मार्क्स ने

1 "The value produced by the labour passes into the hands of the capitalist, who disposes of it and gives back to the labour enough to pay for the food consumed by him during the time he was producing the commodity. The difference goes into the capitalist's pocket. The product is sold as the equivalent of ten hour's labour, but the labourer receives the equivalent of five hours only. Marx speaks of this as surplus value (Mehrwerth), a term that has become exceedingly popular since." —Gide & Rist, Ibid, P. 50.

आवश्यकता होती है। अतएव श्रम-शक्ति के उत्पादन के हेतु आवश्यक श्रम-समय जीविका के साधनों के उत्पादन के लिये आवश्यकता के अनुसार स्वयं घटता जाता है। दूसरे शब्दों में श्रम-शक्ति का मूल्य श्रमिक की जीविका-निर्वाह के हेतु आवश्यक साधनों के मूल्य के बराबर है।''

आगे चलकर मार्क्स ने बताया कि श्रमिक की जीविका निर्वाह के हेतु जितने मूल्य की आवश्यकता होती है वास्तव में वह उससे कहीं अधिक मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन करता है। उपरोक्त उदाहरण में उसकी जीविका-निर्वाह का मूल्य १० घण्टे के श्रम के मूल्य के बराबर नहीं होगा अपितु इससे बहुत कम होगा। सामान्य दशाओं के अन्तर्गत मानवीय श्रम उपभोग की गई वस्तुओं के मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य का उत्पादन करता है। इस धारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक के द्वारा कमाई गई मजदूरी आवश्यक रूप से उसकी जीविका के साधनों के मूल्य के बराबर होगी। यह तारगो (Turgot) और रिकार्डो (Ricardo) द्वारा प्रारम्भ किया गया प्राचीन क्लासिकल सिद्धान्त है जिसको मार्क्स के समकालीन एवं प्रतिद्वन्दी लासॅल (Lasaslle) ने मजदूरी का लौह नियम'' (Brazen Law of wages) की संज्ञा दी। मार्क्स ने बताया कि श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य पूंजीपति के अधिकार में चला जाता है जो कि इस मूल्य का अन्तरण करता है तथा श्रमिक को केवल इतना मूल्य ही लौटाकर देता है जो कि उस वस्तु के उत्पादन में उसको कार्यशील समय के अन्तर्गत जीवित रखने के हेतु आवश्यक होता है। बीच का अन्तर पूंजीपति की जेब में चला जाता है। उक्त उदाहरण के अनुसार उत्पादित वस्तु दस घण्टे के श्रम के बराबर मूल्य में बेची जाती है जबकि श्रमिक को ५ घन्टे के श्रम के बराबर मूल्य दिया जाता है। इन दोनों मूल्यों के अन्तर को मार्क्स ने ''अतिरेक-मूल्य'' (Surplus-Value) की संज्ञा दी है।[1]

इस प्रकार मार्क्स के अनुसार पूंजीपति श्रमिक से दस घण्टे काम कराता है और उसे केवल पांच घण्टे का मूल्य अदा करता है तथा अन्य पांच घण्टों का उसके लिये कोई मूल्य नहीं होता। पहले पांच घण्टों के दौरान में श्रमिक अपनी मजदूरी के बराबर कमा लेता है लेकिन पांचवे घण्टे की समाप्ति पर वह अपने लिये कुछ भी नहीं कमाता। इन अतिरिक्त घण्टों का श्रम जिनके दौरान में अतिरेक-मूल्य का उत्पादन किया जा रहा है और जिसके लिये श्रमिक कुछ भी नहीं पाता, मार्क्स ने

1 "The value produced by the labour passes into the of the capitalist, who disposes of it and gives back to ... enough to pay for the food consumed by him during the time he producing the commodity. The difference goes into the ca pocket. The product is sold as the equivalent of ten hour's but the labourer receives the equivalent of five hours onl speaks of this as surplus value (Mehrwerth), a term that exceedingly popular since." —Gide & Rist,

उसे "अतिरेक श्रम" (Surplus Labour) की संज्ञा दी है।[1] इस तरह मार्क्स के मतानुसार, "पूंजीपति एक पिशाच है और जितना अधिक यह रक्त प्राप्त करता है वह उतना ही अधिक मोटा होता जाता है" (The Capitalist is a vampire which thrives upon the blood of others and becomes stouter and broader the more blood it gets.)

यहां पर निर्बाधवादियों (Physiocrats) और मार्क्स के "अतिरेक" संबंधी विचार के अन्तर को समझाना भी उचित ज्ञात पड़ता है। निर्बावादियों का मत था कि जो व्यक्ति भूमि में काम करते हैं वे ही प्रकृति के सहयोग के कारण अधिक विशुद्ध उत्पादन (Produit Net) अथवा अतिरेक प्राप्त करने में सफल होते हैं जब कि मार्क्स के विचारानुसार यह अतिरेक केवल भूमि पर काम करके ही प्राप्त नहीं होता अपितु उत्पादन के सभी क्षेत्रों में प्राप्त होता है। इसी प्रकार निर्बाधवादियों के मतानुसार यह अतिरेक समाज की समृद्धि का साधन था, जबकि मार्क्स ने इसे अन्यायपूर्ण बताया क्योंकि इसी के द्वारा पूँजीपति श्रमिक का शोषण करता है।

यह स्वाभाविक है कि पूंजीपति का हित इस अतिरेक मूल्य को अधिक से अधिक करने में है ताकि उसका लाभ भी अधिकाधिक हो सके। मार्क्स ने बताया कि इस उद्देश्य को पूरा करने के हेतु पूंजीपति निम्नोक्त दो तरीकों को अपनाता है:—

(क) प्रथम तरीका अतिरेक—श्रम के घन्टों की संख्या बढ़ाने के हेतु कार्यशील दिन का यथासम्भव विस्तार करना है। यदि कार्यशील घन्टों को १० से बढ़ाकर १२ कर दिया जाए तो यह स्वाभाविक है ही कि अतिरेक श्रम के घन्टों की संख्या ५ से बढ़कर ७ हो जाएगी। मार्क्स ने बताया कि उत्पादक वास्तव में ऐसा ही करते हैं। यद्यपि फैक्टरी कानून ने उनमें से कुछ को कार्यशील घन्टों की संख्या सीमित करने के हेतु बाध्य कर दिया है और इस प्रकार उनके अतिरेक मूल्य की वृद्धि में कुछ सीमा तक रुकावट पड़ी है। लेकिन यह अवरोध केवल सीमित संख्या के कारखानों पर ही लागू है।

(ख) दूसरा तरीका श्रमिक की आजीविका के हेतु आवश्यक उत्पादन के घन्टों की संख्या को कम करना है। यदि यह संख्या ५ से गिरकर ३ हो जाए तो यह स्वाभाविक है कि पूंजीपति का अतिरेक श्रम ५ से बढ़कर ७ घन्टे हो

---

1 "Thus the capitalist gets ten hour's labour out of the workman and only pays him for five, the other five hour costing him nothing at all. During the first five hours the workmen produce the equivalent of his wages, but after the ends of the fifth hours he is working for nothing. The labour of this extra number of hours during which the surplus value is being produced, and for which the worker receives nothing, Marx calls surplus labour."

Gide & Rist : Ibid, P. 456.

जाएगा। यह ह्रास मौद्योगिक संगठन की पूर्णता के द्वारा या जीवन-निर्वाह के मूल्य में कटौती द्वारा ही सम्भव है भौर ये ऐसे तरीके हैं जोकि सहकारिता के साधन द्वारा ही प्रभावशील बनाये जा सकते हैं। बहुधा पूंजीपति इसकी व्यवस्था बच्चों या स्त्रियों को काम पर लगा कर करते भी हैं क्योंकि इनको युवा पुरुषों की अपेक्षा जीवन-रक्षा के हेतु कम मूल्य की आवश्यकता होती है। यह स्मरणीय है कि बाल-श्रम भौर स्त्री-श्रम के निषेध से सम्बन्धित कानूनों ने पूंजीपतियों की इन चालों को बहुत कम कर दिया है।

"मार्क्स के अतिरेक—श्रम भौर अतिरेक—मूल्य की संक्षिप्त व्याख्या यही है। इसकी वास्तविक मौलिकता इस तथ्य में निहित है कि यह इस बात को प्रदर्शित करता है कि श्रमिक का शोषण उस दशा में किस तरह किया जाता है जब कि श्रमिक वह सब पाता है जिसका कि वह अधिकारी है, यह नहीं कहा जा सकता कि पूंजीपति ने उसका शोषण किया है। उसने उसके श्रम की एक उचित कीमत अदा की है अर्थात् उसने इसका सम्पूर्ण विनिमय मूल्य दिया है। मजदूरी के सौदे की दशाओं का निरीक्षण विशेष रूप में किया गया है: समान मूल्य के विनिमय में समान मूल्य दिया गया है। दिए हुए पूंजीवादी क्षेत्र और श्रम की स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा में परिणाम दूसरा नहीं हो सकता। श्रमिक सम्भवतया इस गैर-प्रत्याशित परिणाम के सम्बन्ध में जोकि उसके लिये उसका आधा श्रम ही सुरक्षित करता है, आश्चर्य कर सकता है। प्रत्येक वस्तु ठीक ढंग से अन्तरित हो जाती है। पूंजीपति निस्सन्देह एक चालाक व्यक्ति होता है जो कि यह जानता है कि जब वह श्रम शक्ति का क्रय करता है तो वह एक अच्छी वस्तु प्राप्त कर लेता है क्योंकि यही वह शक्ति है जिसमें कि अपने निहित मूल्य से अधिक मूल्य पैदा करने की क्षमता होती है। वह इसे पहिले से ही जानता है और जैसा कि मार्क्स ने कहा है कि "यह उसके आशान्वित सुख का साधन है।" "यह वस्तुओं की एक विशेष खुशी की दशा होती है जबकि क्रेता इसे बेचने का स्वेच्छानुसार अधिकारी होता है। परिणाम यह होता है कि श्रमिक कानूनी या आर्थिक अपने बचाव का कोई साधन नहीं रखता और वह उस किसान की तरह निस्सहाय होता है जो कि बिना आने गाय को बछड़े में बेच देता है।"[1]

मार्क्स ने अपने अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त को पूंजी के प्रयोग से भी सम्बन्धित किया है। अतएव इस संदर्भ में मार्क्स के पूंजी सम्बन्धित विचार समझना भी आवश्यक है। मार्क्स ने बताया कि अदल बदल की प्रथा के पश्चात् जब से वस्तुओं का विनिमय द्रव्य के द्वारा किये जाने लगा तभी से पूंजी का जन्म हुआ और शनैः शनैः अधिक मूल्यातिरेक प्राप्त करने के हेतु पूंजी की जरूरत बढ़ने लगी।

मार्क्स ने पूंजी को दो भागों में विभक्त किया। पहले प्रकार की पूंजी

1 Prof. Gide & Rist : *History of Economic Doctrines*, P. 457-58

मजदूरी के रूप में अथवा प्रत्यक्ष खाद्य-सामग्री के रूप में श्रमिक वर्गीय जनसंख्या को जीवित रखने का काम करती है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने इसे मजदूरी कोष (Wages Fuud) कहकर पुकारा जबकि मार्क्स ने इसे परिवर्तित पूंजी (Variable Capital) की संज्ञा दी। इस प्रकार की पूंजी यदि प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में कोई भाग नहीं लेती तो भी यह वह कोष है जोकि इससे सम्बन्धित होते हैं। दूसरे प्रकार की पूंजी जोकि श्रम की उत्पादक क्रिया में उसे मशीन औजार आदि की पूर्ति करके प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहयोग करती है, को मार्क्स ने स्थिर पूंजी (Constant Capital) की सज्ञा दी है। दूसरे प्रकार की पूंजी जिसको श्रम द्वारा चूसा नहीं जाता अतिरेक मूल्य की उत्पत्ति नहीं करती। यह तो सामान्यतः इसके मूल्य के बराबर का उत्पादन करती है जोकि उत्पादन काल में प्रयुक्त समस्त मूल्य का योग है। यह स्थिर पूंजी भी श्रम का उत्पादन है तथा इसका मूल्य अन्य उत्पादन की तरह, पूर्णतया इसके उत्पादन में लगे श्रम में घंटों से निर्धारित होता है। यह मूल्य जिसके उत्पादन में या तो कच्चे माल के उत्पादन की लागत शामिल की जाए अथवा इसके विस्तार में प्रयुक्त श्रम की लागत को सम्मिलित किया जाए तैयार माल में पुनः प्राप्य होना चाहिये। लेकिन इसमें कोई अतिरेक नहीं होता। अर्थशास्त्रियों ने इसे मूल्य-ह्रास (Depreciation) की संज्ञा दी है और हरएक इस बात को जानता है कि मूल्य-ह्रास किसी भी दर पर लाभ को सम्बोधित नहीं करता। अतएव यह पूंजीपति के हित् में है कि वह स्थिर-पूंजी की अपेक्षा परिवर्तित पूंजी को अधिक बढ़ाने का प्रयास करे क्योंकि यही पूंजी मूल्यातिरेक को जन्म देती है।

मार्क्स की पूंजी सम्बन्धी धारणा में कुछ दोष दिखाई देते हैं। एक तो, यदि स्थिर पूंजी को वास्तविक रूप से अनुत्पादक मान लिया जाए तब फिर आजकल इसकी मात्रा को उस समय तक क्यों बढ़ाया जाता है जबतक कि यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता नहीं बन जाती। दूसरे किसी कारखाने में स्थिर या परिवर्तित पूंजी के प्रयोग के प्राप्त लाभ को अलग अलग कैसे ज्ञात किया जा सकता हैं। यह देखते हुए कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के साम्राज्य के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की पूंजी पर लाभ की दर समान रहती है, मार्क्स ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि सभी पूंजीपतियों के लिए लाभ की दर देश के अन्तर्गत तो समान हो सकती है लेकिन यह दर सभी विभिन्न उद्योगों में विभिन्न दरों की औसत दर होगी। दूसरे शब्दों में यह वह दर है जोकि प्राप्य होगी यदि देश का हरएक उद्योग स्थिर और परिवर्तित पूंजी की विभिन्न मात्राओं का प्रयोग करता हैं। प्रो० हेने (Haney) ने मार्क्स की पूंजी सम्बन्धी धारणा की आलोचना करते हुए लिखा है कि "मार्क्स ने यह मान लिया है कि अतिरेक की दर सदैव लाभ की दर के बराबर होती है। उसका यह विचार तभी ठीक हो सकता है जबकि विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त पूंजी का सकलन स्थिर और परिवर्तित तत्वों के अनुसार हो। मार्क्स यह स्वीकार करता है कि अतिरेक परिवर्तित पूंजी से ही बढ़ता है क्योंकि यही पूंजी श्रमिकों को

काम में जुटाती है। परन्तु लाभ की दर प्रयोग की गई स्थिर एवं परिवर्तित पूंजी की कुल मात्रा पर निर्भर करती है। ऐसी दशा में लाभ की दर कुल पूंजी के परिवर्तित पूंजी के अनुपात में बढ़ती है। इस तरह, इस सत्यता पर कि लाभ, अतिरेक और मूल्य वास्तविक रूप से पूंजी पर आधारित है, मार्क्स की तार्किक कड़ी टूट जाती है।"[1]

(२) पूंजी के केन्द्रीयकरण का नियम (The Law of Concentration of Capital):— पूंजी के केन्द्रीयकरण का नियम, जिसकी व्याख्या केवल आर्थिक इतिहास के प्रकाश में की जा सकती है, यह प्रदर्शित करने का एक प्रयत्न है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत लाभ का साम्राज्य जिसके अन्तर्गत हम रहते हैं सामाजिक उपक्रम और सामूहिक सम्पत्ति के क्षेत्र को एक स्थान देने के हेतु है।

समाजवादियों का मत है कि सोलहवीं शताब्दी की प्रारम्भना से पूर्व न तो पूंजी थी और न पूंजीपति। आर्थिक दृष्टि से उत्पत्ति के एक साधन के रूप में पूंजी का अस्तित्व इस समय से पूर्व भी होगा, यद्यपि समाजवादियों का ऐसा मत है कि कि उस समय पूंजी की महत्ता एक भिन्न किस्म की थी। समाजवादियों का इस शब्द को प्रयुक्त करने का अभिप्राय ऐसी वस्तु से था जोकि लगान उत्पन्न करती है और यह लगान पूंजीपति के श्रम का परिणाम न होकर दूसरों के परिश्रम का परिणाम होता है। लेकिन गिल्ड सिस्टम के अन्तर्गत श्रमिकों के बहुमत ने स्वमेव उत्पत्ति के अधिकांश औजारों को अपने अपने अधिकार में ले लिया। शनैः शनैः समय बदलता गया और इसके साथ साथ प्रचार के नए साधनों की स्थापना हुई, आधुनिक राज्यों के विशाल संगठन से सम्बद्ध नए बाजार स्थापित हुए, बैंक्स और व्यापारिक कम्पनियों का जन्म हुआ तथा सार्वजनिक ऋण की उत्पत्ति हुई। इन सबका सामूहिक परिणाम यह हुआ कि धन का केन्द्रीयकरण थोड़े से हाथों में हो गया तथा श्रमिकों के शोषण को प्रोत्साहन मिला।

परन्तु यह तो पूंजी के केन्द्रीयकरण की प्रारम्भना मात्र थी। यदि पूंजी, दूसरों के श्रम से लाभ कमाने के एक साधन के नए दृष्टिकोण से, अपने निजी

---

1 "Marx assumed that the rate of snrplus value always equals the rate of profits, an assumption which can bs true only when the composition of capital used in different Industries ia eth same as to the proportion of fixed and circulating elements. He admitted that only variable capital yields surplus value, for it aloneemploys labour. Therefore, while the absolute amont of surplus value increases with the amount of variable capital, the rate of profit depends upon total

·irculating

›y the fact

—Prof. Haney.

अस्तित्व को प्राप्त हुई और विकसित हुई यदि अतिरेक श्रम और अतिरेक मूल्य जिनका हमने ऊपर विश्लेषण दिया है, वास्तव में इस पूंजी के विकास और निर्वाह के हेतु थे: तब यह भी आवश्यक था कि पूंजीपति उस अनोखे व्यापारिक माल (Merchandise) को खरीदने के योग्य होता जोकि खुले बाजार में इस तरह के आश्चर्यजनक गुण रखता है। लेकिन श्रम–शक्ति का उस समय तक क्रय नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे पहले से ही उत्पत्ति के साधन से पृथक न कर दिया जाए तथा इसे इसकी चारहदीवारी से हटा न दिया जाए। इस तरह श्रम पूर्णतः स्वतन्त्र होना चाहिए अर्थात् यह विक्रय योग्य होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह स्वयं बिकने के हेतु बाध्य होना चाहिए क्योंकि श्रमिक के पास श्रम के अतिरिक्त और कुछ बेचने के हेतु नहीं होता। दीर्घकाल से शिल्पकार बिना किसी मध्यस्थ के हस्तक्षेप के अपना सामान जनता को वेचा करता था, लेकिन पूंजी के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के जन्म के बाद वह अपना श्रम वेकने लगा। मार्क्स ने बताया कि यह सब केवल पूंजीवादी देशों में नहीं होता, अपितु यह एक सामान्य आन्दोलन बन जाता है जोकि निम्नोक्त विचारों से स्पष्ट है:—

(अ) इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य विशालस्तरीय उत्पादन का विकास है जिसके परिणामस्वरूप मशीनरी का प्रयोग बढ़ता है तथा ट्रस्ट (Trust) या कार्टेल्स (Cartels) जैसे संगठनों के नए स्वरूपों का प्रादुर्भाव होता है। ये नवीन स्वरूप के संगठन सामाजिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ये केवल छोटे स्वतन्त्र सम्पत्तिस्वामियों की पूंजी को ही नहीं निगल जाते अपितु मध्यम आकार के उद्योगों को भी निगल जाते हैं। इस प्रकार श्रमिक वर्ग में वेकारी की संख्या बढ़ने लगती है पूंजीवादी का विकास होता है। वास्तव में श्रमिक वर्ग में व्याप्त बेकारी और उसका शोषण अन्त में पूंजीवादी व्यवस्था के विनाश का कारण बन जाते है।

(ब) अत्युत्पादन दूसरी फलदायक पद्धति है। बाजार के संकोच के परिणामस्वरूप ऐसे श्रकिकों का आधिक्य रहता है जिनकी सेवायें सदा उपलब्ध होती हैं। ये श्रमिक एक तरह की औद्योगिक रक्षित सेना (Industrial Reserve Army) का निर्माण करते हैं जिसके साथ पूंजीपति खिलवाड़ करता है अर्थात् एक क्षण पर उत्पादन की मांग बढ़ने पर वह श्रमिको की एक बड़ी संख्या को काम पर लगा लेता है परन्तु पुनः मांग के गिरने पर दूसरे ही क्षण वह उन्हें सड़कों पर फेंक देता है।

(स) ग्रामीण जनसंख्या का शहरों में एकत्रीकरण दूसरा सहयोगी कारक औद्योगिक विकास के साथ-साथ ग्रामीण जनता अपने रोजगार की तलाश में शहरों में आती है। इसका एक कारण यह होता है कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया

& Rist : Ibid, Page 463.

में ग्रामीण-उद्योगों का विनाश हो जाता है तथा छोटे-छोटे किसान श्रमिकों में परिणित हो जाते हैं।

वास्तव में पूंजीवाद वर्ग-संघर्ष अर्थात् ऐसा संघर्ष जो कि एक दिन सम्पूर्ण साम्राज्य को ध्वस्त-ध्वस्त कर देगा, की उपज है। यह सब कैसे होगा हम इसका तो कोई ब्योरा नहीं देंगे, लेकिन यह स्पष्ट है कि मार्क्स का यही विचार उसे काल्पनिक समाजवादियों से पृथक् करता है। उसका एक ध्येय यह प्रदर्शित करना था कि जिन नियमों ने पूंजीवादी साम्राज्य की स्थापना भी है, वे ही नियम एक दिन इस साम्राज्य को किस प्रकार ध्वस्त-ध्वस्त कर देंगे। प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक लेबरियोला (Labriola) का कथन है कि "पूंजीवादी प्रणाली का उदय स्वाभाविक रूप से हुआ है और इस प्रणाली का अन्त भी अनिवार्य है।" (The Capital regime begets its own vegation, and the process is marked by that inevitability which is such a feature of all natural laws)। निम्नोक्त तथ्यों से मार्क्स ने यह सिद्ध किया है कि किस तरह पूंजीवाद के स्वत: विनाश की प्रक्रिया इसके प्रादुर्भाव में विद्यमान होती है —

(i) अत्युत्पादन या न्यून-उपभोग के कारण उत्पन्न औद्योगिक संकट (Industrial Crisis) की दशा एक स्थायी बुराई बन गई है। यह तथ्य कि कुछ सीमा तक ये बुराइयाँ पूंजीवादी प्रणाली की प्रत्यक्ष उपज हैं, इस बात का सबूत है कि इनकी क्षतियों से सुरक्षा नहीं की जा सकती। परिवर्तित पूंजी के व्यय पर स्थिर पूंजी की लगातार वृद्धि, श्रमिकों की स्थान पर मशीनों का प्रयोग आदि से भी अतिरेक मूल्य का लगातार ह्रास चलाता रहता है। इस प्रवृत्ति को रोकने के हेतु पूंजीपति उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने तथा उसकी लागत-व्यय कम करने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर श्रमिक शनैः शनैः स्वयं को इस दशा में पाते हैं कि वे अपनी मजदूरी से आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें कभी भी उतनी मजदूरी नहीं मिलती जो कि उनके श्रम के उत्पादन के मूल्य के बराबर हो। इसके अतिरिक्त वे विभिन्न समयान्तरों पर स्वयं को बेकारी और भुखमरी की दशा में पाते हैं। इस तथ्य पर प्राउडन (Proudhon) ने विशेष रूप से बल डाला था और इस संदर्भ में मार्क्स भी उसी से प्रभावित हुआ। मार्क्सवादी सिद्धान्त में निहित विचार यह है कि हरएक संकट स्थिर और अस्थिर पूंजी के बीच पुनः समायोजन के साम्य को समावेश किए होता है। संकट की स्थिति जिसका परिणाम इन सट्टेबाजी की क्रियाओं का विनाश होता है, पुनः अतिरेक मूल्य के निर्माण को चेतना प्रदान करती है जिसका परिणाम यह होता है कि पुनः स्थिर पूंजी की वृद्धि और भयंकर संकट ; यह प्रक्रिया इसी प्रकार चलती रहती है।

(ii) निर्धनता का विकास जो कि संकट और अभाव की प्रत्यक्ष उत्पत्ति है। दूसरा महत्वपूर्ण कारक है, मार्क्स का कथन है कि पूंजीवादी व्यवस्था एक ओर

रही है तथा उनकी संख्या से भी अधिक तेजी से उनकी शक्ति बढ़ रही है, लेकिन यह दिखाई नहीं देता कि छोटे-छोटे सम्पत्ति स्वामी और निर्माणकर्त्ता समाप्त हो गये हों। सांख्यिकी बताती है कि स्वतन्त्र छोटे निर्माणकर्त्ताओं की संख्या (शिल्पकार जोकि मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार १४ वीं शताब्दी में ही विलुप्त हो गये थे) वास्तव में बढ़ रही है। कुछ नए आविष्कारों, यथा-फोटोग्राफी, साइकिलिंग या घरेलु कार्य में विद्युत का इस्तेमाल ने छोटे उद्योगों एवं नवीन निर्माणकर्त्ताओं के समूह को जन्म दिया है। फिर यदि हम धन के केन्द्रीयकरण के नियम को स्वीकार भी कर लें तो यह मार्क्सवादी सिद्धान्त को न्यायोचित ठहराने के हेतु पर्याप्त भी नहीं है। संयुक्त स्कन्ध कम्पनियां, जो कि मार्क्स के मतानुसार धन के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढ़ा देने वाली थीं, वास्तव में सम्पत्ति का वितरण व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या के बीच करती है और इससे यह सिद्ध होता है कि उद्योग का केन्द्रीयकरण तथा सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण दो भिन्न वस्तुयें हैं। और सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत तो बड़े सम्पत्ति स्वामी छोटे-छोटे पूंजीपतियों में परिणित हो गये हैं। इसी प्रकार मार्क्सवादी कार्यक्रम की प्रवृत्ति भी काफ़ी बदल गई है।

कार्ल मार्क्स के आर्थिक विचारों की समालोचना—कार्ल मार्क्स के आर्थिक विचारों और उनके साम्यवादी कार्यक्रम के विरुद्ध अनेक अर्थशास्त्रियों ने आवाज उठाई है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे० एम० कीन्स (J. M. Keynes) ने तो मार्क्स के विचारों को अत्यन्त हेय घोषित किया है।[1] प्रो० हेने (Haney) तथा प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Gide and Rist) का कथन है कि मार्क्स ने कोई भी मौलिक विचार प्रस्तुत नहीं किया अपितु उन्होंने स्मिथ (Addam Smith) और रिकार्डो (Ricardo) द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों को ही नये ढंग से पाठकों के सम्मुख रख दिया है। मार्क्स ने अपने अध्ययन की निगमन प्रणाली को अपनाया था जिसे कि परम्परावादी विचारकों ने भी अपनाया था। फिर मार्क्स ने ऐतिहासिक आधार पर भौतिक प्रगति का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह भी नवीन नहीं है, अपितु इसकी प्रेरणा उसे लिस्ट आदि विचारकों से मिली है। मार्क्स ने अपने श्रम-मूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन रिकार्डो के श्रम-मूल्य के सिद्धान्त के आधार पर किया है। मार्क्स ने अपने विचारों में पूंजीपति एवं श्रमिक वर्ग के बीच जिस संघर्ष का विवेचन किया है वह भी उसका मौलिक विचार नहीं है क्योंकि मार्क्स के पूर्व से अनेक विचारकों ने इस विचार को समझ लिया था। मार्क्स द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में जो विचार दिया गया है इसकी प्रेरणा भी इसे जे० एस० मिल (J. S. Mill) तथा दूसरे समाजवादी अर्थशास्त्रियों के विचारों से मिली है। मार्क्स के विचारों पर प्राचीन विचारकों के इसी प्रभाव को देखते हुये प्रो० जीड एण्ड रिस्ट ने कहा है कि "मार्क्सवादी सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के चोटि के अर्थशास्त्रियों विशेषकर रिकार्डो के सिद्धान्त से लिये गए हैं (The Marxian theories are derived directly

शोषण की समस्या समाप्त हो जाएगी तथा दूसरी ओर पूंजी का एकत्रीकरण भी सम्भव नहीं हो सकेगा। यह स्मरणीय है कि मार्क्सवादी सभी प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन करना नहीं चाहते अपितु वे तो उस व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन के पक्षपाती हैं जोकि उत्पादन में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करके श्रमिकों और उपभोक्ताओं का शोषण सम्भव बनाती है। इस प्रकार मूल्यातिरेक (Surplus Value) और श्रमातिरेक (Surplus Labour) विलुप्त हो जायेगा।

मार्क्सवादी सकट एव नव-मार्क्सवादी (The Marxian Crisis and The Neo-Marxians)—मार्क्सवादी संकट के दो विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत किया जा सकता है: इसका एक पहलू आलोचनात्मक (Critical) अथवा सुधारात्मक (Reformative) है जिसका प्रतिनिधित्व एम० बर्नस्टेन (M. Bernstain) और उसके सम्प्रदाय ने किया; दूसरा पहलू जो कि मार्क्सवाद को पुन: जीवित करने का एक प्रयास है सिन्डीकलिज्म (Syndicalism) के नाम से प्रचलित है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आधुनिक मार्क्सवादियों की एक बड़ी सख्या ने मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्त (श्रम का मूल्य सिद्धान्त) में सुधार किया। श्रम के मूल्य सिद्धान्त की पूर्व-स्वीकृति के अतिरिक्त, मार्क्स ने बाद में यह स्वीकार किया कि मूल्य माग और पूर्ति पर निर्भर करता है। लेकिन यह देखते हुए कि मार्क्सवाद के अन्य सिद्धांत अर्थात् मूल्यातिरेक और श्रमातिरेक के सिद्धान्त श्रम के मूल्य सिद्धान्त की ही उपज हैं, यह बात ठहरती है कि पहले सिद्धान्त को त्यागने पर दूसरे सिद्धान्तों को भी त्यागा जाएगा। यदि श्रम आवश्यक रूप से मूल्य का निर्माण नही करता अथवा यदि मूल्य का निर्माण बिना श्रम के किया जा सकता है, तब इस बात का कोई प्रमाण नही रह जाता कि श्रम सदैव मूल्यातिरेक प्राप्त करता है। तब मार्क्सवादी उत्तर देते हुये कहते हैं कि वास्तव मे श्रमातिरेक और मूल्यातिरेक का कोई अस्तित्व ही नहीं है अन्यथा कुछ व्यक्ति बिना काम के जीवित कैसे रहते? ये व्यक्ति वास्तव में दूसरो के श्रम पर निर्भर होने चाहिएं। यह सब सत्य है लेकिन तथ्य का स्पष्टीकरण पहले ही सिसमण्डी (Sismondi) द्वारा कर दिया गया था तथा इस सिद्धात के दोषों को भी उसने व्यक्त कर दिया था। यह अनार्जित वृद्धि की पुरानी समस्या है जिसने सेन्ट साइमन और रोडबर्टस के सिद्धान्तो के आधार का निर्माण किया। यह बताना कठिन है कि इस सम्बन्ध मे मार्क्स ने क्या योगदान किया कि क्या श्रमिकों का वास्तव मे शोषण किया जाता है अथवा नही। फिर भी उसके ऐतिहासिक विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वह इस बात के पक्ष में था कि पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है और वास्तव में मार्क्स के कार्य का सर्वाधिक ठोस भाग भी यही है।

जहां तक मार्क्स के धन के केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त का सम्बन्ध है इसके विरोध मे बर्नस्टेन (Bernstain) आदि विचारको द्वारा यह कहा जाता है कि इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बड़े उद्योगों की सख्या तीव्रता से बढ़

शोषण की समस्या समाप्त हो जाएगी तथा दूसरी ओर पूंजी का एकत्रीकरण भी सम्भव नहीं हो सकेगा। यह स्मरणीय है कि मार्क्सवादी सभी प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन करना नहीं चाहते अपितु वे तो उस व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन के पक्षपाती हैं जोकि उत्पादन में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करके श्रमिकों और उपभोक्ताओं का शोषण सम्भव बनाती है। इस प्रकार मूल्यातिरेक (Surplus Value) और श्रमातिरेक (Surplus Labour) विलुप्त हो जायेगा।

मार्क्सवादी संकट एवं नव-मार्क्सवादी (The Marxian Crisis and The Neo-Marxians)—मार्क्सवादी संकट के दो विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत किया जा सकता है: इसका एक पहलू आलोचनात्मक (Critical) अथवा सुधारात्मक (Reformative) है जिसका प्रतिनिधित्व एम० बर्नस्टेन (M. Bernstain) और उसके सम्प्रदाय ने किया; दूसरा पहलू जो कि मार्क्सवाद को पुन जीवित करने का एक प्रयास है सिन्डीकलिज्म (Syndicalism) के नाम से प्रचलित है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे आधुनिक मार्क्सवादियों की एक बड़ी संख्या ने मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्त (श्रम का मूल्य सिद्धान्त) मे सुधार किया। श्रम के मूल्य सिद्धान्त की पूर्व-स्वीकृति के अतिरिक्त, मार्क्स ने बाद मे यह स्वीकार किया कि मूल्य माग और पूर्ति पर निर्भर करता है। लेकिन यह देखते हुए कि मार्क्सवाद के अन्य सिद्धान्त अर्थात् मूल्यातिरेक और श्रमातिरेक के सिद्धान्त श्रम के मूल्य सिद्धान्त की ही उपज हैं, यह बात ठहरती है कि पहले सिद्धान्त को त्यागने पर दूसरे सिद्धान्तो को भी त्यागा जाएगा। यदि श्रम आवश्यक रूप से मूल्य का निर्माण नही करता अथवा यदि मूल्य का निर्माण बिना श्रम के किया जा सकता है, तब इस बात का कोई प्रमाण नहीं रह जाता कि श्रम सदैव मूल्यातिरेक प्राप्त करता है। तब मार्क्सवादी उत्तर देते हुये कहते हैं कि वास्तव मे श्रमातिरेक और मूल्यातिरेक का कोई अस्तित्व ही नहीं है अन्यथा कुछ व्यक्ति बिना काम के जीवित कैसे रहते ? ये व्यक्ति वास्तव में दूसरों के श्रम पर निर्भर होने चाहिएं। यह सब सत्य है लेकिन तथ्य का स्पष्टीकरण पहले ही सिसमण्डी (Sismondi) द्वारा कर दिया गया था तथा इस सिद्धात के दोषों को भी उसने व्यक्त कर दिया था। यह अनर्जित वृद्धि की पुरानी समस्या है जिसने सेन्ट साइमन और रोडबर्टस के सिद्धान्तो के आधार का निर्माण किया। यह बताना कठिन है कि इस सम्बन्ध मे मार्क्स ने क्या योगदान किया कि क्या श्रमिकों का वास्तव मे शोषण किया जाता है अथवा नहीं। फिर भी उसके ऐतिहासिक विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वह इस बात के पक्ष में था कि पूंजीपतियो द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है और वास्तव में मार्क्स के कार्य का सर्वाधिक ठोस भाग भी यही है।

जहां तक मार्क्स के धन के केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त का सम्बन्ध है इसके विरोध मे बर्नस्टेन (Bernstain) आदि विचारकों द्वारा यह कहा जाता है कि इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बड़े उद्योगों की संख्या तीव्रता से बढ़

from the theories of the leading economists of the early nineteenth century, especially Ricardo's) अथवा "मार्क्सवाद परम्परावादी तने पर उगी हुई एक शाख है" (Marxism is simply a branch grafted on on the classical trunk) ।

कार्ल मार्क्स के विचारों की इतनी कटु आलोचना होने के बावजूद भी यह मानना पड़ेगा कि समाजवाद के इतिहास में सबसे बड़ा और सर्वाधिक प्रभावशाली नाम कार्ल मार्क्स का है (The greatest and the most influential name in the history of Socialism is Karl Marx.) । वस्तुत: आर्थिक विचार धारा के इतिहास में कार्ल मार्क्स का नाम प्रमुख विचारकों की श्रेणी में रक्खा जाता है । प्रो० हेने (Haney) ने मार्क्स की प्रसिद्धी के निम्नोक्त कारण बताये हैं–

(i) मार्क्स का ग्रन्थ (Das Kapital) उस समय प्रकाशित हुआ जब कि श्रमिक वर्ग में असन्तोष फैला हुआ था । इस समय इंगलैण्ड में श्रमिक संगठित हो रहे थे, फ्रांस में क्रान्ति हो चुकी थी तथा जर्मनी में क्रान्ति के कुचल जाने के कारण श्रमिक वर्ग में काफी असन्तोष व्याप्त था तथा उनकी दशा भी काफी शोचनीय थी । मार्क्स की पुस्तक ने इन असन्तुष्ट श्रमिकों को नये मार्ग का प्रशस्तीकरण किया ।

(ii) मार्क्स ने अनेक आकर्षक नारों से युक्त क्रान्तिकारी विचारों का प्रतिपादन किया जो कि तत्काल के हेतु नितान्त उपयुक्त एव प्रेरणास्पद थे ।

(iii) मार्क्स ने परम्परावादी विचारधारा से चले आ रहे काल्पनिक विचारों को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया ।

(iv) उसने अर्थशास्त्रियों के सम्मुख तात्कालिक समाज की प्रमुख कठिनाइयों को रक्खा तथा उनके वास्तविक कारणों की खोज की तथा अपनी साम्यवादी उद्घोषणा के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग को दु.ख, शोषण एवं निर्धनता से छुटकारा दिलाने का प्रस्ताव रक्खा । उस नवीन समाज के आकर्षण में उनका मार्क्स के प्रति झुक जाना स्वाभाविक ही था ।

(v) मार्क्स ने सबसे बड़ा कार्य यह किया है कि उसने विभिन्न विचारकों के बिखरे हुये विचारों को एकत्रित करके उन्हें नवीन एवं समय की माग के अनुरूप स्वरूप प्रदान किया ।

मार्क्स की विचारधारा का व्यवहार में सोवियत रूस, चीन, जर्मनी आदि देशों में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । जर्मनी में कार्लकोट्स्की (Karl Kautsky), रोजा लुक्जेमबर्ग (Rosa Luxembarg) तथा रोडल्फ हिल्फरडिंग (Rodolf Hilferding) आदि विद्वान मार्क्सवादी विचारधारा के बड़े समर्थक हुए । इंगलैन्ड जैसे पूंजीवादी देश में भी जी० डी० एच० कोल (G. D. H. Cole), मारिस डोब

(Maurice Dobb) तथा एरिक रोल (Eric Roll) आदि विचारकों ने मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार किया है। पूँजीवाद के सबसे बड़े समर्थक संयुक्त राज्य अमेरिका में भी आई० एम० रूबिनो (I. M. Rubinow), लुईस बी० बुडिन (Louis B. Boudin), ई० वी० डेब्स (E. V. Debs) आदि मार्क्सवादी विचारधारा के बड़े समर्थक हुये हैं। पूँजीवादी देश अमेरिका के विचारक सैलिगमैन (Seligman) ने मार्क्स की सराहना करते हुये लिखा है कि, "हम मार्क्स के औद्योगिक समाज के विश्लेषण को स्वीकार करें या न करें, तो भी इतना सुरक्षितता से कहा जा सकता है कि कोई भी इस तथ्य को जाने बिना कि सम्भवतः रिकार्डो को छोड़कर कोई भी अधिक मौलिक, अधिक शक्तिशाली और अधिक बुद्धिमान आर्थिक विज्ञान के सम्पूर्ण इतिहास में नहीं हुआ है, मार्क्स का वैसा अध्ययन नहीं कर सकता जिसके वह सर्वथा योग्य है।[1]"

वस्तुत: कार्लमार्क्स एक महान अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक समाजवादी तथा इतिहासवेत्ता था। यह उसकी महानता और विचारों की सत्यता का ही प्रमाण है कि उससे किसी न किसी अंश तक हर एक देश और हरएक विचारक प्रभावित हुआ है। किरकुप (Kirkup) ने मार्क्स की प्रशंसा करते हुये उसे उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा विचारक कहकर पुकारा है। प्रो० लास्की ने मार्क्स के महत्व को व्यक्त करते हुये लिखा है, "उसने व्यक्तियों की दशा के तात्कालिक प्रश्न को सामाजिक वाद-विवाद के सम्मुख रखा और उसने इनके आशा का संचार करने की महत्वपूर्ण सेवा उस समय की जबकि मनुष्य ने स्वयं को अपने दुर्भाग्य के सम्मुख निस्सहाय समझ लिया था और उससे कोई छुटकारा उसे दिखाई नहीं पड़ता था। विश्व के हर एक देश में जहाँ भी व्यक्तियों ने स्वयं को सामाजिक विकास के कार्य में संलग्न किया है, मार्क्स सदैव प्रेरणा का द्योतक रहेगा।[2]"

---

1 "Whether or not, we agree with Mark's analysis of industrial society, it is safe to say that no one can study Marx, as he deserves to be studied...without recognising the fact that perhaps with the exception of Ricardo, there has been no more original, no more powerful, and no more acute intellect in the entire history of economic science."

—Seligman.

2 "He put it in the front of the social discussion, the ultimate question of the condition of the people and he performed the incalculable service of bringing to it a message of hope in an epoch where man seemd to themselves to have become the helpless victims of a misery from which there was no relief. In every country of the world where men have set themselves to the task of social improvements, Marx has always been the source of inspiration and prophesy."

—Laski.

अन्त मे, निष्कर्ष रूप मे प्रो० वी० एम० एब्राहम[1] (V. M. Abraham) के शब्दों में कहा जा सकता है, "सम्पूर्ण रूप में मार्क्स द्वारा आर्थिक विचारधारा के विकास मे किया गया योगदान महान था। कुछ लेखकों ने उसे क्लासिकल लेखकों के बीच वर्गीकृत किया है क्योंकि उसने अपने कुछ सिद्धान्तो का आधार क्लासीकल सिद्धान्तों को बनाया, यद्यपि उसके निष्कर्ष भिन्न थे। यदि क्लासीकल अर्थशास्त्री पूंजीवाद के भविष्यवक्ता थे तो मार्क्स भी औद्योगिक वर्गों के हितों का चैम्पियन था। उसने क्लासीकल श्रम के मूल्य सिद्धान्त के माध्यम से न्यूनातिरेक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा उसका शोषण का सिद्धान्त माल्थस-रिकार्डो के मजदूरी के लौह नियम के आधार पर बनाया गया। उसका वर्गीय विरोधवाद रिकार्डियन वर्ग-संघर्ष का एक व्यापक स्वरूप था। भावी सन्ततियों ने कार्ल मार्क्स और मार्क्सवाद की कटु आलोचना की। आलोचना का एक बिन्दु यह था कि मार्क्स अपनी अनेक स्थापनाओं मे मिथ्या सिद्ध हुआ। जैसा कि मार्क्स ने विचारा कृषि केन्द्रीयकृत औद्योगिक स्वामित्व का विषय नहीं थी, स्वतन्त्र व्यवसाइयो की बड़ी संख्या तथा

---

1 "Ont he whole the contributions made by Marx to the development of economic thought was great, Some writers classified him among the classical writers, as he based some of his theories on classical doctrines even though his conclusions were different. If the classical economists were the prophets of the Capitalism, Marx was the Champion of the interests of the industrial classes. He arrived at the theory of surplus value through the classical labour theory of value and his theory of exploitation was built on the 'Malthus-Ricardo iron law of wages.' His class autagonism was an extended form of the Ricardian class-struggle. Karl Marx and Marxism were put under severe criticism throughout the succeeding generations. One point of criticism was that Marx was falsified in many of his predictions. Agriculture was not, as Marx assumed subjected to concentrated industrial ownership, great number of independent businessmen and self-employed owners out-numbered the capitalists and against the foresight of Marx the conditions of labour really improved when real wages rose and the standard of living was rising. But these mistakes of his predictions did not be little the importance of his theory. His doctrines remained valid for all times. Malthus and Ricardo, and in short, the classical economic doctrines were revived in Marx but the doctrines which they advocated in defence of capitalism was made use of by Marx for a criticism of the same institution and for a defence of proletatiat Hence it was commented that Marx, the classical disciple became the prophet of the proletariat and of scientific socialism."

—V. M. Abraham : Histosy of Economic Thought, P. 121.

स्वयं काम पर लगे स्वामियों की संख्या बढ़ती जा रही है तथा मार्क्स की भविष्य-वाणी के विरुद्ध वास्तविक मजदूरी बढ़ने और जीवन-स्तर में वृद्धि होने के फल-स्वरूप श्रमिकों की दशा निश्चित रूप से सुधर रही है। लेकिन ये त्रुटियां उसके सिद्धान्त के महत्व को तुच्छ नहीं बना देतीं। उसके सिद्धान्त सभी कालों में अकाट्य रहे। माल्थस और रिकार्डो और संक्षिप्त में क्लासिकल आर्थिक सिद्धान्तों को मार्क्स ने नव जीवन प्रदान किया लेकिन जिन सिद्धान्तों की परम्परावादियों ने पूंजीवाद की सुरक्षा में की थी: उन सिद्धान्तों की वकालत मार्क्स ने पूंजीवाद के विरोध में तथा श्रमिक वर्ग की सुरक्षा में की। इस तरह क्लासिकल अनुयायी मार्क्स श्रमिक वर्ग तथा वैज्ञानिक समाजवाद का भविष्यवक्ता बन गया।"

१६

उत्तर-मार्क्सवादी समाजवाद का इतिहास

(History of Post-Marxian Socialism)

प्राक्कथन—समाजवाद का उत्तर-मार्क्सवादी विकास पूर्णतया मार्क्स के विचारों से प्रभावित है। उत्तर—मार्क्सवादी समाजवाद का इतिहास मार्क्सवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया प्रथवा मार्क्सवादी विचारधारा के पुनर्विचार से अधिक कुछ और नहीं है। मार्क्सवादी विचारधारा की सर्वाधिक प्रतिक्रिया पुनर्विचारवादी आन्दोलन (Revisionist Movement) पर दिखाई देती है जिसका मुख्य प्रतिनिधि बर्नस्टिन (Bernstein) था। इस आन्दोलन का उद्देश्य मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी पहलू को समाप्त करके उसे सुधारात्मक पहलू का आवरण पहिनाना था। इस तरह विकासवादी समाजवाद ने कान्तिकारी समाजवाद का स्थान प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार की प्रतिक्रिया फेबियनवादियों पर भी हुई।

कार्ल मार्क्स "वैज्ञानिक समाजवाद" (Scientific Socialism का प्रवर्तक था। उसने पूंजीवादी व्यवस्था के दोषों का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष दिया कि इसका अन्त समाजवादी व्यवस्था के द्वारा होगा। उत्तर—मार्क्सवादी विचारकों में अराजकतावादी विचारकों, यथा-बकुनिन (Bakunin), क्रोप्टकिन (Kropotkin) तथा बर्टरैंड रसैल (Bertrand Russell) का नाम उल्लेखनीय है। एक दृष्टिकोण से बकुनिन का आर्थिक विचारधारा के इतिहास में और विशेषकर समाजवादी विचारधारा के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है, जहां तक बकुनिन द्वारा विद्यमान समाज के किए गए विश्लेषण से सम्बन्ध है, इसको कार्ल मार्क्स द्वारा समाज के किये गये विश्लेषण से अधिक भिन्न नहीं ठहराया जा सकता। उसने बताया कि विद्यमान समाज की प्रवृत्ति में ही शोषण निहित है जिसमें श्रम या पूंजी अथवा सम्पत्ति द्वारा शोषण किया जाता है। बकुनिन ने बताया कि श्रम का शोषण इस कारण नहीं होता कि समाज के कुछ वर्ग दूसरों की मेहनत की कमाई पर ही जीवित हैं अपितु इसलिये कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों का शोषक बनने को अथवा दूसरों के द्वारा शोषित होने के लिये बाध्य होता है। उसने बताया कि इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि राज्य सदैव से ही कुछ धनी एवं शक्तिशाली वर्गों का प्रतिनिधि रहा है तथा राज्य के अस्तित्व में ही इन वर्गों का हित छिपा होता है। इस प्रकार बकुनिन ने बताया कि समाज में श्रमिक वर्ग का जो शोषण किया जाता है उसके लिये काफी सीमा तक राज्य उत्तरदाई है। अतएव उसने राज्य को ही उन्मूलित करने का सुझाव दिया।

प्रिंस क्रोप्टकिन को आधुनिक अराजकतावादी विचारकों के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उसकी विचारधारा पर प्राउढ़न की अमिट छाप पड़ी थी। क्रोप्टकिन ने बताया कि समाज में निर्धनता इसलिए व्याप्त है क्योंकि आवश्यक वस्तुओं पर मुठ्ठी भर व्यक्तियों का ही अधिकार होता है।* उसका विश्वास था कि प्रत्येक वस्तु पर समाज के सभी सदस्यों का अधिकार होना चाहिये क्योंकि उत्पादन सभी के सहयोग से हुआ है; यहां तक कि किसी विचार अथवा आविष्कार को भी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं ठहराया जा सकता। क्रोप्टकिन ने बताया कि उत्पादन एक सामाजिक तथ्य (Social Fact) है तथा उत्पत्ति के साधन प्रजाति की सामान्य सम्पत्ति हैं कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों (जीवित या मृत-के तरीके अपनाये बिना काम नहीं कर सकता। इस दशा में हम सामूहिक उत्पादन में से किसी व्यक्ति या वर्ग का हिस्सा कैसे समाप्त कर सकते हैं? यदि उत्पत्ति के साधन मानव जाति के सामूहिक कृत्य के परिणाम हैं तो सामूहिक उत्पादन भी प्रजाति की सामूहिक सम्पति ही मानी जानी चाहिए। क्रोप्टकिन के मतानुसार "प्रत्येक वस्तु पर सबका अधिकार समान रूप से है।" इस तरह क्रोप्टकिन ने प्रचलित मजदूरी की प्रणाली को समास्त करने का प्रस्ताव रक्खा जिसके अन्तर्गत श्रमिक को उसके कार्य के अनुसार मजदूरी दी जाती है। उसने बताया कि मजदूरी की यह प्रणाली अन्यायपूर्ण है क्योंकि किसी व्यक्ति के कार्य को माप सकना सर्वथा असम्भव है। क्रोप्टकिन ने बताया कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को "काम पाने के अधिकार (Right to work) से भी बड़ा अधिकार "जीवित रहने का अधिकार" (Right to live) है और इसलिये समाज को चाहिए कि वह प्रत्येक व्यक्ति को जीविका के साधन जुटाए।

क्रोप्टकिन ने बताया कि समाज में व्याप्त शोषण के लिए राज्य काफी सीमा तक उत्तरदायी है अर्थात् यह "व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण" (Exploitation of man by man) को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने वाली मुख्य धुरी है। उसके मतानुसार, "राज्य भूस्वामियों, मिलिट्री कमाउन्डर, जज, पादरी और पूंजीपति के पारस्परिक बीमा की अवस्था है जिसका ध्येय एक दूसरे की अधिसत्ता को जनता के ऊपर थोपने तथा जनसमूह का शोषण करके स्वयं को धनवान बनाने का है।[2]"

1 "The rich hath great labour in gathering riches to-gether: and when he resteth, he is filled with his delicates." "The poor laboureth in his poor estate, and when he leavth off, he is still needy."
—Kropotkin.

2 "The State is a society of mutual insurance between the land-lord, the military commander, the judge, the priest, and later on the capitalist, in order to support each other's authrity over the people, and for exploiting the poverty of the masses and getting rich them-"
—Kropotkin.

इस तरह क्रोपट्किन ने मानव जाति को शोषण से छुटकारा दिलाने का एकमात्र उपाय अराजकतावादी अवस्था को प्राप्त करने में बताया।

बर्टेन्ड रसेल भी एक प्रमुख अराजकतावादी विचारक था, यद्यपि उसने क्रोप्टकिन की तरह पूर्ण अराजकतावादी दशा कायम करने का पक्षानुमोदन नहीं किया क्योंकि उसका ऐसा विश्वास था कि मानव समाज में व्याप्त अपूर्णताओं के कारण विशुद्ध अराजकतावादी दशा प्राप्त नहीं की जा सकती। उसने विशुद्ध अराजकतावाद और गिल्ड समाजवाद के बीच की अवस्था कायम करने का सुझाव दिया। उसने बताया कि दुनियां में व्याप्त दुखों के लिये राज्य की बढ़ती हुई शक्ति उत्तरदाई है। रसेल के मतानुसार अराजकतावाद का आर्थिक पहलू यह है कि प्रत्येक स्त्री या पुरुष को कम से कम इतनी वस्तुएं अवश्य प्राप्त हो जायें जितनी वस्तुओं का वह उपभोग करना चाहता है और प्रत्येक स्त्री और पुरुष का काम करने का उत्तरदायित्व होता है। रसेल का स्थान उन गिने-चुने समाजवादियों में है जोकि सभी व्यक्तियों की आधारभूत अच्छाइयों में विश्वास नहीं करते अथवा मनुष्य के दोषपूर्ण वातावरण को उसकी अमानुषिक प्रवृत्तियों के लिये उत्तरदाई ठहराते हैं। वह हमारे समक्ष इस बात को प्रस्तुत करता है कि हमारे समस्त बुरे व्यवहारों के लिये एकमात्र बुरी सामाजिक व्यवस्था ही उत्तरदाई नहीं है।

जहां तक अराजकतावादी विचारधारा का सम्बन्ध है, कोई भी विचारक व्यक्तिवादी अराजकतावाद (Individualistic Anarchism) और अराजकतावादी साम्यवाद (Anarchist Commumism) के बीच भेद स्थापित कर सकता है। अराजकतावादी साम्यवाद "अहम्" के अस्तित्व को स्वीकार करता है, जबकि व्यक्तिवादी अराजकतावाद स्टिरनेर के दर्शन पर आधारित है। संक्षिप्त रूप में अराजकतावाद समाज का दार्शनिक सिद्धान्त है जिसमें राज्य का कोई अस्तित्व नहीं है।

जहां तक विकासजन्य समाजवाद (Evolutionary Socialisom) का प्रश्न है। इसकी दो विचारधाराएं हैं—(अ) फेबियनवाद (Fabianism) और (ब) पुनर्विचारवाद (Ravisionism)। फेबियनवादी विचारकों ने कार्ल मार्क्स के द्वारा प्रतिपादित समाजवाद के क्रांतिकारी पहलू को विकासात्मक आवरण पहिनाया। इन विचारकों की दृष्टि में राज्य की क्रियाओं के द्वारा तथा राज्य को अधिक से अधिक शक्ति सम्पन्न बनाकर ही समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। इन विचारकों ने लगान को एक तरह की अनार्जित आय बताया तथा इस अनार्जित आय को समाप्त करने की दिशा में भूमि का राष्ट्रीयकरण करने का सुझाव दिया। शॉ (Shaw) के शब्दों में, "भूमि में निहित सार्वजनिक सम्पदा समाजवाद की मौलिक आर्थिक दशा है" (Public property in land is the basic economic condition of socialism.)। इन विचारकों ने अकेले लगान के सिद्धान्त के द्वारा ही उन मान्यताओं को समाप्त कर दिया जिनके ऊपर निजी सम्पत्ति आधारित है। फेबियन-

वादियों का मत था कि किसी देश की तीव्र आर्थिक प्रगति पूर्णतया संवैधानिक साधनों (किसी प्रकार की क्रांति के द्वारा नहीं) के द्वारा ही सम्भव है। इन विचारकों का मत था कि समाजवादी आन्दोलन एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। श्रीमती बीसेन्ट (Mrs. Besant) के शब्दों में, "ऐसा कोई बिन्दु नहीं होगा जिससे एक समाज व्यक्तिवाद को पार करके समाजवाद में पहुँचे, परिवर्तन निरन्तर होते जा रहे हैं और हमारा समाज समाजवाद के मार्ग पर चल पड़ा है" (There will never be a point at which a society crosses from individualism to socialism. The change is ever going forward, and our society is well on the way to socialism.)।

फेवियनवाद का प्रादुर्भाव ग्रेट ब्रिटेन में हुआ था, जबकि रिवीजनवाद का प्रादुर्भाव जर्मनी में हुआ जिसके प्रतिनिधियों ने भी लगभग ऐसे ही निष्कर्ष निकाले जैसे कि फेवियनवादियों ने दिए थे। इस विचारधारा का मुख्य विचारक बर्नेस्टिन था। इसी समय श्रमिक वर्ग की दशाओं को सुधारने की दशा में एक प्रवृत्ति विकसित हो रही थी जिसके फलस्वरूप उस समय और दीर्घकाल के लिए समाजवादी का कार्य "राजनैतिक दृष्टि से श्रमिक वर्ग को संगठित करना तथा उनके लिये जनतंत्र का विकास करना तथा उन सब सुधारों के लिये लड़ना जोकि राज्य द्वारा श्रमिकों की दशा सुधारने के लिये आवश्यक हैं तथा राज्य को जनतंत्र की दिशा में परिवर्तित करना" था।[1] बर्नेस्टिन की पुस्तक "विकासात्मक समाजवाद" (Evolutiondary Socialism) मार्क्सवादी विचारधारा के विस्तृत विवेचन से अधिक और कुछ नहीं है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मूल्य के सिद्धान्त तथा अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए बर्नेस्टिन ने लिखा है कि अतिरेक मूल्य के तथ्य का विश्लेषण सम्पूर्ण समाज की अर्थव्यवथा के संदर्भ में ही खोजा जा सकता है, जबकि मार्क्स के मतानुसार अतिरेक मूल्य का प्रश्न औद्योगिक मजदूरों के सम्बन्ध में ही उठता है। बर्नेस्टिन के शब्दों में, "समाजवाद अथवा साम्यवाद के लिये वैज्ञानिक आधार का समर्थन इस तथ्य पर नहीं किया जा सकता कि मजदूरी पर काम करने वाले व्यक्ति अपनी मेहनत का पूरा प्रतिफल प्राप्त नहीं करते" (A scientific basis for socialism or communism cannot be supported on the fact only that the wage-worker does not receive the full value of the product of his work.)। इस तरह रिवीजनवादियों ने मार्क्सवादी समाजवाद को ऐसा नया रूप देने देने का प्रयास किया जोकि प्रगति का एक सिद्धान्त साबित हो सके तथा पर शान्ति कायम करने तथा मनुष्यों में अच्छी भावना पैदा करने में प्रेरक सिद्ध सके।

1 "I strongly believe in the march forward of the working classes, who step by step must work out their own emancipation."
—Bernstein.

उत्तर—मार्क्सवादी समाजवाद के ऐतिहासिक विवेचन में सिण्डीकलइज्म का भी उल्लेख महत्वपूर्ण है जिसकी उत्पत्ति फ्रान्स में हुई, यद्यपि आगे चलकर इसे इटली के विचारकों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। सिण्डीकलइज्म का अर्थ 'श्रमिक संघवाद' से है अर्थात् यह समाजवाद का वह स्वरूप है जो कि क्रांति को वर्ग-युद्ध की उत्पत्ति मानता है। शुरू-शुरू में सिण्डीकलइज्म श्रमिकों के बीच एक स्वाभाविक आन्दोलन था; यह फ्रान्स के श्रमिक-वर्ग आन्दोलन तथा श्रमिक संघों के इतिहास का एक प्राकृतिक विकास था। मुख्य रूप से यह आन्दोलन वर्ग-संघर्ष का एक सिद्धान्त है जिसमें हड़ताल को एक मात्र अस्त्र स्वीकार किया गया है।

गिल्ड समाजवाद अपने विशुद्ध रूप में, पुरातन एवं रूढ़िवादी सामूहिक समाजवाद से सम्बन्ध-विच्छेद का प्रतिनिधित्व करता है। जबकि पुराने समूहवादी मुख्य रूप से उपभोक्ताओं में अभिरुचि रखते थे, गिल्ड समाजवादी मनुष्य को उत्पादक के रूप में अथवा श्रमिक के रूप में पहले स्वीकार करते है, उपभोक्ता के रूप में बाद में। इसी प्रकार समूहवादी औद्योगिक उत्पादन के न्यायपूर्ण वितरण के सम्बन्ध में अधिक चिन्तित थे, जबकि गिल्ड समाजवादी उद्योगों को स्थापित करने तथा उद्योगों का श्रमिकों द्वारा नियन्त्रण करने के सम्बन्ध में अधिक चिंतित थे। गिल्ड समाजवादियों के मतानुसार श्रमिक वर्ग को शोषण से छुटकारा दिलाने का एकमात्र उपाय यह है कि प्रचलित मजदूरी-पद्धति को समाप्त कर दिया जाए तथा उद्योग के नियन्त्रण का अधिकार श्रमिक वर्ग के हाथ में हो। उनके मतानुसार औद्योगिक जनतन्त्र किसी भी तरह से राजनैतिक जनतन्त्र से कम महत्वपूर्ण नहीं है जिसकी स्थापना केवल तभी की जा सकती है जबकि उद्योगों का नियन्त्रण श्रमिक वर्ग के हाथ में हो। गिल्ड समाजवादियों ने औद्योगिक स्तर पर गिल्ड्स की स्थापना करने तथा सबसे ऊपर राष्ट्रीय गिल्ड की स्थापना करने का विचार प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय गिल्ड का कार्य श्रमिक को मानव होने के नाते भुगतान मिलने, रोजगार एवं बेरोजगारी, बीमारी और स्वस्थता में भुगतान मिलने, श्रमिकों द्वारा उत्पादन के सँगठन को नियन्त्रित करने तथा अपने उत्पादन का दावा करने की गारन्टी प्रदान करना होना चाहिये। गिल्ड समाजवादियों के मतानुसार एक ऐसे समाज में जहाँ कि आय और धन के वितरण में बहुत विषमता पाई जाती है, कीमत सम्बन्धी संरचना उत्पादन को उचित निर्देश प्रदान नहीं करती। इसका यह कारण है कि धनी वर्ग का बाजार पर गहरा प्रभाव रहता है जिसके कारण उत्पादन की प्रक्रिया सर्वप्रथम उन्हीं की इच्छाओं को पूरा करने की दिशा में चलती है।

उत्तर—मार्क्सवादी समाजवाद के इतिहास के अंतिम चरण (Phase) के रूप में लेनिनवाद (Leninism) का विवेचन किया जा सकता है। बहुत से विचारक यह निर्णय देते हैं कि लेनिनवाद पुनः मार्क्सवाद से अधिक और कुछ नहीं है, कि लेनिन पूर्णरूपेण मार्क्स की विशुद्ध विचारधारा से सम्बन्धित था, कि उसने मार्क्स-वादी सिद्धान्त लेनिनवादी व्यवहार में परिणित किया अर्थात् उसने कार्ल मार्क्स द्वारा

प्रतिपादित सिद्धान्तों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। लेनिन के मतानुसार मार्क्सवाद से किसी प्रकार का मतभेद रखना गलत है। कार्ल मार्क्स को वास्तव में एकाधिकारी पूंजीवाद का कोई ज्ञान नहीं था अर्थात् उसे साम्राज्यवाद का कोई जीवित-ज्ञान नहीं था। लेनिन ने मार्क्सवाद के भौतिक एवं अभौतिक दोनों स्वरूपों को परिवर्तित किया अपितु उसने मार्क्सवाद का विस्तार भी किया।[1]

लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद का किया गया विश्लेषण उसके सिद्धान्त की विशेषताओं की व्याख्या का प्रारम्भिक विन्दु प्रदान करता है। उसके दृष्टिकोण से साम्राज्यवाद पूंजीवाद की एकाधिकारी अवस्था अथवा पूंजीवाद की उच्चतर अवस्था है। एकाधिकारी पूंजीवाद की संक्रमणकारी अवस्था में लाभदायक विनियोजन की सुविधाओं का अन्त हो जाता है जिसके कारण विश्व के विभाजन के हेतु संघर्ष जन्म होता है। इस प्रकार सम्पत्ति-स्वामी वर्ग में स्वयं संघर्ष का प्रादुर्भाव होता है और अन्ततः श्रमिक वर्ग की तानाशाही की स्थापना होती है।

---

1 "Leninism is Markism of the era of imperialism and of the prolatarian. revolution To be more exact, Leninism is the theory and tactics of the proletarian revolution in general; the theory and tactics dictatorship of the proletariat in particular." —Stalin.

१७
विषयगत सम्प्रदाय
(Subjective School)

प्राक्कथन—एडम स्मिथ और उसके अनुयाइयों के विचारो की समय-समय पर कटु आलोचना की जाती रही। परम्परावादियो की विचारधारा के आलोचको मे ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों (Historians) और समाजवादियो (Socialists) द्वारा की गई आलोचनाओं का विवेचन विगत अध्यायों मे किया जा चुका है। उन्नीसवी शताब्दी के द्वितीय चरण के अन्त मे परम्परावादी विचार के आलोचकों के एक नवीन सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ जोकि आर्थिक विचारधारा, के इतिहास मे "विषयगत सम्प्रदाय" (Subjective School) के नाम से प्रसिद्ध है। विषयगत सम्प्रदायवादियों ने आर्थिक विषयों का विवेचन विषयगत (Subjective) दृष्टि से किया जबकि परम्परावादियों ने आर्थिक विषयो का विवेचन वस्तुगत (Objective) दृष्टिकोण से किया था। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि विषयगत सम्प्रदाय के विचारकों द्वारा मनुष्य, उसकी आवश्यकताओ और उसकी मानसिक स्थितियों आदि विषयगत कारकों पर अधिक ध्यान दिया गया। कुछ विचारको ने उपयोगिता तत्व पर बल डालते हुए मूल्य के विषयगत पहलू का विवेचन किया। दूसरे विचारकों ने प्रकृति की वाह्य शक्तियो के ऊपर मनुष्य के नियन्त्रण पर अथवा मनुष्य-निर्मित संस्थाओं के महत्व पर प्रकाश डाला।[1] इस प्रकार उनके अध्ययन का उद्देश्य मनुष्यों के बीच की पारस्परिक क्रियाओ तथा वाह्य जगत पर उनकी प्रतिक्रिया को निर्धारण करना था।[2]

सन् १८७२–७४ के लगभग आस्ट्रिया, इगलैण्ड, स्विटजरलैण्ड और अमेरिका के अनेक अर्थशास्त्री इस माग के साथ यकायक प्रकाश मे आए कि राजनैतिक अर्थ-व्यवस्था को एक स्वतन्त्र विज्ञान समझा जाना चाहिए। इस तरह उन्होने विशुद्ध अर्थशास्त्र का दावा किया। स्वाभाविक रूप से उन्होने दो सम्प्रदायों के चैम्पियनों अर्थात् प्रो० श्मोलर (Professor Schmoller) और कार्ल मेजर (arl Menger); के बीच तीव्र विरोधाभास उत्पन्न किया। विषयगत सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव परम्परा वादी विचारधारा के विरोध, समाजवादी विचारधारा के विरोध तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के उद्‌भव के प्रभाववश हुआ। इस प्रकार प्ररम्परावादी शाखा की आलो-

1 Prof. Haney : History of Economic Thought, P. 581.
2 Gide & Rist : History of Economic Doctrines, P. 489.

चनाओं एव मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों के कारण अर्थशास्त्री अध्ययन की वाह्य (Objective) रीति को छोड़कर आन्तरिक (Subibjective) रीति को अपनाने लगे।[1]

विषयगतवाद की प्रकृति (Nature of Subjectivism):—विषयगतवाद की प्रकृति का ज्ञान उसकी सामान्य विशेषताओं से हो जाता है जोकि निम्नोक्त हैं:-

(क) प्रो० हेने के शब्दों में, "अर्थशास्त्र में विषयगतवाद ने मनुष्य के वातावरण में निहित अल्प विधेयों के विरूद्ध मनुष्य पर वल डाला और वताया कि आर्थिक मूल्यों का निर्धारण मानवीय इच्छाओं के द्वारा होता है। विषयगत अर्थशास्त्रियों की यह धारणा थी कि किसी वस्तु का मूल्य किसी भी दृष्टि से आन्तरिक नहीं होता और यह श्रम–समय की तरह किसी वस्तु की मात्रा के वराबर भी नही होता है"

(ख) "उन्होंने केवल विधेयों की वास्तविकता अथवा वस्तुगत मूल्य के अस्तित्व से ही इन्कार नहीं किया, अपितु वस्तुगत घटक को द्वैतीयक तथा विषयगत घटक के ऊपर निर्भर बताया"।[2]

(ग) विषयगत सम्प्रदायवादियों का विचार था कि व्यक्ति अपने सुख, आनन्द एवं समृद्धि की भावनाओं के ही कारण आर्थिक क्रिया करता है। स्टनले जीवन्स (Stanley Jevons) के मतानुसार "अर्थशास्त्र की गणना विधि का ध्येय निःसन्देह सुख और दुख है। अर्थशास्त्र की समस्या हमारी आवश्यकताओं को कम से कम प्रयत्न पर सन्तुष्ट करना तथा न्यूनतम लागत से अधिकतम लाभ कामना अर्थात सुख को अधिकतम करना है"[3]

(घ) विषयगत सम्प्रदायवादियों के मतानुसार उनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं और आवश्यकताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है। इन विचारकों का मत था कि आर्थिक जीवन का अंतिम ध्येय आवश्यकता है। अतएव अर्थशास्त्र का मुख्य लक्ष्य उपभोक्ताओं के लिए वस्तु की उपयोगिता का निर्धारण करना है।

---

1 "Tne errors of the classical school are, so to seak, the ordinary diseases of the childhood of every science." —Bohm Bawerk.

2 "They do not deny the reality of the object, or the existence of objective value, but they consider objective phenomena as secondary and dependent upon the subjective." —Haney : Ibid, P. 583.

3 "Pler and peainasu are undoubtedly the ultimate objects of the calculsu of economics. To satisfy our wants to the utmost with least effort, to procure the greatest amount of what is desirable at the expense of the least that is undesirable, in other words, to maximise pleasure, is the problem of economics."

—Stanley Jevons.

(ङ) विषयगत सम्प्रदायवादी भी परम्परावादियों की तरह इस सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही हरएक व्यक्ति अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। प्रो० हेने के मतानुसार "व्यवहार में विषयगतवाद में व्यक्तिवाद को विशेष महत्व दिया गया है क्योंकि इसके अनुसार व्यक्ति और उसकी आवश्यकता ही आर्थिक क्रिया का आधार है। इसके अतिरिक्त घटती हुई उपयोगिता और उपयोगिता की मात्राओं, तथा सीमान्त या अन्तिम उपयोगिता का विश्लेषण करने में विषयगत अर्थशास्त्रियों का केन्द्र विन्दु व्यक्ति ही बन गया है"।[1]

(च) अन्त में, यह कहा जा सकता कि इस सम्प्रदाय के सभी विचारकों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में गणित का प्रयोग नहीं किया है। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के आस्ट्रियन वर्ग के मतानुसार गणितीय सूत्रों के प्रयोग से बहुत कम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। दूसरी ओर कुछ गणितीय अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि अन्तिम उपयोगिता जैसे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का यथार्थ में कोई लाभ नहीं है।

स्पष्टीकरण की दृष्टि से विषयत सम्प्रदाय की दोनों शाखाओं—मनोविज्ञान सम्प्रदाय (Psychological School) तथा गणितीय सम्प्रदाय (Mathematical School) का पृथक् पृथक् विवेचन आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय (Psychological School)—विषयगत सम्प्रदाय की इस शाखा को अगणितीय सम्प्रदाय, (Non- Mathematical School) या मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय (Psychological School) या आस्ट्रियन सम्प्रदाय (Austrian School) तीन विभिन्न नामों से पुकारे जाने के भी विशेष कारण हैं. एक तो इस शाखा के विचारकों का गणित से कोई सम्बन्ध नहीं था और इन्होंने आर्थिक विश्लेषण में गणितीय प्रणाली को भी नहीं अपनाया इसी कारण विषयगत सम्प्रदाय की इस शाखा को "अगणितीय सम्प्रदाय" के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे, इस शाखा के विचारकों ने मनुष्य के मानसिक विचारों को विशेष महत्व प्रदान किया था, इसी कारण इसे, "मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय" की संज्ञा दी जाती है। तीसरे इस शाखा के सभी प्रमुख विचारक कार्ल मेंजर (Karl Menger), वीजर (Wieser) और बॉम बावर्क (Bohm Bawerk) सभी आस्ट्रिया के निवासी थे, इसी कारण इस शाखा को "आस्ट्रियन सम्प्रदाय" की संज्ञा दी गई।

मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता यह है कि इस सम्प्रदाय के विचारकों ने "उपयोगिता" तत्व का विश्लेषण इस प्रकार किया कि समस्त आर्थिक मूल्यों के कारण के सिद्धान्त को केवल विषयगत तत्वों के ऊपर ही आधारित किया

1 "Finally, the subjectivist is in practice generally driven to individualism, since he finds in the individual the seat of pleasurable sensations and the faculty deciding among alternative utilities. Moreover, in dealing with diminishing utility and degrees of utility, and marginal or final utility, the subjective economist comes to a very definite focus on the individual." —Haney : Ibid, P. 534.

इसके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के विचारकों ने सीमान्तवाद (Marginism) को विशेष महत्व प्रदान किया एवं उत्पत्ति के सम्पूर्ण साधनों के मूल्यों को आंकने के हेतु सीमान्तवाद को आधार बनाया है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख विचारकों में कार्ल मेंजर (Karl Menger), वीजर (Wieser), और बॉम बावर्क (Bohm Bowerk) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं निम्नोक्त में इन विचारकों के आर्थिक विचारों का क्रम से अध्ययन किया गया है।

(अ) कार्ल मेंजर (Karl Menger)

कार्ल मेंजर का जन्म सन् १८४० में ग्लेसिया (Galicia) नामक स्थान पर हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के बाद इसने कुछ समय तक आस्ट्रियन सिविल सर्विस की तथा सन् १८७३ में वह वियना (Vienna) विश्वविद्यालय में राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफैसर के पद पर आरूढ़ हुआ। सन् १९०० में मेंजर आस्ट्रियन हाउस ऑफ पीयर्स (Anstrion House of Peers) का सदस्य निर्वाचित हुआ। सन् १९२१ में मेंजर का देहावसन हो गया। मेंजर द्वारा लिखित उसका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ "आर्थिक सिद्धान्त के आधार" (Foundations of Economic Theory) सन् १८७१ में प्रकाशित हुआ।

कार्ल मेंजर आस्ट्रियन सम्प्रदाय का मुख्य अधिष्ठता था। उसके द्वारा प्रतिपादित प्रमुख आर्थिक विचार निम्नोक्त हैं :—

(i) **अध्ययन की प्रणाली** (Method of Study)—ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारकों ने अध्ययन की आगमन प्रणाली (Deductive Method) को विशेष महत्व प्रदान किया था। परन्तु कार्ल मेंजर ने अर्थशास्त्र के हेतु आगमन और निगम (Inductive) दोनों प्रणालियों को आवश्यक बताया। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसका विशेष झुकाव निगमन प्रणाली की ओर रहा है। मेंजर ने बताया कि आर्थिक प्रवृत्तियां मानवीय कार्यों एवं व्यवहारों के ऊपर निर्भर होती हैं—सामाजिक शक्तियों के ऊपर नहीं। इस तरह मेंजर ने अध्ययन की पद्धति की स्थापना में पूर्णतया विषयगत भावना से काम लिया है।

(ii) **वस्तुओं का वर्गीकरण** (Classification of Commodities)—कार्ल मेंजर ने वस्तुओं को आर्थिक (Economic) और नैसर्गिक (Free) दो वर्गों में विभक्त किया है। आर्थिक वस्तुओं से उसका अभिप्राय सीमित पूर्ति की वस्तुओं से था तथा असीमित पूर्ति की वस्तुओं को उसने नैसर्गिक वस्तुएं कहा है। आर्थिक वस्तुओं को भी उसने उपभोक्ता की दृष्टि से उपभोक्ता वस्तुएं (Conumer's Goods) और उत्पादक वस्तुएं (Poducer's Goods) दो वर्गों में विभक्त किया है। वस्तुओं का उक्त वर्गीकरण करने के बाद भी मेंजर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आर्थिक एवं नैसर्गिक वस्तुओं के बीच स्पष्ट विभाजन की रेखा खींचना सरल नहीं है।

(iii) **मूल्य का निर्धारण** (Determination of Value)—इस सम्बन्ध में

मैंजर ने मूल्य के विषयगत सिद्धान्त (Sudjective Theory of Value) को अपनाया है। उसका मत है कि मूल्य समाज या राज्य द्वारा नियन्त्रित नहीं किया जाता अपितु वह तो मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। उसने बताया कि वस्तु का मूल्य उसकी लागत-व्यय या उसके उत्पादन में लगी श्रम की मात्रा पर निर्भर नहीं करता वरन् वह तो वस्तु की उपयोगिता और उसकी सापेक्षिक न्यूनता (Relative Scarcity) पर निर्भर करता है। चूंकि व्यवहार में उपयोगिता एक विषयगत विचार है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न होती है, अतएव मेंजर ने कहा कि दो व्यक्तियों की विषयगत उपयोगिता की सीमाओं के बीच ही वस्तु का मूल्य निर्धारित होगा।

(iv) मुद्रा (Money)—मुद्रा का आन्तरिक दृष्टि (Subjectively) से अध्ययन करने वाला मेजर प्रथम अर्थशास्त्री था। इस क्षेत्र में उसने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के स्थान पर विषयगत मूल्य सिद्धान्त (Subjective Theory of Value) को ही मान्यता प्रदान की। इस तरह स्पष्ट है कि कार्ल मेजर ने परम्परावादी विचारों से भिन्न विचार प्रस्तुत किए जिनमे विषयगत विचारों को विशेष महत्व प्राप्त हुआ।

(ब) फ्रैड्रिक वॉन वीजर (Friedrich Von Wieser)

वीजर का जन्म सन् १८५१ में आस्ट्रिया में हुआ था। उसने अपनी शिक्षा वियना (Vienna) विश्वविद्यालय में प्राप्त की तथा कार्ल मेजर के अवकाश ग्रहण करने के बाद वह इसी विश्वविद्यालय में राजनैतिक अर्थव्यवस्था का आचार्य नियुक्त हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान में वीजर ने आस्ट्रियन सरकार के वाणिज्य मन्त्री के रूप में कार्य किया। उसके द्वारा रचित ग्रन्थों में "प्राकृतिक मूल्य" (Natural Value), "सामाजिक अर्थशास्त्र का सिद्धान्त" (Theory of Social Economics) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः वीजर ने आर्थिक विचारधारा के अन्तर्गत मेजर का ही अनुसरण किया तथा उसने विषयगत दृष्टिकोण को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया। प्रो० हेनी के शब्दों में, 'अपने लागत-व्यय और वितरण के घटक के सिद्धान्त को लागू करते हुये तथा मनोविज्ञानिक विश्लेषण को गहन बनाते हुये उसने मेजर का अनुसरण किया। अपने बाद के विचारों में उसने, यद्यपि स्वतन्त्र रूप से नहीं, वाह्य-पदार्थ विषयक सिद्धान्त (Theory of Objective Value) का प्रतिपादन किया।"[1] फ्रैड्रिक वॉन वीजर के मुख्य आर्थिक विचार निम्नोक्त हैं :—

1. (i) सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)—उपयोगिता सम्बन्धी

1 "He built upon Manger, applying his theory of the phenomena of costs and distribution, and deepening the psychological analysis. In his later thought, he worked out a theory of objective value, though not independently." —Prof. Haney.

विचारों के प्रतिपादन में वीजर ने सर्व प्रथम "सीमान्त उपयोगिता" (Marginal Utility) शब्द का प्रयोग किया, यद्यपि इससे पहले भी इसे विभिन्न विचारकों ने "अन्तिम उपयोगिता" (Final Utility) और "सबसे कम महत्वपूर्ण" (Least Important) की संज्ञा दी थी। वस्तुतः वीजर की सीमान्त उपयोगिता सम्बन्धी धारणा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण देन है।

(ii) **मूल्यारोपण का सिद्धान्त** (Theory of Imputation)—कार्ल मेंजर ने वस्तुओं का वर्गीकरण करते हुए यह निष्कर्ष दिया था कि प्रथम श्रेणी की वस्तु (यथा-रोटी) में ही मूल्य होता है तथा इसी से अन्य उच्च श्रेणी वाली वस्तुओं (यथा-आटा, गेहूँ) में मूल्य उत्पन्न होता है। उसका मत था कि उच्च श्रेणी की वस्तुएं तब तक मूल्य रहित होती हैं जब तक कि उनमें मूल्यारोपण न किया जाए। वॉन वीजर ने कार्ल मेंजर के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया तथा मूल्यारोपण की विधि की क्रियाशीलता का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मूल्यारोपण सीमान्त नियम का अनुसरण करता है।

(iii) **अवसर लागत का सिद्धान्त** (Theory of Opportunity Cost)—वॉन वीजर ने बताया कि वस्तु के मूल्य पर लागत का परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा करता है। इस लागत को वह अवसर-लागत के रूप में अंगीकार करता है क्योंकि एक वस्तु की प्राप्ति में दूसरी वस्तु का त्याग करना पड़ता है। इस तरह लागत के सम्बन्ध में वीजर की धारणा परम्परावादियों की धारणा से भिन्न है। वीजर ने बताया कि उत्पादक वस्तुओं (Producitive Goods) में मूल्य नहीं होता वरन् इनमें उपभोग्य वस्तुओं से मूल्यारोपण किया जाता है तथा उत्पादक वस्तुओं का इस तरह मूल्य प्राप्त करना ही लागत का तत्व बन जाता है। उसने बताया कि किसी सीमा तक लागत एवं मूल्य के समान रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने का कार्य साहसी का है।

(iv) **वितरण का सिद्धान्त** (Theory of Distribution)—वीजर द्वारा प्रतिपादित वितरण का सिद्धान्त उसके सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory) पर ही आधारित है। उसने उत्पत्ति के साधनों को दो वर्गों में विभक्त किया है अर्थात् "उत्पत्ति के लागत औजार" और "उत्पत्ति के विशेष औजार"। प्रथम वर्ग के साधनों का प्रयोग अनेक बार किया जा सकता है, जबकि दूसरे वर्ग के साधनों का प्रयोग केवल एक ही बार किया जा सकता है। प्रथम वर्गीय उत्पत्ति के साधनों की उत्पादकता का अनुमान विभिन्न समीकरणों की तुलना करके लगाया जा सकता है, जबकि द्वितीय वर्ग के साधनों की उत्पादकता का अनुमान श्रम-पूंजी की उत्पादकता को निकाल कर किया जा सकता है। स्पष्ट है कि वीजर का वितरण सिद्धान्त उत्पत्ति के साधनों के मूल्य निर्धारण में व्यावहारिक सिद्ध नहीं हो सकता।

(स) बॉम बावर्क (Bohm Bawerk)

बॉम बावर्क का जन्म सन् १८५१ में आस्ट्रिया के मोरविया (Moravia) नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने अपनी शिक्षा वियना विश्वविद्यालय में प्राप्त की और इसके पश्चात् उसने पन्द्रह वर्ष तक आस्ट्रियन सरकार के वित्त विभाग में नौकरी की। सन् १९०४ में वह वियना विश्वविद्यालय में राजनैतिक अर्थव्यवस्था का आचार्य नियुक्त हुआ। बॉम बावर्क द्वारा रचित ग्रन्थों में से "पूंजी और ब्याज" (Capital and Interest), "वस्तुओं के मूल्य-सिद्धान्त की रूप-रेखा" (Outline of the Theory of Commodity Value) तथा "पूंजी का सिद्धान्त" (The Positive Theory of Capital) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उसकी मृत्यु सन् १९१३ में हुई।

बॉम बावर्क के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Bohm Bawerk)—बॉम बावर्क की गणना आस्ट्रियन सम्प्रदाय के प्रमुख विचारकों में की जाती है। उसने पूंजी, ब्याज और मूल्य के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचार प्रतिपादित किये। बॉम बावर्क द्वारा प्रतिपादित मुख्य आर्थिक विचार निम्नोक्त हैं—

(i) सीमान्त जोड़ों का मूल्य सिद्धान्त (Marginal Pairs Theory of Value)—कार्ल मेजर और वॉन वीजर द्वारा प्रतिपादित विषयगत मूल्य सिद्धान्त (Subjective Theory of Valu) में यथासम्भव सुधार करके बॉम बावर्क ने उसे पूर्ण स्वरूप प्रदान किया। न्यूमैन (Neumann) की तरह बॉम बावर्क ने भी मूल्य को आन्तरिक (Subjective) और वाह्य (Objectine) दो भागों में विभाजित किया। प्रो० हेने के शब्दों में, "आस्ट्रियन विचारकों में से यह वह विचारक था जिसने विषयगत और वस्तुगत के बीच की खाई को पाटने का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया तथा विनिमय मूल्य और कीमत के पूर्ण वस्तुगत सिद्धान्त को विकसित किया।"[1] बॉम बावर्क ने विषयगत मूल्य को भी दो भागों में विभक्त किया अर्थात् विषयगत वास्तविक मूल्य (Subjective Real Value) तथा विषयगत विनिमय मूल्य (Subjective Exchange Value)। उसने बताया कि एक वस्तु के द्वारा व्यक्ति को जितनी उपयोगिता प्राप्त होती है उसी के अनुसार उस वस्तु का विषयगत वास्तविक मूल्य होता है। इसके विपरीत कोई वस्तु अन्य वस्तुओं को खरीदने की जितनी क्षमता रखती है वह उस वस्तु का विषयगत विनिमय मूल्य कहलाता है।[2]

---

1 "He it was who first among the Austrians gave us a well-rounded attempt to bridge the gap betweeu the subjective and the objective, and to develop a complete theory of objective exchange value and price." —Haney.

2 "The value of a good is determined according to the importance of concrete want or inorement of want, which is the least important of those met by the supply of such goods at disposal."

"The importance which a good obtains for the welfare of a person through its capacity to procure other goods."—Bohm Bawerk.

किसी वस्तु का विषयगत मूल्य किस तरह निर्धारित होता है, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बॉम बावर्क ने कहा कि मूल्य का निर्धारण सीमान्त जोड़ों (Marginal Pairs) की सहायता से होता है। अपने उत्तर के स्पष्टीकरण के संदर्भ में उसने अनेक प्रकार के बाजारों की कल्पना की है। सबसे पहले वह एक ऐसे बाजार की कल्पना करता है जिसमें एक वस्तु का एक ही विक्रेता हो तथा एक ही क्रेता हो। उसने बताया कि ऐसे बाजार में क्रेता तो उस वस्तु का मूल्य विषयगत वास्तविक मूल्य से अधिक देना नहीं चाहेगा तथा विक्रेता उस वस्तु को विषयगत विनिमय मूल्य से कम पर बेचना नहीं चाहेगा। स्पष्ट है कि इस दशा में वस्तु का मूल्य क्रेता और विक्रेता की सापेक्षिक सौदा करने की शक्ति (Relative Bargaining Capacity) पर निर्भर करेगा। दूसरे, बॉम बावर्क ऐसे बाजार की कल्पना करता है जिसमें किसी वस्तु का विक्रेता तो एक ही हो परन्तु इसके क्रेता अनेक हों। उसने बताया कि ऐसे बाजार में वस्तु का मूल्य सीमान्त जोड़ों की सहायता से निर्धारित होगा अर्थात् जो क्रेता सर्वाधिक मूल्य देता है और जो उसकी तुलना में कम मूल्य देता है दोनों मूल्यों के बीच ही वस्तु का विषयगत मूल्य निर्धारित होगा। अंत में, उसने एक ऐसे बाजार की कल्पना की है जिसमें एक वस्तु के विक्रेता तो अनेक हों परन्तु उस वस्तु का क्रेता एक ही हो। इस दशा में वस्तु का विषयगत मूल्य सीमान्त जोड़ों की सहायता से निर्धारित होगा अर्थात् जो विक्रेता न्यूनतम मूल्य पर देने को तैयार है और दूसरा जोकि उससे अधिक मूल्य पर देने को तैयार है, इन दोनों सीमान्तों के बीच ही वस्तु का मूल्य निर्धारित होगा।

उक्त तीनों कल्पित बाजारों में मूल्य-निर्धारण का स्पष्टीकरण करते हुए बॉम बावर्क ने बताया कि जिस बाजार में क्रेता और विक्रेता दोनों परस्पर प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, वस्तु का मूल्य दो सीमांत जोड़ों की सहायता से निर्धारित होगा जिनमें से एक सीमांत जोड़ा उच्चतम सीमा का और दूसरा सीमान्त जोड़ा न्यूनतम सीमा का निर्धारण करेगा। "यदि हम चार दलों की विस्तृत व्याख्या जिनकी प्रतिस्पर्धा कीमत का निर्धारण करती है, को सीमान्त जोड़ों की संक्षिप्त एवं महत्वपूर्ण संज्ञा से प्रतिस्थापित करते हैं तो हम इस सरल सूत्र को प्राप्त कर लेते हैं : बाजार कीमत का परिसीमन और निर्धारण दो सीमान्त जोड़ों के विषयगत मूल्यांकन द्वारा होता है।"[1]

(ii) पूंजी और ब्याज का विषयगत सिद्धांत (The Subjective Theory of Capital and Interest):—बॉम बावर्क का कथन है कि ब्याज पूंजी की

---

1 "If finally, we substitute the short and significant name of Marginal Pairs for the detailed description of the four parties whose competition determines the price, we get this very simple formula: the market price is limited and determined by the subjective valuation of the two Marginal Pairs."
—*Bohm Bawerk.*

उत्पादकता के कारण नहीं मिलता और वह ऋणी के ऊपर एक तरह का कर भी नहीं है, अपितु ब्याज मूल्यांकन की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। उसने बताया कि मनुष्य एक वस्तु को भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में अधिक मूल्यवान समझता है तथा मनुष्य की यह प्रवृत्ति पूंजीपति को पूंजी देने से रोकती है, परन्तु ऋणी व्यक्ति ब्याज का लालच देकर उससे पूंजी प्राप्त कर लेता है। बॉम बावर्क ने मनुष्यों की इस प्रकार की प्रवृत्ति के तीन कारण बताए हैं :—(क) सामान्यतः व्यक्ति अपने भविष्य को उज्वल समझता है जिसके कारण उसकी दृष्टि में धन की जो सीमांत उपयोगिता आज है वह कल नहीं रहेगी। अतएव भावी सीमान्त उपयोगिता की कमी को पूरा करने के हेतु उसे ब्याज मिलना आवश्यक है। (ख) फिर व्यक्ति अपनी भावी आवश्यकताओं का अनुमान भी ठीक ढग से नहीं लगा पाता तथा वह वर्तमान की आवश्यकताओं की तीव्रता का ही सहज रूप में अनुभव कर लेता है। अतएव वर्तमान आवश्यकताओं की तीव्रता का त्याग कराने के हेतु पूंजीपति को उससे उधार लिए गए धन पर ब्याज दिया जाना आवश्यक है। (ग) अन्त में, उसने बताया कि आधुनिक वैज्ञानिक (Scientific) और घुमावदार (Round-adout) उत्पादन की प्रक्रिया में यह सम्भावना नहीं की जा सकती कि एक वस्तु की उत्पादन लागत जो आज है वह कल भी बनी रहे। इसी विचार को सामने रखकर कोई व्यक्ति अपने वर्तमान उपभोग को कम करना नहीं चाहता और यदि उसका वर्तमान उपभोग कम करना है तो उसे ब्याज का लालच अनिवार्यतः देना पड़ेगा।

इस तरह बॉम बावर्क ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्याज किसी भी तरह अनार्जित आय (Unearned Income) नहीं है।

आस्ट्रियन सम्प्रदाय की समालोचना :—आस्ट्रियन सम्प्रदाय के प्रमुख विचारकों के आर्थिक विचारों के उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इन सब विचारकों को एक ही सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन सभी विचारकों के विचारों में अनेकों समानताएं मिलती हैं, यथा—इन सभी विचारकों ने मूल्य पर विशेष बल दिया है, ऐतिहासिक सम्प्रदाय का विरोध किया है, विषयगत दृष्टिकोण को अपनाया है, निगमन प्रणाली का विशेष रूप से प्रयोग किया है तथा व्यक्तिवादी विचारधारा को अपनाया है। प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में, "आस्ट्रियन आर्थिक विचारधारा का सार, विषयगतवाद पर आधारित मूल्य के हेतुकरण की एकीकृत व्याख्या की खोज में निहित है। यह निश्चिततापूर्वक कहा जा सकता है कि इसका कार्य-सम्पादन मूल्यांकन मनोविज्ञान का गहनतम विश्लेषण तथा सिद्धांतों का समन्वीकरण रहा है।"[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि

1 "The essence of the Austrian economic thought lies in its quest for an ultimate and unified analysis of the causation of valve, based on subjectivism. And it may be observed in advance that its achievement has been a deeper analysis of valuation psychology, and a co-ordination of theories." —Haney.

आस्ट्रियन सम्प्रदाय के विचारकों ने व्यक्ति-दृष्टि का सहारा ग्रहण करके अपने विचारकों को मूल्य के विशिष्ट रूप पर निर्भर किया है। आस्ट्रियन सम्प्रदाय ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया तथा सिद्धांतों में समन्वय स्थापित किया। जहाँ परम्परावादी विचारकों ने अपने विचारों को वस्तुगत दृष्टि से परखने का प्रयास किया है, वहां आस्ट्रियन सम्प्रदायवादियों ने अपने विचारों को विषयगत दृष्टि से परखा है। वस्तुतः इन विचारकों ने श्रम और उपयोगिता के द्वैतवाद को, जो पृथक्-पृथक् दिशाओं में संचारित होता था, समाप्त कर दिया। इसके अलावा आस्ट्रियन सम्प्रदाय का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य यह है कि इस सम्प्रदाय के विचारकों ने मूल्य के सिद्धान्त को बड़े ही सुन्दर ढंग से उत्पत्ति के विभिन्न साधनों पर क्रियाशील करने का प्रयास किया है। अन्त में, इस सम्प्रदाय की एक महत्वपूर्ण देन यह है कि उसने मूल्य सिद्धांत और ब्याज सिद्धांत के बीच की खाई को पाटने का कार्य किया है।[1]

२. गणितीय सम्प्रदाय (Mathematical School)

प्रो० जीड एन्ड रिस्ट (Prof. Gide and Rist) के मतानुसार" गणितीय सम्प्रदाय अपने विनिमय सम्बन्धी अध्ययन के लगाव से, जिससे कि इसने सम्पूर्ण राजनैतिक अर्थव्यवस्था से निष्कर्ष निकालने का प्रस्ताव रक्खा, विभेद रखता है। इसकी पद्धति इस तथ्य पर आधारित है कि प्रत्येक विनिमय का प्रतिनिधित्व एक सूत्र की तरह किया जा सकता है अर्थात् अ=ब; यह सूत्र विनिमय की गई वस्तुओं के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करता है।"[1] अतएव स्पष्ट है कि गणितीय सम्प्रदाय ने अपने अध्ययन में विनिमय को विशेष महत्व प्रदान किया तथा आर्थिक विचारों के विश्लेषण में गणित का प्रयोग किया। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत कूर्नो (Carnot), गोसन (Gossen), जीवन्स (Jevons), वालरस (Walras), तथा कैसल (Cassel) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गणितीय सम्प्रदाय के विचारों में यद्यपि मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के विचारों की तरह गहराई के दर्शन तो नहीं होते, तथापि इनके द्वारा प्रतिपादित सीमांत–उपयोगिता आदि विचारों से इन्हें मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय का पूर्ववर्ती अवश्य कहा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय की तरह गणीतीय सम्प्रदाय के विचारक भी अर्थशास्त्र को विज्ञान मानते हैं, निगमन प्रणाली के आधार पर अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, व्यक्ति को स्वहित की भावना को स्वीकार किया है तथा परम्परावादियों की तरह स्वतन्त्रता एवं पूर्ण प्रतिस्पर्धा सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए हैं। संक्षेप में गणितीय सम्प्रदाय की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :—

---

1 "The Mathematical school is distinguished for its attachment to the study of exchange, from which it proposes to deduce the whole Political, Economy. Its method is based upon the fact that every exchange may be represented as an formula, A=B, which express the relation between the quantities exchanged."
—Gide & Rist : Ibid, P. 499.

(घ) अर्थशास्त्र को विशुद्ध वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के ध्येय से गणितीय सम्प्रदाय के विचारकों ने बीजगणित और ज्यामिती का विशेष रूप से प्रयोग किया है।

(ख) मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायवादियों की तरह गणितीय सम्प्रदायवादी भी सुख-दुःख के दर्शन में विश्वास करने वाले थे। इन विचारकों का विश्वास था कि व्यक्ति प्राप्ति की आशा से ही आर्थिक क्रियाएं करता है और अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्या भी यही है।

(ग) इन विचारकों ने अपने अध्ययन को आन्तरिक तथ्यों पर आधारित किया, जबकि परम्परावादियों ने अपने अध्ययन को वाह्य तथ्यों पर आधारित किया था।

(घ) अन्त में, गणितीय सम्प्रदायवादियों की विचारधारा पूर्ण रूप से व्यक्तिवाद (Individualism) पर आधारित थी। उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना की जोकि केवल अपने हित की भावना से प्रेरित होकर ही आर्थिक कार्य करता है।

प्रमुख गणितीय सम्प्रदायवादियों के आर्थिक विचारों का विवेचन नीचे दिया जाता है।

(अ) कूर्नो (Cournot)

एन्टोनी आगस्टन कूर्नो (Antonie Augustin Cournot) का जन्म सन् १८०१ में फ्रांस में हुआ था। वह फ्रांस का प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं गणितज्ञ था। सन् १८३८ में उसने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक "सम्पत्ति के सिद्धान्तों में गणितीय सिद्धान्तों की क्रियाशीलता" (Recherches surples Priucipes Mathematiques de la Theorie des Richesses) प्रकाशित कराई जो कि जन प्रिय न हो सकती। अतएव उसने इस पुस्तक में से बीजगणितीय सूत्रों को निकाल कर सन् १८६३ "Principes de la theorie des Rrichesses" नाम से प्रकाशित कराई, परन्तु पुस्तक का यह संस्करण भी जनप्रिय सिद्ध नहीं हो सका। अतएव सन् १८७६ में कूर्नो ने इस पुस्तक का संस्करण "Revue Sommarie des Doctrines Economiques" के नाम से प्रकाशित कराया। वास्तव में कूर्नो की इस पुस्तक की जनप्रियता उसकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही बढ़ी जबकि स्टेनले जीवन्स ने उसकी पुस्तक की काफी प्रशंसा की तथा उसे गणितीय सम्प्रदाय का संस्थापक घोषित किया। संक्षेप में, कूर्नो के आर्थिक विचार निम्नोक्त हैं—

(i) आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic Liberty) :—परम्परावादी विचारकों की तरह कूर्नो भी आर्थिक स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र व्यापार पद्धति का समर्थक था। फिर भी उसने निश्चित लक्ष्य के संबंध में व्यापारिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक ठहराया। इस तरह कूर्नो स्वतन्त्र व्यापार पद्धति का कट्टर समर्थक नहीं था। फ्रैंक नेफ (Frank Neff) के शब्दों में, "यद्यपि उसने स्वतन्त्रता को एक-

व्यावहारिक विद्वता के सिद्धान्त के रूप में देखा, तथापि वह स्वतन्त्र-व्यापार का कट्टर समर्थक नहीं था क्योंकि उसका ऐसा अभिमत था कि जहां लक्ष्य पूर्णतया निश्चित है तथा प्रस्तावित पद्धति की क्षमता स्पष्ट रूप से प्रमाणित है, सरकारी हस्तक्षेप का समुचित रूप से प्रयोग किया जा सकता है।"[1]

(ii) मांग और पूर्ति का सिद्धान्त (Theory of Demand & Supply):—कूर्नो ने बताया कि यदि एक ओर मांग और पूर्ति मूल्य का निर्धारण करती हैं, तब दूसरी ओर मूल्य भी किसी वस्तु की मांग व पूर्ति को प्रभावित करता है। उसने यह बताया कि मांग, पूर्ति और मूल्य इन तीनों में से कोइ भी एक, बिना अन्य दोनों को प्रभावित किए, अपने में परिवर्तन नहीं कर सकता अर्थात यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है तो उस वस्तु की मांग कम हो जाएगी और पूर्ति बढ़ जाएगी और यदि मूल्य कम हो जाता है तो मांग बढ़ जाएगी और पूर्ति कम हो जाएगी। मांग और पूर्ति के साथ मूल्य के इस सम्बन्ध को निम्नोक्त रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है:—
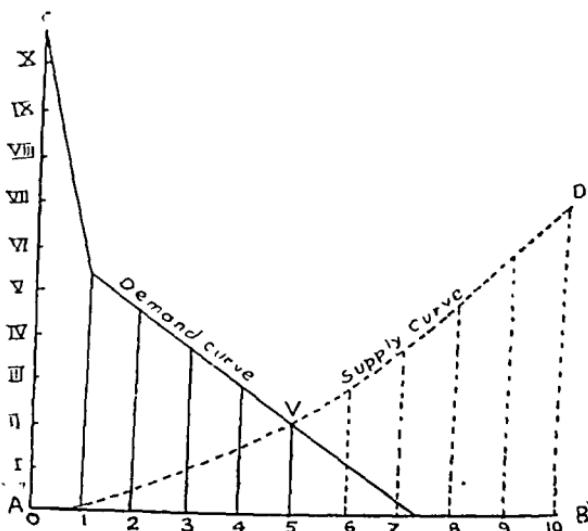
कूर्नो के उक्त विचारों से स्पष्ट है कि उसने मूल्य विश्लेषण के सम्बन्ध में गणितीय सूत्रों का प्रयोग करके विषयगत सम्प्रदाय को महत्वपूर्ण देन प्रदान की।

(ब) गोसन (Gossen)

हरमैन हैनरिक गोसन (Hermann Heinrich Gossen) का जन्म सन् १८१० में जर्मनी के ओकेन (Achen) नामक स्थान पर हुआ था। गोसन की विचारधारा पर बैन्थम (Bentham) का विशेष प्रभाव पड़ा था। सन् १८३५ में उसने "मनुष्यों के अन्दर विनिमय के नियमों का विकास" (Development of

1 "Though he looked upon liberty as an axiom of practical wisdom, he was not an absolutist in his support of free trade, holding rather that state intervention could proporly be applied where the aim is clearly defined and efficiencey of the proposed method clearly demonstrable."
—Frank Neff : Economic Doctrines, P. 348.

the Law of Exchange among Men) नामक अपनी पुस्तक प्रकाशित कराई लेकिन गोसन की पुस्तक को भी कूर्नो की तरह लेखक के जीवनकाल मे कोई ख्याति प्राप्त नही हुई। आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे गोसन की महत्वपूर्ण देन सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त (Marginal Utility Theory) की है। उसका कथन था कि मनुष्य अपने जीवनकाल मे अधिकतम आनन्द प्राप्त करने के हेतु ही अनेको आर्थिक प्रयत्न करता है। इसके लिए उसने यह सुभाव दिया कि मनुष्य को अपने प्रयत्नो का वितरण इस तरह करना चाहिए कि प्रत्येक प्रयत्न की इकाई के द्वारा प्राप्त उपयोगिता की मात्रा, प्रयत्न की अंतिम इकाई के व्यय करने की अनुपयोगिता के बराबर हो। सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर ही गोसन ने क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Utility) का प्रतिपादन किया है। उपयोगिता को सामने रखकर ही उसने वस्तुओ को (अ) उपभोग्य वस्तुएँ (Consumption Goods), (आ) सम्बन्धित वस्तुएँ (Complimentary Goods) और (इ) उत्पादित वस्तुएं (Production Goods) तीन श्रेणी मे रखा है। यह स्मरणीय है कि गोसन ने उपयोगिता ह्रास नियम के आधार पर तीन नियमों का प्रतिपादन किया है जो कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे "गोसन के तीन नियम" (Three Laws of Gossen) के नाम से प्रसिद्ध है। ये तीन सिद्धान्त निम्नोक्त हैं:—

(i) गोसन ने बताया कि किसी वस्तु की पहली इकाई से तो व्यक्ति को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त होती हैं, परन्तु बाद की उत्तरोत्तर इकाइयो के उपयोग से उसे क्रमश: घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है तथा इस तरह एक सीमा वह आ जाती है जबकि वस्तु की इकाई से प्राप्त उपयोगिता शून्य के बराबर हो जाती है।

(ii) गोसन ने बताया कि मनुष्य की कुछ इच्छाए इस किस्म की भी होती हैं कि उनको वह पूर्णता सन्तुष्ट नही कर सकता। अतएव इन आवश्यकताओ की, सतुष्टि व्यक्ति को आशिक रूप से ही कर लेनी चाहिए तथा इस सदर्भ मे उसे अपना उपभोग-कार्य उस समय बन्द कर देना चाहिए जबकि प्रत्येक आवश्यकता की संतुष्टि की मात्रा बराबर हो जाए।

(iii) विपयगत मूल्य वस्तुओ की अधिक आवश्यकता और न्यून उपलब्धि पर निर्भर है। इस दशा मे वस्तु की प्रत्येक उत्तरोत्तर इकाई के बढ़ने से विपयगत मूल्य कम होता चला जाता है।

(स) जीवन्स (Jevons)

विलियम स्टैनले जीवन्स (William Stanley Jovons) का जन्म सन् १८३५ मे इगलैंड मे हुआ था। जीवन्स ने अर्थशास्त्र के विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमे से "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त" (Theory of Political Economy) "राज्य श्रम-सम्बद्ध" (The State in Relation to Labour) तथा "कोयला प्रश्न" (The Coal Question) अधिक उल्लेखनीय है। जीवन्स एक

प्रसिद्ध तर्किक, सांख्यिक एवं अर्थशास्त्री था। उसने गोसन और कूर्नो द्वारा प्रतिपादित सीमांत उपयोगिता की धारणा एवं गणितीय सूत्रों के स्पष्टीकरण को विकसित करके उन्हे संसार के समक्ष उपस्थित करने का कार्य किया। यह स्मरणीय है कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उत्पादन और वितरण की अपेक्षा उपभोग को पहला स्थान प्रदान करने वाला जीवन्स प्रथम विचारक था। जीवन्स की पुस्तक "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त" में सर्वाधिक एक ही महत्वपूर्ण नियम हैं अर्थात् "आवश्यकताओं में विचित्रता का नियम" (The Law of Variety in Wants)। इस नियम का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनन्त हैं तथा एक आवश्यकता की संतुष्टि के बाद पुनः दूसरी आवश्यकता पैदा हो जाती है। यह स्मरण रहे कि गोसन आदि गणितीय सम्प्रदायवादियों की तरह जीवन्स ने भी क्रमागत-उपयोगिता ह्रास नियम (Low of Diminishing Utility) कुल उपयोगिता (Total Utility) तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal Utility) आदि का समावेश किया था। जीवन्स ही वह प्रथम विचारक था जिसने उत्पादन-लागत सिद्धान्त (Cost of Production Theroy) के स्थान पर मूल्य के उपयोगिता सिद्धान्त (Utility Theory of Value) की स्थापना की।

जीवन्स ने कुल उपयोगिता (Total Utility) और सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) में अन्तर को स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जैसे-जैसे सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है वैसे ही वैसे कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है। मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में जीवन्स ने बताया कि किसी वस्तु का मूल्य उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता के अन्तिम अंश (Final Degre of utility) द्वारा निर्धारित होता है। उपयोगिता के अंतिम अंश से जीवन्स का अभिप्राय आधुनिक सीमान्त उपयोगिता से है।

(द) लेन वालरस (Leon Walras)

लेन वालरस का जन्म सन् १८३४ में फ्रांस में हुआ था। चूंकि वालरस का अधिकांश जीवन स्विटजरलैण्ड में व्यतीत हुआ था और इसी कारण उसे स्विस-अर्थशास्त्री कहा जाता है। वालरस की प्रसिद्ध पुस्तक "विशुद्ध अर्थशास्त्र के मूल तत्व" (Elements of Pure Economics) सन् १८७४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उसने गणितीय विश्लेषण पर आधारित पूर्ण प्रणाली का प्रतिपादन किया। प्रो० हेने के शब्दों में, "जीवन्स की अपेक्षा उसने गणितीय विश्लेषण पर आधारित अधिक पूर्ण पद्धति का निर्माण किया। गणितीय सम्प्रदाय की स्थापना वालरस के समय से ही मानी जा सकती है क्योंकि यद्यपि कूर्नो उसका पूर्ववर्ती था तथापि ... पूर्ण और क्रमबद्ध कार्य सम्पादित किया।[1] वालरस के प्रमुख आर्थिक ...ोक्त हैं—

...he ratio of exchange of any two commodities wlli be ...l of the ratio of the final degree of utility of the quantities ...odity available after the exchange is completed." —Jevons.

(i) भूमि सम्बन्धी विचार[1] (Idea Relating to Land)—वालरस ने सम्पत्ति को व्यक्तिगत अधिकार और सामूहिक अधिकार के आधार पर दो श्रेणियों में विभक्त किया। वालरस ने भूमि को प्रकृतिदत्त बताते हुए उस पर सामूहिक स्वामित्व होने का समर्थन किया। उसका मत था कि भूमि का राष्ट्रीयकरण पूर्ण प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देगा। "स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत सदैव कर्तव्यों की अनुपस्थिति सम्मिलित रहती है तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण का परिणाम पुनः पूंजी और श्रम का स्वतन्त्र होगा।[2]

(ii) न्यूनत्व का विचार (Idea of Rarete)—वालरस ने न्यूनतत्व का का अर्थ उसी रूप में लगाया है जिस अर्थ में जीवन्स ने अतिम उपयोगिता का प्रयोग किया है। उसने बताया कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी परिमितता या न्यूनत्व (Rerete) पर निर्भर करता है। वालरस के विचार का स्पष्टीकरण करते हुए प्रो० हेने ने लिखा है," विनिमय मूल्य न्यूनत्व के समानुपाती होते हैं (न्यूनत्व का अर्थ=अतिम संतुष्ट आवश्यकता की तीव्रता)। उदाहरण के लिए दो वस्तुएं हैं, यदि इन दो वस्तुओं में से एक की मात्रा और उपयोगिता दूसरी की अपेक्षा भिन्न है क्योंकि वस्तुओ का न्यूनत्व भिन्न है तो इस वस्तु का मूल्य इसकी तुलना में भिन्न होगा।"[3] वालरस ने न्यूत्व के आधार पर ही उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के मूल्यों की कल्पना की।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि वालरस अपने विचारों को पूर्ण रूप से समझाने में असमर्थ रहा, फिर भी उसने निगमन प्रणाली और गणित का सहारा लेकर अर्थशास्त्र को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया। वालरस के मार्ग का अनुकरण करके आगामी अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थशास्त्र में गणित का सहारा लिया। फ्रैंक नेफ के शब्दों में, "स्वतन्त्र प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत,

---

1 "He constructed a more complete system based upon mathematical analysis than did Jevons. The establishment of the Mathematical School may be dated from Walras, for, though he was preceded by Curnot, he work was much more complete and systematic."
—Prof. Haney.

2 "Free Trade has always involved the absence of duties, and nationalization of land would furthur result in the free movemeot of capital and labour to whatever, place might prove most advantageous to them."
—Leon Walras.

3 "Exchange values are proportional to raretes (rarete-the intensity of the last want satisfied). Two commodities being given, for instance, if the utility and the quantity nf one of the two commodities in respect to one or more exchangers varier, so that the raretes varies, the value of that commodity in relation to the other, or its price will like wise vary,"
—Prof. Haney.

व्यक्तिगत सम्पत्ति के साम्राज्य में सामान्य आर्थिक साम्य के अध्ययन में गणितीय विश्लेषण को लागू करने वाला वह प्रथम विचारक था।"[2]

(य) गस्टैव कैसल (Gustaw Cassel)

गस्टैव कैसल का जन्म सन् १८६६ में स्वीडन में हुआ था। उसने भी वालरस की ही तरह अर्थशास्त्र के अध्ययन में गणित का सहारा लिया था। कैशल द्वारा सचित ग्रन्थों में "मूल्यों के प्रारम्भिक सिद्धान्त की रूप रेखा" (Outline of an Elementary Theories of Prices), "ब्याज का स्वभाव एवं आवश्यकता" (Nature and Necessity of Interest) तथा "सामाजिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त" (Theory of Social Economy) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कैशल द्वारा प्रतिपादित मुख्य आर्थिक विचार निम्नोक्त है:—

(i) **क्रय शक्ति समता सिद्धान्त** (Purchasing Power Parity Theory)–पत्र-मुद्रा मान वाले दो देशों के बीच विनिमय दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में कैसल ने क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कैसल के मतानुसार दो चलन इकाइयों की विनिनय दर उनकी क्रमिक क्रय शक्ति के अनुपात के अनुसार तय होती है अर्थात् विनिमय दर उस बिन्दु पर निश्चित होती है जहां दोनों करैंसियों की क्रय शक्ति की समानता हो। यदि किसी समय विशेष पर विनिमय दर इस समता-बिन्दु से हट जाती हैं तो आर्थिक शक्तियां बलवती होकर पुनः इस दर को उसी बिन्दु पर लाकर स्थापित कर देंगी।

(ii) **व्यापार-चक्र का सिद्धान्त** (Theory of trade Cycle):–कैसल ने बताया कि वस्तुओं की मांग बढ़ने पर उनकी मूल्य-वृद्धि की धारणा बना लेना तथा मांग कम होने पर उनके मूल्य-ह्रास की कल्पना भ्रांति पूर्ण है। उसने बताया कि तेजी और मंदी की परिस्थितियां पैदा करने का एकमात्र दायित्व बचत (Saving) का है। जब बचत की मात्रा कम होने से विनियोग कम हो जाता है तो इस दशा में वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि करना कठिन हो जाता है तथा तेजी प्रारम्भ जाती है। इसके विपरीत जब बचत की मात्रा अधिक होने से विनियोग अधिक हो जाता है तो वस्तुओं की मात्रा में स्वतः ही आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप मन्दी प्रारम्भ हो जाती है। स्पष्ट है कि कैसल का यह सिद्धान्त सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है।

(iii) **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—कैसल ने वालरस द्वारा प्रतिपादित मूल्य सिद्धान्त को विकसित करने का ही प्रयत्न किया तथा इस क्षेत्र में उसने अपना कोई नवीन विचार प्रस्तुत नहीं किया। कैसल ने वालरस द्वारा युक्त न्यूनत्व (Rarete) के स्थान पर अभाव (Scarcity) शब्द को अपनाने सुझाव दिया तथा मांग व पूर्ति को दर्शाने के हेतु तलिकाओं का प्रयोग किया।

2 "He was the first to apply mathematical analysis to the study ...eral economic equilibrium in a regime of private property, conditions of absolutely free competition." —Prof. Neff.

अतएव कहा जा सकता है कि कैसल द्वारा प्रतिपादित मूल्य-सिद्धांत वालरस के मूल-सिद्धांत के समान ही है।

निष्कर्ष रूप में, गणितीय सम्प्रदाय द्वारा अर्थ-विज्ञान के हेतु प्रदत्त वास्तविक सेवा को स्वीकार करते हुये तथा यह मानते हुये कि इस सम्प्रदाय के विचारकों ने अर्थशास्त्र के इतिहास में ऐसे क्षेत्र का निरूपण किया जिसे हम कभी नहीं भुला सकते, हम मार्शल के शब्दों में इस सम्प्रदाय के योगदान का मूल्यांकन कर सकते हैं, "अर्थशास्त्र में गणित का सर्वाधिक लाभप्रद उपयोग वह है जो कि संक्षिप्त और सरल है और जो थोड़े सकेतों का प्रयोग करता है और जिसका उद्देश्य इसकी उद्देश्यहीन पेचिदगियों का प्रतिनिधित्व करना न होकर विशाल आर्थिक आन्दोलन के छोटे भाग पर प्रकाश डालना हो।"[1]

---

1. "The most useful applications of mathematics to economics are those which are short and simple and which employ few symbols; and which aim at throwing a bright light on some small part of the great economic movement rather that at representing its endless complexities." —Marshall : Distribution and exchange : Quotedby, Gide and Rist ; A history of Economic Doctrines, P. 514,

१९

एल्फ्रैड मार्शल

(Alfred Marshall)

प्राक्कथन—"नव-परम्परावादी अर्थशास्त्र के कैम्ब्रिज सम्प्रदाय का संस्थापक मार्शल अपनी सर्वप्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' (Principles of Economics) के सन् १८९० के प्रकाशन से इंगलिश अर्थशास्त्र की एक सन्तति के हेतु एक महान् विभूति बन गया। जहाँ तक आर्थिक विचारधारा के इतिहास में उसका स्थान नियत करने का सम्बन्ध है, यह कहा जाता है कि "उसके कार्य के प्रकाशन के समय से अर्थशास्त्र की अन्य कोई भी विशुद्ध पुस्तक अपने समय के सम्पूर्ण सैद्धान्तिक विचारों का विवेचन नहीं है" — स्पीगल। अथवा जैसा कि हचैशन ने कहा है, "प्रमाणित पाठ्य पुस्तक के रूप में अथवा आधुनिक विश्लेषण के अधिकृत प्रारम्भिक विन्दु के रूप में अन्य पुस्तकों की अपेक्षा यह पुस्तक कई गुनी अच्छी है।" इस पुस्तक के अन्तर्गत मार्शल ने अनेक नवीन पद्धतियों एवं यन्त्रों की सहायता से जिनका विकास उसने अपने विशेष दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप किया, सीमान्त विश्लेषण तथा माँग-पूर्ति के साथ आंशिक साम्य विश्लेषण का विकास किया।"[1]

एल्फ्रैड मार्शल के समय तक परम्परावादी अर्थशास्त्र की दशा अत्यन्त डाँवाडोल हो गई थी। यद्यपि मार्शल से पूर्व जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) ने परम्परावादी विचारों को समय के अनुरूप परिवर्तित कर दिया था जिसके फलस्वरूप परम्परावादी अर्थशास्त्र ने अपने खोये हुये विश्वास को पुनः प्राप्त कर लिया था, तथापि समय के परिवर्तन के साथ ही मिल द्वारा प्रतिपादित विभिन्न विचारों औद्योगिक पूंजीवाद (Industrial Capitalism), व्यक्तिवाद (Individualism), स्वतन्त्रतावाद (Liberalism), व्यक्तिगत हित (Self-interest), तथा सरकार की अहस्तक्षेपवादी नीति (Laissaze Faire Policy) आदि पर समाजवादी विचारकों (Socialists), राज्य समाजवादियों (State Socialists), ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों (Historians) तथा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय (Psychological School) के विचारकों ने टीका-टिप्पणी प्रारम्भ कर दी थी। अतएव इस समय एक ऐसे सुयोग्य विचारक की आवश्यकता थी जो कि प्राचीन एवं नवीन विचारों का सुन्दर समन्वय करके परम्परावादी अर्थशास्त्र को सुदृढ़ता प्रदान करता। वस्तुतः इस महत्वपूर्ण कार्य को मार्शल ने पूरा किया तथा एक नवीन विचारधारा की स्थापना की जो कि आर्थिक विचारधारा के इतिहास में नव-परम्परावाद (Neo-Classicism)

---

1 Prof. V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 185

अथवा कैम्ब्रिज सम्प्रदाय (Cambridge-School) *के नाम से प्रसिद्ध है। यह* कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि इस समय तक नवपरम्परावादी विचारधारा के प्रादुर्भाव के हेतु अनुकूल दशाओं का पूर्णरूपेण निर्माण हो चुका था, केवल उन्हें व्यवस्थित रूप में रखने की आवश्यकता थी जिसे मार्शल ने पूरा किया। प्रो० हेने (Haney) के मतानुसार, 'एल्फ्रेड मार्शल (१८४२–१९२४) ने गहन एवं सुदृढ़ आधारशिला के निर्माण में तथा पुरातन संरचना को बनाये रखने एवं विकास में विषयगत सम्प्रदाय से आपूर्ति किए गए नवीन विचारों का प्रयोग किया···खिड़की का खण्डन करके, खिड़कियों को उखाड़कर तथा नवीन कमरों को जोड़ते हुये उसने परम्परावादी पद्धति को ऐसा प्रभावपूर्ण नवीन स्वरूप प्रदान किया कि सन् १८९० में उसकी पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" के प्रकाश में आते ही उसका नव-परम्परावाद अंग्रेजी बोले जाने वाले संसार में आर्थिक विज्ञान के हेतु उपलब्ध सबसे अधिक *सुविधाजनक, सुरक्षात्मक एवं समरूपी ठहरने का स्थान समझा जाने लगा।"* यह स्मरणीय है कि मार्शल के अतिरिक्त नव-परम्परावाद अथवा कैम्ब्रिज सम्प्रदाय के अन्तर्गत एजवर्थ (Edgeworth), पीगू (Pigou), फ्लैक्स (Flux), विक्सटीड (Wicksteed) और एस० जे० चैपमैन (S. J. Chapman) का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रस्तुत अध्याय में नवपरम्परावाद के संस्थापक प्रो० मार्शल के रचनात्मक विचारों का ही आलोचनात्मक विवेचन किया गया है।

एल्फ्रेड मार्शल का जन्म सन् १८४२ में लन्दन के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा "मर्चेन्ट टेलर्स स्कूल लन्दन" (Marchant Taylor's School, London) में प्राप्त की तथा उच्च शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (Cambridge University) से प्राप्त की जहाँ मार्शल को टी० एच० ग्रीन (T. H. Green), विलियम मौरिस (William Maurice) तथा *सिजविक (Sidgwick) आदि दार्शनिकों से परिचय प्राप्त करने का अवसर प्राप्त* हुआ जिसके फलस्वरूप मार्शल की रुचि दर्शनशास्त्र की ओर प्रवृत्त हुई। इसके अतिरिक्त मार्शल ने जीवविज्ञान, डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त, ऐतिहासिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों तथा सापेक्षितता के सिद्धान्त (Theory of Relativity) *का भी गहन अध्ययन किया।* मार्शल द्वारा रचित महत्वपूर्ण ग्रन्थों में (i) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (Principles of Economics), (ii) "उद्योग का अर्थशास्त्र" (The Economics of Industries), (iii) "उद्योग और व्यापार" (Industry and Trade), (iv) "द्रव्य, साख एवं वाणिज्य" (Money, Credit and Commerce) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

"उन व्यक्तियों में जिन्होंने मार्शल की आर्थिक विचारधारा को विभिन्न विचार-सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के रूप में प्रभावित किया, कूर्नो, वॉन थूनन, मिल द्वारा रिकार्डो और स्मिथ के सिद्धान्तों का किया गया *वर्णन,* रिचार्ड जोन्स और रोश्चर का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने गणितीय विश्लेषण, इंगलिश

क्लासिकल पद्धित तथा ऐतिहासिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करते हुये, मार्शलियन पद्धति के हेतु आधार क्षेत्र प्रदान किया लेकिन जब मार्शल ने इन संघर्षमयी पद्धतियों तथा विरोधाभासी सिद्धान्तों का प्रयोग अपने विश्लेषण में किया, तो इसका अर्थ यह नहीं था कि वह विभिन्न विचार सम्प्रदायों के बीच समन्वय करने का अथवा विभिन्न सैद्धांतिक निष्कर्षों के बीच सामंजस्य लाने का प्रयत्न कर रहा था। वह तो केवल तथ्यों एवं सत्यों से ही सम्बन्धित था, लेकिन जैसे कि ये सत्य और तथ्य विभिन्न सम्प्रदायों और व्यक्तिगत विचारों की विभिन्न खोजों में फैले हुये थे, मार्शल ने इनमें से कुछ को छाँट लिया और शेष को परित्यक्त कर दिया। इसके फलस्वरूप "बैन्थम और हीगल, रिकार्डो और लिस्ट, ऐतिहासिक अर्थशास्त्र और गणितीय अर्थशास्त्र, उपयोगिता और उत्पादन-व्यय इन सभी ने मार्शलियन सत्य को कुछ न कुछ योगदान किया"—हचैश्न। मार्शल ने इन सत्यों को रखने का तरीका बेजहॉट के आदर्श पर अपनाया जो कि मार्शल के लिये साहित्यक स्वरूप का एक मास्टर था"।[1]

मार्शल की आर्थिक विचारधारा (Marshallian Economic Thought)–जिस समय मार्शल का प्रादुर्भाव हुआ था उस समय आर्थिक विचारों की दो प्रमुख धाराएं प्रवाहित हो रही थीं। एक विचारधारा का आदि स्रोत तो स्मिथ (Smith), माल्थस (Malthus) और रिकार्डो (Ricardo) आदि परम्परादी अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया था और जॉन स्टुअर्ट मिल (J. S. Mill) ने इसे चरम् सीमा तक पहुंचा दिया था, दूसरी विचारधारा का प्रादुर्भाव परम्परावादी विचारधारा की प्रतिक्रिया एवं विरोध के फलस्वरूप हुआ और यह विचारधारा राष्ट्रवादी, इतिहासवादी, समाजवादी, गणितीय, मनोवैज्ञाकि आदि विभिन्न स्वरूपों में प्रवाहित हुई थी। मार्शल ने इन दोनों विरोधी विचारधाराओं में सामंजस्य लाकर नव-परापरावाद नामक नवीन विचारधारा को जन्म दिया। इस संदर्भ में कुछ आलोचकों का मत है कि मार्शल ने कोई मौलिक विचार प्रतिपादित नहीं किया अपितु उसने तो पुरानी शराब को ही नई बोतलों में भरने का काम किया है। मार्शल के स्वयं के कथन से भी ऐसा ही स्पष्ट होता है, "प्रस्तुत ग्रन्थ नये कार्य के सहयोग के साथ तथा हमारे निजी युग की नई समस्याओं के संदर्भ के साथ पुराने सिद्धान्तों का आधुनिक अनुवाद करने का एक प्रयास है।"[2] संक्षेप में, मार्शल द्वारा प्रतिपादित मुख्य आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं—

(१) **राजनैतिक अर्थव्यवस्था की परिभाषा एवं अध्ययन की पद्धतियां (Definition of Political Economy and Methods to Study)** परम्परावादी विचारक एडम स्मिथ, (Adam Smith), जे० बी० से (J. B. Say) वाकर (Walker) आदि ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान (Economics is the Science

1 V. M. Abraham : Ibid, Page 186-87.

2 "The present treatise is an attempt to present a modern version of old doctrines with the aid of the new work and with reference to the new problems of our own age."   —Marshall.

of Wealth) कहकर पुकारा। इस प्रकार इन विचारकों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में धन को प्रमुख और व्यक्ति को गौण स्थान प्रदान किया। इस दृष्टिकोण की कार्लाइल, विलियम मौरिस, रस्किन आदि विचारकों द्वारा कटु आलोचना की गई और इन्होंने अर्थशास्त्र को "रोटी टुकड़े का विज्ञान", "कुबेर का वेद" आदि नामों से विभूषित किया। परम्परावादी विचारकों के विपरीत समाजवादी विचारकों ने भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में व्यक्ति को प्रथम तथा धन को गौण स्थान प्रदान किया। दूसरे शब्दों में, परम्परावादियों के मतानुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रमुख ध्येय (End) धन प्राप्ति था तथा इसका मानव-कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं था, जबकि समाजवादियों के मतानुसार धन मानव कल्याण को प्राप्त करने का साधन मात्र था और वास्तविक साध्य था—मनुष्य। एल्फ्रेड मार्शल ने इन दोनों विरोधाभासी विचार-धाराओं में सामंजस्य स्थापित किया तथा वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में 'व्यक्ति' को ही प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता चाहिये तथा 'धन' को गौण स्थान प्रदान करना चाहिये क्योंकि धन मनुष्य के कल्याण के हेतु है न कि मनुष्य धन के हेतु। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" (Principles of Economics) में अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हुये मार्शल ने लिखा है कि "राजनैतिक अर्थव्यवस्था अथवा अर्थशास्त्र मानव जाति के साधारण जीवन-व्यापार का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक क्रिया के उस भाग का परीक्षण करता है जो कि भौतिक समृद्धि की प्राप्ति से घनिष्ठतः सम्बन्धित है। इस तरह यह एक ओर धन का अध्ययन है तथा दूसरी ओर जो कि अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"[1] मार्शल ने बताया कि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक (Social), सामान्य (Normal) और वास्तविक (Real) मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अर्थात् धन कमाने और व्यय करने का अध्ययन किया जाता है। इस तरह मार्शल ने अर्थशास्त्र को 'धन' के क्षेत्र से निकालकर "मानव जाति के भौतिक कल्याण" (Material well being of mankind) के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर दिया।

जहाँ तक अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रणाली का सम्बन्ध है, एडम स्मिथ और रिकार्डो आदि प्रमुख परम्परावादियों ने निगमन प्रणाली (Deductive Method) को महत्व प्रदान किया था। दूसरी ओर ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों ने निगमन प्रणाली को ठुकराकार उसके स्थान पर आगमन पद्धति (Inductive Method) अथवा ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) को महत्व प्रदान

1 "Political Economy or Economics, is a study of mankind in the ordinary business of life, it examines that part of individual and social action which is most closely connected with the attainment and with the use of the material requisites of well being. Thus it is on the one side a study of wealth and on the other and most important side, a part of the study of man." —Marshall.

किया। इस तरह अर्थशास्त्र के अध्ययन के सम्बन्ध में कौन सी प्रणाली को अपनाया जाये यह एक महत्वपूर्ण उलझन बन गई जिसका समाधान मार्शल ने किया। श्मोलर (Schmoller) की तरह मार्शल ने भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में आगमन एवं निगमन दोनों प्रणालियों को इस तरह महत्वपूर्ण बताया जिस तरह कि चलने फिरने के हेतु व्यक्ति को दांये और बांये दोनों पैरों की समान रूप से आवश्यकता होती है।[1] उसने बताया कि जिस क्षेत्र में आंकड़ों की उपलब्धि सरलतापूर्वक हो सके तथा जहाँ घटनाओं में परिवर्तन करके परिणामों पर विचार किया जा सकता हो उस अध्ययन-क्षेत्र में आगमन प्रणाली का प्रयोग उचित होगा, परन्तु दूसरी ओर जिस क्षेत्र में मनुष्यों की मनोवृत्तियों में विभिन्नता एवं स्थितियों में अस्थिरता हो उस अध्ययन-क्षेत्र में निगमन प्रणाली का प्रणाली का प्रयोग उचित होगा। इसके अतिरिक्त मार्शल ने यह भी संकेत किया कि आगमन पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का निगमन पद्धति के आधार पर तथा निगमन पद्धति से प्राप्त निष्कर्षों का आगमन पद्धति के आधार पर परीक्षण करना चाहिये ताकि निष्कर्ष सत्यता के अधिक निकट पहुँच सकें। मार्शल के शब्दों में, "कोई भी अकेली प्रणाली ऐसी नहीं है जो कि पूर्णतया अर्थशास्त्र की प्रणाली कही जा सके। अतएव हरएक प्रणाली का यथोचित स्थान पर प्रयोग करना चाहिये।"[2]

School) मार्शल के ऊपर प्रभाव का अन्य स्रोत था। इस सम्प्रदाय का संस्थापन मैन्जर (Manger), जीवन्स (Jevons) और वालरस (Walras) द्वारा किया गया तथा लेखकों की अन्य सतति के द्वारा इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का विकास किया गया। इन लेखको मे *आस्ट्रियन सम्प्रदायवादियो (Austrians) तथा इंगलिश* सीमांतवादी सम्प्रदाय (English Marginalist School) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इंगलिश सीमान्तवादी सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व प्रो० मार्शल ने ही किया। मार्शल ने सीमान्तवाद का विकास इसके अन्तिम स्वरूप मे किया तथा *आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त के अन्तर्गत* इसे एक निश्चित स्थान प्रदान किया।

यद्यपि मार्शल ने *गणितीय* एवं *आस्ट्रियन सम्प्रदायो की अधिकांश पद्धतियो* को अपनाया, तथापि मार्शल इंगलिश क्लासिकल अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे इन दोनों सम्प्रदायो द्वारा अपनाए गये दृष्टिकोण का विरोधी था। विचारधारा के इन सम्प्रदायो ने क्लासिकल अर्थशास्त्र के निष्कर्षों एवं खोजो को पूर्णतया ठुकराया था; परन्तु मार्शल ने ऐसा नही किया यद्यपि मार्शल आस्ट्रियन एव गणितीय सम्प्रदायो के सिद्धान्तो से काफी सीमा तक प्रभावित हुआ था। उसका वास्तविक प्रयास अपनी जांच के परिणामो की व्याख्या इस रूप मे करना था कि वे सबके द्वारा सरलतापूर्वक समझे जा सकें और इसीलिये जब वह ज्यामितीय एव बीजगणितीय तकनीको का प्रयोग करता है, तब भी वह क्लासिकल अर्थ-शास्त्रियो से अपना सम्बन्ध विच्छेद नही कर लेता, अपितु अपने विश्लेषण में *प्रयुक्त विशेष पद्धतियो के माध्यम से वह क्लासिकल अर्थशास्त्रियो के सिद्धान्तों को* अधिक स्पष्ट रूप मे प्रस्तुत करता है। इस प्रकार जहा विषयगत मूल्य के विचारक उपयोगिता की आधारशिला पर क्लासिकल अर्थशास्त्र का पुनर्निर्माण करते हुए दिखाई देते हैं, वहां मार्शल ने उनकी सामग्री का प्रयोग करते हुए पुरानी संरचना को सुधारने के रूप मे गहरी एव सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण किया। यदि उसने क्लासिकल अर्थशास्त्र के पुनर्निर्माण का ही प्रयत्न किया तो भी उसने यह कार्य इस रूप मे किया कि क्लासिकल पद्धति को प्रभावपूर्ण तरीके से नया स्वरूप ही प्रदान कर दिया और इस कारण उसका नव-परम्परावाद अर्थशास्त्र के लिये सर्वाधिक सुरक्षात्मक, सुविधाजनक एवं समस्वरूपी ठहरने का स्थल बन गया। राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे उसकी महान सेवा का स्पष्टीकरण करते हुए प्रो० हेने ने लिखा है कि, "मार्शल को स्मिथ, रिकार्डो और मिल के अर्थशास्त्र को नष्ट करने की खोज मे लगा हुआ नहीं विचारा जा सकता। वह इसे पूर्ण करने की खोज मे लगा हुआ देखा जा सकता है। उसने आस्ट्रियन सम्प्रदायवादियों के उपयो-गिता सिद्धान्त का परम्परावादियों के लागत व्यय सिद्धान्त के साथ संयोग किया; क्लासिकल सिद्धान्त को किसी न किसी रूप मे स्वीकार करने वाले विचारकों की विचारधारा मे विभिन्न संघर्षमयी तत्वो का समझ बूझ के साथ संयोग किया, उसने असम्बद्ध सिद्धान्तो के बीच सत्य का दर्शन किया और उन्हें परस्पर सम्बद्ध रूप मे

प्रस्तुत किया। मार्शल द्वारा प्रस्तुत संयोग, जैसा कि हम इसे कह सकते हैं, पूर्ण रूप में आर्थिक जीवन की एक व्याख्या के रूप में कभी भी इस का अतिक्रमण नहीं किया गया।[1]

(२) अर्थशास्त्र का विशुद्ध सिद्धान्त (Pure Theory of Economics)—यद्यपि मार्शल ने अपनी पद्धति को गणितीय सूत्रों पर आधारित करने का प्रयास किया, तथापि वह वास्तविक जीवन के अध्ययन से पृथक विशुद्ध विश्लेषण की अकेली खोज का विरोधी था। अतएव "मांग की लोच" (Elasticity of Demand), "उपभोक्ता की बचत" (Consumer's Surplus) आदि शब्दों का प्रयोग उसने गूढ़ सिद्धान्तों के वजाय साहित्यिक शब्दों के तौर पर किया। लेकिन इस तरह का दृष्टिकोण मार्शल की पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" में निहित अनेक गूढ़ताओं (Abstractions) को अदृश नहीं कर सकता। "विशुद्ध अर्थशास्त्र" (Proper Economics) से मार्शल का अभिप्राय "एप्पलाइड अर्थशास्त्र" (Applied Economics) से था। इसके अतिरिक्त मार्शल ने विशुद्ध विश्लेषण को भी अर्थशास्त्र से पृथक नहीं किया तथा उसने विश्लेषणात्मक धारणाओं का उपयोग ऐतिहासिक धारणाओं की तरह किया। उसके विश्लेषण में 'सामान्य' (Normal), 'प्रवृत्ति' (Tendency), 'प्रतियोगी' (Competitive) शब्दों का प्रयोग किया गया है। मार्शल का विश्वास था कि बीसवीं शताब्दी परिमाणात्मक विश्लेषण प्राप्त करने का समय है तथा गुणात्मक विश्लेषण का समय उन्नीसवीं शताब्दी तक ही था। इस सम्बन्ध में मार्शल ने उस मार्ग का प्रशस्तीकरण किया जिसपर चलकर अन्य अर्थशास्त्री एप्पलाइड अर्थशास्त्र के विकास का कार्यक्रम बना सकें।

(३) आर्थिक नियम (Economic Laws):—अर्थशास्त्र के नियमों की प्रकृति बताते हुये मार्शल ने कहा कि अर्थशास्त्र के नियम भौतिकशास्त्र और रसायन शास्त्र के नियमों की तरह अटल एवं निश्चित नहीं हो सकते क्योंकि मनुष्य के विचार सदैव परिवर्तनशील होते हैं जिसके कारण उसकी आर्थिक क्रियायें और उनसे सम्बन्धित आर्थिक नियम भी परिवर्तनशील होते हैं। मार्शल ने कहा कि अर्थ-

1 "Marshall is not to be thought of as seeking to demolish the economics of Smith, Ricardo and Mill. He sought to supplement it. He sought a synthesis, first of the utility theory of Austrains and the cost theory of Classicists; second of the various conflicting elements in the thought of those who on the whole accepted the doctrine......with understanding, depth of insight and great logical consistency, he saw truth in disconnected or seemingly antithetic doctrines and put them together as a connected whole. Marshall's synthesis, as we may call it, is not perfect but it is a master piece, [illegible] whole has probably never been surpassed as an explanation [illegible] life." —Haney.

शास्त्र के नियमों की तुलना गुरुत्वाकर्षण के नियम (Laws of Gravitation) से नहीं की जा सकती, अपितु उनकी तुलना ज्वार-भाटा के नियम (Laws of Tides) से की जा सकती है (There are no laws in Economics which can be compared with law of Gravitation. They are to be compared with the law of Biology or the laws of Tides, rather than with the simple and exact laws of gravitation.)। यह स्मरणीय है कि मार्शल ने मनुष्य की प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करते हुये अर्थशास्त्र के अध्ययन को उन मानवीय क्रियाओं तक ही परिमित कर दिया जिन्हें द्रव्य के मापदण्ड द्वारा मापा जा सकता है।

(४) उपभोग सम्बन्धी विचार (Ideas Relating to Consumption)—परम्परावादी अर्थशास्त्र धन के उत्पादन (Production) और वितरण (Distribution) तक ही सीमित रहा तथा इसमें माँग अथवा उपभोग (Demand or Consumption) की ओर सदैव उदासीनता बरती गई। परम्परावादी अर्थशास्त्र के विरोध मे विषयगत सम्प्रदाय की गणितीय शाखा के विचारकों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में उत्पादन एव वितरण की तुलना मे माँग अथवा उपभोग को प्रथम स्थान दिया। उपभोग के क्षेत्र मे इन विचारको ने उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Utility) का प्रतिपादन किया और यह सकेत किया कि (i) किसी वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) के द्वारा निर्धारित होता है, (i) मनुष्य की आवश्यकतायें अनन्त हैं तथा किसी आवश्यकता की एक समय के हेतु तृप्ति भी सम्भव है।

एल्फ्रेड मार्शल ने परम्परावादी विचारको की उपभोग के अध्ययन के प्रति रहने वाली उदासीनता की प्रवृत्ति का विरोध किया तथा बताया कि मनुष्य की सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओ का आदि और अन्त उपभोग ही है। यह स्मरणीय है कि मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" (Principles of Economics) मे 'उत्पत्ति" से पूर्व "उपभोग" का विवेचन करके उपभोग के अध्ययन को सबसे ज्यादा महत्व प्रदान किया है। उपभोग के क्षेत्र मे मार्शल ने सर्वप्रथम मनुष्य की आवश्यकताओ (Wants) का विवेचन किया है। उसने मानवीय आवश्यकताओं को तीन वर्गों मे रक्खा है अर्थात् (क) आवश्यकतायें (Necessarties), (ख) आरामदायक आवश्यकताये (Comforts) तथा (ग) विलासतादायक आवश्यकतायें (Luxuries)। इस सन्दर्भ मे मार्शल ने यह भी कहा कि उसके द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओ का वर्गीकरण सापेक्षिक (Relative) है क्योंकि यह समय, स्थान व व्यक्ति के साथ परिवर्तित होता रहता है। मार्शल ने आवश्यकताओं की कुछ विशेषताओं का भी निर्देशन किया है, यथा—(i) आवश्यकतायें अनन्त हैं, (ii) एक समय मे किसी आवश्यकता विशेष की तृप्ति सम्भव है, (३) आवश्यकतायें एक-दूसरे की पूरक होती है, (४) आवश्यकतायें एक दूसरे से प्रतियोगिता करती है, (५) आवश्यकतायें वैकल्पिक (Alternative) होती हैं, (६) अन्तत. आवश्यकतायें

मनुष्य की आदतों में परिणित हो जाती है, (७) आवश्यकताओं की तीव्रता सदैव समान नहीं रहती।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण करने तथा उनकी विशेषताओं का निर्देशन करने के पश्चात् मार्शल ने उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing utility) तथा सम-सीमांत उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal utility) का सुन्दर विवेचन किया है। मुद्रा-माग (Mony Demand) और सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) के बीच के विभेद से मार्शल ने उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) नामक नवीन मौलिक धारणा का योगदान किया है। इस धारणा के द्वारा मार्शल ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि वस्तुओं से प्राप्त होने वाली संतुष्टि को किस तरह मापा जा सकता है। मार्शल के शब्दों में, "किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता किसी वस्तु का जो मूल्य देने को तैयार हो जाता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, इन दोनों मूल्यों का अन्तर ही इस अतिरिक्त संतुष्टि का आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता की बचत कहा जा सकता है" (The excess of the price which he would be willing to pay rather than go without the thing, over that which he be actually does pay is the economic measare of this surplus satisfaction. It may be called consumer's surplas)। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की धारणा को एक उपभोक्ता द्वारा उस समय प्राप्त अतिरेक संतुष्टि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जबकि वह किसी वस्तु को सस्ती कीमत पर प्राप्त कर सकता है बनिस्पत उस कीमत के जो कि वह देने को तैयार है अथवा उपभोक्ता की बचत वस्तुओं की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त कुल उपयोगिता तथा क्रय की गई या उपभोग की गई वस्तुओं की संख्या से सीमान्त उपयोगिता को गुणा करके जो प्राप्त हो, इन दोनों का अन्तर है। द्रव्य के सम्बन्ध में स्थिर सीमान्त उपयोगिता तथा वस्तुओं की अधिकाधिक इकाइयों के उपभोग से प्राप्त घटती हुई सीमान्त उपयोगिता ये दो इस धारणा की मान्यताएं (Assumptions) हैं। मार्शल ने नमक, दियासलाई अखबार आदि कुछ वस्तुओं के उदाहरण देकर अपने इस मत की पुष्टि की है कि कुछ वस्तुओं में व्यक्ति अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिकतम उपयोगिता का अनुभव करता है। इस उपयोगिता को मार्शल ने अवसर (Opportunities) या पर्यावरण (Enviornment) से प्राप्त होने वाला लाभ बताया है।[1] मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत की धारणा ने बाद में चलकर अधिक महत्ता प्राप्त की जबकि

1 "This benefit, which he gets from purchasing at a law price, things, for which he would rather pay a high price than go without it, may be called the benefit which he derives from his opportunies, or from his enviornment, or to recur to a word that was in common use a few generation ago from his conjucture."

—Marshall.

पीगू (Pigou) ने कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) की सम्पूर्ण सरचना को इस पर आधारित किया। उपभोक्ता की वचत की धारणा के कुछ व्यावहारिक लाभ भी हैं, यथा–इस धारणा द्वारा हमे विभिन्न देशो की आर्थिक दशा का अनुमान लगाने में सहायता मिलती है, यह धारणा एकाधिकारी (Monopolist) को मूल्य-निर्धारण में सहायता करती है, इस धारणा की सहायता से वित्त मन्त्री को करो के लगाने और हटाने मे बड़ी सुविधा होती है, आदि।

(५) उत्पादन सम्बन्धी विचार (Ideas Releting to Production):—मार्शल ने भूमि, श्रम और पूजी को उत्पत्ति के महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया है।[1] फिर भी यह मानना पडेगा कि भूमि, श्रम और पूंजी को उत्पत्ति के साधन मानते हुए मार्शल ने साहस और व्यवस्था के महत्व को नही भुलाया है। उत्पत्ति ने क्षेत्र मे मार्शल ने तीन नियमों का प्रतिपादन किया अर्थात् (क) क्रमागत उत्पत्ति-ह्रास नियम (The Law of Diminishing Returns), (ख) क्रमागत उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) तथा (ग) क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम (The Law of Increasing Returns)। मार्शल ने बताया कि यह विचार शाश्वत सत्य नहीं है कि भूमि पर सदैव क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम ही लागू होता है अपितु परिस्थितियो के अनुकूल होने, यातायात के साधनों का विकास होने, नई मशीनों एवं आविष्कारो के द्वारा भूमि मे भी कुछ समय के हेतु क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम भी लागू हो सकता है जिसके तदन्तर कुछ समय के हेतु क्रमागत उत्पत्ति समता नियम भी लागू हो सकता है।

उत्पत्ति के क्षेत्र मे मार्शल ने जनसख्या सम्बन्धी विचार भी व्यक्त किए हैं। मार्शल ने अपने युग मे माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त (Malthusian theory of Population) को क्रियाशील होते नही पाया जिसके कारण उसने इस सिद्धान्त को कालातीत ठहराया।[2] वस्तुतः मार्शल के युग मे विशालस्तरीय उद्योगों की स्थापना, उत्पत्ति के क्षेत्र मे नवीन आविष्कारो, श्रम-विभाजन, विदेशी व्यापार की उन्नति तथा शिक्षा के प्रसार के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि जनसख्या की वृद्धि की अपेक्षा खाद्य-सामग्री की वृद्धि की दर अधिक तीव्र है।

मूल्य, कीमत और वितरण के आर्थिक विश्लेषण की अपनी व्याख्या के संदर्भ मे मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की धारणा का योगदान किया है। यदि कीमतों की प्रवृत्ति लागत-व्यय के बराबर रहने की ही जाय तो यह एक स्वाभाविक प्रश्न

1 "The agents of production are commonly called as *land*, labour and capital." —Marshall.

2 "An increase of population accompanied by equal increase in the material sources of enjoyment and aids to productian, is likely to lead to a more than proportionate increase in the aggregate income of enjoyment of all kind." —Marshall,

पैदा होता है कि कीमत का स्तर सबसे कम लागत-व्यय वाली फर्म के बराबर होगा अथवा सीमान्त लागत-व्यय वाली फर्म के बराबर। इस समस्या का निराकरण मार्शल ने अपनी प्रतिनिधि फर्म की धारणा के द्वारा किया। प्रतिनिधि फर्म एक प्रकार की औसत फर्म (Aggregate firm) है। प्रतिनिधि फर्म की व्याख्या करते हुये मार्शल ने लिखा है, "एक प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जो कि दीर्घकाल में कुशलता-पूर्वक अपना उत्पादन कार्य सम्पन्न कर रही हो, जिसे उत्पादन की आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययिताएं सामान्य रूप से प्राप्त होती हों, उसके उत्पादन की मात्रा, उत्पादन को बेचने की दशाएं तथा सामान्य आर्थिक पर्यावरण औसत दर्जे का हो।[1] इस प्रकार मार्शल ने बताया कि प्रतिनिधि फर्म के लागत-व्यय द्वारा ही कीमतों का निर्धारण होना चाहिए। प्रो० वी० एम० एब्राहम के शब्दों में, "प्रतिनिधि फर्म के सम्बन्ध में मार्शल द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ही अनिश्चित है क्योंकि कभी तो वह फर्म की कार्यक्षमता की ओर देखता है और कभी लागत-व्यय की ओर। फिर उसने उन स्पष्ट कारकों का भी विवेचन नहीं किया है जोकि एक प्रतिनिधि फर्म की मुख्य विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हों। परिणामतः उसकी यह धारणा कटु आलोचना का विषय बन गई और अन्ततः बाद के विचारकों ने इस धारणा को परित्यक्त कर दिया।"[2]

(६) विनिमय सम्बन्धी विचार (Ideas Relating to Exchange)—"मार्शल की आर्थिक पद्धति मूल्य निर्धारण की समस्या में केन्द्रित है। यद्यपि प्रारम्भिक विचारकों ने भी इस समस्या पर विचार किया किन्तु वे इस क्षेत्र में अधिक सफल नहीं हो सके। आस्ट्रियन सम्प्रदायवादियों को कुछ सफलता अवश्य मिली परन्तु उनकी सफलता पूर्ण नहीं थी क्योंकि उनका कीमत निर्धारण का वितरण में मिश्रण हो गया। मार्शल की आर्थिक पद्धति आर्थिक जीवन के वैज्ञानिक विवेचन के रूप में "कीमत पद्धति" में रूप में परिणामित हुई और इसी में मार्शल की महानता निहित है। सभी आर्थिक विचाएं इस पुनर्विचार के अन्तर्गत लाई गईं जिसके फलस्वरूप यह दिखाई देने लगा कि मार्शिलियन विश्लेषण में हर

---

1 A Representative Firm is, "One which has had a fairly long life, and fair success, which is managed with normal ability, and which has normal access to the economic, external and internal, which belong to that aggregate volume of production, account being taken of the class of good produced, the conditions of marketing them and the economic enviornment generaliy." —Marshall.

2 "Moreover, Marshall's defination was every indefinite as sometimes he would look to the efficiency or at other times to cost. Nor even could he exactly enumerate the factors that represented the chief features of a representative firm. The result was that his concept was subjected to servere criticism and finally rejected by later thinkers." —V. M. Abraham : Ibid, P 196.

एक समस्या कीमत-निर्धारण की समस्या है । प्रत्येक आर्थिक समस्या अपने तात्कालिक उद्देश्य से सहमत हो गई । यह दो विरोधी वर्गीय प्रवृत्तियों के संतुलन की समस्या थी जिसमें से एक प्रवृत्ति नवीन वस्तुओं को प्राप्त करके आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की थी तथा दूसरी प्रवृत्ति कुछ प्रयत्नों को हटाने अथवा कुछ तात्कालिक आवश्यकताओं को सीमित करने की थी । इस प्रकार यह एक ओर माग तथा दूसरी ओर पूर्ति की शक्तियों को संतुलित करने की समस्या थी ।"[1]

मार्शल का कथन है कि किसी वस्तु का मूल्य निर्धारण माग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों के साम्य (Equilibrium) द्वारा होता है। मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय मार्शल ने बाजार को दैनिक बाजार (Daily Market), अल्पकालीन बाजार (Short Period Market), दीर्घकालीन बाजार (Long Period Market) तथा अतिदीर्घकालीन बाजार (Very Long Period Market) में विभक्त किया है । यह स्मरणीय है कि मूल्य-निर्धारण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में मार्शल ने परम्परावादी विचारकों तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय के विचारकों के विरोधी विचारों का संयोग किया है । परम्परावादियों का मत था कि किसी वस्तु का मूल्य-निर्धारण उसकी लागत-व्यय (Cost of Production) के द्वारा होता है, दूसरी ओर आस्ट्रियन सम्प्रदाय के विचारकों का मत था कि किसी वस्तु का मूल्य-निर्धारण वस्तु में निहित उपयोगिता (Utility) के आधार पर होता है । दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि परम्परावादियों का मूल्य-निर्धारण का सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष पर आधारित था, जबकि आस्ट्रियन सम्प्रदाय के विचारकों

1 "The economic system of Marshall was centred in the problems of the determination of value. Even though the earlier theorists too were intrested in that problem they were not very successful. The Austrians achieved some short of success but was not perfect as their 'pricing' was intermingled with their 'distributing'. Marshall's probe into this system result in carrying out a 'price system' as scientific explanation of economic life and in this lay the greatness of Marshall. All economic processes were brought under its perview as a result of which it appeared that every problem in Marshallian analysis was a problem of pricing. Every economic problem agreed in its ultimate objective. It was a problem of "balancing of two opposed classes of motives, the one consisting of desires to acquire certain new goods and thus satisfy wants, while the other consists desires to avoid certain efforts or retain certain immediate enjoyments." This was thus the problem of balancing of the forces of demand on the one hand, and supply on the other."

—Prof. V. M. Abrahm : History of Economic Thought, P.

मांग और पूर्ति

मांग और पूर्ति के पीछे ये ही शक्तियां हैं जोकि मूल्य का निर्धारण करती हैं। मार्शल के मतानुसार मांग-मूल्य और पूर्ति-मूल्य के बीच में साम्य पर ही मूल्य का निर्धारण होगा। ग्राफ की सहायता से मार्शल ने यह स्पष्ट किया है कि

---

1 "By demand what Marshall ment was a schedule which he called 'demand price' offered by the potential buyers of the commodity, and behind this were the determinants of his marginal utility for good and the marginal utility for money." —V. M. Abraham.

2 "Supply also ment a schedule of 'supply prices' and the force behind it were the several costs of supplying the commodity and marginal utiiity of money to them."

—V. M. Abraham : Ibid, P. 190.

जिस बिन्दु पर मांग और पूर्ति की रेखाएं परस्पर काटती हैं वही पर साम्य बिन्दु (मूल्य) होगा तथा इस बिन्दु पर वस्तु का सीमान्त मांग-मूल्य (Marginal Demand Price) और सीमान्त पूर्ति-मूल्य (Marginal Supply Price) समान होते हैं। इस प्रकार मूल्य एक मेहराव की आधारशिला है जिसके दो पहलू मांग और पूर्ति है (Value was thus the keystone of an arch the two sides of which are demand and Supply) मार्शल द्वारा प्रतिपादित मूल्य-निर्धारण के सिद्धान्त को एक रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है जैसा कि पिछले पृष्ठ पर दिया गया है।

मूल्य-निर्धारण के सिद्धान्त मे माग-मूल्य एवं पूर्ति-मूल्य के साम्य का निर्देशन करते हुये मार्शल ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि यह बताना एक गुरुतर कार्य है कि मूल्य-निर्धारण मे मांग-पक्ष एव पूर्ति-पक्ष मे से किसका महत्व अधिक है। कागज काटने की क्रिया मे जिस तरह कैंची के दोनो फलको का समान रूप से महत्व है उसी तरह वस्तु के मूल्य-निर्धारण मे उपयोगिता एवं लागत-व्यय दोनों का समान रूप से महत्व है।[1] इस प्रकार मार्शल ने आस्ट्रियन सम्प्रदाय के उपयोगिता के पीछे निहित माग सिद्धान्त तथा क्लासिकल सम्प्रदाय के लागत-व्यय के पीछे निहित पूर्ति सिद्धान्त का परस्पर एकीकरण किया। यह स्मरणीय है कि मार्शल ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" मे माग पूर्ति सम्बन्धी विवेचन के साथ साथ मांग की लोच (Elasticity of Demand), संयुक्त मांग (Composite Demand) और सम्मिलित मांग (Joint Demand) पर भी विचार किया है।

प्रो० मार्शल द्वारा साम्य की समस्या के अन्तर्गत समय तत्व (Time Element) पर भी विचार किया गया। उसने बाजारू मूल्य (Market Value) तथा सामान्य मूल्य (Normal Value) के बीच का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा कि बाजारू मूल्य एक प्रकार का अस्थाई साम्य (Temporary Equilibriam) है जिसके अन्तर्गत लागत-मूल्य का महत्व बहुत थोडा होता है तथा मांग व पूर्ति की शक्तियो का महत्व बहुत अधिक होता है। बाजारू मूल्य के निर्धारण मे माग एक सक्रिय शक्ति का काम करती है। इसके विपरीत सामान्य मूल्य एक प्रकार का स्थाई साम्य (Stable Equilibriam) है जिसकी स्थापना आर्थिक शक्तियों की सामान्य क्रियाशीलता के द्वारा दीर्घकाल मे होती है। बाजारू-मूल्य और सामान्य मूल्य के बीच इस विभेदीकरण के साथ मार्शल का दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन विश्लेषण सम्बद्ध था। यह विश्लेषण एक स्थिर अवस्था (Stationary State) से सम्बन्धित था। स्थिर अवस्था के अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि उत्पादन की तकनीक, साधन और अभिरुचियां यथास्थिर रहेंगी। मार्शल ने बताया कि अल्पकाल मे माग का प्रभाव पूर्ति की अपेक्षा अधिक रहेगा क्योंकि इस छोटे समय मे उत्पादन को मांग के अनुरूप घटाया-बढाया नही जा सकता। इसके विपरीत दीर्घकाल मे मांग के

e upper or
paper, as

दूसरी ओर श्रम आदि प्रयत्नों एवं बलिदानों के उपलक्ष्य में जो द्रव्य अथवा धन दिया जाता है उसे मौद्रिक लागत-व्यय कहते हैं। मार्शल ने बताया कि उत्पादन-कार्य के हेतु श्रम आदि जुटाने में द्राव्यिक लागत का देना अनिवार्य होता है।[1]

(७) वितरण सम्बन्धी विचार (Ideas Relating to Distribution)—मार्शल ने वितरण की समस्याओं का विवेचन अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" (Principles of Economics) के छठे भाग में किया है। वितरण के क्षेत्र में उसने मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन वॉन थूनन (Von Thunen) के सीमान्त-उत्पादकता विश्लेषण (Marginal Productivity Analysis) के आधार पर किया। सर्व प्रथम उसने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों पर विचार किया और बाद में अपने निजी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह वास्तव में उसका मूल्य सिद्धान्त अथवा माग-पूर्ति के बीच में साम्य का विचार ही था जिससे मार्शल वितरण के सिद्धान्त पर पहुँचा। उपभोग्य वस्तुओं तथा उत्पत्ति के अभिकर्त्ताओं दोनों के सबंध में मार्शल ने सीमान्त विश्लेषण का प्रयोग किया। चूँकि उसने सभी मूल्यों को प्रतिस्थापन की एक प्रक्रिया के द्वारा अन्तर्सम्बन्धित माना, इसलिए उत्पत्ति जिसका आशय मूल्य पैदा करने से था, के अन्तर्गत भी वस्तुओं और सेवाओं के उपयोग के सीमान्त पर प्रतिस्थापन को सम्मिलित माना गया। इस तरह वितरण का विवेचन भी उसने मूल्यांकन की प्रक्रिया के अन्तर्गत किया है।

मार्शल ने बताया कि उत्पत्ति के साधनों के हिस्सों का वितरण राष्ट्रीय लाभांश (National Dividend) में से होता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि राष्ट्रीय लाभांश क्या है? मार्शल के मतानुसार किसी देश का श्रम व पूंजी, प्राकृतिक साधनों पर कार्य करते हुए, प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं का एक औसत, सभी तरह की सेवाओं को सम्मिलित करते हुए, पैदा करते हैं। यही उस देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय अथवा राष्ट्रीय लाभांश है।"[2] इसी राष्ट्रीय आय में से श्रम, पूंजी और उत्पादक को आयों का (मजदूरी, ब्याज और लगान) क्रमशः वितरण होता है। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय लाभांश का परिमाण जितना बड़ा होगा उत्पत्ति के हर एक साधक को अपना हिस्सा भी क्रमशः उतना ही अधिक मिलेगा।

1 "The sums of money that have to be paid for these efforts and sacrifices will be called either its money cost of production, or, for shortness, its expenses of production, they are prices which have to be paid in order to call forth an adequate supply of the efforts and waitings that are required for making it or, in other words, they are its supply price." —Marshall.

2 "The labour and capital of a country, acting on its, natural resources, produces annually a certain net aggregate of commodities, and immaterial material, including services of all kinds. This the ... net annual income or revenue of the country, or the ... Dividend."

यह स्मरणीय है कि मार्शल ने उत्पत्ति के तीन साधन ही स्वीकार किये हैं अर्थात् श्रम, पूंजी और भूमि। मार्शल ने व्यवस्था के महत्व को स्वीकार नहीं किया है तथा साहसी को उसने व्यवस्थापन के श्रम की स्थिति प्रदान की है, प्रो० हेने के शब्दों में, "इंगलिश क्लासिकल अर्थशास्त्र के प्रभाव में आकर सम्भवतः मार्शल ने भूमि, श्रम और पूंजी उत्पत्ति के तीन ही प्रमुख साधन स्वीकार किये हैं। वह व्यवस्था के महत्व को स्वीकार करता हुआ भी दिखाई देता है। अपने पूर्ववर्ती इंगलिश विचारकों की अपेक्षा उसने साहसी के योगदान को भी अधिक महत्वपूर्ण ठहराया है तथा उसने श्रम, भूमि और पूंजी के उपयोग में प्रयुक्त प्रतिस्थापन के नियम का बड़ा साधन माना है, तथापि यह सत्य है कि मार्शल ने साहस के महत्व को घटाकर उसे व्यवस्थापन के श्रम की पदवी दी है।"[1]

"यद्यपि मार्शल का वितरण सम्बन्धी सिद्धांत कुछ दशाओं में पूर्ववर्ती विचारकों के वितरण-सिद्धांतों की अपेक्षा काफी अच्छा है, तथापि कुछ अन्य दशाओं में उसका वितरण-सिद्धांत दोषपूर्ण है। उसने वितरण की प्रक्रिया की व्याख्या में सीमांत विशुद्ध उत्पादकता (Marginal Net Productivity) का प्रयोग अवश्य किया है, तथापि वह स्वयं इस सिद्धान्त पर दृढ़ नहीं था। इस सम्बन्ध में मार्शल द्वारा अनेक परिवर्तन किए गए और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वितरण की समस्या की व्याख्या करने में सीमांत विशुद्ध उत्पादकता का सिद्धांत पर्याप्त नहीं है। उसने विचार किया कि यह सिद्धांत मूल्य को शासित करने वाले बड़े कारकों की व्याख्या अवश्य करता है, परन्तु यह सिद्धांत ब्याज, मजदूरी और लगान की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता है। उसकी आपत्ति अन्य विचारकों की तरह उत्पत्ति के साधनों की इकाइयों के अनुपातों में हेर-फेर करने के सम्बन्ध में नहीं थी अपितु उसकी आपत्ति सीमान्त-उत्पादकता को मापने की कठिनाई पर केन्द्रित

---

1 "Probably under the influence of English classical economics, he may be said, on the whole, to consider that there are only three distinct factors of production: Labour, Land and Capital. He seems to recognize the importance of 'Organisation'. He attributes a more distinctly important part to the enterpreneur than did his English predecessors, and treats him as the great means through which the principle of substitution is applied in the use of labour, land and capital, yet it remains true that Marshall is inclined to reduce 'enterprise' either to species of labour (management) or to a form of differential advantage (securing a quasi-rent"). —*Prof. Haney.*

थी।"

मार्शल के कथनानुसार राष्ट्रीय लाभांश में से उत्पत्ति के साधनों के हिस्सों का निर्धारण मांग-पूर्ति की शक्तियों के अनुसार जैसा कि वे उत्पत्ति के कारकों की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है, होता है। मांग का निर्धारण प्रत्येक साधन की सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता के आधार पर होगा। दूसरे शब्दों में, एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने अथवा हानि को न्यूनतम करने के हेतु उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को इस अनुपात में जुटाएगा कि प्रत्येक साधन की उत्पत्ति का मूल्य उसके लागत-व्यय के बराबर हो। मार्शल के वितरण सिद्धांत की एक मौलिक विशेषता यह है कि उसने इस सिद्धांत के अन्तर्गत लागत-व्यय को निर्णायक स्थिति प्रदान की है। मार्शल के वितरण के सिद्धांत के अनुसार उत्पत्ति के हर एक साधन के भाग का निर्धारण क्रमशः निम्नोक्त प्रकार से होगा :—

(i) ब्याज (Interest) :—पूंजी के प्रतिफल के सम्बन्ध में वितरण के सामान्य सिद्धान्त को लागू करते हुए मार्शल ने बताया कि ब्याज का निर्धारण मांग व पूर्ति के साम्य द्वारा होगा। पूंजि का मांग-मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा तथा उसका पूर्ति मूल्य पूंजीपति के परिश्रम एवं त्याग के द्वारा निर्धारित होता है। मार्शल ने यह भी बताया कि अल्पकाल में यदि पूंजि की मांग उसकी पूर्ति से अधिक हो जाती है तो ब्याज की दर बढ़ जाएगी, परन्तु दीर्घकाल में पुनः ब्याज की दर सामान्य हो जाएगी क्योंकि इतने समय में पूंजी की पूर्ति को बढ़ने का काफी अवसर मिल जाएगा।

(ii) लगान (Rent) :—लगान-सिद्धांत के प्रतिपादन में मार्शल, रिकार्डो के लगान सिद्धांत (Ricardian Theory of Rent) से अधिक प्रभावित हुआ तथा साथ ही साथ उसने इस सिद्धांत के अन्तर्गत वैकल्पिक प्रयोग के तत्व

---

1 "Marshall's formulation of the theory of distribution, even though in certain respects superior to earlier formulation, was deffective in certain respects. Even though marginal net productivity was used to explain the process of distribution he was not very firm [illegible] ,ere often made by [illegible] marginal net pro- [illegible] oblem. There was [illegible] the theory of the marginal productivity. As he found it, even though the theory explained "the part of the action of the great causes which govern value," it did nat fully explain interest, wages, or rent. His objection was mainly centering on the difficulty of [illegible] suring the marginal produ- [illegible] the proportions of units of [illegible] found it."

—[illegible] History of Economic Thought, P.

(Element of Alternative use) का समावेश मिल के प्रभाव से किया। मार्शल ने बताया कि भूमि उत्पत्ति का एक ऐसा साधन है जिसकी पूर्ति नहीं बढ़ाई जा सकती। अतएव भूमि की पूर्ति इसके लागत-व्यय से निर्धारित नहीं होती। रिकार्डो के विभेदी-करण लगान सिद्धांत (Ricardian Theory of Differential Rent) तथा मिल की वैकल्पिक प्रयोग की धारणा (Mill's Concept of Alternative Use) का एकीकरण करके मार्शल ने एक नए सिद्धान्त का विकास किया जिसमें उक्त दोनों ही विचारों की विशेषताएं निहित हैं। मार्शल के मतानुसार लगान एक दीर्घकालीन घटक है तथा अल्पकाल में स्थिति की प्राकृतिक लाभदायकता से उत्पन्न अस्थाई विभिन्नता रख सकता है। इस प्रतिफल को मार्शल ने आभास लगान (Quasi Rent) की संज्ञा दी। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में उपभोक्ता की बचत की धारणा की तरह ही आभास लगान भी मार्शल का मौलिक योगदान है। मार्शल ने बताया कि भूमि की तरह कभी-कभी उत्पत्ति के अन्य साधनों की पूर्ति भी (विशेषकर अल्पकाल में) नहीं बढ़ाई जा सकती जिसके कारण इन साधनों से प्राप्त उत्पादन इनकी लागत-व्यय की अपेक्षा अधिक प्राप्त हो जाता है। यह अतिरेक ही आभास-लगान है जिसकी उत्पत्ति किसी भी साधन के सम्बन्ध में हो सकती है और यह आभास लगान अल्पकाल तक ही रहता है क्योंकि दीर्घकाल में उस साधन विशेष की पूर्ति बढ़ जाने पर यह समाप्त हो जाता है। यह स्मरणीय है कि मार्शल ने विशेष योग्यता के द्वारा प्राप्त होने वाले अतिरिक्त लाभ को भी आभास लगान में सम्मिलित किया है।

(iii) मजदूरी (Wages) :—मजदूरी की व्याख्या के सम्बन्ध में मार्शल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सीमांत-उत्पादक विश्लेषण एक हीन-यन्त्र है। उसके लिए यह सिद्धांत कि एक श्रमिक की आय की प्रवृत्ति उसके कार्य की विशुद्ध उत्पत्ति के बराबर होने की होती है, अर्थहीन व्याख्या (Meaningless Explanation) थी क्योंकि किसी श्रमिक के कार्य की विशुद्ध उत्पत्ति का पता लगाना किस तरह सम्भव हो सकता है जबकि वह अपना काम अनेक दूसरे औजारों और वस्तुओं की सहायता, जिसकी अपनी लागत होती है और जोकि उत्पादन भी करते हैं से करता है। अतएव मार्शल ने बताया की यह सिद्धांत मजदूरी को शासित करने वाले कारणों की पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता है।

सामान्य-मजदूरी (Normal Wages) की व्याख्या करने के संदर्भ में मार्शल ने जीवन-स्तर सिद्धांत (Standard of living Theory) की वकालात की। उसने बताया कि सामान्य मजदूरी कम से कम इतनी होनी अनिवार्य है जिससे कि एक श्रमिक एक सामान्य आकार के परिवार का भरणपोषण एक सामान्य जीवन-स्तर पर कर सके। यह भी स्पष्ट है कि सामान्य मजदूरी की उपलब्धि रोजगार की सामान्य दशाओं में भी सम्भव है। चूंकि सामान्य मजदूरी का यह सिद्धांत व्याख्या का एक अंश मात्र था, इसलिए मार्शल ने इस विचार के प्रतिपादन का एक अगला कदम

उदाश कि मजदूरी की प्रवृत्ति श्रम की विशुद्ध-उत्पत्ति के बराबर होने की होती है। इस सिद्धांत में से मार्शल ने सीमान्त-उत्पादकता के विचार को निकाल दिया क्योंकि सीमांत उत्पादकता की गणना करना कोई सरल काम नहीं है। अतएव मार्शल ने सीमान्त-उत्पादकता की धारणा के स्थान पर विशुद्ध-उत्पत्ति की धारणा (Concept of net Product) को ग्रहण किया। सीमांत उत्पादकता सिद्धांत केवल मात्र अल्पकाल में ही मजदूरी-निर्धारण की व्याख्या था क्योंकि अल्पकाल में ही मजदूरी की प्रवृत्ति श्रमिक द्वारा उत्पादित सामान की कीमत के बराबर होने की होती है। यदि इन दो सिद्धान्तों के अन्तर्गत मांग व पूर्ति की दोनों शक्तियों को मजदूरी-निर्धारण के अन्तर्गत बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हुए पाया जाए तो अगला कदम इन सिद्धान्तों का सामान्यीकरण करना ही शेष था। अतएव क्लासिकल प्रवृति में मार्शल ने यह निष्कर्ष दिया कि मांग व पूर्ति की शक्तियों का मजदूरी पर सहयोगी प्रभाव (Coordinate Influence) पड़ता है। मांग व पूर्ति के इन प्रभावों को देखकर मार्शल ने यह स्वीकार किया कि इस सिद्धांत ने सामान्य अथवा दीर्घकाल में मजदूरी-निर्धारण का अच्छा स्पष्टीकरण कर दिया है। दीर्घकाल में उत्पत्ति के हरएक साधन की इच्छा अपने प्रयासों एवं बलिदानों के बदले में पर्याप्त पारितोषिक पाने की इच्छा रहती है तथा श्रम भी इसका अपवाद नहीं है। मार्शल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि दीर्घकाल में, जबकि परिस्थितियां स्थिर हो जायेंगी, मांग व पूर्ति की शक्तियां स्वमेव इस तरह समायोजित हो जायेंगी कि श्रमिक को उसके प्रशिक्षण और भरण-पोषण की लागत-व्यय के बराबर आय प्राप्त होने लगेगी।

यह स्मरणीय है कि इस निष्कर्ष पर मार्शल सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory) तथा माल्थस के मजदूरी सम्बन्धी नियम (Malthusian Law of Wage) के समन्वय द्वारा पहुंचा। सारांश रूप में मार्शल ने यह निष्कर्ष दिया कि "मजदूरी की प्रवृत्ति श्रम की विशुद्ध उत्पत्ति के बराबर होने की होती है, इसकी सीमान्त-उत्पादकता इसके लिये मांग-मूल्य निर्धारित करती है, दूसरी ओर मजदूरी की प्रवृत्ति परोक्ष रूप से श्रमिक के भरण-पोषण, प्रशिक्षण एवं कार्यक्षमता को बनाये रखने की लागत-व्यय से सम्बन्ध रखने की होती है।"[1]

(iv) लाभ (Profit):—मार्शल के द्वारा लाभ के पूर्ण विकसित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाना प्रत्याशित नहीं था क्योंकि उसने साहसी की धारणा पर बहुत सीमित रूप से विचार किया है। क्लासिकल विचारकों की तरह मार्शल

1 "Wages tend to equal the net product of labour, its marginal productivity rules the demand price for it, and on the other side, wages tend to retain a close though indirect and intricate relation with the cost of rearing, training and sustaining the energy of

ने भी साहसी को एक पूंजीपति के रूप में देखा। क्लासिकल विचारकों ने साहसी के लाभ को व्यवस्थापन की आय ही स्वीकार किया और कुछ विचारकों ने तो इसे पूंजी का पारितोषक ही बता दिया। मार्शल ने सामान्य लाभ और सामान्य मजदूरी के पीछे एक मौलिक एकता पाई और इस तरह उसने साहसी के लाभ को प्रबन्ध की आय (Earnings of Management) ही स्वीकार किया। मार्शल ने लाभ के जोखिम सिद्धान्त (Risk Theroy of Profits) का परित्याग किया क्योंकि उसके मतानुसार जोखिम तो केवल मात्र अल्पकाल से ही सम्बन्धित है तथा लाभ का आकार कीमतों पर निर्भर करता है। इस प्रकार प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में हम कह सकते हैं कि, "साहस एवं लाभ सम्बन्धी सिद्धान्त के विषय में मार्शल ने कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं किया अपितु उसने इंगलिश परम्परावादी विचारों को ही दोहरा दिया है" (As to the theory of enterprise and profits, therefore, it seems fair to say that Marshall adds little. He tended to revert to English classicism.)

(८) सामान्य अत्युत्पादन, उच्चावचन एवं मुद्रा (General Over-Production, Fluctuations and Money):—सामान्य अति-उत्पादन, मुद्रा एवं आर्थिक संकट से सम्बन्धित मार्शल के विचार उसकी तीन पुस्तकों "उद्योग का अर्थशास्त्र" (Economics of Industry), "मुद्रा, साख एवं वाणिज्य" (Money, Credit and Commerce) तथा "घरेलू मूल्यों का विशुद्ध सिद्धान्त" (Pure Theory of Domestic Value) में देखने को मिलते हैं। पहले तो मार्शल ने सामान्य अत्युत्पादन की अवस्था को असम्भव बताया तथा यह स्वीकार किया कि बचतों की मात्रा में वृद्धि होने से यह सम्भव हो जाता है कि एक व्यक्ति उत्पादन को बढ़ाने के हेतु श्रम एवं वस्तुओं की खरीदारी करने लगे। परन्तु बाद के लेखों में मार्शल ने यह भी स्वीकार कर लिया कि व्यापारिक संकट तथा एक उद्योग से दूसरे उद्योग में तेजी-मंदी के प्रभाव की दशाएं वास्तविक होती हैं। इस प्रकार मार्शल ने मिल के विचारों का बहिष्कार करके बैजहॉट के विचारों का अनुसरण किया। मौद्रिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य के सामन्य सिद्धान्त के एक अंग के रूप में, मुद्रा की प्रकृति एवं कार्य के सम्बन्ध में मार्शल के विश्लेषण ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) की सर्वोत्तम व्याख्या की। उसने ब्याज की वास्तविक दर (Real Rate of Interest) तथा ब्याज की मौद्रिक दर (Money Rate of Interest) के बीच भेद स्पष्ट किया। द्रव्य की वृद्धि के कीमतों पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में मार्शल के विचार उसके द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त से निकाले गये निष्कर्षों पर आधारित थे। मार्शल के द्वारा क्रयशक्ति समता सिद्धान्त (Purchasing Power Parity theory) का अपरिवर्तनीय पत्र चलन इकाइयों वाले देशों के बीच विनिमय दर की व्याख्या करने के हेतु स्पष्टीकरण किया। इसके अतिरिक्त, मार्शल ने तात्कालिक व्यावहारिक आर्थिक नीतियों

विशेषकर मौद्रिक पहलू के सम्बन्ध में अपने सुझाव भी दिये।

मार्शल का दर्शन (The Philosophy of Marshall)

प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है कि "मार्शल का दर्शन द्वैतवादी था। उसके सम्पूर्ण कार्य में दो महान वास्तविकताओं के सबंध में विश्वास पाया जाता है अर्थात् मनुष्य के सम्बन्ध में और भौतिक सम्पत्ति के सम्बन्ध में।"[1] मार्शल ने बताया कि मनुष्य अपने चरित्र द्वारा विशेष रूप से प्रभावित होता है लेकिन इससे भी अधिक उसके कार्यों पर उपलब्ध भौतिक साधनों का प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में मार्शल ने यहां तक स्वीकार किया है कि मनुष्य में पाई जाने वाली विभिन्न हीनताओं (मानसिक, शारीरिक, चारित्रिक) का मुख्य कारण भी भौतिक साधनों का अभाव ही है। यह स्मरणीय है कि मार्शल ने काफी सीमा तक क्लासिकल अर्थशास्त्र के भौतिकतावादी-व्यक्तिवादी आधार (Materialistic-Individu-alistic Basis) को स्वीकार किया है। एक ओर उसने व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है तथा दूसरी ओर समूह को और भी अधिक महत्वपूर्ण ठहराता है। प्रो० हेने ने लिखा है कि "एक अर्थशास्त्री होने के नाते मार्शल ने परम्परावादी अर्थशास्त्र के व्यक्तिवादी-भौतिकतावादी आधार को स्वीकार किया और दूसरी ओर एक दार्शनिक के नाते मार्शल ने द्वैतवाद को अपनाया है तथा एक व्यक्ति के रूप में वह आदर्शवादी एवं सामूहिक कार्यों का समर्थक रहा है।"[2]

इस प्रकार मार्शल एक आदर्शवादी एवं आशावादी विचारक के रूप में विद्वत् समाज के समक्ष आया। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" में यह स्पष्ट रूप से कहा कि अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण मानव जाति के भौतिक कल्याण के हेतु अत्यन्त विस्तृत एवं आशाप्रद है। इसके अतिरिक्त मार्शल के दर्शन में आनन्दजीवी विचारधारा (Hedo-nism) तथा व्यक्ति के तर्कवादी चुनाव (Rational Individual Choices) के विचार भी दृष्टिगत होते हैं। वस्तुतः मार्शल ने अर्थशास्त्र में केवल दार्शनिकता एवं मनोवैज्ञानिकता को ही विशेष स्थान नहीं दिया है अपितु उसने आदर्श एवं व्यावहारिकता को अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह स्मरणीय है कि एक कुशल गणितज्ञ होने के बावजूद भी मार्शल ने अपने आर्थिक विचारों का स्पष्टीकरण करने तथा व्याख्या करने में गणित का न्यूनतम उपयोग किया है क्योंकि उसका मत था कि आर्थिक

---

1 "Marshall's philosophy was certainly that of daulism. Throughout his work there stands out a belief in two great realities: man and material wealth," —Haney.

2 "One may infer, it seems, that Marshall—the economist accepted much of the materialistic-individualistic basis of classical economics, that Marshall—The philosopher was a dualist, and that ' shall-the man leaned toward idealism, and a considerable but ' amount of collective ... " —Prof.

सिद्धान्तों का गणित में अर्थ-तर्क अनुवाद करके अर्थशास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से लाभकारी नहीं होगा।

मार्शल के आर्थिक विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Estimate of Marshall's Economic Ideas):—"मार्शल का ध्यान मुख्य रूप से मूल्य-निर्धारण (valuation) और वितरण (Distribution) की समस्याओं के चारों ओर केन्द्रित था। अपने व्यावहारिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत उसने कीमत को निर्धारित करने वाले कारकों की खोज की। उसने अर्थशास्त्र की प्रत्येक समस्या को मूल्य निर्धारण की समस्या में निश्चित किया। इस समस्या के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत मार्शल इसके पीछे निहित कारण से सम्बन्धित था जिसका अभिप्राय कीमत का विश्लेषण करने से था, लेकिन उसकी कार्य-नीति में उसके लिए यह आवश्यक था कि जिसकी व्याख्या करने के हेतु वह प्रयत्नशील है उसको स्वीकृति प्रदान करे। इस तरह कभी-कभी कारण स्वमेव परिणाम बन जाता है। मार्शल के द्वारा कारण की खोज मांग पूर्ति की शक्तियों में की गई। लेकिन पूर्ति और मांग से उसका अभिप्राय था—"एक कीमत पर पूर्ति" (Supply at a Price) तथा "एक कीमत पर मांग" (Demand at a Price)। इस कीमत का निर्धारण कैसे होता है, यही एक कठिन प्रश्न था। इस प्रकार कीमत जिसकी व्याख्या करने का उसने प्रयास किया, वह वास्तव में मांग-पूर्ति के पीछे स्वीकृत थी। उसके तर्क में यह एक बड़ा दोष निहित था।"[1] उसके वितरण सिद्धान्त के अन्तर्गत में भी एक ऐसा ही दोष निहित है। मार्शल के द्वारा वितरण के सिद्धान्त की स्थापना जीवका-निर्वाह, पुनर्स्थापन आदि के न्यूनतम की कोरी कल्पना के आधार पर की गई। यदि ऐसा ही मान लिया जाए तो क्या उसका सिद्धान्त इस न्यूनतम से ऊपर अतिरेक की खोज करने का प्रयास था? निश्चित रूप से इसका नकारात्मक उत्तर मिलेगा।

---

1 "Marshall's attention was thus mainly centering round the problems of valuation and distribution. In his practical point of view he was attempting to discover the factors that determined price. Every problem was resolved to a problem of pricing. In the scientific apprach towards this problem Marshall meant was concerned with the cause behind it. This causation was to 'explain' prices but in his procedure it was necessary for him to assume what he was attempting to explain. Hence the 'cause' sometimes became the 'result' itself. The cause was discovered in the forces of demand aud supply. But what supply and demand ment was 'supply at a price' and 'demand at a price'. How this price was determined? It was difficult. Hence 'price' which he was attempting to explain was actually assumed behind supply and demand. This was a great defect in his reasoning."

—V. M. Abraham, Ibid, P. 197.

इस कल्पना ने विषय के पूर्ण वैज्ञानिक विवेचन में एक बाधा पहुचाई है। इसी प्रकार मांग-मूल्य, पूर्ति-मूल्य, प्रतिनिधि फर्म, समय के विभिन्न भेद, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्य, समय-अनुराग, अनुसूचिया, व्यय और लागत-व्यय की कल्पना के बाद के लेखको द्वारा कटु आलोचना की गई है।"

फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जो कुछ मार्शल ने किया वह अर्थशास्त्र को एक अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास था। प्राचीन परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के बीच जो प्रमुख स्थान एडम स्मिथ (Adam Smith) को प्राप्त है तथा समाजवादी विचारकों के बीच जो प्रमुख स्थान कार्ल मार्क्स (Karl Marx) को प्राप्त है, वैसा ही प्रमुख एवं सर्वोच्च स्थान आधुनिक अर्थशास्त्रियो के बीच डा० मार्शल (Marshall) को प्राप्त है। मार्शल ने वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में पाई जाने वाली आर्थिक विचारों सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियो मे समन्वय स्थापित किया और इस तरह उसने नव-परम्परावाद (Neo-classicism) अथवा केम्ब्रिज सम्प्रदाय (Cambridge School) की स्थापना की। अर्थशास्त्र की परिभाषा, अध्ययन की पद्धति, मूल्य-निर्धारण सिद्धान्त, वितरण सिद्धान्त आदि से सम्बन्धित मार्शल के विचार उसकी समन्वयकारी नीति का प्रदर्शन है।[1] इसके अतिरिक्त मार्शल ने आवश्यकताओं की विशेषताएं और उनका वर्गीकरण, उपभोक्ता की बचत, क्रमागत उत्पत्ति-समता सिद्धान्त, प्रतिनिधि फर्म, मूल्य-निधारण मे समय का महत्व, सीमान्त उपभोक्ता तथा सीमात उत्पादकता का विचार, मांग और पूर्ति के कोष्टक, मांग और पूर्ति की लोच और उनके नियम, सयुक्त माग और संयुक्त पूर्ति आदि अनेक मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। मार्शल द्वारा प्रतिपादित निरन्तरता का सिद्धांत (Law of Continuity) भी उसकी महत्वपूर्ण देन है। इसी सिद्धान्त के आधार पर मार्शल ने बताया कि अर्थशास्त्र एक निरन्तर विकासशील विज्ञान है तथा ऐसी दशा में यह कहना युक्तियुक्त नही है कि आधुनिक विचारो एवं प्राचीन विचारों में विरोध है। *वास्तविकता यह है कि आधुनिक एवं प्राचीन विचार*

निरन्तरता के सिद्धान्त के आधार पर ही मार्शल ने अर्थशास्त्र के अध्ययन मे निगमन एव आगमन दोनों अध्ययन-प्रणालियों को अपनाया, मूल्य-निर्धारण मे उपयोगिता तत्व का समावेश किया तथा समाज-कल्याण को अर्थशास्त्र का लक्ष्य घोषित किया। इसीलिए प्रो० चैपमैन ने अपनी पुस्तक "राजनैतिक अर्थव्यवस्था की रूपरेखा" (Outline of Political Economy) में लिखा है "मार्शल ने सर्वप्रथम आर्थिक

1 "The present treatise is an attempt to present a modern version of old doctrines with the aid of the new work and with reference to the new problems of our own age."

निष्कर्ष रूप में, प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे मार्शल एक ऐसे विचारक के रूप मे दृष्टिगत रहेगा जिसने अन्य पूर्ववर्तियों की अपेक्षा मूल्य एव वितरण के सगठित एव दृढ सिद्धान्त का अधिक विकास किया।"[1]

——

1 "Alfred Marshall will stand in the history of economic thou- as one who made more progress towards a united and consistent ry of value and distribution than any predecessor."—Prof. Haney.

१९

अमेरिकन सांस्थायिकता

(American Institutionalism)

प्राक्कथन :— "अर्थशास्त्र में सांस्थायिक दृष्टिकोण का उद्भव आर्थिक विश्लेषण को देश की आर्थिक संस्थाओं के साथ, जिसका उद्गम देश की प्रगति के दौरान में विभिन्न कालों में हुआ था सम्बद्ध करने के प्रयास में हुआ जोकि आर्थिक क्रियाओं की नर्णायकि शक्तियां हैं। सांस्थायिक अर्थशास्त्रियों का मत था कि आर्थिक संस्थाओं के समुचित संदर्भ के अभाव में आर्थिक विश्लेषण अपूर्ण है। रीति रिवाज, आदतें तथा सामान्य आर्थिक व्यवस्था आदि मनोवैज्ञानिक कारकों को इन विचारकों ने आर्थिक क्रियाओं एवं आर्थिक विकास को प्रभावित करते हुए पाया। अतएव इन विचारकों ने इन शक्तियों को भी विचारार्थ अपनाया। अमेरिका में आर्थिक सांस्थायिकता थ्रोस्टैन वेबलिन, जॉन आर० कामान्स तथा डब्लू० सी० मिचैल के नामों के साथ संगठित है।"[1] इस तरह सांस्थायिकता अमेरिका के कुछ प्रमुख विचारकों के विचारों का एक समूह है जिसने निश्चित रूप से अमेरिका के कुछ विचारों एवं नीतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। अमेरिकन सांस्थायिकता का जन्म सन् १८९९ से माना जाता है जबकि वेब्लिन का प्रसिद्ध ग्रन्थ "निठल्ले वर्ग का सिद्धान्त" (Theory of Leisure Class) प्रकाशित हुआ था। प्रो० हेने के शब्दों में "संस्थागत अर्थशास्त्र बीसवी शताब्दी एक घटक है। सदैव से ही ऐसे आर्थिक विचारक होते रहे हैं जिन्होंने सांस्थायिक दृष्टिकोण अपनाया तथा सांस्थायिकतावादियों में किसी नए विचार को ढूंढ निकालना भी सरल नहीं है,

---

1 "The institutional approach in Economics originated from the attempt to connect economic analysis with the economic institutions of the countries, that were evolved at different times in the development of a country. The institutionalists found that economic analysis was incomplete without ample reference to the economic insititutions, which were the determining forces of all economic activities. The Psychological factors like customs, habits and the general economic arrangements were found to be influencing economic activities and developments. Hence they emphasized the need for taking into consideration these forces also. Institutional Economics in America was associated with the names of Thorstein Veblen, John R. Commons and Wesley Clair Mitchell."

—V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 212.

परन्तु संस्थागत विचारों की एक नवीन फसल के हेतु सन् १८९९ में वेबलिन की पुस्तक" निठल्ले वर्ग का सिद्धान्त" के रूप में बीजारोपण किया गया।"

संस्थायिकतावादियों के मतानुसार आर्थिक संस्थाओं का उद्गम मनुष्यों के रीति-रिवाज, आदतों आदि मनोवैज्ञानिक कारकों एवं आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के कारण होता है। डेविनपोर्ट (Devenport) के शब्दों में "संस्थाएं मानवीय विचारों अथवा आदतों की कार्यशील चेतनाएं हैं, मस्तिष्क की सामान्य रूप से स्थापित प्रवृत्ति है तथा सामान्य रूप से अपनाए गए कार्यशील रिति रिवाजों यथा-निजी सम्पत्ति, उत्तराधिकार, सरकार, करारोपण, प्रतिस्पर्धा एवं साख आदि की उत्पत्ति हैं।" संस्थायिकता अर्थशास्त्र की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :—

(१) अर्थशास्त्र का केन्द्र-बिन्दु मूल्य निर्धारण (Valuation) के स्थान पर व्यावहार (Behaviour) होना चाहिए,

(२) चू कि मानवीय व्यवहार परिवर्तनशील है, इसलिए आर्थिक नियम भी परिवर्तन शील अर्थात समय, स्थान एवं परिस्थितियों पर आधारित होते हैं,

(३) रीति-रिवाज, आदतो आदि मनोवैज्ञानिक कारको [Psychological Facotrs] आदि के द्वारा ही आर्थिक जीवन का संगठन होता है,

(४) आर्थिक क्षेत्र में मनुष्य को प्रेरित करने वाली प्रवृतियाँ (Moies) को निश्चित रूप से नापा नहीं जा सकता, तथा

(५) आर्थिक विश्लेषण का प्रमुख ध्येय वर्तमान संस्थाओं के आधीन आर्थिक जीवन में पाई जाने वाली त्रटियों को सामान्य मानना होना चाहिए।

न्ताओं के
है-अर्थात्
he more...
ग्र (The,
on of the
cers, who
d to find
... seed for a new crop of 'institutional' ideas was planted about 1899 in the shape of Veblens "Theory of Leisure Class"

—Prof. Haney: History of Economic Thought.

2 "Institutions are working consensum of human thought or habits, a generally established attitude of the mind and generally established attitude of the mind and generally adopted custom of action, as for example, private property, inheritance, g... taxation and credit." competition

विकास की व्याख्या करने में निहित था। उनका विचार था कि समाज का विकास क्रमिक होता रहता है।" इसके विपरीत दूसरे समुदाय के विचारकों का उद्देश्य नव-विकसित विज्ञान की स्थापना करना था। इन विचारकों का मत था कि आदर्शों, नियमों एवं आर्थिक संस्थाओं के आधार पर आर्थिक नियमों का प्रतिपादन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरे समुदाय के विचारकों ने सामाजिक गड़बड़ियों को समाप्त करने की दिशा में सामाजिक नियंत्रण (Social Control) को लागू करने का सुझाव दिया था। प्रो० हेने के मतानुसार "दूसरा समकालीन समुदाय 'पुराने अर्थशास्त्र' को नवीन विकासात्मक विज्ञान से प्रतिस्थापित करने की खोज में था। उन्होंने तार्किक दृष्टि से तर्क शक्ति को अधिक स्थान दिया क्योंकि संस्थाओं के माध्यम से नियंत्रण को एक बड़ी समस्या मानते हुए उन्होंने मूल्य-निर्धारण के कार्य तथा सामाजिक लक्ष्यों को निर्धारित करना स्वीकार किया।" सांस्थायिक अर्थशास्त्र के प्रमुख विचारकों का निम्नोक्त में उल्लेख किया गया है।

(१) थोर्स्टन वेबलिन (Thorstein Veblen)

वेबलिन का जन्म सन् १८५७ में अमेरिका के एक निर्धन परिवार में हुआ था। उसने अर्थशास्त्र, इतिहास, तर्कशास्त्र, भाषा-विज्ञान आदि विषयों का गहन अध्ययन किया था। अपने जीवनकाल में वेबलिन ने अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन का काम किया तथा इसी दौरान में उसने कई ग्रन्थ लिखे जिनमें से "निठल्ले वर्ग का सिद्धान्त" (Theory of Leisure Class), "व्यापारिक साहस का द्धान्त" (Theory of Business Enterprise), "इंजीनियर्स एवं मूल्य-पद्धति"

(Engineers and the Price System) आदि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है तथा आर्थिक विचारधारा के इतिहास में इन सब ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् १६२६ में वेबलिन का स्वर्गवास हो गया। प्रो० ए० जी० ग्रूची ने वेबलिन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, वेबलिन ही वह विचारक था जोकि अमेरिका के नवीन आर्थिक विचारों के नवीन आन्दोलन का आधार बना तथा जिसने इस आन्दोलन के हेतु आवश्यक दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया; उसने एक विस्तृत पृष्ठभूमि की रूप रेखा तैयार की जिस पर नवीन अर्थशास्त्र को बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रुकना था।"[1]

प्रो० वी० एम० एब्राहम (V. M. Abraham) के शब्दो मे, "वेबलिन जिसका प्रभाव आजकल इतना अधिक समझा जाता है, की समकालीन विचारकों द्वारा उपेक्षा की गई। उसके साथियों में उसके विचारो का काफी विरोध था लेकिन यह विरोध एवं उपेक्षा उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद एकमततापूर्वक प्रशंसा में बदल गई। उसके प्रारम्भिक जीवन मे इस तरह के प्रतिकूल व्यवहार का कारण 'उसके अन्तर्गत ऐतिहासिक झुकाव,' 'जीवन के दिखावटी पहलू की ओर उसका आग्रह,' तथा 'पूर्वापर सिद्धान्तो की उसके द्वारा की गई असंगत उपेक्षा थे।' इसके अतिरिक्त उसके अन्दर भी स्वय अनेक विरोधाभास निहित थे। फिर भी उसके कार्य में काफी मौलिकता विद्यमान है। लेकिन वे विचारक जोकि आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे सस्थागतवादियों के महत्व को कम करना चाहते हैं, विशेषकर एरिक रोल का कथन है कि वेबलिन को किसी विशेष विचारधारा के सम्प्रदाय का संस्थापक या सदस्य मानना बहुत कठिन है। केवल एक परम्परा ही वेबलिन के नाम के साथ निरूपित है। अमेरिकन सांस्थायिक अर्थशास्त्र के संस्थापक सदस्यों मे वेबलिन की महत्ता और प्रसिद्धि बहुत अधिक है।"

वेबलिन का कार्य अपने समय की विशेष उत्पत्ति था। उसका ध्यान तात्कालिक अमेरिकन समाज की सभी समस्याओ पर केन्द्रित था। आर्थिक परिवर्तनों के सम्बन्ध मे प्रतिक्रियात्मक भावना के कारण उसने अमेरिकन अर्थव्यवस्था के सरचनात्मक परिवर्तनो (Structural Changes) की पर्याप्त उत्पादन, की विस्तृत वृद्धि, निगमों का विकास आदि की साक्षी की। वेबलिन की पुस्तक "आर्थिक विज्ञान की पूर्व धारणाएं" (The Preconceptions of Economic Science) बेजहॉट Bagehot) की पुस्तक "क्लासिकल राजनैतिक अर्थव्यवस्था के स्वयं सिद्ध प्रमाणों र निबन्ध (Essay on the Postulates of Classical Political Economy)

1 "It was Veblen who emerged as the spearhead of the new novement in Americon economic thought, who provided this movement with the necessary philosophical inspiration, and who charted out in broad outline the course that the new economics was to ... n the first half of the twentieth century." —A. G. Gr

से तुलना की जा सकती है। उसके मतानुसार क्लासिकल राजनैतिक अर्थव्यवस्था 'प्राकृतिक नियम' (Natural Law) की धारणा के साथ सम्बद्ध थी और यह सम्बद्धता परम्परावादी विचारों तक जारी रही। वेबलिन का वास्तविक सम्बन्ध "धन के विज्ञान" (Scince of Wealth) के दृष्टिकोण से नहीं था। इसके अतिरिक्त परम्परावादी विचारकों ने आर्थिक विकास के संस्थागत पहलू की उपेक्षा की थी। परम्परावाद की दूसरी त्रुटि सुख-दुःख के आधार पर अनुमानित आनन्दजीवी मनोवृत्ति (Hedonistic Attitude) से सम्बन्धित थी। वेबलिन ने इस सीमान्तवादी सिद्धान्त (Marginalist Theory) को दोषपूर्ण बताया कि मनुष्य का प्रयत्न अपने सुख को अधिकतम करने तथा दुख को न्यूनतम करने का होता है। प्रो॰ हेने के मतानुसार वेब्लिन ने परम्परावादी विचारों की दो दृष्टिकोण से आलोचना की— अर्थात आनन्दजीवी मनोवृत्ति जिसका आधार सुख-दुःख का अनुमान है और दूसरे आशावादी धारणा जो कि स्वहित की अनुरूपता पर आधारित है। प्रो॰ वी॰ एम॰ एब्राहम (V. M. Abraham) के शब्दों में, "संक्षेप में, सामान्य आर्थिक स्थिति की मान्यता, प्राकृतिक व्यवस्था का दर्शन, सुख-दुःख पर आधारित आर्थिक व्यक्ति की अवास्तविक आनन्द जीवी मनोवृत्ति, अत्यधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति आदि का, जिन्होंने आर्थिक विश्लेषण के आधार का निर्माण किया, वेबिलन ने बहिष्कार किया।"[1]

वेबलिन की दृष्टि में अर्थशास्त्र एक विकासात्मक विज्ञान (Evolutionary Science) है जो कि मानवीय अन्तः प्रेरणाओं (Human Instincts) तथा संस्थाओं (Institutions) पर आधारित है। आर्थिक-व्यक्ति की आनन्दजीवी धारणा की आलोचना करते हुए वेबलिन ने उन मानवीय प्रवृत्तियों का विवेचन किया जो कि आर्थिक क्रियाओं के पीछे रहती हैं। यही वह आधार बन गया जिसके ऊपर वेबलिन का संस्थागतवाद निर्मित था। वह मनुष्य के वास्तविक व्यावहार से सम्बन्धित था, सामान्य व्यावहार से नहीं। इस प्रकार वह क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की अपेक्षा सत्यता के अधिक निकट था। मार्क्स ने भी मानवीय व्यावहार का विश्लेषण किया परन्तु उसका विश्लेषण मुख्य रूप से मानवीय व्यवहार के भौतिकवादी पहलू (materialistic aspect) से सम्बन्धित था। इसके विपरीत वेबलिन के विश्लेषण का संवध संस्थागत पहलू (Institutional Aspect) से था। वेबलिन ने संस्थाओं को "विस्तृत रूप में व्याप्त सामाजिक आदतों" (Widespread Social Habits) अथवा "विचारों की प्रचलित व्यापक आदतों" (Widely Prevalent Habits of

---

1 "In short, the assumption of 'normal' economic situation, the philosophy of the natural order, the vitiating preconception of the unralistic hedonistic behaviour of the 'economic man' his balancing of pleasure and pain, the motivation from pecuniary gain which formed the basis of economic analysis so far, Veblen rejected."

—V. M. Abraham : Ibid, P. 213.

सम्भव नहीं है। अपने इस विश्वास की व्याख्या उसने अपनी पुस्तक "अमेरिकन औद्योगिक समाज की डोकुमेंटरी हिस्ट्री" (Documentary History of American Industrial Society) मे, जिसकी रचना उसने श्रम-सस्था के कार्यान्वयन के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् की थी, की। कामन्स ने मार्क्सवादी और फेबियनवादी श्रम के आन्दोलन सम्बन्धी धारणाओं का खण्डन किया तथा इस क्षेत्र मे उसका एक महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि श्रम- आन्दोलन व्यवहार (Labour movement Behacuiour)को व्यापारिक उच्चावचनों (Business Fluctuations) के साथ जोड़ दिया। इस कार्य के द्वारा उसने आर्थिक वर्गों के प्रादुर्भाव की खोज की तथा पूंजीवादी क्रम के अन्तर्गत अपना "यूनियन रिकगनिशन" (Union Recognition) कार्यक्रम बनाया।

कामन्स ने विभिन्न प्रकार की औद्योगिक अवस्थाओ, यथा--"इटैनिरैन्ट" (Itenerant), "कस्टम ओर्डर" (Custom Order), रिटेल शोप" (Retail shop) तथा "होलसेल ओर्डर स्टेज" (wholesale Order Stage) की कल्पना की और बताया कि अन्तिम अवस्था को छोड़कर शेष सभी औद्योगिक अवस्थाओं (Industrial Stages) मे उपभोक्ताओ, उत्पादको एव श्रमिको के हितो मे एकता रहती है। लेकिन अन्तिम अवस्था के अन्तर्गत, जबकि बाजार का विस्तार हो जाता है तथा विभिन्न क्षेत्रों से उत्पादक इस स्थान मे कीमतो को कम करने के हेतु आते हैं, तो अव्यक्तिगत तथा व्यर्थ की प्रतियोगिता आदि व्यापक रूप मे सामान्य बन जाती है तथा इस तरह विभिन्न वर्गीय हितो की एकता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार वर्ग-चेतना का प्रादुर्भाव होता है तथा वर्ग सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है उसने बताया कि "औद्योगिक जनतत्र" (Industrial Democracy) या "कल्याणकारी सेवायोजक" (Welfare Employer) की सम्भावना केवल तभी सम्भव है जबकि मध्यवर्तियो तथा लाभ कमाने वाले व्यापारियों का उन्मूलन कर दिया जाय।" इस तरह कामन्स द्वारा प्रतिपादित "वर्ग-सिद्धान्त" (Class Theory) एवं "श्रम-संघर्ष सिद्धान्त" (Labour Struggle Theory) किसी भी तरह मार्क्स के सिद्धातों के समरूप नहीं हैं। कामन्स के सिद्धान्त के अन्तर्गत श्रमिक पुराने वर्ग के तरलीकरण के हेतु संघर्ष मे सगठित नही होंगे अपितु उनका उद्देश्य अपने निजी कल्याण को खोज निकालना तथा इस तरह समाज का कल्याण करना होगा। जनतन्त्रीय औद्योगिक-सम्बन्धो के उद्देश्य (Democratic Industrial Relations Objective) को पाने के हेतु कामन्स ने क्रांतिकारी साधनो को अपनाने का समर्थन नहीं किया, अपितु उसने कहा कि इस ध्येय को सुविकसित, सुसभिप्रायित एवं प्रशिक्षित समुदायों

सम्भव नही है। अपने इस विश्वास की व्याख्या उसने अपनी पुस्तक "अमेरिकन औद्योगिक समाज की डोकुमेंटरी हिस्ट्री" (*Documentary History of American* Industrial Society) मे, जिसकी रचना उसने श्रम-संस्था के कार्यान्वयन के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् की थी, की। कामन्स ने मार्क्सवादी और फेबियनवादी श्रम के आन्दोलन सम्बन्धी धारणाओं का खण्डन किया तथा इस क्षेत्र में उसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान यह रहा कि श्रम- आन्दोलन व्यवहार (Labour movement *Behaviour*)को *व्यापारिक उच्चावचनों (Business Fluctuations) के साथ जोड़* दिया। इस कार्य के द्वारा उसने आर्थिक वर्गों के प्रादुर्भाव की खोज की तथा पूंजीवादी क्रम के अन्तर्गत अपना "यूनियन रिकगनिशन" (Union Recognition) कार्यक्रम बनाया।

कामन्स ने विभिन्न प्रकार की औद्योगिक अवस्थाओं, यथा–"इटेनिरेन्ट" (Itenerant), "कस्टम ओर्डर" (Custom Order), रिटेल शोप" (Retail shop) तथा "होलसेल ओर्डर स्टेज" (wholesale Order Stage) की कल्पना की और बताया कि अन्तिम अवस्था को छोड़कर शेष सभी औद्योगिक अवस्थाओं (Industrial Stages) मे उपभोक्ताओं, उत्पादकों एवं श्रमिकों के हितो मे एकता रहती है। लेकिन अन्तिम अवस्था के अन्तर्गत, जबकि बाजार का विस्तार हो जाता है तथा विभिन्न क्षेत्रों से उत्पादक इस स्थान में कीमतो को कम करने के हेतु आते हैं, तो अव्यक्तिगत तथा व्यर्थ की प्रतियोगिता आदि व्यापक रूप मे सामान्य बन जाती है तथा इस तरह विभिन्न वर्गीय हितो की एकता समाप्त हो जाती है। *इस प्रकार वर्ग-चेतना का प्रादुर्भाव होता है तथा वर्ग सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है* उसने बताया कि "औद्योगिक जनतन्त्र" (Industrial Democracy) या "कल्याणकारी वायोजक" (Welfare Employer) की सम्भावना केवल तभी सम्भव है जबकि व्यवतियों तथा लाभ कमाने वाले व्यापारियो का उन्मूलन कर दिया जाय।" इस तरह कामन्स द्वारा प्रतिपादित "वर्ग-सिद्धान्त" (Class Theory) एव "श्रम-सघर्ष सिद्धान्त" (Labour Struggle Theory) किसी भी तरह मार्क्स के सिद्धांतों के अनुरूप नही हैं। कामन्स के सिद्धान्त के अन्तर्गत श्रमिक पुराने वर्ग के तरलीकरण हेतु संघर्ष मे सगठित नही होगे अपितु उनका उद्देश्य अपने निजी कल्याण को खोज निकालना तथा इस तरह समाज का कल्याण करना होगा। जनतन्त्रीय-औद्योगिक-सम्बन्धो के उद्देश्य (Democratic Industrial Relations Ob[illegible]
को पाने के हेतु कामन्स ने क्रांतिकारी साधनों को अपनाने का समर्थन नहीं अपितु उसने कहा कि इस ध्येय को सुविकसित, सुसम्मिश्रायित एवं

ययपमद केसेम ना चाहिए।"[1]

(३) डब्लू० सी० मिचैल (Wesley Clair Mitchell)

सांस्थायिक अर्थशास्त्र के परिमाणात्मक दृष्टिकोण का सबसे बड़ा व्याख्याकर्त्ता डब्लू० सी० मिचैल था। यह स्थति उसने आर्थिक विश्लेषण में सांख्यिक तथ्यों के माध्यम से प्राप्त की। उसकी प्रमुख रचनाओं में "व्यापार चक्र" (Business Cycles) "व्यापार चक्र: समस्या और इसकी स्थापना" (Business Cycles : The Problem and its Setting) "व्यापार-चक्रों का मापन" (Measuring Business Cycles) को सम्मिलित किया जाता है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उसने आर्थिक इतिहास के अध्ययन के तौर पर अनेक निबन्ध भी प्रकाशित किए लेकिन वह व्यापार-चक्रों के अध्ययन के सम्बन्ध में ही अधिक प्रसिद्ध है। आर्थिक विज्ञान के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत ऊंची थी और इसीलिए उसने अपने जीवन काल का एक बड़ा भाग आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में लगाया। प्रो० हेने के शब्दों में, "डब्लू० सी० मिचैल, जोकि वेबलिन को अच्छी तरह से जानता था, ने भी मानवीय क्रिया की अबौद्धिकता पर बल डाला और यह स्वीकार किया मूल प्रवृत्तियाँ अर्थात् मानवीय आदतें ही मानवीय लक्ष्यों की मुख्य निर्धारक हैं। उसने अर्थशास्त्र को मानवीय व्यावहार का अध्ययन समझा।"[2]

मिचैल का ध्यान सर्वप्रथम तात्कालिक प्रमुख समस्या अर्थात मौद्रिक समस्या (Monetary Problem) की ओर आकर्षित हुआ। इस समय अमेरिका रजत के मूल्य में कमी आने के कारण मौद्रिक विपत्ति अनुभव कर रहा था तथा न्यूयार्क के बाजार के प्रति विदेशी पूंजीपतियों की निराशा और भी अधिक बढ़

---

1 "Thus the class theory and labour struggle theory which Commons formulated were not inform or principle similar to that of Marx. The labour would unite in Commons' 'struggle' not for liquidating the old class but to find out their own welfare and thus the welfare of the society. The pioneers of such labour institutions, were hailed by Commons as the makers of history. Commons did not approve of violent measures for obtaining the democratic indusi trial relations objective but professed that it should be attatned thro-ugh well developed well intentioned and trained groups."

—V. M. Abraham.

2 "W. C. Mitchell, who knew Veblen well, also stressed the irrationality of human action, and accepted 'inslincts'—perhaps meaning habits—as the prime movers and determinants of human ends. He thought of economics as the study of human behaviou embracing all sorts of concrete historical research as well as theore-tical work."

—Prof. Haney.

गई थी। अतएव स्वाभाविक रूप से मिचेल का ध्यान 'सरल द्रव्य बनाम ठोस द्रव्य (Easy Money Vs. Sound Money) की ओर आकर्षित हुआ। स्वयं को व्यापार चक्रों के गुणात्मक विश्लेषण में सीमित न रखते हुये, मिचेल ने समस्या का परिमाणात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन किया। फलस्वरूप उसने विभिन्न सांख्यिक आंकडों को एकत्रित किया और अपने विश्लेषण में इनका प्रयोग किया। सांख्यिक आंकडो की सहायता से मिचेल ने द्रव्य के परिमाणात्मक सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) की ओर निर्माणकारी मनोवृत्ति अपनाई।

मिचेल की "व्यापार चक्र" (Business Cycles) नामक रचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी तथा इसके अन्तर्गत कई नये विचारों का समावेश है। जैसा कि हचेसन (Hutchison) ने कहा है मिचेल की इस पुस्तक की व्याख्या अंग्रेजी भाषा में इस विषय पर प्रथम विशाल एवं योग्य मोनोग्राफ (The first large and Comprehensive monograph on its subject in the English language) के रूप में की जा सकती है। उस रचना के अन्तर्गत उसने मौद्रिक अर्थव्यवस्था के उच्चावचन की प्रक्रिया का वास्तविक अध्ययन किया। व्यापार चक्रों के अध्ययन मे 'सामान्य' (Normal) या 'स्थिर' (Static) की मान्यता को मिचेल ने पूर्णतया कृत्रिम बताया। इन मान्यताओं को एक ओर करते हुये मिचेल ने अपना अध्ययन किन्हीं मान्यताओं के साथ जो कि उसने क्रमबद्ध परीक्षण से प्राप्त की थी, प्रारम्भ किया। उसने इन मान्यताओ का अनुभव के आधार पर परीक्षण किया तथा इन मान्यताओ की विस्तृत क्रियाशीलता के कारण व्यापार चक्र का सिद्धान्त आर्थिक संगठन के वास्तविक कार्यान्वियन की वास्तविक व्याख्या बन गई।

व्यापार चक्र के सम्बन्ध मे पूर्वप्रतिपादित सिद्धान्तो का निरीक्षण करते हुये मिचेल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि व्यापार चक्र मौद्रिक अर्थव्यवस्था के घटक (Phenomena of Monetary Economy) है। मौद्रिक अर्थव्यवस्था लाभ की सम्भावना से क्रियाशील रहती है। व्यापार चक्रो के दौरान मे क्या होता है, इसका पता लगाने के मिचेल के प्रयास ने उसे अपना सिद्धान्त विकासात्मक धारणा पर आधारित करने को बाध्य किया। उसने बताया कि व्यापार चक्र केवल मात्र औसत दर्जे की आर्थिक क्रियाओ मे उच्चावचन नहीं है अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे उच्चावचन का नाम है। व्यापार चक्र द्रव्य कमाने और व्यय करने की क्रियाओ पर आधारित सामाजिक सगठन का प्रत्यक्ष परिणाम है। व्यापार चक्रों की उत्पत्ति सामाजिक सगठन से स्वमेव होती है और इसी प्रकार मदी अभिवृद्धि को जन्म देती है तथा,पुनः अभिवृद्धि, मन्दी को जन्म देती है। अभिवृद्धि की दशा मे लागत-व्यय विक्रय-मूल्य का अतिक्रमण करने लगता है तथा मुद्रा-बाजार में तनाव के फलस्वरूप विनियोग परियोजनाएं एक ओर बैठ जाती है जब तक कि वित्त-व्यवस्था को लागत-व्यय अनुकूल न हो जाए। फलस्वरूप अभिवृद्धि-विरोधी अवस्था (Stage of Recession) का प्रारम्भ हो जाता है और कुछ समय मे यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था

में व्याप्त हो जाती है। इस काल में लोग अधिक परिश्रम प्रदान करने लगते हैं क्योंकि उनको इस क्रिया के हेतु समय अधिक अनुकूल हो जाता है। फलस्वरूप आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होने लगता है। लागत-व्यय और कीमतों में होने वाले परिवर्तन इन क्रियाओं को प्रेरणा प्रदान करते हैं। मांग के बढ़ने से कीमतों में वृद्धि होगी तथा पूर्ति को बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी परन्तु सुधरी हुई तकनीक के कारण लागत-व्यय कम होने लगेगा तथा पुनः अभिवृद्धि का आगमन हो जाएगा। मिचैल ने बताया कि इसी प्रकार आर्थिक क्रिया का हरएक चरण अपने उत्तराधिकारी को जन्म देगा तथा आर्थिक संगठन स्वमेव ही नई स्थिति को प्राप्त करने के हेतु आवश्यक परिवर्तनों के अन्तर्गत गुजरता जाएगा। उसकी एक महत्वपूर्ण खोज यह थी कोई उच्चावचन केवल मात्र कीमतों में होने वाला उच्चावचन ही नहीं है अपितु वह औद्योगिक क्रियाओं स्क्यूरिटी मार्केट्स, वस्तु एवं श्रम बाजारों तथा वित्त-उद्योग एवं वाणिज्य में होने वाला उच्चावचन भी है। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था एवं सम्पूर्ण संगठन इससे प्रभावित होगा। व्यापार-चक्रों को रोकने के सम्बन्ध में मिचैल ने बैंक्स के पुनर्संगठन सरकारी व्यय पर नियन्त्रण, करेन्सी की स्थिरता तथा पूंजीगत व्यय के हेतु नियोजन आदि का सुझाव दिया।

मिचैल ने परम्परावादी विचारों की भी कटु आलोचना की है। उसका मत है कि परम्परावादियों का यह कथन दोषपूर्ण एवं निराधार है कि मनुष्य अपने कार्यों को तर्क पर आधारित करते हैं। मिचैल ने परम्परावादियों द्वारा अपनाई गई अध्ययन की निगमन प्रणाली की आलोचना करते हुए लिखा कि यह प्रणाली वास्तविकता का बोध कराने में सफल सिद्ध नहीं हुई है। उसने बताया कि यदि वास्तविक स्थितियों का ज्ञान कराना है तो अध्ययनकर्त्ता को अपनी धारणाएं वास्तविकता पर आधारित करनी होंगी तथा उनमें भी देश काल के अनुसार परिवर्तन करने होंगे। अर्थशास्त्र के क्षेत्र के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए मिचैल ने लिखा कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आर्थिक संस्थाओं के विकास की खोज उन संस्थाओं की कार्य पद्धति का ज्ञान तथा आर्थिक स्थितियों पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों का ज्ञान सम्मिलित होना चाहिए। आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत उसने द्रव्य-उपार्जन के विविध उपाय, वस्तुओं के उत्पादन एवं स्थानान्तरण के साधन, वितरण सम्बन्धी विभिन्न ढंगों एवं वाणिज्य पद्धति का उल्लेख किया है।

इस प्रकार एक सांस्थायिक अर्थशास्त्री के रूप में मिचैल ने वर्तमान अर्थशास्त्र के संस्थापकों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। उसका ग्रन्थ "व्यापार-चक्र" आर्थिक समाज और इसकी विभिन्न क्रियाओं के विस्तृत विभिन्न चरणों का विश्लेषण एवं व्याख्या करने वाला महान कृत्य है। उसके द्वारा अपनाई गई सांख्यिक एवं परिमाणात्मक विश्लेषण की पद्धतियों से राष्ट्रीय-आय, कीमत, विनियोग, द्रव्य-बाजार आदि के परिमाणात्मक अनुसंधान को प्रेरणा मिली है।

उसके सिद्धान्तों में अनेक तत्व निहित हैं जिनका आधुनिक अर्थ-विज्ञान के अन्तर्गत एकीकरण किया गया था।"[1] मिल्टन फायडमैन (Milton Friedman) ने मिचैल की पुस्तक व्यापार-चक्र (Business Cycles) की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि इस पुस्तक के अन्तर्गत अनेकों विचारों का समावेश है। इस तरह डब्लू० सी० मिचैल के महान प्रभाव के एक विस्तृत भाग के अन्तर्गत अर्थशास्त्र का पुनर्निर्माण खोजा जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि संस्थागत विचारकों ने नव-परम्परावाद की सुन्दर आलोचना प्रस्तुत की है, तथापि इन विचारकों ने विकासात्मक अर्थशास्त्र (Evolutionary Economics) के निर्माण के सबंध में जो सुझाव दिये हैं वे सब अव्यवहारिक दिखाई पड़ते हैं। प्रो० हेने ने लिखा है कि, "वेबलिन के सन्देहजनक अपवाद के साथ किसी ने भी ठोस संस्थागत दृष्टिकोण नहीं अपनाया है तथा आर्थिक विज्ञान के निकाय में कोई भी नया तत्व नहीं जोड़ा है।"[2] जहाँ तक इन विचारकों के आलोचनात्मक कार्य का सम्बन्ध है, इन विचारकों ने अन्य विचारकों द्वारा किए गए अनुमानों, अध्ययन की निगमन प्रणाली के अत्यधिक प्रयोग और आर्थिक नियमों की क्रियाशीलता के सम्बन्ध में अत्यंत सुन्दर आलोचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इसके अलावा इन विचारकों ने मानवीय जीवन पर संस्थाओं के पड़ने वाले प्रभावों का भी विशद विवेचन किया है एवं माग व पूर्ति की तालिकाओं में परिष्कार भी किया है। प्रो० हेने के शब्दों में, "उन्होंने दूसरे विचारकों द्वारा अपनाई गई अवास्तविक मान्यताओं तथा गूढ़ निगमन प्रणाली के अत्यधिक प्रयोग को उघाड़ा है और उन्होंने आर्थिक नियमों की सीमा को व्यक्त किया है, यथार्थरूप

---

1 "Thus Mitchell, as an institutional economist, occupied a very important place among the founders of modern economics. His 'Business cycles' was a great achievements in analysing and explaning the various phases of the widely diffused fluctuations of economic society and its various actions. The methods of statistical and quantitative analysis that he adopted, led to the quantitative research in national income, prices, investment, money markets etc. His theories contained many elements that were integrated into modern economic science."

—V. M. Abraham, Ibid. P. 219-20

2 "With the doubtful exception of Veblen, no one taking the strict 'institutional approach' has added any thing material to the body of Economic Science." —Haney.

प्रमाणित करते हुए मांग व पूर्ति की तालिकाओं के प्रयोग एवं निर्माण में सुधार किया है।"[1]

अमेरिका के अन्य अर्थशास्त्री (More Economists in America)

अनेक आलोचक-विद्वानों ने अमेरिकन अर्थशास्त्रियों को चार वर्गों में विभाजित किया है, यथा-परम्परावादी शाखा (Traditionalism), संस्थागतवाद (Institutionalism), कल्याण अर्थशास्त्र की शाखा (Welfare Economists) तथा अन्य अर्थशास्त्री (Other Economists)। इंगलिश क्लासिकल सम्प्रदाय के अनुरूप ही कुछ अमेरिकन विद्वानों के विचार भी हैं जिन्हें कि परम्परावादी शाखा अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस शाखा के विचारकों दो उपवर्गों में रखा जाता है अर्थात् विषयगत (Subjective) विचारक और वस्तुगत (Objective) विचारक। विषयगत श्रेणी के अन्तर्गत क्लार्क (Clark), फिशर (Fisher), फीटर (Fetter) और पैटन (Patten) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों में क्लार्क द्वारा प्रतिपादित "लाभ का सिद्धान्त" (Theory of Profit), "गतिशील अर्थशास्त्र का विचार" (Concept of Dynamic Economics) तथा फिशर द्वारा प्रतिपादित "मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त" (Quantity Theory of Money) परम्परावादी विचारों के सुन्दर उदाहरण हैं। दूसरी ओर विषयगत श्रेणी में टॉजिग (Taussig), कारवर (Carver) और एली (Ely) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। टॉजिग ने अपने प्रयत्नों द्वारा परम्परावादी विचारों को पुनः अमेरिका में स्थापित करने का प्रयास किया था। कारवर अपने "वितरण सिद्धान्त" (Theory of Distribution) के हेतु तथा एली अपने आलोचनात्मक विचारों के हेतु प्रसिद्ध है। संस्थागत शाखा के अन्तर्गत जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है, वेबलिन (Veblen), कामन्स (Commons), मिचैल (Mitchell), हेमिल्टन (Hamiltion), स्लिचर (Slitcher) टॅगवैल (Tugwell) आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कल्याण अर्थशास्त्र की शाखा के अन्तर्गत लर्नर (Learner), शुम्पीटर (Schumpeter) और वर्गसन (Bergson) के नाम प्रमुख से उन्होंने संस्थाओं द्वारा अदा किए गए भाग पर बल डाला है। संस्थाओं की लाभदायक विश्लेषणात्मक व्याख्या की है तथा अबौद्धिक प्रवृत्तियों की महत्ता को

---

1 "They have exposed, in others, various unreal assumptions and an exessive use of abstract deductive method, and they have demonstrated the limitations of economic laws. Positively, they have emphasized the part played by the institutions, have presented useful analytic descriptions of the institutions, and have by demonstrating the importance of irrational motives, corrected, an imperfect construction and use of demand and supply schedules." —*Haney.*

है। इन विचारकों ने अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय सामाजिक-कल्याण बताया, सरकारी हस्तक्षेप की नीति की सराहना की तथा प्रतियोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता को आर्थिक जीवन के आधार के रूप में स्वीकार नहीं किया। इन तीनों शाखाओं के अतिरिक्त कुछ अमेरिकन अर्थशास्त्री ऐसे हैं जिन्होंने स्वतन्त्र क्षेत्र में कार्य किया तथा अपने महत्वपूर्ण विचारों का प्रतिपादन किया। इन विचारकों में नाइट (Knight), वाइनर (Viner), हेनसन (Hansen) एवं हारबलंर (Harberler) के नाम प्रमुख हैं इनमें नाइट द्वारा प्रतिपादित "लाभ का सिद्धान्त" (Theory of Profit), हाबर्लर द्वारा प्रतिपादित "अन्तराष्ट्रीय व्यापार" एवं "तेजी-मन्दी" का अध्ययन (*Study of International Trade & Study of Boom-Depression*) तथा हैनसन द्वारा प्रतिपादित "व्यापार चक्र कर सिद्धान्त" (Theory of Trade Cycles) आर्थिक विचारधारा के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, निम्नोक्त में कुछ प्रमुख अमेरिकन अर्थशास्त्रियों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

१. जान बेट्स क्लार्क (John Bates Clark)

जे० बी० क्लार्क का जन्म सन् १८७४ ई० में अमेरिका में हुआ था। क्लार्क द्वारा रचित ग्रन्थों में "धन का वितरण" (The Distribution of Wealth)," आर्थिक सिद्धान्त की विशेषताएं (The Essentials of Economic Theory), "धन का दर्शन" (The Philosophy of Wealth) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। क्लार्क के विचारों पर कार्ल नीस (Karl Knies), बेस्टियाट (Bastiat) तथा सर हेनरी जार्ज (Sir Henry George) का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था जिसके कारण कुछ आलोचक क्लार्क को ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Historical School) *का सदस्य मानते हैं, जबकि वास्तव में वह आधुनिक अमेरिकन सम्प्रदाय (Modern* American School) का ही सदस्य है। क्लार्क की मृत्यु सन १९३८ में हुई।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में क्लार्क का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फ्रैन्क नेफ (Frank Neff) के शब्दों में, "अर्थशास्त्र के अध्ययन सम्बन्धी उसके दृष्टिकोण में दर्शन शास्त्र का आभास होता है। उसकी पद्धति में एक नैतिक आधार दिखाई देता है तथा उसका अर्थशास्त्र सामाजिक नीतिशास्त्र के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। अरस्तूवादी दृष्टिकोण के द्वारा नैतिक विचारों को प्रभावशाली स्थिति प्रदान की गई है।"[1] प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में,

---

1 "His approach to the study of economics was along the avenue philosophy. In his system a moral basis is sought, and his economics bears a close relationship to social ethics. Ethical consideratioos are given an impressive postion by the Aristotelian approach," —Frank Neff.

[illegible]

(क) आर्थिक परिवर्तनशीलता (Economic Dynamics) — क्लार्क ने स्थैतिक (Static) एवं गतिशील (Dynamic) दो प्रकार की आर्थिक स्थितियों की कल्पना की है। उसने बताया कि स्थिर अर्थव्यवस्था में जनसंख्या (Population), पूंजी (Capital), उत्पादन की प्रणालियाँ (Methods of Production), उद्योग का स्वरूप (Form of Industry) एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताएं (Wants of Consumers) समान रहती हैं। इस अवस्था के अन्तर्गत प्रतियोगिता के [illegible] कोई लाभ नहीं होता, उत्पादन के प्रत्येक साधन को उचित प्रतिफल दिया जाता है तथा लाभ की मात्रा शून्य के बराबर रहती है. दूसरी ओर गतिशील अर्थव्यवस्था में [illegible] परिस्थितियों में अनुकूल परिवर्तन होते रहते हैं। क्लार्क ने बताया कि लाभ का प्रादुर्भाव गतिशील अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है। यह स्पष्ट है कि क्लार्क द्वारा कल्पित स्थिर अर्थव्यवस्था केवल कल्पनामात्र है क्योंकि वास्तविक समाज में तो हमें गतिशील अवस्था ही देखने को मिलती है।

(ख) लाभ का सिद्धान्त (Theory of Profit): — क्लार्क का मत था कि स्थिर अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत लाभ की मात्रा शून्य रहती है क्योंकि इस अवस्था में जनसंख्या एवं मांग के स्थिर रहने के कारण तथा पूंजी एवं उद्योगों के स्वरूप में कोई परिवर्तन न होने के कारण व्यवस्थापक के लिये कोई नया काम शेष नहीं रह जाता और जो कुछ व्यवसाय जारी रहते हैं उनमें व्यवस्थापकों की प्रतिस्पर्धा के कारण लाभ उत्पन्न होने की स्थिति ही नहीं आ पाती। इसके विपरीत गतिशील अर्थ-व्यवस्था में प्रत्येक तत्व में परिवर्तन होता रहता है। गतिशील अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यवस्थापक को अपनी वस्तु की भावी स्थिति के बारे में विचारना पड़ता है तथा उसी के अनुरूप उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को एकत्रित करके उत्पादन-कार्य सम्पन्न करता है। व्यवस्थापक अपने उत्पादन क्षेत्र में नवीन आविष्कारों, नवीन उत्पादन-प्रणालियों तथा नवीन शक्तियों का प्रयोग करने लगता है जिसके फलस्वरूप व्यवस्थापक को लाभ मिलना प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु इस लाभ की मात्रा क्या होगी,

2 "His claim to some originality in developing the significance of marginal utility is strong, and his name will ever be associated with the marginal productivity analysis in static distribution. His calm, cler analysis was very suggestive, and did much to clarify distribution prolems."
—Prof. Heney.

इस सम्बन्ध में क्लार्क का मत है कि यह व्यवस्थापक की योग्यता पर निर्भर करेगा। प्रो० नाइट (Knight) ने क्लार्क द्वारा प्रतिपादित लाभ के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये लिखा है कि, "यह गतिशील परिवर्तन या अन्य परिवर्तन नहीं है जो कि लाभ को जन्म देता है वरन् इसके हेतु वास्तविक दशाएं ही उत्तरदाई हैं जिनकी सम्भावना की जाती है तथा जिनके आधार पर व्यावसायिक प्रबन्ध किये जाते हैं।"[1] इस प्रकार नाइट का कथन है कि जिन परिवर्तनों का व्यवस्थापक पूर्वानुमान लगा सकता है उनका लाभ की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ आलोचकों का कथन है कि स्थिर अर्थव्यवस्था में भी लाभ का प्रादुर्भाव सम्भव है।

(ग) प्रतियोगिता एवं सरकारी हस्तक्षेप (Competition and Government Interference):—क्लार्क का अभिमत था कि पूर्ण प्रतिस्पर्धा की दशा में ही उत्पत्ति के हर एक साधन को उचित प्रतिफल प्राप्त हो सकता है तथा इस दशा में उत्पत्ति के किसी साधन द्वारा दूसरे साधन का शोषण किये जाने की सम्भावना पैदा नहीं हो सकती। उसने बताया कि यदि किसी देश में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं है तब सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह देश में पूर्ण प्रतिस्पर्धा की दशा पैदा करे ताकि उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को यथोचित प्रतिफल प्राप्त हो सके।

(घ) मूल्य एवं मजदूरी के सिद्धान्त (Marginal theories of Value and wages)—क्लार्क के मतानुसार स्थिर अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पत्ति के हर एक साधन का मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) के द्वारा निर्धारित होता है। इसके अतिरिक्त क्लार्क ने सीमान्त उपयोगिता नियम (Marginal Utility Theory) का भी प्रतिपादन किया। उसने बताया कि मजदूरी का निर्धारण श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के द्वारा तथा ब्याज का निर्धारण पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के द्वारा होता है।

क्लार्क के विचारों से स्पष्ट है कि वह भी बैस्टियाट की तरह आर्थिक अनुरूपता (Economic Harmony) का मानने वाला था। उसके विचारों में प्रतिपादित समाज कल्याण की भावना एवं नैतिकता का समावेश सराहनीय है। प्रो० हेने के मतानुसार "प्रो० क्लार्क की विचारधारा की एक प्रमुख विशेषता उसकी दार्शनिक दृढ़ता है। उसका सामाजिक दृष्टिकोण, उसका आशावाद, भूमि सम्बन्धी दृष्टिकोण आदि आदर्शवाद के विचार हैं। उसका सुख-दु:खवादी

1 "It is not dynamic change, nor change as such which causes profit but the divergence of actual conditions from those which have been *expected* and on the basis of *which business arrangements* have been made." —Knight.

"सीमान्त उपयोगिता के महत्व के विकास में उसका कुछ मौलिकता का दावा सुदृढ़ है तथा उसका नाम सदैव स्थिर वितरण में सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण के साथ सम्बन्धित रहेगा। उसका शांत एवं स्पष्ट विश्लेषण बहुत उपदेशात्मक था तथा उसने वितरण सम्बन्धी समस्याओं के स्पष्टीकरण की दिशा में बहुत कुछ किया।"[2] जे० बी० क्लार्क द्वारा प्रतिपादित प्रमुख आर्थिक विचारों का व्यौरा निम्नोक्त है:—

(क) आर्थिक परिवर्तनशीलता (Economic Dynamics):—क्लार्क ने स्थिर (Static) एवं गतिशील (Dynamic) दो प्रकार की आर्थिक स्थितियों की कल्पना की। उसने बताया कि स्थिर अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जनसंख्या (Population), पूंजी (Capital), उत्पादन की प्रणालियां (Methods of Production), उद्योगों का स्वरूप (Form of Iudustries) एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताएं (Wants of Consumers) यथावत् रहती हैं। इस अवस्था के अन्तर्गत अनिश्चितता के हेतु कोई स्थान नहीं होता, उत्पादन के प्रत्येक साधन को उचित प्रतिफल दिया जाता है तथा लाभ की मात्रा शून्य के बराबर रहती है, दूसरी ओर गतिशील अर्थव्यवस्था में उक्त सभी तत्वों में समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन होते रहते हैं। क्लार्क ने बताया कि लाभ का प्रादुर्भाव गतिशील अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है। यह स्मरणीय है कि क्लार्क द्वारा कल्पित स्थिर अर्थव्यवस्था केवल कल्पनामात्र है क्योंकि वास्तविक समाज में तो हमें गतिशील अवस्था ही देखने को मिलती है।

(ख) लाभ का सिद्धान्त(Theory of Profit):—क्लार्क का मत था कि स्थिर अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत लाभ की मात्रा शू- रहती है क्योंकि इस अवस्था में जनसंख्या एवं माँग के स्थिर रहने के कारण [illegible] एवं उद्योगों के स्वरूप में कोई परिवर्तन न होने के कारण व्यवस्थाप[illegible] या काम शेष नहीं रह [illegible] और जो कुछ व्यवसाय जारी रह [illegible] ों की प्रतिस्पर्धा के लाभ उत्पन्न होने की स्थि[illegible] । इसके [illegible] गति[illegible] व्यवस्था में प्रत्येक तत्व में [illegible] है। गतिशी[illegible] व्यवस्थापक को अपनी [illegible] त के बारे

है। इसके अतिरिक्त पैटन ने उपभोग को आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु बताया एवं क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) का विरोध किया। उसने समाज की भलाई के दृष्टिकोण से सरकारी हस्तक्षेप को भी आवश्यक ठहराया। सरकारी हस्तक्षेप की नीति के सम्बन्ध में पैटन और क्लार्क के विचारों का अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रो० हेने ने लिखा है कि, "वे (पैटन और क्लार्क) सरकारी हस्तक्षेप के क्षेत्र के सबंध में भी मतभेद रखते हैं और यद्यपि प्रो० क्लार्क ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार पर बल डाला तथा सरकारी क्रिया को न्यूनतम किया, लेकिन प्रो० पैटन ने सामाजिक हित को कायम रखने में सरकार द्वारा सक्रिय भाग लेने पर बल डाला। अपने बाद की विचारधारा में प्रो० क्लार्क ने सम्भवतया सरकारी हस्तक्षेप को विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया लेकिन ऐसा उसने प्रतिबन्ध से मुक्त प्रतिस्पर्धा के आदर्श को कायम रखने के ध्येय से किया।"[1] स्पष्ट है कि पैटन ने क्लार्क की सरकारी हस्तक्षेप की नीति को और अधिक विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है।

३. इरविंग फिशर (Irving Fisher)

अमरीकी गणितीय सम्प्रदाय का प्रतिनिधि (Representative of American Mathematical School) इरविंग फिशर का जन्म सन् १८६७ में अमेरिका में हुआ। अपने जीवनकाल में फिशर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें से "ब्याज का सिद्धान्त" (The Theory of Interest), "अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्त" (Elementary Principles of Economics), "ब्याज की दर" (The Rate of Interest), "पूंजी और आय का स्वभाव" (The Nature of Capital and Income) तथा "मूल्य एवं कीमतों के सिद्धान्त में गणितीय अन्वेषण" (Mathematical Investigations in the Theory of Value and Prices) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फिशर द्वारा प्रतिपादित "द्रव्य का परिमाणिक सिद्धान्त" (The Quantity Theory of Money) एवं "ब्याज का समयाभिरुचि सिद्धांत" (Time Preference Theory of Interest) अधिक महत्वपूर्ण हैं।

"द्रव्य के परिमाणिक सिद्धान्त" के प्रतिपादन में फिशर ने द्रव्य की मात्रा (Quantity of Money) तथा मूल्य-स्तर Price Level) में एक वैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित किया। फिशर के शब्दों में "अन्य बातें यथावत रहते हुए, मूल्य-

1 "They (Patten and Clark) also differ in the scope which they would allow to government interference, and, while Professor Clark would emphasize private property rights and minimize government activity, Professor Patten would allow to the government an active policy in maintaining the social interest. In his later thought, Professor Clark perhaps made a larger place for government intervention, but it was for the purpose of maintaining his ideal of competition free from restraint." —Haney.

दृष्टिकोण भी उल्लेखनीय है ।"[1]

२. एस० एन० पैटन (S. N. Patten)

एस० एन० पैटन का जन्म सन् १८५२ में अमेरिका में हुआ था। अपने मौलिक विचारों एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण पैटन अमरीकी अर्थशास्त्रियों के बीच प्रमुख स्थान का अधिकारी बन गया है। पैटन द्वारा रचित ग्रन्थों में, "राजनैतिक अर्थव्यवस्था के क्षेत्र" (Premises of Political Economy), "धन का उपभोग" (Consumption of Wealth), "सम्पन्नता का सिद्धांत" (The Theory of Prosperity) तथा "गतिशील अर्थशास्त्र" (Dynamic Economics) विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। फ्रेंक नेफ (Frank Neff) के मतानुसार "परम्परावादी एवं प्रचलित अर्थशास्त्र का मास्टर तथा विशेषज्ञ जॉन स्टुअर्ट मिल का शिक्षार्थी होते हुये भी पैटन मुख्यत: एक कटु आलोचक भी था। उसके लेखों का फैलाव काफी विस्तृत है यद्यपि वे एक क्रमवद्ध ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं हो सके हैं। उसकी मुख्य धारणा यह थी कि प्रकृति की विजय के द्वारा व्यक्ति एक अतिरेक की अर्थव्यवस्था (Surplus Economy) में रहता है, हीनार्थ अर्थव्यवस्था (Deficit Economy) में नहीं। परिणामत: उसने उपभोग पर बल डाला।"[2]

पैटन ने परम्परावादी अर्थशास्त्र की कटु आलोचना की तथा यह स्पष्ट किया कि मानवीय जगत की आर्थिक समस्याओं पर प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment) का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पैटन एक आशावादी विचारक था। उसका ऐसा मत था कि गतिशील अर्थव्यवस्था में एक ओर यदि जनसंख्या की वृद्धि होती है तो दूसरी ओर व्यक्तियों का रहन-सहन का स्तर शनैः शनैः उच्चता की ओर अग्रसर होता है तथा तीसरी ओर समाज में लाभ की मात्रा में भी वृद्धि होती है। पैटन ने बताया कि गतिशील अर्थव्यवस्था में सामाजिक नियोजन (Social Planning) की आवश्यकता होती

---

1 "To the author, one of the most interesting features of Professor Clark's thought is his philosoplical consistency. His social point of view, his optimism and his minimization of the limitations inherent in the differences in land are manifestatitions of pretty through going idealism. His hedonistic trend, however, introduces a jarring note." —Prof. Haney.

2 "A master of classical and current economics and particularly a student of John Stuart Mill, yet Patten was primarily a dissenter and critic. His writings covered a wide range but did not include a systematic treatise. His main concept was that men, through the conquest of nature, was in the midst of a surplus, not a deficit, Economy. Cousequently, he stressed consumption." —Neff.

है। इसके अतिरिक्त पैटन ने उपभोग को आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु बताया एवं क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) का विरोध किया। उसने समाज की भलाई के दृष्टिकोण से सरकारी हस्तक्षेप को भी आवश्यक ठहराया। सरकारी हस्तक्षेप की नीति के सम्बन्ध में पैटन और क्लार्क के विचारों का अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रो० हेने ने लिखा है कि, "वे (पैटन और क्लार्क) सरकारी हस्तक्षेप के क्षेत्र के सबंध में भी मतभेद रखते हैं और यद्यपि प्रो० क्लार्क ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार पर बल डाला तथा सरकारी क्रिया को न्यूनतम किया, लेकिन प्रो० पैटन ने सामाजिक हित को कायम रखने में सरकार द्वारा सक्रिय भाग लेने पर बल डाला। अपने बाद की विचारधारा में प्रो० क्लार्क ने सम्भवतया सरकारी हस्तक्षेप को विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया लेकिन ऐसा उसने प्रतिबन्ध से मुक्त प्रतिस्पर्धा के आदर्श को कायम रखने के ध्येय से किया।"[1] स्पष्ट है कि पैटन ने क्लार्क की सरकारी हस्तक्षेप की नीति को और अधिक विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है।

३. इरविंग फिशर (Irving Fisher)

अमरीकी गणितीय सम्प्रदाय का प्रतिनिधि (Representative of American Mathematical School) इरविंग फिशर का जन्म सन् १८६७ में अमेरिका में हुआ। अपने जीवनकाल में फिशर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें से "ब्याज का सिद्धान्त" (The Theory of Interest), "अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्त" (Elementary Principles of Economics), "ब्याज की दर" (The Rate of Interest), "पूंजी और आय का स्वभाव" (The Nature of Capital and Income) तथा "मूल्य एवं कीमतों के सिद्धान्त में गणितीय अन्वेषण" (Mathematical Investigations in the Theory of Value and Prices) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फिशर द्वारा प्रतिपादित "द्रव्य का पारिमाणिक सिद्धान्त" (The Quantity Theory of Money) एवं "ब्याज का समयाभिरुचि सिद्धांत" (Time Prefereuce Theory of Interest) अधिक महत्वपूर्ण हैं।

"द्रव्य के पारिमाणिक सिद्धान्त" के प्रतिपादन में फिशर ने द्रव्य की मात्रा (Quantity of Money) तथा मूल्य-स्तर Price Level) में एक वैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित किया। फिशर के शब्दों में "अन्य बातें यथावत रहते हुए, मूल्य-

1 "They (Patten and Clark) also differ in the scope which they would allow to government interference, and, while Professor Clark would emphasize private property rights and minimize government activity, Professor Patten would allow to the government an active policy in maintaining the social interest. In his later thought, Professor Clark perhaps made a larger place for government intervention, but it was for the purpose of maintaining his ideal of competition free from restraint." —Haney.

स्पष्ट द्रव्य की पूर्ति के साथ प्रत्यक्ष एवं आनुपातिक रूप से तथा द्रव्य की मांग के साथ विपरीत एवं आनुपातिक रूप से परिवर्तित होता है।[1] अतः फिशर ने द्रव्य की मांग, द्रव्य की पूर्ति एवं मूल्य-स्तर के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए निम्नलिखित सूत्र (Equation) प्रस्तुत किया :—

$$P = \frac{MV + M'V'}{T} \quad \text{अथवा} \quad PT = MV + M'V'$$

प्रस्तुत समीकरण में (i) P का अभिप्राय सामान्य मूल्य-स्तर (General Price Level) से है, (ii) M का अभिप्राय चलन में द्रव्य की मात्रा (Quantity of Money in Circulation) से है, (iii) V का अभिप्राय मुद्रा की चलन गति (Velocity of Money) से है, (iv) M' का अभिप्राय चलन में साख-मुद्रा की मात्रा (Quantity of Credit-money in Circulation) से है, (v) V' का अभिप्राय साख-मुद्रा की चलन गति (Velocity of credit-Money) से है तथा (vi) T से अभिप्राय समस्त व्यापारिक लेन-देन (Total Transactions) से है।

इस समीकरण के अन्तर्गत फिशर ने बताया कि वस्तु-पक्ष (PT) और मुद्रा-पक्ष (MV + M'V') बराबर होते हैं और यदि T, M,' V और V' पूर्ववत बने रहें और M की मात्रा को बढ़ा दिया जाए तो P भी M के अनुपात में बढ़ जाएगा अथवा यदि M की मात्रा को घटा दिया जाए तो P भी उसी अनुपात में कम हो जाएगा। कहने का अभिप्राय यह है कि मूल्य-स्तर का परिवर्तन मुद्रा के परिमाण एवं मुद्रा के चलन वेग के अनुकूल अनुपात में तथा सम्पूर्ण व्यापारिक लेन-देन की मात्रा के विपरीत अनुपात में होता है।

ब्याज की दर के निर्धारण के सम्बन्ध में फिशर ने "समयाभिष्ट सिद्धान्त" (Time Preferenace Theory) का प्रतिपादन किया। उसने बताया कि व्यक्ति अपनीवर्तमान कालीन आवश्यकताओं को भविष्यतकालीन आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। किसी व्यक्ति के पास अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के हेतु कितना धन है उसी के ऊपर व्यक्ति का उतावलापन (Inpatience) निर्भर करता है। फिशर ने बताया कि एक व्यक्ति निम्नोक्त कारणों से वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के हेतु उतावला रहता है :—

(क) सर्वप्रथम आय की मात्रा पर व्यक्ति का उतावलनापन निर्भर करता है। यदि व्यक्ति की आय अधिक होती है तो वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का उसका उतावलनापन कम होता है और यदि व्यक्ति की आय कम होती तो वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का उसका उतावलापन अधिक होता है।

1 "Other things remaining equal, the general price level varies directly and proportinately with the supply of money, and inversely and proportionately with the demand for money." —Irving Fisher.

(ख) आय का स्वभाव भी व्यक्ति के उतावलेपन को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति की आय समय के साथ बढ़ती जाती है तो वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का उसका उतावलापन अधिक होता है। यदि व्यक्ति की आय समय के साथ घटती जाती है तो वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का उसका उतावलापन कम होता है। यदि उसकी आय में कोई परिवर्तन नहीं आता है तो वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का उसका उतावलापन स्वयं व्यक्ति के स्वभाव-चरित्र आदि पर निर्भर करता है।

(ग) उक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त भविष्य में प्राप्त होने वाली आय की निश्चितता, व्यक्ति का स्वभाव-दूरदर्शिता एवं आत्म नियन्त्रण आदि तत्व भी उतावलेपन को निर्धारित करते है।

फिशर ने बताया कि जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता है कि उसे अपने धन से ब्याज के रूप में आय मिलने की सम्भावना है तो वह अपनी वर्तमानकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के उतावलेपन (Impatience) को एक बड़ी सीमा तक रोक सकता है। ब्याज की दर क्या होगी, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए फिशर ने कहा कि ब्याज की दर का निर्धारण ऋणदाता की समय पसंदगी (Time Preference) की मात्रा पर निर्भर करता है।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में फिशर के स्थान को निर्धारित करते प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है कि, "प्रो० फिशर को मुद्रा के मूल्य एवं ब्याज की दर के बीच संबंध की पूर्व-व्याख्या करने का श्रेय प्राप्त है तथा उसने द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त के समर्थन एवं स्पष्टीकरण का महत्वपूर्ण कार्य किया। फिशर की विचारधारा गणितीय अर्थशास्त्रियों की प्रवृत्ति की सूचक है।"[1]

४. एफ० डब्लू० टॉजिग (F. W. Taussig)

एफ० डब्लू टॉजिग का जन्म सन् १८५९ में अमेरिका में हुआ। उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिसमें से "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" (Principles of economics) नामक ग्रन्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसका प्रकाशन १९११ में हुआ था। "मजदूरी और पूंजी" (Wages and capital) उनकी दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह स्मरणीय है कि टॉजिग के विचार परम्परावादियों के विचारों से बहुत मेल खाते हैं। यदि यह कहा जाए कि टॉजिग ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र के

1 "Prof. Fisher deserves credit for early discussions of the relation between the value of money and interest rates, and he did important work in support and clarification of the quantity theory of money.. Fisher's thought shows tendency, so common among mathematical economists to make question begging assumptions and to deal with variations and correlations without regared for causation."

—Prof. Haney.

सिद्धान्त" में परम्परावादी विचारों की पुनः अभिव्यंजना की है तो कोई अयुक्ति नहीं होगी। वस्तुत टांजिग की विचारधारा में नव-परम्पावाद एवं आस्ट्रियन सम्प्रदाय के विचारों का गठबंधन हो गया है। प्रो० टांजिग द्वारा प्रतिपादित "लाभ का मजदूरी सिद्धान्त" (Wages theary of Pfit) तथा "सीमान्त-उपत्ति की छूट का सिद्धान्न" (Discounted marginal productivity Theory) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रो० टांजिग के कथानुसार "लाभ की उत्पत्ति केवल चान्स पर निर्भर नहीं करती अपितु एक प्रकार के बौद्धिक श्रम जो कि वकीलों या न्यायविशों के श्रम से भिन्न प्रकार का नहीं है, की विशेश योग्यता के प्रयोग का परिणाम है।"[1] इस तरह टांजिग के मतानुसार लाभ एक तरह से साहसी की मजदूरी है जो कि उसे अपनी विशेषण योग्यता एवं बुद्धिमत्ता के कारण प्राप्त होती है। प्रो० हेने के शब्दों में "महत्वपूर्ण विशेपताएं लाभ को एक प्रकार से मजदूरी समझना तथा इस मत का प्रतिपादन करना कि मजदूरी का निर्धारण श्रम के कटौती किए हुए सीमान्त-उत्पादन के द्वारा होता है।" टांजिग द्वारा लाभ को मजदूरी का एक स्वरूप समझने के दो कारण है :— (१) यद्यपि लाभ एक प्रकार की बचत है, तथापि यह भी सत्य है कि ईसमें व्यवस्थापक की विशेष योग्यता का तत्व भी निहित है। (२) व्यावहार में व्यवस्थापक एवं वेतन पाने वाले प्रबन्धक में कोई अन्तर नहीं है। टांजिग के शब्दों में व्यवस्थापन के वैतनिक पद विस्तृत श्रेणी रखते हैं, यथा-फोरमैन सुपरिनटैन्डेन्ट, जनरल मैनेजर्स प्रेजीडेन्टस। वैतनिक पदों एवं स्वतंत्र व्यावसायिक प्रबन्धकों के बीच स्थान्तरण की एक एक प्रक्रिया जो पकड़ती जा रही है। दोनों ही तक तरह के कारणों से प्रभावित होते हैं।"

इसके अतिरिक्त टांजिग ने सीमान्त उत्पत्ति की छूट की मजदूरी सिद्धान्त (Descounted Marginal Productivity Theory of Wages) प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उसने बताया कि श्रमिक को मजदूरी उसकी सीमान्त-उत्पादकता के बराबर नही दी जाती अपितु सीमान्त उत्पत्ति में से कुछ कटौती करने के बावजद ही श्रमिक को मजदूरी दी जाती है। यह स्मरणीय है कि टांजिग का यह सिद्धान्त केवल मांग-पक्ष पर आधारित है तथा इसमें पूर्ति-पक्ष पर कोई विचार नहीं किया गया है।

---

1 "Profits are not due to mere chance, they are the outcome the exercise of the special ability a short of mental labour not uch different from the labour of lawyers and judges." —Taussig.

१०

जॉन मेयनार्ड कीन्स

(John Maynard Keynes)

प्राक्कथन—आर्थिक विचारधारा के विकास मे लगभग हरएक शताब्दी किसी न किसी महान् विभूति को जन्म देती रही है। अठारवीं शताब्दी मे एडम स्मिथ (Adam Smith) की पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Nations) के वादविवाद का ग्रधिपत्य रहा, उन्नीसवी शताब्दी मे कार्ल मार्क्स (Karl Mark) द्वारा उसकी पुस्तक "पूजी" (Capital) मे की गई खोजो का बोल बाला रहा तथा बीसवीं शताब्दी कीन्स की पुस्तक "रोजगार ब्याज एव द्रव्य का सामान्य सिद्धान्त" (*General Theory of* Employment Interest and Money) का प्रभुत्व रहा। आर्थिक विज्ञान में कीन्स के महान कृत्य से एक क्रान्ति हुई तथा उसके समय की आर्थिक समस्याओं के विषय मे उसके विचार आर्थिक विज्ञान मे समाविष्ट हो गए हैं। उसकी 'सामान्य सिद्धान्त' नामक पुस्तक आर्थिक विचारों की एक उच्च कोटि का ग्रन्थ बन गया है। 'नवीन अर्थशास्त्र' अथवा कीन्सियन क्रान्ति 'सामान्य सिद्धान्त' तथा कीन्स द्वारा लिखित अन्य कार्यो से अभिप्रेरित है।[1]

जे० एस० कीन्स का जन्म सन् १८८३ में इंगलैंड मे हुआ था तथा उसकी शिक्षा एटन (Eton) और कैम्ब्रिज (Cambridge) विश्वविद्यालयों में हुई थी। कीन्स ने गणित, दर्शनशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। शिक्षा समाप्त करने पर कीन्स ने १९०६ में आई० सी० एस० की परीक्षा पास की तथा भारतीय कार्यालय मे एक सरकारी कर्मचारी के रूप मे काम करना आरम्भ कर

---

1 "Each century has creaied its own sensational master piece in the evolution of economic thought. The eighteenth century has been fully occupied with a discussion of Adam Smiths 'Wealth of Nations.' The nineteenth century has witnessed the sensational discoveries of Karl Marx in his 'Capital.' The twentieth century, has been likewise roused with sensation by Kynes' 'General theory of Employment, Interest and Money.' Economic Science has been revolutionised by the great work of Keynes, and the 'New Ecouomics' emerged from his views about the economic problems of his time. His 'General Theory' has became one of the classics of economic thought. The 'New Economics' or the Keynesian Revolution has been initiated through the 'General Theory' and a number of other works written by Keynes."

V. P. Abraham : History of Economic Thought, P. 283.

दिया। कुछ समय बाद कीन्स ने इस पद से त्याग-पत्र दे दिया और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया। सन् १९१२ में कीन्स ने "आर्थिक पत्रिका" (Economic Journal) के सम्पादन का कार्यारम्भ किया। इसी समय कीन्स को "राजकीय आर्थिक समाज" (Royal Economic Society) का सचिव बना दिया गया। सन् १९१५ में कीन्स की नियुक्ति "ब्रिटिश कोषगृह विभाग" (British Treasury Deptt.) में हो गई परन्तु अधिकारी वर्ग से मतभेद होने के कारण उसने वहाँ से भी त्याग-पत्र दे दिया। अतएव १९१९ से १९३४ तक कीन्स ने एक व्यापारी के रूप में कार्य किया। सन् १९३४ में कीन्स ने अमेरिका आकर वहाँ की केन्द्रीय सरकार को अनेक प्रकार के आर्थिक सुधार सम्बन्धी सुझाव दिए जिनमें से अनेकों सुझावों को राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने कार्यरूप में परिणित करने का प्रयास भी किया। सन् १९३९ के बाद कीन्स इंगलैंड के वित्त-मंत्री की सलाहकार समिति का सदस्य रहा। सन् १९४६ में कीन्स का स्वर्गवास हो गया। संक्षेप में, प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में "कीन्स कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक प्रशिक्षित विद्यार्थी एवं अध्यापक, एक सरकारी पदाधिकारी, एक सम्पादक तथा वैज्ञानिक संघ का एक सचिव और एक व्यापारी था। लेकिन प्रत्येक समय वह एक अर्थशास्त्री था जोकि सदैव अपने समय और स्थान की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देता था।"[1]

अपने जीवन काल में कीन्स ने "अर्थशास्त्र" पर अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें से (i) "भारतीय मुद्रण एवं वित्त व्यवस्था" Indian Currency and Finance) (ii) "शान्ति के आर्थिक परिणाम" (The Economic Consequences of Peace), (iii) "मौद्रिक सुधारों पर एक ग्रन्थ" A Tract on Monetary Reform), (iv) "सम्भावना पर एक ग्रंथ" (A Treatise on Probablity), (v) "रूस का संक्षिप्त दृष्टिकोण" (A Short View of Russia), (vi) "मिस्टर चर्चिल के आर्थिक परिणाम" (The Economic Consequences of Mr. Charchil) (vii) "सरकारी हस्तक्षेप का अन्त" (The End of Laissez Faire) (viii) "मुद्रा पर एक ग्रन्थ" (A Treatise on Money) तथा (ix) "रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त" (General Theory of Employment, Interest and Money) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कीन्स को प्रभावित करने वाले तत्व—"कीन्स की विचारधारा एल्फ्रेड मार्शल के नव-परम्परावाद से प्रभावित हुई थी। 'मूल्य-अर्थशास्त्र', अवसर लागत

1 "Thus Keynes was a cambridge Trained student and teacher, overnment official, an editor and secretary of a scientific associat- , and a business man. But all the time, he was an economis e who constantly concerned with the economic problem of his e and place." —Prof. Haney : History of Economic Thought.

का विचार 'सम्भावनाएं', आय और व्यय के बीच अन्तर 'मुद्रा' और 'समय' आदि धारणाओं ने मार्शल की विचारधारा में मौलिक महत्ता प्राप्त की तथा इनमें से अनेक धारणाओं ने अपना मार्ग "नवीन अर्थशास्त्र" में पाया। कीन्स द्वारा अपने अर्थशास्त्र में विकसित रोजगार एवं मजदूरी का सिद्धान्त पीगू के विचारों से अभिप्रेरित है। कीन्स पीगू के विचारों से सहमत नहीं था। वह पूर्णतया पीगू के विचारों से भेद रखता था। पीगू ने मजदूरी और रोजगार के बीच सम्बन्ध की स्थापना क्लासिकल विचारों के आधार पर की थी जबकि कीन्स ने इस विचारधारा का कड़ा विरोध किया। लेकिन यह नहीं भूल जाना चाहिए कि यदि यह नया सिद्धान्त जिसका समर्थन कीन्स ने किया था यदि पीगू के विचारों द्वारा प्रोत्साहित होता तब यह पीगू के ही प्रभाव पर था कि कीन्स ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।"[1]

कीन्स की विचारधारा पर संस्थायिक कारकों एवं समाजवाद का जो प्रभाव पड़ा था वह लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स' (London School of Economics) एवं 'नवीन कैम्ब्रिज समुदाय' (Younger Cambridge Group) के प्रभाव का प्रत्यक्ष परिणाम था। इसके अतिरिक्त कीन्स ने डी० एच० रोबर्टसन (D. H. Robertson), आर० एफ० खान (R. F. Khan), जॉन रॉबिन्सन (Joan Robinson), हाट्रे (Hawtrey) और हैरोड (Harrod) के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। बचत एवं विनियोजन सम्बन्धी अपने विचारों के माध्यम से हाट्रे, रोबर्टसन और हैरोड ने कीन्स की विचारधारा को बहुत कुछ प्रदान किया है। रोबर्टसन द्वारा विकसित 'गतिशीलता' की धारणा ने आधुनिक अर्थशास्त्र के हेतु स्वयं सिद्ध एवं मौलिक मार्ग प्रदान किया। इसके अतिरिक्त

---

1 "Keynes's thought was affected by the Neo-classicism of Alfered Marshall. The 'Price Economics', the opportunity cost notion or 'User Cost' as Keynes put it, 'expectations', gap between income and spending, 'money' and 'time', were concepts that found basic importance in Marshall's treatment of the subject and most of them found their way into 'New economics' also. The theory of employment and wages which Keynes develope[illegible] ...s was in- [illegible] in agree- [illegible] ...that view. When Pigou established the relation between wages and employment built upon the classical fallacies in its views. Keynes came with a vigorous, attack and his view was in clash with Pigou's position. 'But it should not be forgotten that if this new theory which Keydes upheld was stimulated by Pigou's ideas, then it was on the influences of Pigou that Keynes formulated this theory."

V. M. Abraham, Ibid, P. 283.

विक्सैल (Wicksell), कैसल (Cassel) और वालरस (Walras) की विचारधारा ने कीन्सियन अर्थशास्त्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया। विक्सैल ने व्याज, बचत, विनियोग, उपभोग एवं आय का सम्बन्ध आदि पर अपने विचारों के द्वारा और कैसल ने अपने क्लासिकल-विरोधी मौद्रिक अर्थशास्त्र तथा मौद्रिक सामान्य साम्य सिद्धान्त के द्वारा कीन्स के 'सामान्य सिद्धान्त' में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है तथा कीन्स ने अपने इस सिद्धान्त में इन अर्थशास्त्रियों का व्योरा भी दिया है। इन विचारकों के अतिरिक्त पैरेटो (Pareto) एवं विक्सटीड (Wicksteed) के परम्परावादी-विरोधी विचारों से भी कीन्स की विचारधारा प्रभावित हुई थी।

इस तरह जब कीन्स ने अर्थशास्त्र में प्रवेश किया उस समय अनेक विचार एवं दृष्टिकोण, जोकि क्लासिकल आर्थिक सिद्धान्तों के समानान्तर नहीं थे, पहले से ही तैयार थे। उसने इन विभिन्न विचारों का गहन अध्ययन किया और अन्त में उसने स्वयं को क्रान्तिकारी मार्ग में पाया और इसीलिए उसने अपनी विशेष रीति के द्वारा एक नवीन पद्धति अर्थात् कीन्सियन पद्धति को संगठित एवं विकसित किया। उसने अपने समय की आवश्यकता एवं भावना के अनुरूप अनेक नवीन औजारों का प्रयोग किया। यद्यपि उसके अनेक पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों एवं उसके समकालीन विचारकों ने कीन्स जैसे विचारों का विकास किया था, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कीन्स ने केवलमात्र उनकी नकल की थी, जैसेकि डडले डीलार्ड (Duldy Dillard) ने अपनी पुस्तक "जॉन मेयनार्ड कीन्स का अर्थशास्त्र" (Economics of John Maynard Keynes) में लिखा है, "कीन्स इस प्रकार एक मौलिक विचारक था कि उसने अपने निजी तरीके द्वारा विचारों का प्रतिपादन किया। जिन विचारों का उसने विकास किया वे उसके निजी विचार थे, यद्यपि इससे पूर्व भी कुछ विचारकों ने ऐसे ही विचारों की व्याख्या की थी।"

परम्परावाद एवं कीन्स (Classicism and Keynes)—कीन्स ने परम्परावादी विचारधारा के अनेक पहलुओं की कटु आलोचना की। उसके विचार से परम्परावादी सिद्धान्त ऐसे आर्थिक समाज का सिद्धान्त नहीं है जिसमें कि हम वास्तविक रूप से रहते हैं। उसने "परम्परावादी अर्थशास्त्र" नामक संज्ञा का प्रयोग अर्थशास्त्र के उन परम्परावादी (Traditional) अथवा रूढ़िवादी (Orthodox) सिद्धान्तों के सम्बोधन में किया जिनकी व्याख्या रिकार्डो (Ricardo), माल्थस (Malthus), जे॰ एस॰ मिल (J. S. Mill), मार्शल (Marshall) एवं पीगू (Pigou) के लेखों में की गई थी। कीन्स के विचार से परम्परादी सिद्धान्तों का प्रथम दोष यह था कि इन विचारकों ने उपभोग (Consumption) की अपेक्षा उत्पादन (Production) पर अधिक बल डाला था। चूंकि इन विचारकों ने उत्पादन को प्राथमिक महत्व प्रदान किया था, इसलिये उनका कहना था कि उपभोग

बहुधा उत्पादन के सकटो से परिमित होता है। इसके विपरीत कीन्स ने समस्या के दूसरे पहलू को देखा और उसने अपनी आर्थिक विचारधारा में प्राथमिक तत्व बनाया। कीन्स के दृष्टिकोण से उपभोग माग को जन्म देता है तथा मांग उत्पादन, पूजी आदि को जन्म देती है। अतएव यह उपभोग ही है जो कि उत्पत्ति को परिमित करता है। उसने बताया कि विनियोजन इसके साथ एक समान महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। इस तरह उपभोग "प्रभावशील माग" (Effective Demand) का मूल आधार बन गया।

दूसरे, परम्परावादी विचारधारा सामाजिक उत्पादन को वास्तविक मात्रा की अपेक्षा सामाजिक उत्पादन के वितरण से अधिक सम्बन्धित थी। इसलिए परम्परावादियो के विचार से उत्पत्ति के साधनो के सापेक्षिक हिस्सों की आय के स्तर के निर्धारणों की अपेक्षा राष्ट्रीय आय से उत्पत्ति के कारको के सापेक्षिक अशो का निर्धारण अधिक महत्वपूर्ण था। लेकिन कीन्स 'व्यक्तिगत कीमतो' की अपेक्षा आय, उपभोग, बचत एवं विनियोजन के औसतों से अधिक सम्बन्धित था। कीन्स के विश्लेषण का एक बडा गुण यह था कि उसने परम्परावादियों की आर्थिक पद्धति से पृथकता प्रदर्शित की। तीसरे, क्लासिकल सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित थे तथा इन विचारकों ने आर्थिक उच्चवचनो (Economic Fluctuations), व्यापार चक्रो की समस्या (Problem of Trade Cycles) तथा रोजगार एवं आर्थिक क्रिया के विभिन्न स्तरों की सम्भावनाओं की उपेक्षा की थी। इसके विपरीत कीन्स ने अपनी आर्थिक पद्धति के अन्तर्गत चक्रीय उच्चवचनो एवं आर्थिक क्रिया के विभिन्न स्तरो का विवेचन किया था।

चौथे, कीन्स ने परम्परावादियो की अहस्तक्षेपवादी नीति (Laissez Faire Policy) की कटु आलोचना की थी। स्मिथ (Smith) के समय से ही अबन्ध व्यापार की नीति सर्वोत्तम आर्थिक नीति समझी गई। जे० एम० मिल तक जिन विचारकों ने स्मिथ का अनुगमन किया था इस नीति में कोई दोष नही पाया यद्यपि यह नीति सभी आर्थिक बुराइयो के हेतु उत्तरदाई थी। सुधारवादियों एवं समाजवादी दार्शनिको ने इस नीति की अकाट्यता पर आक्षेप उठाया था तथापि वे इस की प्रबलता के विश्वास मे कोई परिवर्तन नही ला सके। अबन्धवादी नीति की वकालात स्वतन्त्र प्रतियोगिता की लाभदायकता के आधार पर की गई थी। व्यक्तिगत उपक्रम, स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा, व्यक्तिगत-स्वार्थ आदि सभी धारणाओं ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के लेखो में स्थान पाया और ये सभी विचारक इन सभी तत्वो के संघर्ष एवं सहयोग द्वारा अर्थव्यवस्था मे समरूपता रहने के सम्बन्ध मे पूर्णतया आशावादी थे। परम्परावादी विचारको के मतानुसार प्रतिस्पर्धा की क्रियाशीलता इन कारण से लाभदायक होती है कि इसके अन्तर्गत उपभोक्ता को न्यूनतम मूल्य स्तर पर सर्वोत्तम गुण की वस्तुएं उपलब्ध होती हैं, उत्पत्ति के सभी साधनों का अधिकतक उपयोग सम्भव होता है आदि तथा इन सभी लाभों की

(ग) प्रो० हेने के शब्दों में, "क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता थी कि व्यक्तिगत हितों में पारस्परिक एकता अथवा समरूपता होती है। क्लासिकल विचारधारा से विकसित अर्थशास्त्र दशाओं एवं शक्तियों का गुणात्मक एवं प्रमात्मक दिखाई देता है लेकिन प्रतियोगिता के विश्लेषण के द्वारा इस प्रवृत्ति की ओर साम्य की खोज करता दिखाई देता है। लेकिन कीन्स को महान मन्दी के बीच में यह दिखाई दिया कि हम दीर्घकालीन प्रवृत्तियों पर निर्भर नहीं रह सकते। उसकी यह भी मान्यता नहीं थी कि व्यक्तिगत हितों के बीच पारस्परिक समरूपता पाई जाती है।"

(घ) "अर्थव्यवस्था में किसी सामान्य इक्विलिब्रियम दशा को स्थापित करने एवं कायम रखने के हेतु कीन्स ने केन्द्रीय नियन्त्रण अर्थात् राज्य द्वारा नियंत्रण को आवश्यक ठहराया।" इस तरह स्पष्ट है कि कीन्स व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में विश्वास नहीं करता था क्योंकि उसका ऐसा मत था कि व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की नीति से बचत एवं विनियोग में अन्तर आकर बेकारी को जन्म मिलता है। अतएव कीन्स ने यह सुझाव दिया कि सरकार को करारोपण एवं सरक्षित व्यापार की नीति द्वारा आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करना चाहिये।

कीन्सियन पद्धति की मुख्य विशेषताएं (The Chief Features of The Keynesion System)—लार्ड कीन्स द्वारा प्रतिपादित आर्थिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(अ) सम्पूर्णदर्शी अर्थशास्त्र (Macro Economics)—प्रारम्भिक अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन 'व्यक्ति' को आधार मानकर किया था तथा उनके इस अर्थशास्त्र को सूक्ष्मदर्शी अर्थशास्त्र (Micro Economics) की संज्ञा दी जाती है। सम्पूर्णदर्शी आर्थिक विश्लेषण का प्रारम्भ उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम भाग एवं बीसवी शताब्दी की प्रारम्भिक दशाब्दियों के सूक्ष्मदर्शी आर्थिक विश्लेषण के अन्तर्गत यत्र-तत्र देखने को मिलता है। पुनः इसका विकास नव-परम्परावादी लेखों में हुआ तथा इसका सर्वाधिक क्रमबद्ध प्रयोग व्यापार-चक्रीय सिद्धान्त की व्याख्या करने वाले विचारकों द्वारा किया गया जिन्होंने आय (Income), उत्पादन, (Output), विनियोग (Investment), उपभोग (Consumption) आदि सम्पूर्णदर्शी आर्थिक समस्याओं को लिया तथा इनकी औसत मात्राओं की अस्थिरता का विवेचन किया। इस पद्धति के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था में होने वाले व्यापकस्तरीय उच्चावचनों, अस्थिर प्रक्रियाओं अर्थात् मनोवैज्ञानिक एवं मौद्रिक प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। सम्पूर्णदर्शी आर्थिक विश्लेषण के अर्थशास्त्रियों के बीच में वालरस (Walras), बॉम बावर्क (Bohm Bawerk) और शुम्पीटर (Schumpeter) ने भुगतानों के प्रवाह के विश्लेषण तथा अर्थव्यवस्था में इसके प्रवाह (Circular of payments and its circulation Through

किया। पुनः मार्शल अपने "राष्ट्रीय लाभांश" (National Dividend) अथवा औसत विशुद्ध उत्पादन (Aggregate Net Product) के विचार के साथ आया तथा इस धारणा का आर्थिक विश्लेषण में प्रयोग एवं विकास पीगू (Pigou) द्वारा "सम्पत्ति एवं कल्याण" (Wealth and Welfare) में किया गया। साइमन न्यूकाम्ब (Simon Newcomb) का "सोसाइटरी सरकूलेशन" (Societary Circulation) तथा फिशर Fisher) के समीकरण में इसका पुनः विकास आगामी प्रमुख अवस्था का सूचक है। मुद्रा के सिद्धान्त के सम्बन्ध में आय सम्बन्धी दृष्टिकोण, औसतन प्रभावशील मांग एवं पूर्ति तथा औसतन उपभोग, विनियोग एवं बचत की धारणाएं सम्पूर्णदर्शी आर्थिक विश्लेषण के विकास की चौथी अवस्था की सूचक हैं। इसके सर्वोत्तम प्रतिनिधि जॉनसन (Johansen) और हाट्रे (Hawtrey) थे।

जे० एम० कीन्स ने सम्पूर्णदर्शी आर्थिक सिद्धान्त को अपनाया। उसके आर्थिक विश्लेषण की मुख्य धारणाएं सम्पूर्ण उपभोग (Total Consumtion), सम्पूर्ण विनियोग (Total Investment) तथा सम्पूर्ण आय (Total Income) थी। उसने इस सूत्र का विकास किया कि सम्पूर्ण उपभोग + सम्पूर्ण विनियोग = सम्पूर्ण आय (C + I = Y) और यह सूत्र उसके सामान्य सैद्धांतिक विवेचन का आधार बन गया। इसके साथ-साथ उसने उत्पत्ति एवं रोजगार को सम्पूर्ण रूप में या औसत रूप में शासित करने वाली दशाओं पर विचार किया। अतएव उसका "सामान्य सिद्धांत" रोजगार एवं उत्पत्ति के सभी स्तरों का विवेचन है और उसने 'सामान्य' शब्द का प्रयोग व्यापक दृष्टिकोण में किया। यही नहीं, उसका सिद्धान्त सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के रोजगार एवं उत्पत्ति में होने वाले परिवर्तनों (व्यक्तिगत फर्म या व्यक्तिगत उद्योग की उत्पत्ति एवं रोजगार में होने वाले परिवर्तनों से नहीं) सम्बन्धित है। संक्षेप में, कीन्स के समस्त सम्पूर्णदर्शी आर्थिक सिद्धान्त की धारणाएं सम्पूर्ण रोजगार, राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उत्पादन, सम्पूर्ण पूर्ति-मांग, सम्पूर्ण सामाजिक उपभोग, सम्पूर्ण विनियोजन तथा सम्पूर्ण बचत हैं।

(ब) मौद्रिक अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त (The Theory of Monetary Economy)—सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के उत्तम तत्वों का विवेचन सम्पूर्ण रूप में करने के हेतु कीन्स ने अपने विश्लेषण के यंत्र के रूप में एक मौद्रिक सिद्धान्त का विकास किया। क्लासिकल विचारकों ने वास्तविक अर्थशास्त्र (Real Economics) का अध्ययन किया था तथा उनकी दृष्टि में द्रव्य केवल विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange) मात्र था। लेकिन कीन्स की धारणाओं अर्थात् सम्पूर्ण आय, सम्पूर्ण उपभोग, सम्पूर्ण विनियोग आदि की गणना वास्तविक संज्ञा में नहीं की जा सकती थी और इसीलिये उसने मौद्रिक गणनाओं का प्रयोग किया। कीन्स ने बताया द्रव्य केवल मात्र विनिमय का माध्यम ही नहीं अपितु मूल्य का मापक ...sure of Value) एवं बचत का साधन (Store of Value) भी है। मौद्रिक

विश्लेषण के द्वारा सामान्य आर्थिक सिद्धान्त का विवेचन करने की कीन्स की वह विशेष पद्धति थी। डडले डीलार्ड (Dudley Dillard) ने अपनी पुस्तक "जॉन मेयनार्ड कीन्स का अर्थशास्त्र" (Economics of John Maynard Keynes) में लिखा है, "जब वह मौद्रिक सिद्धान्त के संकुचित क्षेत्र से सामान्य आर्थिक सिद्धान्त के विस्तृत क्षेत्र की ओर प्रविष्ट हुआ तो कीन्स ने सम्पूर्ण आर्थिक पद्धति में रोजगार एवं उत्पादन के निर्धारण में मुद्रा को आश्चर्यजनक स्थान प्रदान किया।"[1] कीन्स ने हरएक वस्तु की गणना मौद्रिक संज्ञा में की तथा उसने मुद्रा, मुद्रा की दर और आय करारोपण को नियंत्रण का साधन स्वीकार किया अर्थात् ऐसा साधन जिसके द्वारा केन्द्रीय सत्ता पूर्ण रोजगार के स्तर को कायम कर सके तथा आय का समान वितरण कर सके। मुद्रा की मात्रा का नियमन तथा इसका प्रयोग कीन्स के विचार से प्रभावपूर्ण मांग (Effective Demand) को इस रूप में नियमित करने के हेतु प्रभावी था कि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाले उच्चाव चनों को रोका जा सके।

(स) मौद्रिक आय सम्बन्धी अर्थशास्त्र (Monetary Income Economics):—कीन्स की आर्थिक पद्धति के अन्तर्गत मौद्रिक अर्थशास्त्र का अभिप्राय केवल मात्र मुद्रा के परिमाणिक सिद्धान्त पर आधारित विश्लेषण से नहीं था और न इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में मुद्रा के निर्गम एवं मुद्रा-दर के द्वारा मूल्य-स्तर के नियमन का ही विवेचन किया गया है। वास्तव में कीन्स का मौद्रिक अर्थशास्त्र, मौद्रिक आय सम्बन्धी अर्थशास्त्र था। पूर्ववर्ती मौद्रिक-आर्थिक नीतियों का निर्माण इस मान्यता पर किया गया था कि ब्याज की दर या मुद्रा की मात्रा से उचित व्यवस्था द्वारा अर्थव्यवस्था का अच्छे ढंग से प्रबन्ध किया जा सकता है। परन्तु कीन्स ने इसे एक शक्तिहीन पद्धति घोषित किया। उसने बताया कि आय की मात्रा में वृद्धि या ह्रास अनेक दूसरे कारणों से भी प्रभावहीन हो सकता है। उसने बताया कि व्यक्तियों को द्रव्य का उपयोग करने के हेतु प्रोत्साहन देना चाहिए। कीन्स ने इस बात पर इतना बल डाला कि उसका अर्थशास्त्र प्रवाहमयी मुद्रा की मात्रा की अपेक्षा व्यय एवं विनियोग से अधिक सम्बन्धित हो गया। व्यक्ति अपनी आय को किस तरह व्यय करते हैं अथवा विनिमय करते हैं तथा इसका देश की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है, किसी नीति को निर्धारित करने से पूर्व इन सबकी जानकारी आवश्यक है। इस तरह कीन्स ने आय सम्बन्धी दृष्टिकोण अपनाया। अपने "सामान्य सिद्धान्त" के अन्तर्गत कीन्स ने कीमतों के मौद्रिक सिद्धान्त (Monetary

---

1 "When he moved from the narrower field of monetary theory) to the broader field of General Economic theory, Keynes took money along with him and gave it a place of tremendous importance in the determination of employment and [illegible]uction in economic system as a whole."

[illegible]rd.

Theory of Prices) को छोड़कर उत्पादन के मौद्रिक सिद्धान्त (Monetary Theory of Output) का प्रतिपादन किया।

(द) पूर्ण रोजगार एवं कोषों का घुमावदार प्रवाह (Full-employment and Circular Flow of Funds):—कीन्स की योजना का का अंतिम लक्ष्य पूर्ण रोजगार था तथा इसको दी गई मौद्रिक व्याख्या के द्वारा, यह लक्ष्य कोषों का पूर्ण रोजगार बन गया। यदि पूर्ण रोजगार का अभिप्राय कोषों का अविघ्नीय घुमावदार प्रवाह स्वीकार कर लिया जाए तब यह भी स्वीकार्य है कि कीन्स की आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत घुमावदार प्रवाह के आर्थिक विश्लेषण को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। कीन्स के मतानुसार अविघ्नीय घुमावदार प्रवाह को तभी कायम रक्खा जा सकता है जबकि सम्पूर्ण आय को व्यय कर दिया जाए अर्थात् आय व्यय के बराबर हो। व्यय या तो उपभोग्य वस्तुओं पर किया गया खर्च अर्थात् "उपभोग" हो सकता है या पूंजीगत वस्तुओं पर किया गया खर्च अर्थात् "विनियोग", हो सकता है। उसने बताया कि उपभोग-व्यय आय पर निर्भर होना चाहिए और इस तरह घुमावदार प्रवाह में उत्पन्न व्यवधान विनियोग के स्तर का प्रत्यक्ष परिणाम होगा। कीन्स के मतानुसार व्यय का स्तर आय के स्तर की अपेक्षा नीचा रहता है तभी कोषों के घुमावदार प्रवाह में बाधाएं उत्पन्न होती हैं जिन्हें दूर करने के हेतु सरकार को आर्थिक क्षेत्र में विनियोजन कार्यक्रम के साथ प्रवेश करना चाहिए ताकि आय एवं व्यय के स्तरों में समानता लाई जा सके तथा आय-व्यय दोनों के विस्तार द्वारा पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। कीन्स के घुमावदार प्रवाह के विश्लेषण के अन्तर्गत आय—उपभोग=विनियोग (Income minus Consumption equal to Investment) के होना चाहिए। जब कभी बचत का परिमाण विनियोग के परिमाण से अधिक हो जाए तो राज्य को अधिक विनियोजन व्यय के द्वारा प्रवेश करना चाहिए और यदि यह पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने के हेतु अपर्याप्त हो तब इसकी वृद्धि साख-चलन के विस्तार द्वारा की जानी चाहिए अर्थात् किसी भी तरह आय—उपभोग = विनियोग के होना चाहिए।

(य) कीन्स की योजना में समयहीनता (Timelessness in the Keynesian Scheme):—कीन्स की योजना में घुमावदार प्रवाह विश्लेषण की विशेष दशा का एक प्रत्यक्ष परिणाम 'समयहीनता' (Timelessness) है। घुमावदार प्रवाह की मान्यता के हेतु, इसकी प्रकृति के अनुसार, आय के स्तर तक उपभोग एवं विनियोग के बीच समायोजन की आवश्यकता है, और यह समायोजन आय-प्राप्ति एवं विनियोजन के समयान्तर के बीच समय बीतने के बिना किया जाना चाहिये। कीन्स ने समय अथवा लागत-व्यय को कोई मान्यता नहीं दी और उसने अपनी पद्धति में यह निष्कर्ष दिया था कि कुल आय (Aggregate Income), कुल व्यय gregate Spending) के बराबर तथा आय-बचत (Income minus g) एक ही समय पर उपभोग के बराबर होना चाहिए। समयहीनता की

मान्यता कीन्स द्वारा अपने बाद के सैद्धांतिक विवेचन में अपनाई गई यद्यपि अपने प्रारम्भिक कार्यों में कीन्स ने इस विचार का चेलेंज किया कि यह प्रवाह अनवरत हैं। अपने बाद के विवेचन में कीन्स ने यह निष्कर्ष दिया कि घुमावदार प्रवाह को तभी कायम रखा जा सकता है जबकि बचत एवं विनियोग बराबर रहे। इस निष्कर्ष से यह सामान्य निष्कर्ष निकाला गया कि यदि विनियोग न की गई राशि उपभोग की गई तथा उपभोग के काम में न आने वाली राशि का विनियोग किया गया तो मुद्रा के घुमावदार प्रवाह को कायम रक्खा जा सकता है तथा इसकी सहायता से श्रमिकों एवं साधनों के रोजगार को कायम रक्खा जा सकता है। इस प्रकार उपभोग और विनियोग की देखभाल सार्वजनिक नीति के रूप में की गई। एच० गोर्डन हेयज (H. Gordon Hays) ने अपनी पुस्तक "कीन्सवाद एवं सार्वजनिक नीति" (Keynesianism and Public Policy) में लिखा है कि, "कीन्स का योगदान आय की स्वचालितता की मनाही में तथा मुद्रा के व्यय करने में और इस तरह उसके इस आग्रह में कि मुद्रा को प्रवाहित करने के हेतु कुछ न कुछ किया जाना चाहिए, में निहित है।" (Keynes's Contribution lies in a denial of the automaticity of the receipt and disbursement of money, and hence in his insistence that something must be done to keep money flowing).

(ह) द्रव्य को केन्द्रीय स्थान प्रदान करना (Money Occupies the Central Place);—उक्त परिच्छेद में प्रस्तुत कीन्स के स्वीकृत पक्षो-मौद्रिक अर्थशास्त्र, मौद्रिक आय सबंधी दृष्टिकोण, घुमावदार-प्रवाह एवं समयहीनता से कुछ अन्य निष्कर्ष भी ज्ञात किए जा सकते हैं। कीन्स के "सामान्य सिद्धान्त" में द्रव्य को केन्द्रीय धारणा बनाया गया। यही वह संस्था थी जिसके ऊपर उसका सम्पूर्ण विश्लेषण आधारित है। अपने "सामान्य सिद्धांत" के अन्तर्गत कीन्स ने कीमतों के मौद्रिक सिद्धान्त से उत्पत्ति के मौद्रिक सिद्धान्त के सक्रमण का कार्य पूरा किया। इसके अन्तर्गत भी जैसा कि डडले डीलार्ड (Dudley Dillard) ने अपनी पुस्तक "मौद्रिक अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त" (Theory of a Monetary Economy) में संकेत दिया है," यह कहना बिलकुल ठीक नहीं है कि 'सामान्य सिद्धान्त' मौद्रिक सिद्धान्त को सामान्य आर्थिक विश्लेषण के अन्तर्गत एकीकृत करता है., यह कथन अधिक उपयुक्त है कि सामान्य सिद्धान्त, मौद्रिक सिद्धान्त (विस्तृत प्रकार के) में एकीकृत है" (It is not quite accurate to say that the 'General Theory' integrates monetary theory into general economic analysis, more appropriately general theory is integrated into monetary theory (of a broad type.)

(ज) आय, उपभोग, विनियोग-रोजगार (Income, [Consumption, Investment-Employment):—कीन्स की आर्थिक पद्धति की क्रियाशीलता आय, उपभोग एवं विनियोग के बीच पारस्परिक सम्बन्धों तथा देश के भीतर रोजगार के

जा सके) आयों का घुमावदार प्रवाह (Circular Flow of Incomes) एक एक महत्वपूर्ण दशा है। अतएव उसने यह स्कीम बनाई कि सभी बचत का विनियोग किया जाना चाहिए तथा इस तरह सम्पूर्ण व्यय की गारन्टी करके पूर्ण रोजगार में योगदान किया जाए। कीन्स ने रोजगार एव आय को परिभाषा द्वारा समीकृत किया, उत्पत्ति को रोजगार का एक कार्य बनाया गया., और उत्पत्ति, आय एव रोजगार को प्रभावशील माग अर्थात् व्यय पर निर्भर बनाया गया। निर्णायक प्रवृत्तियाँ, जैसा कि एक पहले अनुच्छेद में दिखाया जा चुका है, इस प्रकार बनाई गईः "उपभोग-प्रवृत्ति" (एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा आय का एक कार्य), "विनियोग-प्रेरणा" जो कि विनियोजित पूजी की सम्भावित आय एव प्रचलित मुद्रा पर निर्भर करती है., और तीसरे "तरलता अनुराग" पर। कीन्स की योजना में तरलता अनुराग एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है तथा "एकत्रण की प्रवृत्ति" के रूप में यह दो अन्य प्रवृत्तियों अर्थात् उपभोग-प्रवृत्ति एव विनियोग-प्रवृति को प्रभावित करती है। यह उपभोग की प्रवृत्ति को इस प्रकार प्रभावित करती है कि एक व्यक्ति अधिक नकदी रखने का इच्छुक हो जाता है और यह विनियोग-प्रवृत्ति को मुद्रा की मांग तथा प्रचलित ब्याज की दर को प्रभावित करते हुऐ, प्रभावित करती है।"[1]

कीन्स के सिद्धान्त का अतिम उद्देश्य रोजगार की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या करना था। उसने बताया कि रोजगार प्रभावशील माग (Effective Demand) पर निर्भर करता है, जैसे कि यह सम्पूर्ण उपभोग-व्यय एव सम्पूर्ण विनियोग-व्यय का निर्धारण करती है। एक ऊँची उपभोग-प्रवृत्ति का अर्थ होता है—रोजगार की ऊँची मात्रा। उपभोग की प्रवृति सम्पूर्ण आय एवं सम्पूर्ण उपभोग के बीच सम्बन्ध की तथा उस मार्ग की जिसके द्वारा आय का विभाजन प्रचलित उपभोग एव बचत में होना है, व्याख्या करती है। यदि इन मान्यता को कायम किया जाए कि कुल आय कुल व्यय के बराबर होगी तो यह सत्य है कि सभी आयो को व्यय नही किया जा सकता है। इनके बीच में एक खाई (Gap) रहना निश्चित है और यही विनियोग है। इस तरह सम्पूर्ण आय, सम्पूर्ण उपभोग एवं सम्पूर्ण विनियोग के बराबर ($Y=C+I$) रहेगी। रोजगार की मात्रा उपभोग एव विनियोग के स्तर पर, जिनका योग कुल आय के बराबर रहना चाहिये जिसका निर्धारण स्वयं रोजगार की मात्रा के द्वारा होता है, निर्भर रहती है। कीन्स ने बताया कि रोजगार की मात्रा का अन्तिम निर्धारण साहसी के रोजगार की लाभदायकता के निर्णय (Judgement of Entrepreneur as to the Profitability of Employment) में निहित होता है। रोजगार की लाभदायकता द्रव्य में मापी गई वस्तुओं एव सेवाओं की सम्पूर्ण माग (Total Demand for Goods and Services Measured in terms of money) से निर्धारित होगी तथा माप के पीछे रहने वाली कुल मुद्रा देश में उत्पादित कुल मौद्रिक-माल के बराबर

[1] Prof. V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 292

स्तर पर उनके प्रभावों में देखी जा सकती है। कीन्स द्वारा उपभोग एवं विनियोग के बीच एक निश्चित सम्बन्ध की स्थापना की गई तथा इसी संदर्भ में उपभोग-प्रवृत्ति (Propensity to Consume) की धारणा को लागू किया गया। यह धारणा इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कि आय के भिन्न होने पर उपभोग किस तरह भिन्न होगा कार्यवाहक सम्बन्ध दिखाती है। कीन्स ने इस मत का प्रतिपादन किया कि उपभोग-मांग की मात्रा राष्ट्रीय आय के आकार पर निर्भर करती है, राष्ट्रीय आय अंशत: उपभोग सम्बन्धी उत्पादन (Output of Consumption) तथा अंशतः विनियोग सम्बन्धी उत्पादन (Output of Investment) की उत्पत्ति है। विनियोग की मात्रा विनियोग करने की प्रेरणा पर अर्थात् लाभ की सम्भावना पर तथा उपभोग-वस्तुओं की उत्पत्ति की मात्रा साहसियों के हेतु विनियोग सम्बन्धी उत्पत्ति की उपलब्ध मात्रा पर निर्भर करती है। कीन्स के मतानुसार व्यय एवं विनियोग के बीच विषमता की दशा उत्पन्न हो जाने पर अर्थात् विनियोग की अपेक्षा बचत का परिमाण बढ़ जाने पर आर्थिक उच्चावचनों को तथा बेकारी को जन्म मिलेगा। अतएव उसने बचत को विनियोग के बराबर रखते हुए कोषों के घुमावदार प्रभाव (Circular Flow of Funds) को कायम रखने का सुझाव दिया। इस तरह कीन्स द्वारा आर्थिक एकरूपता की एकीकृत पद्धति की स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई।

कीन्स के आर्थिक विचार (Economic Ideas of S. M. Keynes):—

निम्नोक्त में कीन्स द्वारा प्रतिपादित प्रमुख आर्थिक विचारों एवं सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या की गई है:—

(१) **रोजगार का सिद्धान्त** (*Theory of Employment*):—कीन्स ने अर्थशास्त्र की अपनी स्कीम के अन्तर्गत आर्थिक नीति की एक पद्धति का विकास किया। उसकी इस नीति का लक्ष्य पूर्ण रोजगार (Full Employment) था जिसके अन्तर्गत सभी तरह की अनैच्छिक बेकारी का निषेध किया गया था। यहाँ तक कि जब कीन्स ने धन और आय के आर्थिक समान वितरण की नीति अपनाने की भी वकालत की तो भी इसका अंतिम उद्देश्य पूर्ण रोजगार था। इस तरह कीन्स ने रोजगार के एक सामान्य सिद्धांत का विकास किया। उसने यह निष्कर्ष दिया कि सम्पूर्ण रोजगार सम्पूर्ण प्रभावशील माँग (Total Effective Demand) की मात्रा पर जिसका निर्माण उपभोग-व्यय एवं विनियोग-व्यय के द्वारा होता है। निर्भर करता है। कीन्स की रोजगार संबंधी योजना में उपभोग एवं विनियोग को विस्तृत महत्ता प्राप्त है क्योंकि ये दोनों आय को व्यय करने के साधन (Means) हैं। कीन्स ने बतलाया कि आय संबंधी सम्पूर्ण व्यय सम्पूर्ण रोजगार पर निर्भर करता है तथा सम्पूर्ण रोजगार उपभोग एवं विनियोग-व्यय के द्वारा निर्धारित होता है।

"कीन्स ने बताया कि अर्थ व्यवस्था की ठोस क्रियाशीलता के हेतु (ताकि आर्थिक उच्चावचनों को दूर किया जा सके और रोजगार के स्तर को कायम रखा

जा सके) आयों का घुमावदार प्रवाह (Circular Flow of Incomes) एक एक महत्वपूर्ण दशा है। अतएव उसने यह स्कीम बनाई कि सभी बचत का विनियोग किया जाना चाहिए तथा इस तरह सम्पूर्ण व्यय की गारन्टी करके पूर्ण रोजगार मे योगदान किया जाए। कीन्स ने रोजगार एव आय को परिभाषा द्वारा समीकृत किया, उत्पत्ति को रोजगार का एक कार्य बनाया गया., और उत्पत्ति, आय एव रोजगार को प्रभावशील माग अर्थात् व्यय पर निर्भर बनाया गया। निर्णायक शक्तियाँ, जैसा कि एक पहले अनुच्छेद मे दिखाया जा चुका है, इस प्रकार बनाई गई: "उपभोग-प्रवृत्ति" (एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा आय का एक कार्य), "विनियोग-प्रेरणा" जो कि विनियोजित पूंजी की सम्भावित आय एव प्रचलित मुद्रा पर निर्भर करती हैं., और तीसरे "तरलता अनुराग" पर। कीन्स की योजना में तरलता अनुराग एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है तथा "एकत्रण की प्रवृत्ति" के रूप मे यह दो अन्य प्रवृत्तियो अर्थात् उपभोग-प्रवृत्ति एवं विनियोग-प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। यह उपभोग की प्रवृत्ति को इस प्रकार प्रभावित करती है कि एक व्यक्ति अधिक नकदी रखने का इच्छुक हो जाता है और यह विनियोग-प्रवृत्ति को मुद्रा की मांग तथा प्रचलित ब्याज की दर को प्रभावित करते हुऐ, प्रभावित करती है।"[1]

कीन्स के सिद्धान्त का अतिम उद्देश्य रोजगार की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या करना था। उसने बताया कि रोजगार प्रभावशील माग (Effective Demand) पर निर्भर करता है, जैसे कि यह सम्पूर्ण उपभोग-व्यय एवं सम्पूर्ण विनियोग-व्यय का निर्धारण करती है। एक ऊँची उपभोग-प्रवृत्ति का अर्थ होता है—रोजगार की ऊँची मात्रा। उपभोग की प्रवृत्ति सम्पूर्ण आय एवं सम्पूर्ण उपभोग के बीच सम्बन्ध की तथा उस मार्ग की जिसके द्वारा आय का विभाजन प्रचलित उपभोग एव बचत मे होना है, व्याख्या करती है। यदि इस मान्यता वो कायम किया जाए कि कुल आय कुल व्यय के बराबर होगी तो यह सत्य है कि सभी आयों को व्यय नही किया जा सकता है। इनके बीच मे एक खाई (Gap) रहना निश्चित है और यही विनियोग है। इस तरह सम्पूर्ण आय, सम्पूर्ण उपभोग एवं सम्पूर्ण विनियोग के बराबर ($Y = C + I$) रहेगी। रोजगार की मात्रा उपभोग एव विनियोग के स्तर पर, जिनका योग कुल आय के बराबर रहना चाहिये जिसका निर्धारण स्वयं रोजगार की मात्रा के द्वारा होता है, निर्भर रहती है। कीन्स ने बताया कि रोजगार की मात्रा का अन्तिम निर्धारण उद्यमी के रोजगार की लाभदायकता के निर्णय (Judgement of Entrepreneur as to the Profitability of Employment) मे निहित होता है। रोजगार की लाभदायकता द्रव्य मे मापी गई वस्तुओं एवं सेवाओं की सम्पूर्ण मांग (Total Demand for Goods and Services Measured in terms of money) से निर्धारित होती तथा माग के पीछे रहने वाली कुल मुद्रा देश मे उत्पादित कुल मौद्रिक-आय के बराबर

1 Prof. V. M. Abraham : History of Economic Thought, P. 292.

होती है। इस प्रकार कीन्स द्वारा अपने रोजगार के सिद्धान्त में एक अच्छी एकीकृत पद्धति का विकास किया गया जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय एवं रोजगार के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया।

(२) गुणक सिद्धान्त (The Multiplier Theory):—कीन्स द्वारा उपभोग-प्रवृत्ति से निकाले गए एक कारक के रूप में तथा विनियोग द्वारा अदा किए गए भाग की व्याख्या के रूप में, गुणक-सिद्धान्त का विकास किया गया। उसने यह निष्कर्ष दिया कि एक निश्चित उपभोग-प्रवृत्ति के साथ विनियोजन में आय का अनुपात गुणित होता है। दूसरे शब्दों में, रोजगार और आय सम्बन्धी परिवर्तन विनियोजन के व्यवहार के परिणाम होते हैं। कीन्स ने विनियोजन के गुणक प्रभाव की व्याख्या की। उसने बताया कि विनियोग की वृद्धि से पूंजीगत वस्तुओं के कारखानों में रोजगार की मात्रा बढ़ जाएगी। इससे उपभोग्य-वस्तुओं की मांग भी बढ़ने लगेगी जिसके फलस्वरूप उपभोग्य-वस्तुओं के उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिलेगा जिसके अन्तर्गत रोजगार को और भी बढ़ावा मिलेगा। यह प्रक्रिया पूर्ण रोजगार के स्तर तक चलती रहेगी तथा इस स्तर से आगे विनियोग में वृद्धि का परिणाम मूल्य-विस्तार (Price Inflation) होगा। अतः न्यून-रोजगार (Under Employment) की अवस्था में, उपभोग की एक निश्चित प्रवृत्ति के साथ, विनियोग में होने वाली वृद्धि का गुणक प्रभाव होगा। इस तरह विनियोजन को प्रोत्साहित करके सरकार अनुपात की उपेक्षा अधिक उत्पादन अथवा रोजगार में गुणक वृद्धि कर सकती है। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अनेक मौलिक मान्यताओं के साथ किया गया था। इस सिद्धान्त की क्रियाशीलता के हेतु अर्थव्यवस्था में कोई दरार नहीं पड़नी चाहिए, उपभोग के स्तर में कोई यकायक परिवर्तन नहीं आना चाहिए तथा विनियोग के गुणक प्रभाव को रोकने की दिशा में कोई विरोधी प्रतिक्रिया नहीं होनी चाहिए। इन अवास्तविक मान्यताओं के सम्बन्ध में कीन्स की कटु आलोचना की गई है। फिर भी उसका गुणक सिद्धान्त बड़े महत्व का है क्योंकि यह उस मार्ग की व्याख्या करता है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था प्रवाहमयी माध्यम (Circulating Medium) की मात्रा के परिवर्तनों तथा विनियोगी क्रियाओं के परिवर्तनों के साथ कार्यशील होती है।

(३) व्यापार चक्र का सिद्धान्त (Theory of Business Cycles):—रोजगार, आय एवं उत्पत्ति के सभी स्तरों में व्यापार चक्रों को सामयिक उच्चावचन के रूप में स्वीकार करते हुए, कीन्स के रोजगार के सिद्धान्त में स्वमेव व्यापार-चक्रों की एक व्याख्या भी निहित है। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि कीन्स व्यापार-चक्रों की अपेक्षा रोजगार के स्तर की सामान्य व्याख्या से अधिक सम्बन्धित था और इसीलिए उसकी व्याख्या व्यापार चक्र के विभिन्न चरणों (Phases) का [illegible] का [illegible] के स्तर का निर्धारण [illegible] ...al Efficiency

of Capital), ब्याज की दर (Rate of Interest) तथा उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to Consume) के द्वारा होता है। इन तीनों तत्वों में से पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता व्यापार चक्रों में एक महत्वपूर्ण भाग अदा करती है। कीन्स के शब्दों में, "व्यापार चक्रों की व्याख्या ब्याज के अनुपात में पूंजी की सीमान्त *कार्यक्षमता के परिवर्तनों के आधार पर की जा सकती है"* (*The Trade Cycles* can be described and analysed in terms of the fluctuations of the marginal efficiency of capital relatively to the rate of interest)। उसने बताया कि मन्दीकाल में अनेक कारणों, यथा—सचित चल-सम्पत्ति की समाप्ति, पूंजीगत वस्तुओं को बदलने की आवश्यकता, नए आविष्कारों के हेतु प्रेरणा आदि से पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता अधिक हो जाती है। इस काल में नागरिकों की द्रव्यता पसन्दगी में कमी आना या बैंक्स के पास मुद्रा की मात्रा बढ़ जाना आदि कारणों से ब्याज की दर भी गिर जाती है। अतएव विनियोजन को प्रेरणा मिलती है जिसके फलस्वरूप उत्पादन-माय-वस्तुओं की मांग बढ़ने लगती है। कीन्स ने बताया कि विनियोग-गुणक के कारण एक वृद्धि मूलक प्रवृत्ति कायम हो जाती है तथा अन्ततः अभिवृद्धि की दशा पैदा हो जाती है। लेकिन यह प्रवृत्ति भी अधिक दिनों तक कायम नहीं रहती तथा अनेक कारणों से ब्याज की दर आवश्यकता से अधिक हो जाती है तथा पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता घट जाती है। अतएव अब विनियोग गुणक विपरीत दशा में काम करने लगता है और अन्ततः मन्दी की अवस्था आ जाती है।

(४) ब्याज का सिद्धान्त (Theory of Interest):—कीन्स का मत था कि हरएक व्यक्ति तीन कारणों से अर्थात् व्यापारिक मनोवृत्ति (Transactional Motives), सचेत मनोवृत्ति (Precautionary Motive) और सट्टा-मनोवृत्ति (Speculative Motive) अपनी आय को नकद या तरल रूप (Liquid Form) में रखना चाहता है। उसने बताया कि जब कोई व्यक्ति अपनी आय को तरल रूप में न रखकर उधार देने को तैयार हो जाता है तो उसे इस काम को तैयार करने के हेतु कुछ प्रलोभन देना आवश्यक हो जाता है और यही प्रलोभन ब्याज है। कीन्स के शब्दों में, *"ब्याज एक विशेष समय के हेतु तरलता से पृथक् करने का इनाम है।* यह धन को गाड़ने के हेतु इनाम नहीं है" (Interest is a reward for parting with liquidity for a specific period. It is a reward not for hoarding)। कीन्स के मतानुसार ब्याज की दर दो तत्वों पर निर्भर करती है: (i) तरलता अनुराग (Liquidity Preference) तथा (ii) द्रव्य की मात्रा (Quantity of Money)। कीन्स ने बताया कि यदि तरलता अनुराग यथावत रहे तो द्रव्य की मात्रा बढ़ जाने से ब्याज की दर उसी अनुपात में गिर जाएगी तथा द्रव्य की मात्रा घट जाने पर ब्याज की दर उसी अनुपात में बढ़ जाएगी। इसी तरह यदि द्रव्य की मात्रा यथावत रहे तो तरलता-अनुराग बढ़ जाने पर ब्याज बढ़ जाएगी और

तरलता अनुराग के घटने पर ब्याज की दर गिर जाएगी। कीन्स ने परम्परावादियों की इस धारणा का खण्डन कर दिया कि विनियोग की मात्रा ब्याज की दर से प्रभावित होती है। उसने बताया कि विनियोग की मात्रा पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता अथवा सम्भावित लाभ-हानि से प्रभावित होती है।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में कीन्स की स्थिति (Keynes's Position in the History of Economic thought):—प्रो० वी० एम० एब्राहम (V. M. Abraham) के शब्दों में, "कीन्स सभी कालों का एक महान अर्थशास्त्री तथा बीसवीं शताब्दी का महान आर्थिक विचारक था। उसकी पुस्तक "रोजगार, ब्याज और मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त" आर्थिक विचारधारा की एक महत्वपूर्ण पुस्तक बन गई है। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में कीन्स के योगदान बहुत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि उसने किसी नवीन आर्थिक सिद्धान्त का आविष्कार नहीं किया और जो कुछ उसने किया वह सब मशीन के निश्चित उपयोग किए गए हिस्सों को परस्पर फिट करके एक नई मशीन बनाने के कार्य के समान था। अतएव विभिन्न तत्वों एवं नीतियों के समन्वय को प्रभावयुक्त करने की उसकी पद्धति बिल्कुल नवीन थी और इस दिशा में यह एक प्रवर्तक-कार्य था।"[1] इसी प्रकार प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है, "उसने किसी नवीन सिद्धान्त का आविष्कार नहीं किया। उसकी पद्धति में कोई नवीन तत्व नहीं है तथा नीति विषयक नवीन प्रस्ताव भी नहीं हैं। लेकिन तत्वों एवं नीतियों को मिलाने की उसकी पद्धति नवीन थी। उसकी शब्दावली अपनी निजी थी और उसका प्रभाव असाधारण रूप से महान था।"[2]

---

1 "Keynes was the greatest economist of all times and the most influential economic thinkes of twentieth century. His book "The General Theory of Employment, Interest and money" had become one of the classics of economic thohght. Keynes made a number of important contributions, to the whole stream of economic thought. But it should be remembered that he discovered no new economic theory and what he did was to construct a "system" of policy by fitting together "Certain used parts to biuld the machine and it was new." So his method of effecting a combination of the various elements and policies was quite new and in that respect it was a pioneering work." —V. M. Abraham : Ibid, P. 297.

2 "He discovered no new theory. There are no new elements in his system, and probably no new concrete proposals of policy. But his method of combining the elements and policies was new. His terminology was his own, and his influence has been extraordinarily great." —Haney.

कीन्स का एक महत्वपूर्ण योगदान परिवर्तनीय दशाओं के अन्तर्गत विशेषकर श्रम व पूँजी के सम्बन्ध में मांग व पूर्ति की अन्तः क्रिया से सम्बन्धित था। क्लासिकल विचारधारा के अन्तर्गत इस प्रतिक्रिया का अध्ययन स्थिर दशाओं में किया गया था, लेकिन कीन्स ने, यद्यपि वह मूल रूप में स्थिर दशाओं का विवेचन कर रहा था साम्य की दशाओं सम्बन्धी अपने व्यवहार में परिवर्तनों एवं भिन्नताओं को अधिक मान्यता प्रदान की। क्लासिकल विचारकों से उसके विच्छेद की व्याख्या आर्थिक विचारधारा को उसकी अनेक देनों के रूप में की जा सकती है। उसने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन क्लासिकल-विरोधी लाइनों पर किया। कीन्स ने क्लासिकल अर्थव्यवस्था के क्षेत्र एवं पद्धति को चैलेंज नहीं किया अपितु उसने क्लासिकल सिद्धान्तों की मान्यताओं को ही चैलेंज किया। क्लासिकल विचारकों के "विशेष सिद्धान्त" (Special Theory) के विरुद्ध कीन्स ने 'सामान्य सिद्धान्त" (General Theory) का प्रतिपादन किया। कीन्स का कार्य की महानता आर्थिक नीति पर इसके प्रभाव में निहित है। कीन्स के दूसरी महत्वपूर्ण देन आर्थिक पद्धति के विशेष तत्वों पर विभिन्न बल डालने से संबंधित है। जबकि परम्परावादियों ने उत्पादन एवं कीमत पर बल डाला था, तब कीन्स उपभोग एवं आय से सम्बन्धित था। उसने पूर्ति की अपेक्षा मांग पर अधिक महत्व दिया। कीन्स की पद्धति में मांग में क्रय शक्ति तत्व (Purchasing Power Element) बहुत महत्वपूर्ण था।

'उपभोग की प्रवृत्ति' (Propensity to Consume), 'विनियोग-प्रेरणा' (Inducement to Invest), 'तरलता अनुराग' (Liquidity Preference), 'मनोवैज्ञानिक कारक एवं गुणक' (The Psychological Factor and Multiplier) से निरूपित विशेष कर्तव्य, नियन्त्रण-पद्धति के एक [illegible] के रूप में, कीन्स के महत्वपूर्ण योगदान थे। [illegible] ...न्त थे और ये सिद्धान्त आधुनिक [illegible] ...हैं। बाद के अर्थशास्त्री [illegible] नहीं हुए। विभिन्न [illegible] ...क मात्र अभिप्राय यह है कि [illegible] ...) का विचार है कि [illegible] यह है कि समुदाय की आय [illegible] ...ीन्स द्वारा आयों के सम्पूर्ण [illegible] राइट (Wright) की दृष्टि [illegible] है। हैरिस (Harris) और [illegible] ...ं पूँजी की सीमान्त कार्य क्षमता [illegible]) ने कीन्स की नीति [illegible] ...का लक्ष्य [illegible]

उसके :

तरलता अनुराग के घटने पर ब्याज की दर गिर जाएगी। कीन्स ने परम्परावादियों की इस धारणा का खण्डन कर दिया कि विनियोग की मात्रा ब्याज की दर से प्रभावित होती है। उसने बताया कि विनियोग की मात्रा पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता अथवा सम्भावित लाभ-हानि से प्रभावित होती है।

आर्थिक विचारधारा के इतिहास में कीन्स की स्थिति (Keynes's Position in the *History of Economic thought*):—प्रो० वी० एम० एब्राहम (V. M. Abraham) के शब्दों में, "कीन्स सभी कालों का एक महान अर्थशास्त्री तथा बीसवीं शताब्दी का महान आर्थिक विचारक था। उसकी पुस्तक "रोजगार, ब्याज और मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त" आर्थिक विचारधारा की एक महत्वपूर्ण पुस्तक बन गई है। आर्थिक विचारधारा के इतिहास में कीन्स के योगदान बहुत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि उसने किसी नवीन आर्थिक सिद्धान्त का आविष्कार नहीं किया और जो कुछ उसने किया वह सब मशीन के निश्चित उपयोग किए गए हिस्सों को परस्पर फिट करके एक नई मशीन बनाने के कार्य के समान था। अतएव विभिन्न तत्वों एवं नीतियों के समन्वय को प्रभावयुक्त करने की उसकी पद्धति बिल्कुल नवीन थी और इस दिशा में यह एक प्रवर्तक-कार्य था।"[1] इसी प्रकार प्रो० हेने (Haney) ने लिखा है, "उसने किसी नवीन सिद्धान्त का आविष्कार नहीं किया। उसकी पद्धति में कोई नवीन तत्व नहीं है तथा नीति विषयक नवीन प्रस्ताव भी नहीं हैं। लेकिन तत्वों एवं नीतियों को मिलाने की उसकी पद्धति नवीन थी। उसकी शब्दावली अपनी निजी थी और उसका प्रभाव असाधारण रूप से महान था।"[2]

---

1 "Keynes was the greatest economist of all times and the most influential economic thinkes of twentieth century. His book "The General Theory of Employment, Interest and money" bad become one of the classics of economic thohght. Keynes made a number of important contributions, to the whole stream of economic thought. But it should be remembered that he discovered no new *economic theory and what he did was to construct a "system" of* policy by fitting together "Certain used parts to biuld the machine and it was new." So his method of effecting a combination of the *various elements and policies was quite new and in that respect it* was a pioneering work." —V. M, Abraham : Ibid, P. 297.

2 "He discovered no new theory. There are no new elements in his system, and probably no new concrete proposals of policy. But his method of combining the elements and policies was new. His terminology was his own, and his influence has been extraordinarily great." —Haney.

कीन्स का एक महत्वपूर्ण योगदान परिवर्तनीय दशाओं के अन्तर्गत विशेषकर श्रम व पूंजी के सम्बन्ध में माग व पूर्ति की प्रत: क्रिया से सम्बन्धित था। क्लासिकल विचारधारा के अन्तर्गत इस प्रतिक्रिया का अध्ययन स्थिर दशाओं में किया गया था, लेकिन कीन्स ने, यद्यपि वह मूल रूप में स्थिर दशाओं का विवेचन कर रहा था साम्य की दशाओं सम्बन्धी अपने व्यवहार में परिवर्तनों एवं भिन्नताओं को अधिक मान्यता प्रदान की। क्लासिकल विचारकों से उसके विच्छेद की व्याख्या आर्थिक विचारधारा को उसकी अनेक देनों के रूप में की जा सकती है। उसने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन क्लासिकल-विरोधी लाइनों पर किया। कीन्स ने क्लासिकल अर्थव्यवस्था के क्षेत्र एवं पद्धति को चेलेंज नहीं किया अपितु उसने क्लासिकल सिद्धान्तों की मान्यताओं को ही चेलेंज किया। क्लासिकल विचारकों के "विशेष सिद्धान्त" (Special Theory) के विरुद्ध कीन्स ने 'सामान्य सिद्धान्त" (General Theory) का प्रतिपादन किया। कीन्स का कार्य की महानता आर्थिक नीति पर इसके प्रभाव में निहित है। कीन्स के दूसरी महत्वपूर्ण देन आर्थिक पद्धति के विशेष तत्वों पर विभिन्न बल डालने से सबधित है। जबकि परम्परावादियों ने उत्पादन एवं कीमत पर बल डाला था, तब कीन्स उपभोग एवं आय से सम्बन्धित था। उसने पूर्ति की अपेक्षा माँग पर अधिक महत्व दिया। कीन्स की पद्धति में माँग में क्रय शक्ति तत्व (Purchasing Power Element) बहुत महत्वपूर्ण था।

'उपभोग की प्रवृत्ति' (Propensity to Consume), 'विनियोग-प्रेरणा' (Inducement to Invest), 'तरलता अनुराग' (Liquidity Preference), 'मनोवैज्ञानिक कारक एवं गुणक' (The Psychological Factor and Multiplier) से निरूपित विशेष कर्तव्य, नियत्रण-पद्धति के एक अग के रूप में, कीन्स के महत्वपूर्ण योगदान थे। कीन्स द्वारा प्रतिपादित ये नवीन सिद्धान्त थे और ये सिद्धान्त आधुनिक आर्थिक विश्लेषण के महत्वपूर्ण कारक बन गए हैं। बाद के अर्थशास्त्री कीन्स की धारणाओं के विशिष्ट महत्व से पूर्णतया सहमत नहीं हुए। विभिन्न विचारकों ने विभिन्न पहलुओं पर बल डाला जिसका एक मात्र अभिप्राय यह है कि कीन्स के योगदान अधिक महत्वपूर्ण थे। हैरोड (Harrod) का विचार है कि कीन्स के सिद्धान्तों में अकेली सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि समुदाय की आय विनियोग के स्तर पर निर्भर करती है। क्लार्क ने कीन्स द्वारा आयों के सम्पूर्ण प्रवाह पर डाले गए बल को महत्वपूर्ण बताया, जबकि राइट (Wright) की दृष्टि में कीन्स का ब्याज का सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण है। हैरिस (Harris) और हैबरलर (Haberler) ने न्यून-रोजगार-साम्य एवं पूंजी की सीमान्त कार्य क्षमता सम्बन्धी धारणाओं पर बल डाला है। शुम्पीटर (Schumpeter) ने कीन्स की नीति एवं व्यावहारिक सुझावों को आर्थिक विश्लेषण का लक्ष्य घोषित किया है। जहाँ तक उसके समकालीन एवं बाद के विचारकों पर उसके प्रभाव का ... है, प्रो०

एरिक रोल (Eric Rolc) ने लिखा है, "कीन्स के सिद्धान्तों का प्रभाव आर्थिक जांच की अनेक विशेष शाखाओं, व्यापार-चक्र के अध्ययन के अतिरिक्त, में खोजा जा सकता है। सरकारी व्यय को आय के ऊपर एक नए प्रकाश में रखते हुए इन सिद्धान्तों से सार्वजनिक वित्त के परम्परावादी सिद्धान्तों को प्रवावित किया है। और आय, रोजगार, उपभोग आदि के प्रभाव के साथ युद्ध-वित्त की समस्या ने इन नवीन सिद्धान्तों की क्रियाशीलता के हेतु विशेषकर एक उर्वर क्षेत्र प्रदान किया है।"[1]

लार्ड कीन्स मार्शलियन एवं पीगूवियन अर्थशास्त्र का एक कटु एवं प्रभावशाली आलोचक था। उसके द्वारा साख, ब्याज, बचत एवं विनियोग की प्रकृति पर तथा मुद्रा द्वारा अदा किए गए भाग पर जो बल डाला गया था, वे उनके सिद्धान्तों से महान विकास थे। अर्थशास्त्र की दूसरी विशेष शाखा के विषय में कीन्स के योगदान का मूल्यांकन करते हुए प्रो० हेने (Haney) ने अपनी पुस्तक "आर्थिक विचारधारा का इतिहास" (History of Economic Thought) में लिखा है, उसने "मूल्य अर्थशास्त्र," "गणितीय अर्थशास्त्र" और "कल्याण अर्थशास्त्र" के प्रचलित स्वरूपों में सामान्यतः पाई गई निश्चित अतिवादी प्रवृत्तियों को दबाने की सेवा की। व्यय (खरीदी गई वस्तुओं की) के साथ के साधन (बेची गई वस्तुओं की कीमत) का वर्तावा करते हुए उसने मूल्य अर्थशास्त्र को तर्कपूर्ण अतिवादी प्रवाहशीलता तक खींचा। उसने, यह मानते हुए कि द्रव्य उत्पादक वस्तुओं (मजदूरी इकाइयों से घटाई गई) को सम्मिलित करते हुए वस्तुओं (कीमतें समान रहते हुए) का प्रनिनिधित्व करता है, गणितीय विषयगतवाद को समरूपता के तर्कपूर्ण अतिवाद तक खींचा। उसने कल्याण अर्थशास्त्र को परिवर्तनीय आर्थिक विज्ञान के तर्क पूर्ण अतिवाद, जोकि वास्तविक इच्छा-प्रवृत्तियों पर आधारित है, तक खींचा तथा मांग का सामाजीकरण करने एवं पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम करने को

1 "The influence of Keynesian theories can be found in many branches of economic enqiry in addition to the study of trade ... They have profoundly affected the traditional doctrines of ...c finance by putting in a new light the influenee of government ...ding upon income and, therefore, upon the entire economic ...ivity of the community...And the pressing problem of war fina...e with their inevitable emphasis upon the aggregate of income, ...ployment, consumption and the like, have provided a particulary ...ertile ... d for the application of these new doctrines." —Eric Roll.

अपना स्तर निर्धारित किया।"[1]

यद्यपि कीन्स द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार मौलिक नहीं थे लेकिन इनकी उत्पत्ति विभिन्न स्रोतों से हुई है। फ्रैंक नैफ (Frank Neff) के शब्दों में, "कीन्स की पद्धति की सट्टे सम्बन्धी धारणाओं का उद्योग, व्यापार एवं वित्त के क्षेत्र में सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत दोनों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। उसके सिद्धांतों ने मौद्रिक कीमत एवं हीनार्थ प्रबन्धन की नीतियों को, जिनकी स्फीतिकारक प्रवृत्ति होती है, प्रभावित किया। उसके सिद्धान्तों में बचत के गुणों पर पुनः विचार किया गया है तथा इनमें पूंजीगत बाजार के नियमन में प्राप्त लाभों एवं अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सम्बन्ध की आवश्यकता की ओर भी स्पष्ट किया गया है।"[2] प्रो० स्पीगल (Spiegel) ने कीन्स के योगदान की व्याख्या इन शब्दों में की है, "कीन्स के कार्य के साथ व्यक्तिगत उपभोक्ता, व्यक्तिगत फर्म, अकेली वस्तु या सेवा सूक्ष्मदर्शी अर्थशास्त्र को राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर के सम्पूर्णदर्शी अर्थशास्त्र से पूरक पूर्ति की गई है"।[3] पी० सी० न्यूमैन (P. C. Newman) ने अपनी पुस्तक "आर्थिक विचार

---

1 "He has done Economics the serves of pushing to extremes certain tendencies commonly found in the prevalent types of "price economics", "mathematical economics", and "welfare economics". He carried price economics to the logical extreme of circularity, by the treating spending (price of goods bought) as the source of income (price of good sold). He carried mathematical subjectivism to the logical exetreme of homogeneity assumption, by assuming that money represents goods (price remaining equal) including producer goods reduced to wage-units). He carried welfare economics to the logical exetreme of turning economic science based on actual desire tendencies into a scheme for managing "the economy" so as to socialise demand and make "full employment the goel".

—Haney.

2 "Its speculative conceptions have exercised a potent influence upon both public and private policies in industry, trade and finance. His doctrines have affected monetary, price and deficit financing policies which have an inflationary tendency they have induced a review of the merits of saving as opposed to spending, they have pointed out the benefits to be derived from the regulation of the capital market and the desirability of an international monetary relationship."

—Neff.

3 "With Keynes's work, the micro-economics of the individual consumer, the individual firm, and the single commodity or service became supplemented by the aggregate macro-economics of the national income and the level of employment."

—S . . .

धारा विकास" (The Development of Ec nomic Thought) में लिखा है, "उसके लेखों की मौलिकता एवं प्रभाव दोनों की माप करने वाले अर्थशास्त्रियों के बीच यह एक सामान्य स्वीकृति है कि जान मेयनार्ड कीन्स बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा अर्थशास्त्री है तथा आगामी संततियों द्वारा उसे सभी कालों का महान अर्थशास्त्री स्वीकार करना और भी अच्छा होगा। दो विश्व युद्धों के बीच में वह सरकारी वित्तीय नियोजन की एक असाधारण मूर्ति थी तथा उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त" (General Theory of Employment, Interest and Money) का प्रभाव एडम स्मिथ की पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" के समय से अन्य पुस्तकों की अपेक्षा अधिक रहा है।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम प्रो० एरिक रौल के शब्दों में कह सकते हैं कि "सम्भवतया कीन्स के कार्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा इस तथ्य में निहित है कि यह प्रभावशाली माँग से माल्थसवादी सिद्धान्त के एकमात्र प्रतिद्वन्दी द्वारा प्रस्तुत सम्भावनाओं की अपेक्षा अधिक सम्भावताओं को प्रदान करता है। साधनों के स्वचालित सर्वोत्तम वितरण के विश्वास का खण्डन करता है, बेकारी और न्यून उपभोग की सुदृढ़ प्रवृति की ओर संकेत करता है और यह पुनः क्लासिकल अर्थशास्त्र द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त को, कि लाभ की दर की प्रवृति गिरने की होती है, आर्थिक वाद-विवाद का केन्द्र बनाता है।"[2]

---

1 "There is general agreement among most economists that measured by both the originality and the influence of his writing, John Maynard Keynes is the gteatest economist of the twentieth century has produced thus far, and it may well be that subsequent generations will rate him the greatest of all time. He was an outstanding figure in government financial planning in two wars; his personal success in business is reminiscent of Ricardo's and his most famous book "The General Theory of Employment, Interest and Money)" can justiy be said to have exerted a greater infiuence on public policy than any other since Adam Smith's "Wealth of Nations."

—P. C. Newman.

2 "Perhaps the most important lesson of Keyne's work is the fact that it opens up breader possibilities than are offered by a more revival of the Malthusian doctrine of effective demand. It romoves the unquestioned belief in any self attained optimal distrubution of resources, it reveals a strong tendency towards unemployment and under-consumption, and it puts again the centre of economic discussion the doctrine, well established in classical political economy, t the rate of profit tends to fall."

—Eric Roll.

२१

यू० के० और यू० एस० ए० में २० वीं शताब्दी की आर्थिक विचारधारा

(20Th Centry Economic Thought in U. K. and U.S.A.)

प्राक्कथन -- आर्थिक विचारधारा के इतिहास से इस सत्यता का स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन हो जाता है कि जैसे-जैसे किसी देश में आर्थिक व्यवस्था की उन्नति हुई है, वैसे ही वैसे उस देश मे आर्थिक विचारधारा का विकास भी हुआ है। यही कारण है कि आर्थिक विचारधारा के विकास क्षेत्र मे हम सर्वप्रथम इंगलैंड को ही अगुआ पाते हैं क्योकि दूसरे देशों की अपेक्षा इंगलैंड की आर्थिक व्यवस्था भी सबसे पहले उन्नत हुई है। एडम स्मिथ (Adam Smith) से लेकर एक लम्बी श्रृंखला तक हम अंग्रेज अर्थशास्त्रियों के हाथों मे ही आर्थिक विचारधारा को विकसित होती हुई पाते हैं। दूसरी ओर सयुक्त राज्य अमेरिका एक नवोदित राष्ट्र है जिसका औद्योगिक विकास इंगलैंड की अपेक्षा काफी समय के बाद हुआ है। इतना स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि १६ वी शताब्दी तक अमेरिका में आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र मे कोई विशेष प्रगति नहीं हुई परन्तु इसके पश्चात् निरन्तर आशातीत प्रगति हुई है। यह स्मरणीय है कि अन्य देशों के विचारकों की अपेक्षा अमेरिकन विचारको का दृष्टिकोण अधिक आशावादी (Optimistic) रहा है तथा उन्होने परम्परावादियो द्वारा प्रतिपादित निराशावादी विचारो की विशेषकर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) तथा माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त (Malthusian theory of Population) की कटु आलोचना की है। दूसरी उल्लेखनीय बात इस सम्बन्ध में यह है कि अमरीकी विचारकों ने भूमि को भी पूंजी के रूप मे स्वीकार किया है तथा इसी कारण इन विचारको ने श्रम एव पूंजी के अतिरिक्त भूमि मे भी सापेक्षिता के विचार (Concept of Differential) को लागू किया है। इंगलैंड के विचारकों द्वारा प्रतिपादित विचारो मे भिन्नता के दर्शन इस कारण होते हैं क्योकि अमेरिका पर इंगलैंड आदि देशो के औद्योगिक विकास का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

बीसवी शताब्दी मे इंगलैंड के आर्थिक विचारको मे एफ० वाई० एजवर्थ (F. Y. Edgeworth), पी० एच० विक्सटीड (P. H. Wickstead), जॉन० ए० हॉब्सन (John A. Hobson), ए० सी० पीगू (A. C. Pigou) तथा जे० कीन्स (J. M. K., नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं तथा इसी

बीसवीं शताब्दी के अमेरिकन विचारकों में जे० बी० क्लार्क (J. B. Clark), एस० एन० पेटन (S. N. patten), इरविंग फिशर (Irving Fisher), एफ० ए० फेटर (F. A. Fatter), एफ० डब्ल्यू० टॉसिग (F. W. Tausig), टी० एन० कारवर (T. N. Carver), रिचार्ड टी० ईली (Richard T. Ely), आर० ए० सेलिगमैन R. A. Saligman), वेब्लिन (Veblen), डब्ल्यू० सी० मिचेल (W. C. Mitchell), जे० एम० क्लार्क (J. M. Clerk), एफ० एच० नाइट (F. H. Knight), जे० विनर (J. Viner). ई० एच० चेम्बरलेन (E. H Chamberlin): एम० ए० कोपलेण्ड (M. A. Copeland), जे० डब्लू एंजिल (J. W. Angell), एफ० डी० ग्राहम (F. D. Grahm), स्लिचर (Slichter), पी० एच डगलस (P. H. Dong-las), ए० एम० हेनसन (A. M, Hansen), ए० पी० लर्नर (A. P. Learner) आस्कर लांगे (Oscar Lange), जे० ए० शुम्पीटर (J. A. Schumpeter), एब्राहम बर्गसन (Abraham Bergson), हेबरलर (Haberler). हेमिल्टन (Hamilton) टगवेल (Tugwell) आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह स्मरण रहे कि उल्लिखित विचारकों में से कुछ प्रमुख विचारकों के आर्थिक विचारों का विवेचन विगत अध्यायों में किया जा चुका है तथा प्रस्तुत अध्याय में शेष प्रमुख विचारकों के आर्थिक विचारों का अध्ययन किया जाएगा।

(१) फ्रांसिस वाई० एजवर्थ (१८४५–१९२६)
(Francis Y. Edgeworth)

एजवर्थ का नाम गणितीय सांख्यिकी और अर्थशास्त्र में उसके द्वारा किए गए अद्भुत कार्य के साथ जोड़ा जाता है। जबकि उसके पूर्ववर्ती विचारकों ने अर्थ-शास्त्र पर एक विस्तृत ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया था, लेकिन एजवर्थ का ध्यान विशुद्ध आर्थिक सिद्धान्त पर तथा इसके संक्षिप्त एवं निश्चित विश्लेषण पर केन्द्रित था। उसकी मुख्य अभिलाषा यह थी कि आर्थिक सिद्धान्त में से उन कमजोरियों तथा पूर्वधारणाओं को अलग कर दिया जाए जोकि कुछ निश्चित तथ्यों की उपेक्षा के कारण आर्थिक सिद्धान्त में सम्मिलित हो गई हैं। तटस्थ वक्र रेखाओं का विकास एजवर्थ का एक महान कृत्य था। उसने उपयोगितावादी विचारों का प्रतिपादन परिमाणात्मक दृष्टि से किया। उसकी पुस्तक "Mathematical Psychics" में तटस्थ वक्र रेखाओं की तकनीक ने विकसित स्वरूप ग्रहण किया तथा उसकी पुस्तक Papers Relating to Political Economy) में निर्देशांक, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, एकाधिकार तथा दूसरे विषयों से सम्बन्धित सिद्धान्तों का उचित प्रतिपादन किया गया। अपने कार्यारम्भ के समय एजवर्थ का ध्यान दार्शनिक प्रश्नों पर अधिक केन्द्रित था और इसलिए उसने अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध की

करने का प्रयास किया। उसने अपनी पुस्तक "New and Old Methods

ics" में उपयोगितावादी एवं आर्थिक विचारों की गणितीय प्रतीकों के

रूप में व्याख्या की और अपनी दूसरी पुस्तक "Mathematical Psychicss" में उसने इन विचारों को आर्थिक जीवन में लागू करने के रूप में विश्लेषण का अगला कदम उठाया। इस प्रकार की पद्धति एजवर्थ ने मुख्य रूप से कूर्नो (Curnot), जीवन्स (Jevons), गोसन (Gossen) और अपने समकालीन मार्शल (Marshall) से प्राप्त की। उसके विश्लेषण की नीति मिल (Mill) और सिजविक (Sidgwick) में देखने को मिलती है। फिर भी विषय सम्बन्धी उसके व्यवहार में काफी मौलिकता के दर्शन होते हैं।

एजवर्थ ने अर्थशास्त्र एवं आर्थिक गणनाओं और उपयोगितावादी गणनाओं अथवा नीति शास्त्र एवं राजनीति में निश्चित शब्दों में अन्तर स्पष्ट किया। उसने बताया कि अर्थशास्त्र उत्पत्ति के अभिकरणों, जिन सबका लक्ष्य अधिकतम उपयोगिता को प्राप्त करना होता है, के बीच की व्यवस्थाओं से सम्बन्धित है। उसका विचार था कि 'सामाजिक विज्ञानों में प्रमुख जाँच अधिकतम समस्याओं" (Maximunm problem) के सम्बन्ध में होनी चाहिये और यह केवल पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में ही सम्भव है। एजवर्थ ने स्थिर एवं गतिशील विश्लेषण के बीच भी भेद का स्पष्टीकरण किया। उसने यह खोज की थी कि समकालीन आर्थिक साम्य सिद्धांत इस दृष्टि से दोषपूर्ण थे कि उनमें इस अन्तर को स्पष्ट रूप से लागू नहीं किया गया था। यह स्मरणीय है कि स्थिर एवं गतिशील विश्लेषण के बीच विभेद करके तथा पूर्ववर्ती सिद्धान्तों को 'स्थिर' मानते हुए एजवर्थ ने गतिशील शक्तियों के विश्लेषण को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया। इसके अतिरिक्त एजवर्थ ने तटस्थ वक्र रेखाओं के विचार का आविष्कार किया। दूसरा महत्वपूर्ण आविष्कार उसने यह किया कि किसी व्यक्ति को उपयोगिता किसी एक वस्तु से ही प्राप्त नहीं होती वरन् विनिमय अथवा अदल-बदल में सम्मिलित सभी वस्तुओं से प्राप्त होती है। इस प्रकार एजवर्थ के दृष्टिकोण से उपभोक्ता की उपयोगिता सम्पूर्ण उपभोग से सम्बन्धित थी, किसी एक वस्तु के उपभोग से नहीं।

एजवर्थ के द्वारा एकाधिकार के विरुद्ध सिद्धान्त का विवेचन भी किया गया। एकाधिकार के अध्ययन में गणितीय विश्लेषण सर्व प्रथम कूर्नो द्वारा सम्मिलित किया गया था। एजवर्थ के द्वारा इसका प्रयोग करापात, विभेदीकरण आदि समस्याओं में किया गया। उसने सिद्ध किया कि जब दो या अधिक एकाधिकारी प्रतियोगी समूहों में व्यापार कर रहे हों तो आर्थिक साम्य की स्थापना सम्भव है। एजवर्थ ने वितरण को विनिमय का ही एक ऐसा विशेष रूप बताया जिसके द्वारा उत्पादन का बटवारा उन पार्टियों में कर दिया जाता है जिन्होंने उत्पादन कार्य में सहयोग दिया है। एजवर्थ के द्वारा सीमान्त उत्पादकता सूत्र का पुनः विकास किया गया। "इस प्रकार पूर्ववर्ती सिद्धान्तों का विस्तार करते हुए और इस सम्बन्ध में गणितीय आकड़ों को प्रयुक्त करते हुए भी एजवर्थ के तर्कों में काफी विद्यमान है। उसने अर्थशास्त्र की किसी प्रणाली का विकास नहीं किया

History and Method of Economics) में लिखा है कि "यह ग्रन्थ साधनों के प्रबन्ध के सामान्य ज्ञान का स्पष्ट कार्यान्वियन मात्र है और विशेषकर इस रूप में कि यही सिद्धान्त उत्पत्ति एवं उपभोग के संगठन को शासित करता है। उपभोक्ताओं की तरह उत्पादक भी द्रव्य को इस प्रकार व्यय करते हैं कि वे अधिक मात्रा में वस्तुओं का क्रय कर सकें। उत्पादक सेवा को, व्यक्तिगत आय की तरह, सीमान्त साम्य सिद्धान्त (जिसका परिणाम एक मामले में मूल्य-उत्पाद तथा दूसरे मामले में उपयोगिता होता है) पर मुकर्रिर कहा जाता है।" विक्सटीड के द्वारा सीमान्त सिद्धांत को सभी साधनों के हिस्सा निर्धारण का सिद्धान्त समझा गया तथा इस सिद्धान्त का विवेचन उसने अपने वितरण सिद्धान्त के संदर्भ में किया। अपने पाठकों को इस सिद्धान्त की सार्वभौमिक कार्यशीलता के सम्बन्ध में प्रभावित करने की दिशा में विक्सटीड ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये। आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र में विक्सटीड का दूसरा योगदान बाजार-विश्लेषण से सम्बन्धित है। आर्थिक क्रियाओं एवं आर्थिक साम्य की गतिशील प्रकृति के विश्लेषण के अन्तर्गत उसने बाजार की अनिश्चितताओं एवं सम्भावनाओं पर अधिक बल डाला। उसके दृष्टिकोण से साम्य का अर्थ सम्भावनाओं की पूर्ति से था तथा असाम्य का अभिप्राय इसके अभाव से था यदि वे सम्भावनाएं गलत साबित हो जायँ। उसका विश्वास था कि अर्थव्यवस्था में सदैव साम्य की दिशा की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। ब्याज, मुद्रा, एवं बैंकिंग सम्बन्धी अपने विश्लेषण में विक्सटीड ने कोई नई बात नहीं बताई। वह मुद्रा के परिमाणिक सिद्धांत का विरोधी था और उसने मुद्रा-सिद्धान्त से सम्बन्धित नकद-शेष दृष्टिकोण का समर्थन किया।

"सारांशतया विक्सटीड का अर्थस्त्रियों के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान है। सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण तथा उपयोगिता, बाजार आदि धारणाओं के सम्बन्ध में स्थापित उदासीनता के उसके योगदान के संदर्भ में लियोनेल रौबिन्स ने उसको जीवन्स और आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों के समान स्थान प्रदान किया है। वह वास्तविक रूप से इस स्थान को पाने का अधिकारी है। उसके द्वारा अभिप्रेरित मौलिक विचार की धारा एक ऐसा कोष बन गई जिससे बाद के विचारकों ने काफी ग्रहण किया।"[1]

1 "On the whole Wickstead occupied a very important place among economists. With his contributions towards the marginal productivity analysis and the neutrality establisved in the concepts of utility, market etc. Lionel Robbins would assign him a place beside Jevons and the Austrian economists. He really deserved such a place. The stream of original thinking that he initiated became a fund from which later writers could draw."

—V. A. Abraham ; Ibid, page

(३) ए० सी० पीगू (A. C. Pigou)

सन् १६०८ से लेकर १६४३ के बीच पीगू इंगलैंड का एक असाधारण अर्थशास्त्री था। पीगू ने समाज कल्याण की धारणा (Concept of Social welfare) के विश्लेषण पर पहला ध्यान अधिक केन्द्रित किया तथा उसकी पुस्तक "कल्याण का अर्थशास्त्र" (Economics of Welfare) इस संबंध में सबसे बड़ा ग्रन्थ है। अपनी दूसरी रचनाओं, यथा—"The Riddle of the "Tariff" और The Principles and Methods of Industrial Peace" में भी पीगू ने अर्थशास्त्र के फलदायक पहलू पर अधिक बल डाला। उसने कल्याण की धारणा का अध्ययन धन के संदर्भ में किया तथा धन के अध्ययन के अन्तर्गत आय और रोजगार की अनवरता में आने वाले उच्चावचनों का अध्ययन स्वाभाविक ही आवश्यक हो गया। उसकी पुस्तक "कल्याण का अर्थशास्त्र" की रचना समुदाय के आर्थिक कल्याण की धारणा तथा समुदाय के राष्ट्रीय लाभांश की मात्रा, प्रकृति एवं वितरण के अध्ययन को केन्द्र मानकर की गई है। इस सम्बन्ध में पीगू ने वही दृष्टिकोण अपनाया जो कि एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" (Wealth of Nations) में अपनाया था अर्थात् "राष्ट्रीय लाभांश-आय संबंधी दृष्टिकोण" (National Dividend Income Approach)।

पीगू के मतानुसार फलदायक अर्थविज्ञान का लक्ष्य-कल्याण को बढ़ाने वाले व्यावहारिक साधनों को सुगम बनाना होना चाहिये। पीगू ने अर्थशास्त्र का क्षेत्र उस सामाजिक कल्याण तक सीमित कर दिया जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है अर्थात् पीगू ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आर्थिक कल्याण तक सीमित कर दिया। उसके मतानुसार आर्थिक कल्याण के अन्तर्गत संतुष्टि अथवा असतुष्टि का वह समुदाय सम्मिलित है जो कि मुद्रा-मापक के सम्बन्ध में लाया जा सके। इसी तरह मुद्रा-मांग की कीमत सन्तुष्टि की माप कर सकती है तथा कीमत इच्छा एवं सन्तुष्टि दोनों की मापक होगी। पीगू के मतानुसार सामाजिक कल्याण का अभिप्राय व्यक्तिगत सन्तुष्टि एवं असंतुष्टि के बीच संतुलन पर निर्भरित व्यक्तिगत कल्याण का योग है। उसने बताया कि राष्ट्रीय लाभांश (National Dividend) आर्थिक कल्याण की आधार शिला है तथा राष्ट्रीय आय का अर्थ व्यक्तिगत आयों तथा सामान्य कल्याण का योग है। इस प्रकार पीगू का मत था कि यदि "आय का अन्तरण धनी व्यक्तियों की ओर से निर्धन व्यक्तियों की ओर किया जाये जिससे वे अपने तीव्र आवश्यकताओं को संतुष्ट कर कर सकें तो समाज की कुल संतुष्टि की मात्रा में वृद्धि होगी" any transference of income from a relatively rich man to a relatively poor man of similar temprament, since it enables more intense wants to be satisfied at the expense of less intense wants, must increase the agregate sum of satisfaction.)

योगिता ह्रास नियम के आधार पर पीगू ने यह निष्कर्ष निकाला कि धनी

व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों की ओर का धन का अन्तरण करने से कुल सामान्य आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।

पीगू के आर्थिक नीति के विभिन्न मापों, उनके प्रभावों आकारो, तथा राष्ट्रीय आय के वितरण का विस्तृत का विवेचन किया तथा सामाजिक कल्याण की मात्रा को अधिकतम करने के हेतु उसने सरकारी हस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया। उसने बताया कि एक प्रतियोगी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक नीति की केन्द्रीय समस्या सीमान्त निजी उत्पादो एव सीमान्त सामाजिक उत्पादो के बीच की बाधाओं को दूर करना होनी चाहिये। राज्य द्वारा वितरण के क्षेत्र मे समानता को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाकर कल्याण की मात्रा अधिकतम की जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त पीगू ने अपनी पुस्तक में बढ़ते हुये एव घटते हुये पूर्ति-मूल्य, राज्य द्वारा प्रतियोगी कीमतो का नियमन, इगलैण्ड की तात्कालिक आर्थिक नीति की समस्याओं, एकाधिकार का नियत्रण, सहकारिता, राज्य द्वारा उद्योगो का सचालन, औद्योगिक शांति, न्यूनतम मजदूरी तथा अन्य आर्थिक धारणो का विवेचन किया है। इन सभी धारणों ने उसके आर्थिक विश्लेषण मे महत्वपूर्ण स्थान पाया है क्योकि ये सब एक या दूसरे तरीके से राष्ट्रीय लाभांश एव इसके वितरण को प्रभावित करती हैं। पीगू ने व्यापार चक्र का एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया जो कि व्यापारिक-चेतनाओं के विषयगत कारको पर आधारित है। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि उसके अर्थशास्त्र का लक्ष्य सामाजिक कल्याण था और उसने किसी भी आर्थिक नीति का उद्देश्य अधिकतम अथवा सर्वोत्तम कल्याण की मात्रा को प्राप्त करना बताया।

(४) जे० ए० हॉब्सन (१८५८-१९४०)
(J. A. Hobson)

हॉब्सन के जीवन काल मे अर्थशास्त्र की रिकार्डियन पद्धति विखण्डनीयता की धीमी प्रक्रिया का मुकाबला कर रही थी तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अनेक विरोधाभासी तत्वो को जन्म मिल रहा था। वह अपने सामाजिक सुधारकों, विशेषकर—रस्किन (Ruskin) और टॉयनबी (Toynbee) के प्रभाव मे आया तथा हॉब्सन द्वारा आर्थिक समस्याओं की व्याख्या मे उनके प्रभाव को सर्वत्र देखा जा सकता है। हॉब्सन ने क्लासिकल अर्थव्यवस्था की आलोचना इस आधार पर की थी कि यह मुख्यतः उत्पादन एवं वितरण से ही सम्बन्धित थी। उसके मतानुसार प्रत्येक कल्याण की दृष्टि से विचार करना चाहिए तथा कल्याण का अर्थ है "अच्छा जीवन"। अपनी पुस्तक "वितरण का अर्थशास्त्र" (Economics of Distribution) में वितरण की सामाजिक-आर्थिक समस्या का विवेचन किया। उसने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का बहिष्कार किया। फेबियन समाजवादियो की तरह ही लगान को केवल भूमि से प्राप्त होने वाली आय न समझकर उत्पत्ति के

साधनों से प्राप्त होने वाली आय समझते। उसने राष्ट्रीय लाभांश का विभाजन तीन भागों में करना चाहा जिनमें से प्रथम भाग उत्पत्ति के साधनों की कार्यक्षमता, औसत एवं इसको कायम रखने पर व्यय होना चाहिए, दूसरा भाग उत्पत्ति के साधनों की कार्यक्षमता बढ़ाने तथा आर्थिक प्रगति के लिए व्यय होना चाहिए तथा तथा तीसरा भाग अनुत्पादक आधिक्य (Unproductive Surplus) के रूप में रहना चाहिए।

न्यून-उपभोग के सिद्धान्तों के रूप में हॉब्सन ने व्यापार चक्र के सिद्धान्त में भी योगदान किया। उसने बताया कि न्यून-उपभोग और अधिक बचत ही व्यापक बेकारी के मूल कारण हैं। उसने व्यय के स्तर एवं उपभोग के स्तर के बीच जो सम्बन्ध स्थापित किया अर्थात् श्रमिकों द्वारा अधिक मात्रा में व्यय करने की [illegible] को [illegible] मिलने के हेतु [illegible] बढ़ाया, वह सब उसके मौलिक विचार ही थे। मन्दीकाल के निवारणार्थ उसने सार्वजनिक निर्माण कार्यों का सुझाव दिया तथा इन कार्यों की वित्त-व्यवस्था के हेतु [illegible] एवं सार्वजनिक ऋण का सुझाव रखा। अपने आदर्शवाद के द्वारा हॉब्सन ने अमरीकी आर्थिक विचारधारा को भी काफी हद तक प्रभावित किया है।

(५) एफ० ए० फेटर (१८६३-१९४९)
(F. A. Fetter)

अमेरिकन अर्थशास्त्रियों में एफ० ए० फेटर का नाम काफी महत्वपूर्ण है तथा इसको विद्वानों ने एक मौलिक विचारक के रूप में स्वीकार किया है। फेटर के ऊपर आस्ट्रियन सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा था जोकि उसके प्रारम्भिक लेखों एवं विचारों में स्पष्ट रूप से स्पष्ट होता है। प्रो० हेने (Haney) के शब्दों में, "अपने प्रारम्भिक विचारों में उसने मुख्य रूप आस्ट्रियन सिद्धान्त को स्वीकार किया, लेकिन जबकि वह अधिक विषयगत एवं मनोवैज्ञानिक था, वह अपने विचारों को भौतिकवाद एवं सुखवाद से मुक्त करता दिखाई देता है। किसी वस्तु के मूल्यांकन में स्वतन्त्र चुनाव को अधिक महत्व देकर उसने सीमान्त उपयोगिता की गणना पर विशेष महत्व दिया।" (In his earlier thought, he adopted subsiantially the Austian theory; but, while, he remained highly subjective and psychological, he sought to free his thought of materialism and hedonism. Adopting the volitional psychology, he made valuation a matter of free choice rather than of calculation of utilily.) इसके अतिरिक्त फेटर ने मूल्य-अर्थशास्त्र (Price Economics) का विरोध किया और इसके स्थान पर कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) का समर्थन किया। उसने मूल्य एवं वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया। यह स्मरणीय है कि इस सम्बन्ध में फेटर ने भौतिक सीमाओं एवं लागत तत्वों को बहुत कम महत्व प्रदान किया।

(६) रिचार्ड टी० एली (१८५४-१९४३)

(Richard T. Ely)

प्रो० एली द्वारा रचित पुस्तक "अर्थशास्त्र की रूप रेखा" (Outline of Economics) का आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसने आर्थिक विचारो की परिभाषाओं एवं उनके क्षेत्रो के विषयों में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं। प्रो० एली की विचारधारा पर प्राचीन ऐतिहासिक सम्प्रदाय (Old Hisiorical School) तथा समाजवादी प्रवृत्तियो का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रो० हेने के शब्दों में, "निष्कर्ष रूप मे उसकी गणना प्राचीन ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों म की जा सकती है तथा सामाजिक संस्थाओं, विशेषकर सम्पत्ति एवं संविदा से सम्बन्धित संस्थाओ के सम्बन्ध मे उसका अनवरत प्रभाव . . . दिनो मे प्रो० एली को . . . समय ने यह सिद्ध कर दिया . . . माध्य के रूप मे खड़ा है . . . वास्तविक कमजोरियो का निराकरण किया जा सकता है" (He may on the, whole, beclosed as one of the older historical school, and his continued emphasis of the significance of social institutions, and especially those connected with property and contract, has been an important factor. Prof. Ely, in his earlier days, was criticized for socialistic tendencies. Time has proved that in reality he stood for a golden mean in social reform that now is the ground upon which the fallacies of real socialism can most effectively be met.)।

(७) आर० ए० सैलिगमैन (१८६१-१९३९)

(Ediven R. A. Seligman)

प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्रियो मे प्रो० सैलिगमैन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने मूल्य एवं वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तो मे वह जे० बी० क्लार्क (J. B. Clark) का अनुयायी प्रतीत होता है, तथापि यह स्पष्ट है कि उसने अर्थशास्त्र का एक विभिन्न क्षेत्र स्वीकार किया। सैलिगमैन की पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धात" (Principles of Economics) का आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे एक अद्वितीय स्थान है। इस पुस्तक के अन्तर्गत सैलिगमैन ने जे० बी० क्लार्क, आस्ट्रियन सम्प्रदायवादियों, परम्परावादियो विचारकों, ऐतिहासिक सम्प्रदायवादियों तथा नवपरम्परावादियों के विचारों का एकीकरण करने का सफल प्रयास किया। करारोपण के सम्बन्ध मे सैलिगमैन की विचारधारा बहुत श्रेष्ठ मानी जाती है।

(८) प्रो० टी० एन० कारवर

(Prof. T. N- Carver)

टी० एन० कारवर की पुस्तक "धन का वितरण" (Distribution of Wealth) का आर्थिक विचारधारा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसके विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उसका विशेष झुकाव परम्परावादी एवं नव-परम्परावादी विचारों पर रहा है। कारवर ने फिशर (Irving Fisher) और क्लार्क (J. B. Clark) में पाई जाने वाली विषयगत भावनाओं की कटु आलोचना की है। लगान एवं मूल्य के सम्बन्ध में उसने बताया कि लगान के अन्तर्गत मूल्य का समावेश नहीं हो सकता। प्रो० हेने के शब्दों में "कारवर के दृष्टिकोण से लगान के अन्तर्गत मूल्य का समावेश नहीं होता जबकि मजदूरी के अन्तर्गत मूल्य का समावेश हो जाता है क्योंकि भूमि इसके स्वामी से पृथक होती है तथा किसी लाभ के पारितोषिक के बिना काम करने को प्रेरित नहीं करती" (There is a sense, carver holds, in which rent does not enter prices as wages do, for land is separable from the owner and does not have to be persuaded to work by some offer of advantage)। मजदूरी की समस्या का उल्लेख करते हुये कारवर ने माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत (Malthusian theory of Population) पर विशेष महत्व प्रदान किया है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कारवर ने अपने विचारों के प्रतिपादन में भौतिकवाद पर बहुत बल डाला है।

(९) ई० एच० चैम्बर लैन (E. H. Chamberlin)

प्रो० चैम्बरलैन के प्रबन्ध (Thesis) "एकाधिकारी प्रतियोगिता का सिद्धांत" (The Theory of Monoplistic Competition) का आर्थिक विचार-धारा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। वह बाजार की दशाओं के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विवेचन, विशेषकर प्रतिस्पर्धा एवं एकाधिकार की अतिवादी स्वरूपों से पूर्णतया परिचित था। उसने एकाधिकारी मूल्य के परम्परावादी सिद्धांतों एवं प्रतियोगी मूल्य का समन्वय प्रस्तुत किया। चैम्बरलैन से पूर्ववर्ती लेखकों ने एकाधिकार एवं प्रतियोगिता को वैकल्पिक दशायें माना था परन्तु चैम्बरलैन ने उनके इस निष्कर्ष को दोषपूर्ण बताया। उसने बताया कि बहुत से बाजारों में एकाधि- एवं प्रतियोगिता दोनों दशाओं के तत्व पाये जाते हैं और इस कारण उन्हें वैकल्पिक ... स्वीकार कर लेना दोषयुक्त है। इस सम्बन्ध में चैम्बरलैन का दृष्टिकोण कूर्नो Curnot) के दृष्टिकोण के समान था क्योंकि दोनों विचारकों ने ही बाजारू मूल्य ... अपने विश्लेषण को मौलिक मान्यता के रूप में एकाधिकार से स्वीकार किया। एकाधिकारी दशाओं के सम्बन्ध में मूल्य निर्धारण की समस्या का अध्ययन

करते हुये चैम्बरलेन ने बताया कि विशुद्ध प्रतियोगी दशाओं की तुलना में एकाधिकारी दशाओं के अन्तर्गत साम्य-मूल्य की मात्रा ऊंची होगी तथा उत्पादन की मात्रा नीची होगी। उसने बताया कि विशुद्ध प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकारी के लाभ की मात्रा कम हो सकती है और ज्यादा भी हो सकती है, परन्तु यह सत्य है कि कुछ गिने-चुने प्रतिस्पर्धकों की तीव्र प्रतियोगिता से एकाधिकारी तत्व को सुरक्षित करने के हेतु अधिक व्यय की आवश्यकता पड़ती है। एकाधिकारी दशाओं अन्तर्गत विशेष फर्म के विश्लेषण से, चैम्बरलेन विक्रेताओं एवं मौलिक फर्मों के समूहों की ओर प्रेरित हुआ और उसने यह तर्क दिया कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त फर्म से अधिक लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

———

विभाजन (Division of Labour) कर दिया गया था। इस काल तक पशुओं को धन समझा जाता था, सोने-चाँदी का प्रयोग आभूषणों के रूप में किया जाता था, मुद्रा का प्रचलन नहीं हुआ था तथा अदल-बदल (Bortes) की प्रथा के द्वारा ही विनिमय कार्य सम्पन्न किया जा रहा था। महाकाव्य काल में भी वैदिककालीन विचारधाराओं का पालन किया जा रहा था। यद्यपि इस काल में नैतिक एवं धार्मिक विचारों के ही अधिक दर्शन होते हैं, तथापि यह निश्चित है कि इस काल में आर्थिक दशा का विकास हो चुका था तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति, राजा, राज्य आदि संस्थाओं ने स्थान ग्रहण कर लिया था। यह स्मरणीय है कि महाकाव्य काल में वर्णाश्रम में जटिलता उत्पन्न हो गई थी अर्थात् अब वर्ण-व्यवस्था (श्रम-विभाजन) कार्य के बजाय जन्म पर आधारित हो गई थी। वर्णों में भी अनेक उपवर्णों की की स्थापना हो चुकी थी तथा उनके कार्य भी भिन्न-भिन्न बनते जा रहे थे। ऐसा भी ज्ञात होता है कि विभिन्न व्यवसायों के व्यक्तियों ने अपने विभिन्न सगठन कायम कर लिये थे जो कि "श्रेणी" के नाम से प्रसिद्ध थे। वस्तुओं के उत्पादन, क्रय-विक्रय आदि का कार्य इन्हीं श्रेणियों के द्वारा किया जाता था। विनिमय के क्षेत्र में अदल-बदल की प्रथा के स्थान पर मुद्रा-विनिमय (Money Exchange) की प्रथा का उदय हो चुका था तथा सिक्कों के सम्बन्ध में सभी निर्णय व्यापारिक सगठनों के मुखिया "श्रेष्ठी" के द्वारा किये जाते थे। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि महाकाव्य काल में एक ओर तो वैदिककालीन स्थापित वर्णाश्रम में जटिलता बढ़ती जा रही थी तथा दूसरी ओर विनिमय एवं व्यापार के क्षेत्र में उन्नति होती जा रही थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में उसके प्रधान मंत्री ने जो कि कौटिल्य, चाणक्य और विष्णुगुप्त तीन नामों से प्रसिद्ध है, "अर्थशास्त्र" नामक ग्रन्थ की रचना की। कौटिल्य के इस ग्रन्थ को यदि व्यावहारिक राजनैतिक ग्रन्थ कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कौटिल्य के मतानुसार राजा का प्रमुख कर्तव्य जनता की भलाई करना है। उसने प्रजा के हित में समस्त प्राकृतिक साधनों के प्रयोग का भार राजा के कन्धों पर रखा है। उसके मतानुसार व्यापार, पशु-कल्याण, कृषि की उन्नति, खानों की खुदाई, सिंचाई आदि का काम अर्थात् समस्त आर्थिक क्रियाओं एवं आर्थिक संस्थाओं आदि का विकास एवं प्रबन्ध राज्य को ही करना चाहिये। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में करों (Taxation) का भी उल्लेख किया है। "अर्थशास्त्र" में भूमि-कर, वस्तुओं के आयात एवं निर्यात कर, विक्रय-कर एवं चुंगी आदि करों का विवरण है। इस ग्रन्थ में पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के प्रशासन का भी उल्लेख मिलता है। नगरपालिका द्वारा किस तरह करारोपण करना चाहिये कितना कर लगाना चाहिए, वस्तुओं का आयात-निर्यात किस तरह होना चाहिये, वस्तुओं का मूल्य किस प्रकार ठीक बना रहे, आदि समस्याओं पर कौटिल्य ने पूर्ण प्रकाश डाला है। कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" के अतिरिक्त इस काल क विचारों का आभास स्मृतियों से होता है जिनके अन्तर्गत सामाजिक

विभाजन (Division of Labour) कर दिया गया था। इस काल तक पशुओं को धन समझा जाता था, सोने-चांदी का प्रयोग आभूषणों के रूप में किया जाता था, मुद्रा का प्रचलन नहीं हुआ था तथा अदल-बदल (Bortes) की प्रथा के द्वारा ही विनिमय कार्य सम्पन्न किया जा रहा था। महाकाव्य काल में भी वैदिककालीन विचारधाराओं का पालन किया जा रहा था। यद्यपि इस काल में नैतिक एवं धार्मिक विचारों के ही अधिक दर्शन होते हैं, तथापि यह निश्चित है कि इस काल में आर्थिक दशा का विकास हो चुका था तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति, राजा, राज्य आदि संस्थाओं ने स्थान ग्रहण कर लिया था। यह स्मरणीय है कि महाकाव्य काल में वर्णाश्रम में जटिलता उत्पन्न हो गई थी अर्थात् अब वर्ण-व्यवस्था (श्रम-विभाजन) कार्य के बजाय जन्म पर आधारित हो गई थी। वर्णों में भी अनेक उपवर्णों की की स्थापना हो चुकी थी तथा उनके कार्य भी भिन्न-भिन्न बनते जा रहे थे। ऐसा भी ज्ञात होता है कि विभिन्न व्यवसायों के व्यक्तियों ने अपने विभिन्न संगठन कायम कर लिये थे जो कि "श्रेणी" के नाम से प्रसिद्ध थे। वस्तुओं के उत्पादन, क्रय-विक्रय आदि का कार्य इन्हीं श्रेणियों के द्वारा किया जाता था। विनिमय के क्षेत्र में अदल-बदल की प्रथा के स्थान पर मुद्रा-विनिमय (Money Exchange) की प्रथा का उदय हो चुका था तथा सिक्कों के सम्बन्ध में सभी निर्णय व्यापारिक संगठनों के मुखिया "श्रेष्ठी" के द्वारा किये जाते थे। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि महाकाव्य काल में एक ओर तो वैदिककालीन स्थापित वर्णाश्रम में जटिलता बढ़ती जा रही थी तथा दूसरी ओर विनिमय एवं व्यापार के क्षेत्र में उन्नति होती जा रही थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में उसके प्रधान मंत्री ने जो कि कौटिल्य, चाणक्य और विष्णुगुप्त तीन नामों से प्रसिद्ध है, "अर्थशास्त्र" नामक ग्रन्थ की रचना की। कौटिल्य के इस ग्रन्थ को यदि व्यावहारिक राजनैतिक ग्रन्थ कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कौटिल्य के मतानुसार राजा का प्रमुख कर्तव्य जनता की भलाई करना है। उसने प्रजा के हित में समस्त प्राकृतिक साधनों के प्रयोग का भार राजा के कन्धों पर रक्खा है। उसके मतानुसार व्यापार, पशु-कल्याण, कृषि की उन्नति, खानों की खुदाई, सिंचाई आदि का काम अर्थात् समस्त आर्थिक क्रियाओं एवं आर्थिक संस्थाओं आदि का विकास एवं प्रबंध राज्य को ही करना चाहिये। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में करों (Taxation) का भी उल्लेख किया है। "अर्थशास्त्र" में भूमि-कर, वस्तुओं के आयात एवं निर्यात कर, विक्रय-कर एवं चुंगी आदि करों का विवरण है। इस ग्रन्थ में पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के प्रशासन का भी उल्लेख मिलता है। नगरपालिका द्वारा किस तरह करारोपण करना चाहिये कितना कर लगाना चाहिए, वस्तुओं का आयात-निर्यात किस तरह होना वस्तुओं का मूल्य किस प्रकार ठीक बना रहे, आदि समस्याओं पर कौटिल्य ने पूर्ण प्रकाश डाला है। कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" के अतिरिक्त इस काल विचारों का आभास स्मृतियों से होता है जिनके अन्तर्गत सामाजिक

स्थापना तथा राज्य के द्वारा किये जाने वाले कार्यों की जटिलता का आभास मिलता है।

मध्यकालीन भारत की आर्थिक विचारधारा का आभास हमें कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, गुरु नानक आदि संतों एवं कवियों के उपदेशों एवं रचनाओं से होता है। इनके विचारों में प्रचलित जाति-प्रथा की जटिलता के फलस्वरूप उत्पन्न सामाजिक दोषों की विरोधी प्रतिक्रिया के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त इन महानुभावों के विचारों में दार्शनिक विचारों का भी आभास मिलता है। वस्तुत इन्होंने सांसरिक आर्थिक व्यापारों के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई, फिर भी इनके द्वारा श्रम के महत्व (Dignity of Labour) एवं जाति-प्रथा में आ गये दोषों को दूर करने का प्रयत्न सराहनीय है। मुगल शासन काल में अबुलफज़ल द्वारा रचित ग्रन्थ "आइने अकबरी" एक महत्वपूर्ण कृत्य है। श्री वैनी सरकार (Benoy Sarkar) ने तो अबुल-फज़ल को मुस्लिम चाणक्य (Muslim Chanakye) कहकर पुकारा है। सम्राट अकबर के शासन काल में प्रसिद्ध वज़ीर टोडरमल द्वारा किए गये भूमि-प्रबन्ध की रूप-रेखा अबुल-फज़ल ने ही तैयार की थी। भूमि का वितरण, भूमि की माप, भूमि-कर की नियुक्ति. सिंचाई की व्यवस्था एवं तकावी सम्बन्धी विचार अबुल फज़ल की ही देन है। इसके अलावा उसने मूल्य के निर्धारण, वस्तुओं के आयात-निर्यात, समाज-कल्याण आदि पर भी अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि अबुल फज़ल ने अपनी पुस्तक में कृषि, लगान, व्यापार, तकावी ऋण, बाजार, मूल्य एवं समाज-कल्याण सम्बन्धी महत्वपूर्ण आर्थिक सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

उपरोक्त में भारत के प्राचीन एवं मध्यकालीन आर्थिक विचारों की रूप-रेखा से यह आभास होता है कि भारतीय आर्थिक विचारधारा का कोई सुनिश्चित प्रवाह नहीं रहा है जिसके फलस्वरूप पाश्चात्य देशों की तरह भारतीय मार्थिक विचारों में क्रमबद्धता के दर्शन नहीं होते। इसका मुख्य कारण भारतवासियों की स्थिर मनोवृत्ति है। आदिकालीन भारतीय समाज आत्मनिर्भर गांवों में बसा था और इसके जीवन में विशेष आर्थिक जटिलताएं स्थान ग्रहण नहीं कर पाई थीं। सामाजिक संगठन को सुदृढ़ बनाने के हेतु भारतवासियों ने सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों में क्रमानुसार विभक्त कर लिया है जिसे एकमात्र श्रम-विभाजन की संज्ञा दी जा सकती है। राज्यों के संगठन के उदय के साथ-साथ शनैः शनैः जो समस्याएं उत्पन्न हुईं उन्हीं का समाधान कर लिया गया। प्राचीन एवं मध्कालीन भारतीय विचारकों द्वारा सामाजिक, नैतिक, धार्मिक. राजनैतिक विचारों के संदर्भ में ही आर्थिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

आधुनिक भारतीय आर्थिक विचारधारा का सूत्रपात काल भी बहुत दीर्घ नहीं है। ब्रिटिश शासन काल में जब अनेक देश-प्रेमियों ने देश को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करने तथा देश के प्रतिकूल पड़ने वाली अर्थव्यवस्था को समाप्त

करने का सूत्रपात माना जा सकता है। १६ वी और १७ वी शताब्दी में भारत को "विश्व की औद्योगिक शिल्प शाला" (Industrial workshop of the world) का सम्मान प्राप्त था। लेकिन ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण एव अबन्धवादी नीति के फलस्वरूप भारत के उद्योग धन्धे नष्ट प्राय हो गए तथा भारत इगलैंड को कच्चे माल का निर्यातकर्ता एव इगलैंड से तैयार माल का आयातकर्ता देश बन गया। इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में कृषि-उद्योग व्यापार वाणिज्य प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र मे जटिलताओं ने जन्म लिया। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में कई प्रसिद्ध विचारक एवं राष्ट्र भक्तों ने देश की पुरानी खोखली अर्थव्यवस्था को उखाड़कर उसके स्थान पर नवीन एव राष्ट्रीय हित के अनुकूल अर्थव्यवस्था कायम करने का प्रयास किया। इन विचारको एव देश भक्तो मे दादा भाई नौरोजी (Dadabhai Noroji), रमेश चन्द्र दत्त (Ramesh Chandra Datta), महादेव गोविन्द रानाडे (Mahadeo Govind Ranade), और गोपाल कृष्ण गोखले (Gopal Krishan Gokhale) के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः यदि उक्त चारों विचारकों को भारतीय अर्थव्यवस्था का जनक (Father of Indian Economy) कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। निम्नोक्त मे इन चारों विचारको के आर्थिक विचारो का विवेचन किया गया है।

भारतीय आर्थिक विचारधारा पर समकालीन आर्थिक विचारो का प्रभाव (Influence of Contemporary economic Ideas on Indian Economic Thought):—भारत की आर्थिक विचारधारा दूसरे देशो के अनुभवो और विचारो से बहुत अधिक प्रभावित हुई है। उन्नीसवी शताब्दी और उससे आगे के भारतीय विचारकों ने कभी भी कोई नया सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास नही किया और न ही किसी विशेष सम्प्रदाय या विचारधारा को ही जन्म दिया। उन्होने तो भारत के सदर्भ मे विभिन्न सिद्धान्तो का केवल अध्ययन मात्र ही किया। अधिकाश भारतीय अर्थशास्त्री आलोचक मात्र थे जिन्होने मुख्य रूप से भारत की आर्थिक समस्याओं के कारणो का विवेचन किया तथा इस बात की खोज की कि तत्कालिक सरकार की दोषपूर्ण एव स्वार्थ प्रधान नीति कहा तक इन समस्याओं के हेतु उत्तरदाई थी। इन्ही आलोचको के आर्थिक विचारों के माध्यम से "भारतीय अर्थशास्त्र" नामक धारणा की उत्पत्ति हुई।

प्रारम्भिक भारतीय विचारक (यथा-दादा भाई नौरोजी, डिगबी और रमेश चन्द्र दत्त) स्वतन्त्र व्यापार की नीति के लाभों से बहुत अधिक प्रभावित थे। वी०

भारत में जहाँ कि एक शिशु उद्योग के लिए संरक्षण की आवश्यकता है, किसी प्रकार का संरक्षण प्रदान नहीं किया गया है।"[1] यहाँ हम आर० सी० दत्ता के विचारों में भारत के शिशु उद्योगों के निमित्त संरक्षण की नीति का समर्थन पाते हैं परन्तु वह स्वतन्त्र व्यापार की नीति का विरोध करता हुआ दिखाई नहीं देता क्योंकि स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्तों और प्रबन्ध व्यापार के अर्थशास्त्र के अनुसार भी घरेलू उद्योगों पर उत्पादन कर को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

भारतीय विचारकों के विचारों को फ्रेड्रिक लिस्ट के विचारों ने भी प्रभावित किया। लिस्ट और कैरे द्वारा प्रतिपादित संरक्षण के सिद्धान्त से रानाडे और गोखले बहुत प्रभावित हुए, यद्यपि १६ वीं शताब्दी के समाजवादियों ने उनको अधिक प्रभावित नहीं किया था। इसका कारण यह था कि भारतीय विचारकों ने संरक्षण एवं प्रबन्ध व्यापार की नीति को इंगलैंड, जर्मनी और अमेरिका में सफल होते अपनी आँखों से देखा था, जबकि समाजवाद अथवा साम्यवाद को विश्व में कहीं भी व्यवहृत होते नहीं देखा। फिर उस समय भारतीय विचारकों के मन में समाजवाद की भावना का आना इसलिए भी असम्भव था क्योंकि उस समय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन था। रानाडे के विचारों को प्रभावित करने वालों में लिस्ट और जर्मन के सापेक्षतावादियों (German Relativists) का नाम प्रमुख है जिन्होंने एक ओर तो क्लासिकल अर्थशास्त्रियों द्वारा अपने सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता के बारे में की गई वकालत को गलत सिद्ध किया तथा दूसरी ओर, देश की अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास करने का समर्थन किया। बी० दत्ता के शब्दों में, "नव विकसित उद्योगों की आवश्यकता ने इंगलिश परम्परावादी लेखकों को स्वतन्त्र व्यापार के समर्थक बना दिया। समान आवश्यकता ने लिस्ट को संरक्षणवादी तथा रानाडे को वणिकवादी बना दिया। इस प्रकार स्मिथ, लिस्ट और रानाडे सभी राष्ट्रीय अर्थशास्त्री थे।"[2]

1 "As an instance of fiscal injustice, the Indian Act of 1896 is unexampled in any civilized country in modern times Most civilized Governments protect their home industries by prohibitive duties on the foreign goods. The most thorough of Free Trade Government do not excise home manufactures when imposing a moderate customs duty on imported goods for the purpose of revenue. In India, where an infant industry required protection, even according to the maxims of J. S. Mill, no protection has ever been given."

—R. C. Datta : Economic History of Indian Victorian Era, P. 543.

2 "The needs of the newly growing industries made the English Classical writers free-treders. The same needs made List a proectionist and Ranade a mercantilist. In essence, therefore, Smith, List and Ranade were all national economists." —B. Datt ;

"Back ground of Ranadey's Economics."—Indian Journal of Economics—1942.

रानाडे के आर्थिक विचार
(Economics Ideas of Ranadey)

महादेव गोविन्द रानाडे को भारतीय अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है। रानाडे वह प्रथम व्यक्ति था जिसने कहा कि अर्थशास्त्र के निष्कर्षों की विशेषता सापेक्षता में है तथा अर्थविज्ञान में सिद्धांत को व्यवहार से पृथक करना सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। इसी आधार पर रानाडे ने क्लासिकल राजनैतिक अर्थव्यवस्था के निष्कर्षों की कटु आलोचना की। डा० बी० एन० गंगुली (B. N. Ganguli) ने २६ दिसम्बर १९५५ को पूना में भारतीय आर्थिक संगठन (Indian Economic Association) के ३८ वें वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुये कहा था, कि रानाडे ने उस कार्य के ऊपर प्रकाश डाला जिसका निर्माण अस्पष्ट भाषा में किया गया था और जोकि अपेक्षाकृत हाल ही में अधिक व्यापक रूप में क्रियाशील हुआ। रानाडे के शब्दों में "यह क्रिया (Thesis) यह है कि परम्परावादी राजनैतिक अर्थव्यवस्था की मान्यताओं ने आर्थिक स्थिरता के अखण्ड विश्लेषण का प्रतिपादन किया तथा इन विचारकों ने समाज की गतिशील प्रगति या विकास के सम्बन्ध में किसी प्रकार के सुझाव प्रस्तुत नहीं किए।"[1] इस प्रकार रानाडे ने "भारतीय अर्थशास्त्र" (Indian Economics) नामक उस नई धारणा को जन्म दिया जिसने कि विगत दो या तीन संततियों के सभी भारतीय अर्थशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर खींचा। डा० गंगुली के शब्दों में, "रानाडे की महानता हमारे लिए भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये संदर्भ का फ्रेम तैयार करने तथा विचार का एक नया तरीका प्रस्तुत करने में जोकि हमें इस ओर प्रवृत्त करता है कि अर्थशास्त्र की प्रगति न केवल सिद्धान्तों के एक निकाय के रूप में होनी चाहिए अपितु सामाजिक नीति के एक उपकरण के रूप में भी होनी चाहिए, में निहित है।"[2] यह सत्य है कि रानाडे द्वारा क्लासिकल सम्प्रदाय पर किया गया आक्रमण तथा प्रतिपादित राष्ट्रीय आर्थिक नीति अनेक मामलों में लिस्ट द्वारा अपने देश की सेवाओं के समतुल्य थीं। अन्तर केवल इतना था कि लिस्ट ने तो राजनैतिक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय पद्धति का

---

1 "Ranade lighted upon a thesis which has since been formulated in the sophisticated language and worked out in ever increasing detail in comparatively recent time. This thesis, in Ranade's words, is that the assumptions of classical political economy "furnish valid explanations of the economic statics" of any state of society, "they furnish no suggestions as to its dynamical progress or development."—Dr. Ganguli

2 "But Ranade's greatness lies in constructing for us a frame of reference for the study of Indian Economics and presenting a line and methodology of thinking which should lead us to the development of economics not merely as a body of doctrines but as an instrument of social policy." —Dr. Ganguli.

निर्माण किया था, लेकिन रानाडे ने इस तरह का सैद्धांतिक प्रयास नहीं किया। फिर भी जैसा कि एडम स्मिथ ने अपने समय की विशिष्ट दशाओं के अन्तर्गत इंगलिश आर्थिक विचारधारा के हेतु किया था वैसा ही रानाडे ने भारतीय अर्थशास्त्र के लिये किया। अतएव यदि एडम स्मिथ को "क्लासिकल अर्थशास्त्र के जनक" की पदवी दी जाती है तो रानाडे को भी "भारतीय अर्थशास्त्र के जनक" की पदवी दी जाती है। "भारतीय अर्थशास्त्र" से सम्बन्धित रानाडे की धारणा इस मान्यता पर आधारित थी कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त भाववाचक और सार्वभौमिक नहीं हो सकते। उन्हीं के शब्दों में, "सिद्धांत एक विस्तृत व्यवहार है, व्यवहार आवश्यक कारणों के सम्बन्ध में अध्ययन किया गया सिद्धांत है" (Theory is only employed practice, practice is theory studied in its relation to proximate causes)। इस प्रकार रानाडे ने अध्ययन की आगमन प्रणाली को अपनाते हुए तथा यह मानते हुये कि भारत में अर्थशास्त्र का सम्पूर्ण आधार पश्चिमी विश्व से सर्वथा भिन्न है, भारत की गरीबी और दूसरी सम्बद्ध आर्थिक समस्याओं के कारणों की खोज की।

क्लासिकल राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में रानाडे की आलोचना (Ranade's criticism of Classical Political Economy)—रानाडे ने क्लासिकल विचारकों के इस मत का खण्डन किया कि अर्थशास्त्र के सिद्धांत भाववाचक और सार्वभौमिक हैं। रानाडे के शब्दों में, "वे अध्यापक और पत्रकार जोकि हमें राजनैतिक प्रेरणाओं में निश्चित प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हैं, भारतीय अर्थशास्त्र के प्रश्न पर इस दृढ़ चेतावनी को भूल जाते हैं। उनकी धारणा यह है कि अर्थविज्ञान के सत्य, जैसा कि उनका विवेचन हमारी अधिक जनप्रिय इंगलिश पाठ्य पुस्तकों में किया गया है, पूर्णरूप से सत्य हैं तथा इन्हें प्रत्येक समय और स्थान पर, राष्ट्रीय प्रगति की अवस्था चाहे जैसी हो, व्यवहार के निर्देशक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। इन विचारकों के द्वारा इन सत्यों की व्यावहारिक क्रियाशीलता में सामाजिक, न्यायिक, नीतिक अथवा आर्थिक विभेदों को स्वीकार नहीं किया जाता है" (The same teachers and statesmen, who warn us against certain tendencies in our political aspirations, forget this solutary caution when the question at issue is one of Indian Economics. They seem to hold that the truths of Economic Science as they have been expounded in our most popular English text books, are absolutely and demonstrably true and must be accepted as guides of conduct for all time and place whatever might be the stage of national advance. Ethmical, social, juristic, ethical or economical differences in environments are not regarded as having any influence in modifying the practical application of these truths.)। रानाडे ने बताया कि इंगलिश क्लासिकल विचारकों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक सिद्धांत केवल इंगलैण्ड के पर्यावरण के ही अनुकूल हैं तथा इन्हें भारतीय परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता।

रानाडे की मुख्य धारणा यह थी कि आर्थकि नियमों को लागू करते समय समय, स्थान, पर्यावरण, आदतों, रीति-रिवाजों तथा देश के विगतकालीन इतिहास को भुलाया नहीं जा सकता।

रानाडे ने अर्थशास्त्र को विज्ञान की अपेक्षा कला के रूप में अधिक स्वीकार किया तथा केवलमात्र आगमन पद्धति को ही स्वस्थ आर्थिक जांच की एकमात्र पद्धति माना।[1] रानाडे ने अर्थशास्त्र को गतिशील सामाजिक विज्ञान के रूप में स्वीकार किया, स्थिर एवं गूढ़ विज्ञान के रूप में नहीं। वे इस मत के थे कि नैसर्गिक एवं जलवायु सम्बन्धी विभेदों के लिये क्षेत्रीय श्रम विभाजन का सिद्धांत अच्छा बताया जा सकता है लेकिन इसे शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा शक्तिहीन राष्ट्रों के शोषण के एक उपकरण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार रानाडे ने ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत को कच्चे माल का उत्पादक बनाए रखने की नीति का विरोध किया। रानाडे ने कृषि पर आधारित उद्योग एवं वाणिज्य के विकास द्वारा भारत को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का दावा किया। उनके मतानुसार राष्ट्र के आर्थिक विकास तथा आत्मनिर्भरता के लिये तथा अकाल आदि प्राकृतिक आपदाओं के विरुद्ध राष्ट्रीय बीमा प्रदान करने के हेतु उद्योग, व्यापार, एवं कृषि के बीच उचित संतुलन एवं समन्वय स्थापित करना चाहिए।[2]

रानाडे ने बताया कि भारत में रिकार्डो का लगान सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि यहां पर काश्तकारों द्वारा राज्य को एकाधिकारी लगान का भुगतान करना पड़ता है और इस तरह लगान अनाज के मूल्य का एक अंश बन जाता है। उन्हीं के शब्दों में "उसी प्रकार रिकार्डियन सिद्धान्त जो कि बताता है कि आर्थिक लगान मूल्य में प्रवेश नहीं करता, लागू नहीं होता है विशेषकर जब राज्य भूस्वामी को सभी अधिकृत भूमि का एकाधिकारी लगान चुकाना पड़ता है। इस देश में भूस्वामियों के बीच किसी तरह की प्रतिस्पर्धा नहीं है तथा भूमि कर लगान पर कर न होकर गरीब किसानों की मजदूरी और लाभ पर एक कर है तथा इस कर के दबाव में

---

1 "The method to be followed is not the deductive but the historical method, which takes account of the past in its forecast of the future, and relativity, and not absoluteness, characterizes the conclusions of Economical Science."

"There are those who seek to get over this difficulty by differentiating the Science from what they are disposed to call the Art of Economy." —Ranade

2 "A due coordination of the three fold forms of industrial activity, even if it be not immediately most advantageous to individuals in any one period, is a permanent national insurance against current dangers, and as such is economically the most beneficial urce in the interests of the community." —Ranade

वृद्धि के साथ-साथ काश्तकारों का जीवन स्तर भी गिरता जाता है" (In the same way Ricardian theory, which says that economic rent does not enter as an element of price, admittedly does not apply when all occupied land has to pay a monopoly rent to the State land lord. There is no competition among landlords in this country, for there is one true landord, and the socalled land tax is not a tax on rents proper but frequently encroaches upon the profits and wages of the poor peasant who has to submit perforce to a loss of status and accomodate himself to a lower standard of life as pressure increases.) ।

रानाडे ने उत्पत्ति के विभिन्न कारकों के बीच धन के वितरण की समस्या पर भी विचार किया तथा धन के न्यायपूर्ण वितरण के सम्बन्ध में राजकीय हस्तक्षेप का अनुमोदन किया। उसका मत था कि सरकार को व्यक्तिगत भूस्वामियों के समान ही काश्तकारों का भी ध्यान रखना चाहिए। रानाडे के शब्दों में, "कृषि श्रमिकों और काश्तकारों के सम्बन्ध में भी राजकीय हस्तक्षेप उतना ही आवश्यक है जितना कि यूरोप में फैक्ट्री श्रमिकों और खान में काम करने वाले श्रमिकों के लिए है। इसी प्रकार गरीब व असगठित उधारकर्ता वर्ग और साहूकारों के बीच के सौदों में ब्याज की दर के निर्धारण से सम्बन्धित संविदा की स्वतन्त्रता का नियमन, अपरिपक्व ऋणों की अदायगी के हेतु अस्थिर सम्पत्ति के विक्रय के विरुद्ध संरक्षण, ये सभी शक्तिशाली के विरुद्ध अशक्त के संरक्षण के उचित तरीके हैं जोकि वितरण की वास्तविक आजादी को समाप्त नहीं करते।"

ग्रामीण साख के सम्बन्ध में रानाडे के विचार—रानाडे का मत था कि हमारे देश में एक ओर तो पोस्ट आफिस सेविंग बैंक्स और प्रेसीडेन्सी बैंक के पास कोष बेकार पड़े रहते हैं, जबकि दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ती साख आपूर्ति का कोई वैकल्पिक साधन न होने के कारण साहूकारों द्वारा किसानों का शोषण किया जाता है। अतएव रानाडे ने इन बैंकों में पड़े बेकार कोष को ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार की सहायता और प्रेरणा से साख समितियाँ सगठित करने का सुझाव दिया। उसका यह भी मत था कि सरकार को कृषि बैंक्स के सगठित करने में पहल करनी चाहिये। यह कहना अनुचित न होगा कि सन् १६०४ में सहकारिता आन्दोलन का प्रादुर्भाव रानाडे द्वारा सुदृढ़ साख प्रणाली की स्थापना के सम्बन्ध में की गई वकालत का ही परिणाम था।

औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में रानाडे के विचार—रानाडे के देश की अर्थव्यवस्था के कृषिगत एवं औद्योगिक क्षेत्रों के बीच सन्तुलन कायम करने का मत व्यक्त किया। वह कृषि के बलिदान पर उद्योगों के विकास के पक्ष में नहीं था। उसकी राय में उद्योग एवं कृषि का विकास साथ ही साथ किया जाना चाहिए,

यद्यपि उद्योगों को उचित प्राथमिकता मिलनी चाहिये क्योंकि कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव कर करके रोजगार के वैकल्पिक साधन प्रदान करने की दृष्टि से यह अत्यावश्यक हैं। इस तरह रानाडे की आर्थिक विकास की योजना की मुख्य धुरी जनसंख्या का व्यवसायिक दृष्टि से पुनिर्विभाजन करने से सम्बन्धित थी। रानाडे के मतानुसार वैज्ञानिक अनुसन्धान और शिक्षा के द्वारा ही देश का औद्योगीकरण सम्भव है। रानाडे ने लोहा व इस्पात, कोयला आदि आधारभूत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान करने तथा बाद में कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास को आवश्यक ठहराया। औद्योगिक अथवा कृषिगत विकास के प्रत्येक स्तर पर रानाडे ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहायता मिलने का समर्थन किया।

आर्थिक विकास के सम्बन्ध में रानाडे के विचार—यह पहले बताया जा चुका है कि रानाडे ने भारतीय दशाओं में अबन्ध व्यापार की नीति को उचित नहीं ठहराया। उसने कृषि एवं उद्योगों के विकास में, साख पद्धति के संगठन में, ग्रामीण ऋणग्रस्तता को दूर करने में, भूमि सम्बन्धी कानूनों के समायोजन तथा दूसरी आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप एवं सहायता का अनुमोदन किया। यह स्मरण रहे कि रानाडे ने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) अपनाने का सुझाव दिया। रानाडे के शब्दों में, "यदि राज्य भूस्वामी और संप्रभु के कार्यों को स्वीकार करता है तो इसके कर्तव्यों का निश्चित रूप से व्यापक क्षेत्र हो जाता है। जनता के प्रतिनिधि के रूप में राज्य का यह अधिकार और दायित्व है कि वह उन सभी कार्यों को करे जो कि जनता की भलाई के हेतु आवश्यक हैं" (If the state assumes to itself the functions of landlord and sovereign naturally assume a wider scope, and no defence is, therefore, necessary for the position thus taken. The state, as representing the public, has a right, and is under corresponding obligation, to undertake all functions which it can best perform to public advantage).

जनसंख्या के प्रश्न पर रानाडे के विचार—यद्यपि उस समय भारत की जनसंख्या अधिक तेजी से नहीं बढ़ रही थी, फिर भी उस समय यह सत्य रानाडे के सम्मुख प्रस्तुत था कि देश में कृषि को छोड़कर रोजगार का कोई वैकल्पिक साधन नहीं है तथा कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार इतना अधिक है कि इसके कारण सर्वत्र बेकारी और गरीबी व्याप्त है। अतएव रानाडे ने जनसंख्या के व्यवसायिक वित ए. को ठीक करने का प्रस्ताव रक्खा तथा बेकारी व गरीबी की समस्याओं को करने की दिशा में देश का औद्योगीकरण करने का सुझाव दिया।

काश्तकारी सुधार और भूमि सम्बन्धी कानून पर रानाडे के विचार—ाडे ने काश्तकारों को स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार प्रदान करने तथा जमींदारों लगान को बढ़ा देने के अधिकार को प्रतिबन्धित करने का सुझाव दिया। यह

स्मरण रहे कि उसने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने की दिशा में कोई आवाज नहीं उठाई क्योंकि उसकी राय में यह प्रथा लाभदायक थी तथा प्राचीन परम्पराओं एवं प्रथाओं पर आधारित थी।

गोखले के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Gokhale)

गोपाल कृष्ण गोखले अपनी संतति का सर्वाधिक प्रभावशाली अर्थशास्त्री था। नि:सन्देह वह प्राथमिक रूप से एक आलोचक था लेकिन अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में उसके व्यापक ज्ञान और सूझ बूझ ने उसको ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित करने का अवसर प्रदान किया जो कि भारत की तात्कालिक परिस्थितियों एवं पर्यावरण में लागू होने के काबिल थे। गोखले को इम्पीरियल लेजिसलेचर के भारतीय सदस्य के रूप में सेवा करने का सुअवसर प्राप्त था जहाँ १६०२ से लेकर १६१२ तक के बीच में उसके द्वारा दिये गये बजट भाषण अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में बचत के बजट को भारत सरकार की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का सूचक समझा जाता था। इस सम्बन्ध में गोखले ने दो बात बताई—(क) बचत का बजट इस बात का संकेत है कि सरकार अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में जनता से धन वसूल करती है। (ख) इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि सरकार राष्ट्रीय विकास एवं सामान्य कल्याण के कार्यक्रमों को अपनाना नहीं चाहती है। गोखले के मतानुसार एक तो सरकार को जनता पर इतना कराभार नहीं थोपना चाहिये (केवल आपात काल को छोड़कर) कि बजट अतिरेक का निर्माण हो और दूसरे यदि कभी बजट में बचत भी रहती है तो इसका उपयोग जनता के कल्याणार्थ किया जाना चाहिये। इस दशा में जनता पर हल्की कर-वृद्धि को भी न्यायपूर्ण ठहराया जा सकता है, परन्तु सामान्य दशाओं में सरकार को संतुलित बजट ही बनाना चाहिये।

नमक कर पर गोखले के विचार—गोखले ने बताया कि नमक जीवन की एक आवश्यक आवश्यकता है तथा इस पर लगे कर का भार जनसंख्या के निर्धन वर्गों पर अधिक पड़ता है तथा इस कर में किसी भी तरह की वृद्धि जनसाधारण के कल्याण पर विपरीत प्रभाव डालेगी। कराधान के नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये गोखले ने कहा, "ठोस एवं उत्तम नीति यह होगी कि शुल्कों के घटते हुये स्तर के अन्तर्गत बढ़ते हुये उपभोग पर आय का विस्तार करना चाहिये ("The soundest and best policy would be to raise an expanding revenue on an expanding consumption under a diminishing scale of duties)। गोखले ने नमक कर की दर को कम करने का कई बार सरकार को सुझाव दिया। सन् १६०४ के अपने भाषण में गोखले ने इस सुझाव पर प्रकाश डाला कि सरकार को देश के भीतर ही नमक का उत्पादन करना चाहिये। गोखले ने वस्तु स्थिति

का चित्रण इन शब्दों में किया, "हमारे पास विस्तृत समुद्र-तट तथा नमक की खानें हैं और हम अपनी आवश्यकता के समस्त नमक का उत्पादन स्वयं कर सकते हैं, तथापि विद्यमान राजकोषिय पद्धति के अन्तर्गत समस्त आपूर्ति का लगभग १/३ नमक विदेशों से आता है" (We have an exteasive sea board and salt mines too, and can manufacture every pound of salt we need. And yet under the existing fiscal system, about a third of our supply comes from foreign countries.)

सूती वस्त्र पर उत्पादन-कर के सम्बन्ध में गोखले के विचार—सन् १८७८-७९ में सूती-वस्त्र पर आयात कर हटा दिया गया तथा १८९६ में आयात होने वाले ऊनी माल पर ३½% का कर लगा दिया गया तथा साथ ही साथ भारतीय मिलों में निर्मित समस्त सूती वस्त्र पर ३½% की दर से उत्पादन-कर लगा दिया गया। गोखले ने सूती वस्त्र पर लगे उत्पादन कर को उन्मूलित करने की जवरदस्त वकालत की तथा इस सम्बन्ध में दो तर्क प्रस्तुत किए—(i) इन करों को लागू करने के पीछे छिपी हुई भावना गलत और अन्यायपूर्ण है। (ii) इस तरह के परोक्ष कर का भार तुरन्त उपभोक्ता वर्ग पर पड़ता है। सन् १९०३ की बजट-स्पीच में गोखले ने कहा था, "मैं सोचता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कर की अदायगी वास्तव में उपभोक्ताओं द्वारा की जाती है जिसका अर्थ है—निर्धन वर्गों पर अधिक भार पड़ना, और इस तरह यह कर न केवल काफी सीमा तक मिल उद्योग को हतोत्साहित करता है अपितु यह हमारे निर्धन वर्गों के ऊपर एक एक अतिरिक्त एवं अनावश्यक भार भी डालता है" (I think there is no doubt that this duty is really paid by the consumers, which means by the bulk of our poorer classes, and thus, while it hampers the mill industry to a considerable extent, it also constitutes a serious and perfectly unnecessary additions to the burdens of our poorer classes.)

भूमि-कर के सम्बन्ध में गोखले के विचार—दूसरे भारतीय विचारकों की तरह गोखले ने भी देशभर में भूमि कर के स्थाई वन्दोवस्त का समर्थन किया तथा रैयतवाड़ी क्षेत्रों में भूमि कर की दर घटाने की जोरदार वकालात की। सन् १९०४ की वजट स्पीच में गोखले ने यह मत व्यक्त किया किया कि भारत में एक ओर प्र[illegible] कड़ कृपि उपज गिरती जा रही है जवकि दूसरी ओर भूमि कर [illegible] रही है जिसके फलस्वरूप काश्तकारों का जीवन बहुत दुखी [illegible]ता जा रहा है। किसानों की ऋणग्रस्तता का भी एकमात्र [illegible] तएव भारत के किसानों को इस दुःख से छुटकारा दिलाने के

हेतु भूमि-कर की दर में कमी की जानी चाहिए।[1]

आय के अन्य स्रोतों के सम्बन्ध में गोखले के विचार—भारत सरकार के आय के अन्य स्रोतों के सम्बन्ध में गोखले ने यह मत रखा कि उत्पादन-कर से प्राप्त होने वाली बढ़ती हुई आय इस बात का संकेत नहीं है कि जनता की भौतिक दशा सुधर गई है। गोखले ने ऐसे करों को समाप्त करने की वकालात की जिनका भार धनी वर्ग की अपेक्षा निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है। उसके मतानुसार आय कर और नमक कर ही केवल ऐसे दो कर थे जोकि जनता की वास्तविक भौतिक दशा के संकेतक थे तथा इन करों से प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि निश्चित रूप से जनता की बढ़ती हुई भौतिक समृद्धि की सूचक थी। यह स्मरण रहे कि गोखले ने सैनिक व्यय में होने वाली वृद्धि को भारतीय वित्त व्यवस्था के दोषों का सबसे बड़ा कारण ठहराया तथा विकासजन्य एवं कल्याणकारी योजनाओं पर सरकार द्वारा अपना व्यय बढ़ाने का समर्थन किया। सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में गोखले का मत था कि इस समय भारत में सार्वजनिक ऋण का भार अधिक नहीं है। सार्वजनिक ऋण की अदायगी के हेतु गोखले ने छोटे से शोधन निधि (Small Sinking Fund) की व्यवस्था करने का सुझाव दिया।

संघीय वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में गोखले के विचार—गोखले का मत था कि आय के महत्वपूर्ण एवं लोचदार साधन तो केन्द्रीय सरकार के पास हैं, जबकि व्यय की लोचदार मदें राज्य सरकारों के पास हैं (संघ सरकार के पास प्रतिरक्षा मद के अतिरिक्त व्यय की अन्य कोई महत्वपूर्ण मद नहीं है)। अतएव गोखले ने केन्द्रीय सरकार को आय की मदों को कम करके प्रान्तीय सरकारों को आय के अतिरिक्त साधन प्रदान करने का सुझाव दिया ताकि प्रान्तीय सरकारों की वित्तीय निर्भरता कम हो सके। उसने भारत में भी जर्मनी की संघीय वित्त व्यवस्था को अपनाने का विचार प्रस्तुत किया जिस व्यवस्था के अन्तर्गत संघ और राज्य सरकारों के बीच आय और व्यय की मदों का स्पष्ट बटवारा कर दिया जाए तथा राज्य सरकारों द्वारा केन्द्रीय सरकार की अतिरिक्त आवश्यकताओं को पूरा करने के

[1] "My Lord, agriculture is the only surviving economic standby of the mass of the people, and yet no industry in country is in deeper distress. The soil, under a system of generally manured cultivation, is under steady exhaustion. The field of crop per acre is fallowing......And the *raiyat in most parts is a poor, struggling* cultivator with his resources all but exhausted, and himself more or less involved in debt. And I submit, that the question of granting relief to the hard pressed cultivators by the lowering of the assessment is one which in the present prosperous condition of the country exchequer, deserves a favourable consideration at the hands of the Government."
—Gokhale

हेतु केन्द्रीय सरकार को वित्तीय योगदान किया जाए ।[1]

कृषि के सम्बन्ध में गोखले के विचार—सन् १६०५ के बजट भाषण में गोखले ने भारतीय किसानों की दरिद्रता के लिए निम्नोक्त ५ कारक उत्तरदाई ठहराए—

(क) कृषि-भूमि पर उपज की तुलना में मालगुजारी का भार अधिक है ।

(ख) किसानों के पास व्यक्तिगत पूंजी और साख का अभाव है ।

(ग) सरकार के चलन अधिनियम के कारण किसानों की चांदी के रूप में की गई अल्प बचत का मूल्य बहुत गिर गया है ।

(घ) विगत १५ वर्षों से खराब मौसमों की बारम्बारता के कारण किसानों की दशा और भी अधिक दयनीय हो गई है ।

(ङ) किसानों पर ऋण का भार क्रमश: बढ़ता जा रहा है ।

गोखले ने बताया कि इन सब कारणों में से ग्रामीण ऋणग्रस्तता और कृषि का गिरता हुआ उत्पादन दो मुख्य समस्याएं हैं जिनका तुरन्त समाधान किया जाना चाहिए । किसानों की ऋणग्रस्तता को दूर करने के हेतु गोखले ने उनके पुराने ऋणों के तरलीकरण में प्रत्यक्ष राजकीय सहायता मिलने तथा भावी ऋणग्रस्तता की आशंका को समाप्त करने के हेतु उन्हें साख सुविधाएं प्रदान करने का सुझाव दिया । यह स्मरण रहे कि रानाडे की तरह गोखले ने भी ग्रामीण क्षेत्रों में साख सहकारिताओं की स्थापना पर बल दिया । इन साख समितियों की वित्तीय स्थिति को ठोस बनाने की दिशा में गोखले ने सहकारी संघों की स्थापना का सुझाव दिया जोकि जिला स्तर पर संगठित जनरल बैंक्स से सम्बद्ध हों तथा सबसे ऊपर प्रान्तीय स्तर पर प्रान्तीय सहकारी बैंक की स्थापना की जाए । गोखले ने सिचाई की सुविधाओं का विस्तार करने, भारतीय किसानों को वैज्ञानिक कृषि की प्रशिक्षा देने की व्यवस्था करने का भी सुझाव दिया ।

औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रश्नों पर गोखले के विचार—गोखले एक संरक्षणवादी विचारक था लेकिन कुछ दशाओं में वह स्वतन्त्र व्यापार पद्धति को

---

1 "My proposal therefore, is this, that certain principal heads shoald be provincialized straight off. I would begin with land reveuue, excise and forests making them over to local governments, and such local governments as would get from them more than they actually require just now should be called upon to make fixed allotments to the Goverment of India. As the Government of India's revenue from its own sources, such as custous, grows, more and more of the other heads should be provincialized......So far the advance has been from centralized finance to decentralized finance. When the process of decentralizetion is completed—and we are yet a good way from Completion—we have to advance from that to fedral finance, which should be our goal." —*Gokhale*

उत्तम समझता था। संरक्षण की नीति को गोखले ने सन्तमणकारी उपाय के रूप में ही अपनाने का सुझाव दिया। गोखले ने संरक्षण को दो वर्गों में रखा अर्थात् अच्छे किस्म का संरक्षण (Protection of Right Type) और बुरे किस्म का संरक्षण (Protection of Wrong Type)। अच्छे किस्म के संरक्षण से गोखले का आशय ऐसे संरक्षण से था जिससे उद्योगों के विकास को बढ़ावा मिले और यदि सरकार कुछ शक्तिशाली और एकाधिकारी उद्योगों को ही सहायता प्रदान करती है तो यह गलत प्रकार का संरक्षण होगा।[1] उनका मत था कि यदि भारत के उद्योगों को अच्छे किस्म का संरक्षण प्राप्त होगा तो निश्चित रूप से ये उद्योग-धन्धे विकसित होंगे। गोखले ने कॉटन एक्साइज ड्यूटी के उन्मूलन का भी समर्थन किया तथा चीनी के आयात पर कर लगाने का सुझाव दिया। जहां तक भारत में नए उद्योगों को विकसित करने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में गोखले इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं था कि भारत में पूंजी, साहस और दक्षता का अभाव है, फिर भी उनका ऐसा विश्वास था कि यदि भारतीय ठीक दिशा में भारतीय पूंजी और साहस के सहयोग से नए उद्योगों को बढ़ावा देने की पहल करें तथा भारतीय बाजार में भारतीय माल की मांग उत्पन्न कर दें तो इस दिशा में बहुत कुछ हो सकता है।

आर० सी० दत्त के आर्थिक विचार
(Economic Ideas of R C Datt)

मालगुजारी, सिंचाई, रेलवे और अकाल-निवारक नीति के सम्बन्ध में आर० सी० दत्त के विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। उनका भारतीय निर्धनता एवं अकाल से सम्बन्धित विश्लेषण निम्नोक्त तीन तत्वों पर आधारित है—

(क) कुटीर उद्योगों के पतन के साथ-साथ कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है।

(ख) कृषक वर्ग पर कराधान का भार बढ़ता जा रहा है।

(ग) सरकार की राजकोषीय नीति की प्रकृति तथा मालगुजारी निर्धारण की पद्धति किसान के लिए अपने जीवन की आवश्यकताओं से अधिक प्राप्त करना असम्भव बना देती है।

उक्त आधारों पर अपने विचार को रखते हुए, दत्त साहब ने भारतीय निर्धनता एवं भारी मालगुजारी के आरोपण के बीच सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हीं

---

1 "The right kind of protection is that under which the growing industries of a country receive the necessary stimulas and encouragement and support that they require but under which care is taken that us influential conbinations, prejudicial to the interests of the general community, come into existence"

—Gokhale

के शब्दों में, "भारत में मालगुजारी के प्रशासन का इतिहास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि एक कृषिगत राष्ट्र की भौतिक समृद्धि से पूर्णतया सम्बद्ध है" (The history of land revenue administration in India is of the deepest interest, because it is intimely connected with the material wellbeing of an agricultural nation) । आर० सी० दत्त स्थाई बन्दोवस्त का सबसे बड़ा समर्थक था। वह इसे न केवल लाभदायक समझता था अपितु सरकार, भूस्वामियों, काश्तकारों एवं सम्पूर्ण देश के हित के लिये आवश्यक शर्त समझता था। उसने उन सब विद्वानों की कटु आलोचना की जो कि भारत जैसे देश में जहां की काश्तकार भूस्वामी वर्ग के शोषण के स्रोत बने हुए हैं. स्थाई बन्दोवस्त को हानिप्रद एवं अनावश्यक समझते थे।

अकाल-निवारक नीति पर आर० सी० दत्त के विचार—भारत में अकालों के कारणों का उल्लेख करते हुए श्री रमेश चन्द्र दत्त ने लिखा, "अकाल का तात्कालिक कारण मानसून का फेल हो जाना है और यह दशा उस समय तक चलती रहेगी जब तक कि वर्तमान में उपलब्ध सिंचाई की सुविधाओं की तुलना में अतिरिक्त सुविधाओं की व्यवस्था नहीं करेंगे। परन्तु हाल ही के अकालों की भीषणता और बारम्बारता के हेतु किसानों की दयनीय दशा तथा उनके पास पूंजी की अपर्याप्तता उत्तरदाई हैं जिसका जन्म उस भूमि पर भारी करारोपण करना है जिस पर कि उनकी जीविका आश्रित है" (The immediate Cause of famine in almost every instance is the failure of rains, and this cause will coutinue to operate until we have more extensive system of irrigation than has yet been provided. But the intensity and frequency of recent famines are greatly due to the resourceless condition and the chronic poverty of the cultivators, caused by the over assessment of the soil on which they depend for their living.)।

रेलवे और सिंचाई नीति पर दत्त के विचार—आर० सी० दत्त की अकाल निवाकर नीति से सम्बन्धित अन्य पहलू सरकार की रेलवे और सिंचाई नीति थे और वास्तव में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण विचारधारा के अन्तर्गत गरीबी, अकाल, मालगुजारी का निर्धारण, रेलवे और सिंचाई को परस्पर सम्बद्ध विजय स्वीकार किया जो कि एक दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। उस समय की परिस्थितियों में दत्त यह विचार कि भारत के लिये रेलवे लाइनों की अपेक्षा नहरों की अधिक कता है क्योंकि नहरों के निर्माण में एक ओर सरकार को कम खर्चा करना पड़ता है परन्तु दूसरी ओर इनसे आय अधिक प्राप्त होती है, जबकि रेलवे लाइनों के बिछाने में सरकार पर सार्वजनिक ऋण के भार में वृद्धि होती है तथा इनसे सरकार को पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त नहीं होती। उन्हीं के शब्दों में, "भारत में रेलवे इतिहास अपनी प्रकृति में सिंचाई-कार्यों के इतिहास से भिन्न है। सिंचाई के

कार्यों से प्रारम्भ से ही सरकार को आमदनी प्राप्त होने लगती है, जबकि रेलवे से पर्याप्त माल प्राप्त नहीं होती। सरकार द्वारा सिंचाई कार्यों को आय के स्रोत के रूप में परिणित कर लिया गया है ; जबकि रेलवे सरकार को प्रति वर्ष हानि ही देती है। सिंचाई की सुविधाओं ने फसलों की रक्षा की है, कृषि-उपज को बढ़ाया है तथा सूखे के दिनों में अकाल की सम्भावना को दूर किया है; रेलवे ने अकाल के वर्षों में अनाज को अकालग्रस्त क्षेत्रों में पहुँचाने का ही काम किया है यद्यपि इन्होंने कृषि-भूमि की उपज बढ़ाने में कोई योगदान नहीं किया है" (The history of railways in India is different in its character from the history of irrigation works. Irrgation works paid, and more than paid, from the very commencemnet, railways did not give an adequate return on the outlay. Irrigation works were converted in to a source of revenue by the Government; railways led to a permanent loss to the Government year after year. Irrigation secured crops, increased the produce, and averted the famines in years of draught; railways helped the conveyance of food to afflicted tracts in famine years, but did not add to the produce of the land.)। रमेश चन्द्र दत्त ने भारत में रेलवे के निर्माण को इस कारण भी दोषपूर्ण बताया क्योंकि इसके पीछे ब्रिटिश सरकार का स्वार्थ निहित था अर्थात् रेलों की व्यवस्था द्वारा ब्रिटिश सरकार ब्रिटेन में निर्मित माल को भारतीय बाजारों तक पहुंचाना चाहती थी और भारत में उत्पादित कच्चे माल को बन्दरगाहों तक पहुँचाना चाहती थी।

सार्वजनिक ऋण और उद्योग के सम्बन्ध में दत्त के विचार—आर० सी० दत्त ने भारत के भारी सार्वजनिक ऋण को अन्यायपूर्ण और अतार्किक ठहराया। उन्होंने अपनी पुस्तक "Economic History of India" में भारतीय कुटीर उद्योगों के पतन के कारणों की खोज की तथा भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों को बताया। दत्त के शब्दों में, "भारत में सूती वस्त्र के बढ़ते हुये आयात को भारत की बढ़ती हुई समृद्धि बताया जाता है। लेकिन क्या भारत में ऐसा कोई मनुष्य है जोकि इन आंकड़ों में भारतीय उद्योगों के पतन को तथा राष्ट्र की सम्पदा की क्षति को नहीं देखता है।" (The steady increase in the import of cotton piece goods is often quoted as a mark of India's increasing prosperity. But is there any practical man in India who does not see in these figures the decline of the most extensive of Indian industries and therefore a loss in the wealth of the nation.)। आगे चलकर उन्होंने लिखा है, "हम अपने देश को केवल कच्चे माल के उत्पादक के रूप में ही नहीं देखना चाहते और न इसे दूसरे देशों के तैयार माल के बाजार के रूप में ही देखना चाहते हैं। मैं समझता हूं कि कोई देश केवल मात्र कृषि अथवा उद्योग के विकास से ही समृद्धशाली बन सकता है, इन दोनों का साथ-साथ विकास किया जाना चाहिये ताकि देश की जनसंख्या को रोजगार की वृहत्

के शब्दों में, "भारत में मालगुजारी के प्रशासन का इतिहास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि एक कृषिगत राष्ट्र की भौतिक समृद्धि से पूर्णतया सम्वद्ध है" (The history of land revenue administration in India is of the deepest interest, because it is intimely connected with the material wellbeing of an agricultural nation) । आर० सी० दत्त स्थाई बन्दोबस्त का सबसे बड़ा समर्थक था। वह इसे न केवल लाभदायक समझता था अपितु सरकार, भूस्वामियों, काश्तकारों एवं सम्पूर्ण देश के हित के लिये आवश्यक शर्त समझता था। उसने उन सब विद्वानों की कटु आलोचना की जो कि भारत जैसे देश में जहां की काश्तकार भूस्वामी वर्ग के शोषण के स्रोत बने हुए हैं, स्थाई बन्दोबस्त को हानिप्रद एवं अनावश्यक सकझते थे।

अकाल-निवारक नीति पर आर० सी० दत्त के विचार—भारत में अकालों के कारणों का उल्लेख करते हुए श्री रमेश चन्द्र दत्त ने लिखा, "अकाल का तात्कालिक कारण मानसून का फेल हो जाना है और यह दशा उस समय तक चलती रहेगी जब तक कि वर्तमान में उपलब्ध सिचाई की सुविधाओं की तुलना में अतिरिक्त सुविधाओं की व्यवस्था नहीं करेंगे। परन्तु हाल ही के अकालों की भीषणता और बारम्बारता के हेतु किसानों की दयनीय दशा तथा उनके पास पूंजी की अपर्याप्तता उत्तरदाई हैं जिसका जन्म उस भूमि पर भारी करारोपण करना है जिस पर कि उनकी जीविका आश्रित है" (The immediate Cause of famine in almost every instance is the failure of rains, and this cause will coutinue to operate until we have more extensive system of irrigation than has yet been provided. But the intensity and frequency of recent famines are greatly due to the resourceless condition and the chronic poverty of the cultivators, caused by the over assessment of the soil on which they depend for their living.) ।

रेलवे और सिंचाई नीति पर दत्त के विचार—आर० सी० दत्त की अकाल निवाकर नीति से सम्वन्धित अन्य पहलू सरकार की रेलवे और सिंचाई नीति थे और वास्तव में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण विचारधारा के अन्तर्गत गरीबी, अकाल, मालगुजारी का निर्धारण, रेलवे और सिंचाई को परस्पर सम्बद्ध विजय स्वीकार किया जो कि एक दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। उस समय की परिस्थितियों में दत्त साहब ने यह विचार कि भारत के लिये रेलवे लाइनों की अपेक्षा नहरों की अधिक आवश्यकता है क्योंकि नहरों के निर्माण में एक और सरकार को कम खर्चा करना पड़ता है परन्तु दूसरी ओर इनसे आय अधिक प्राप्त होती है, जबकि रेलवे लाइनों के विछाने में सरकार पर सार्वजनिक ऋण के भार में वृद्धि होती है तथा इनसे सरकार को पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त नहीं होती। उन्हीं के श[illegible] त में रेलवे का इतिहास अपनी प्रकृति में सिंचाई-कार्यों के २[illegible] । सिंचाई के

शासक भारतीय जनता को खुशहाल और समृद्धिशाली बनाने के अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पा रहे हैं और दूसरी ओर वे प्रशासन की व्ययपूर्णपद्धति, भारी करारोपण तथा अन्यायपूर्ण वाणिज्यिक प्रणाली के द्वारा देशवासियों को गरीब बनाते जा रहे हैं।

दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश सरकार की करारोपण नीति की कटु आलोचना की तथा सरकार की आय और व्यय की प्रत्येक मद की व्यापकता एवं सिद्धान्तों की जांच करने के हेतु एक कमेटी के आयोजन की माग की। उनके द्वारा मालगुजारी के सम्बन्ध मे उसके निर्धारण के सिद्धांतों की इस आधार पर जांच करने की माग की गई कि इनसे खेती-बारी को प्रोत्साहन मिलता है, पूंजी की मात्रा मे वृद्धि होती है और इस तरह उत्पादन और समृद्धि मे वृद्धि होती है ? इसी प्रकार नौरोजी ने इस बात की जांच करने की भी माग की कि क्या कराधान के भार का वितरण समाज के सभी वर्गों पर समान है अथवा नहीं ? उनकी राय मे गरीब किसान और खेतीहर श्रमिक समाज के सर्वाधिक पददलित वर्ग हैं तथा मालगुजारी निर्धारण का तरीका ऐसा है कि इसने खेती-बारी को बढ़ावा देने, पूंजी की मात्रा बढ़ने तथा उत्पादन व समृद्धि के विकासार्थ कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है। ४ जनवरी १८८१ को दादा भाई नौरोजी ने एक स्मृति-पत्र प्रस्तुत किया जिसमे यह बताया गया कि भारत में कराभार (Incidence of Taxation) अधिक ऊंचा नहीं है। नौरोजी ने बताया कि किसी देश की आय दो भागों से मिलाकर बनती है—

(अ) देश का कुल आन्तरिक वार्षिक भौतिक उत्पादन (कृषि, निर्माण, खनन और मत्स्य पालन आदि)।

(ब) विदेशी व्यापार से संबंधित वार्षिक बाह्य लाभ।

उन्होंने बताया कि किसी देश मे कराभार का अर्थ यह है कि इन आय मे से सरकारी उद्देश्य से निश्चित मात्रा या भाग निकाल लिया जाता है। दादा भाई नौरोजी ने इंगलैण्ड और भारत की राष्ट्रीय आयों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष दिया कि भारत मे करारोपण भारी मात्रा में किया जाता है।[1] उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि इंगलैण्ड या अन्य किसी देश में सरकारी खर्च के हेतु जो कुछ करों के रूप मे राशी अदा की जाती है उसके बदले मे वहां की जनता को पूरा-पूरा लाभ प्राप्त होता है, जबकि भारत मे करों के रूप में जो राशि

1 "England raises at present for purposes of Government about £83,000,000. The ircome of the U. K. is nearly £',(00,000 i. e. 8½% of the Natianal Income is collected as revenue of the State. In ln case of India the National Income is roughly £ 340,000,000 out of this about £ 65,000,000 is collec'ed as revenue i. e. 22%. This showed that India was not lightly but heavily taxed."

—Dadabhai Naoroji

एकत्रित की जाती है उसका एक बड़ा भाग प्रतिवर्ष इंगलैण्ड को चला जाता है। दादा भाई नौरोजी ने भारत सरकार की आय के विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण करते हुए नैतिक आधार पर अफीम कर और नमक कर की अवहेलना की।

दादाभाई नौरोजी ने मिलिट्री पर होने वाले भारी व्यय का विरोध किया और बताया कि यदि इस व्यय में मितव्ययिता बरती जाएगी तो इसके फलस्वरूप जनता पर करारोपण कम होगा और जनता के पास अकालों का सामना करने तथा उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने के हेतु पर्याप्त वित्तीय साधन हो जाएगा। उन्होंने यह भी निष्कर्ष दिया कि यदि ब्रिटिश सम्राज्य का राजनैतिक हित बड़ी सेना को रखने में है तो ग्रेट ब्रिटेन की सरकार को इस व्यय में अनुपातिक रूप से भाग लेना चाहिए।

दादाभाई नौरोजी के समय भारत के आयात और निर्यात व्यापार में क्रमशः बढ़ने की प्रवृत्ति थी। निर्यात की मुख्य मदें कच्चा माल और खाद्यान्न थी तथा सूती वस्त्र, सरकारी स्टोर्स और ब्रिटिश तैयार माल आयात की मुख्य मदें थीं। इस सम्बन्ध में सरकारी प्रवक्ताओं का यह मत था कि भारत के आयात-निर्यात व्यापार में होने वाली वृद्धि देशवासियों की बढ़ती हुई सम्पन्नता का सूचक है। दादा भाई नौरोजी ने इस धारणा का विरोध किया और बताया कि विदेशी व्यापार में सामान्य दशाओं में एक देश को अपने निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक मात्रा में करने चाहियें ताकि देश का व्यापाराशेष अनुकूल बना रहे, परन्तु भारत के संबंध में स्थिति विपरीत थी।

दादा भाइ नौरोजी ने विचारा कि भारतीय जनता की वास्तविक आर्थिक स्थिति का निश्चय करने के हेतु भारत की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति औसत आय का उचित अनुमान लगाना आवश्यक है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि "भारतीय अर्थशास्त्र" को जन्म देने वालों में दादा भाई नौरोजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

———

२३

महात्मा गांधी की आर्थिक विचारधारा

(Economic Thought of Mahatma Gandhi)

प्राक्कथन—मोहनदास करमचन्द गांधी हमारे समक्ष एक राजनैतिक नेता, समाज सुधारक, धर्म-दर्शक, पवित्र आत्मा एवं अच्छे लेखक के रूप में आते हैं। गांधी जी के आर्थिक विचारों का ज्ञान हमें उनके द्वारा रचित ग्रन्थों, लेखों, भाषणों, सम्पादित पत्रिकाओं आदि से मिलता है। उनके द्वारा रचित ग्रंथों में "सत्य के साथ मेरे प्रयोग" (My Experiments With Truth), "युवा भारत" (Young India), "हरिजन (Harijan), "शत-प्रतिशत स्वदेशी" (Cent-Percent Swadeshi) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। महात्मा गांधी की विचार धारा पर उनकी माता, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति, रस्किन, थोरो एवं टालस्टाय, साम्राज्यवाद तथा भारत की दयनीय दशा का गहरा प्रभाव पड़ा था। महात्मा गांधी ने गोपालकृष्ण गोखले को अपना राजनैतिक गुरु स्वीकार किया था। अतएव उनकी विचार धारा पर गोखले के विचारों का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक ही है।

गांधी जी ने स्मिथ, रिकार्डो मार्शल या कीन्स की तरह किसी विशुद्ध आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया था। वस्तुतः गांधी जी एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे जिन्होंने देश की समस्त सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का अवलोकन धर्म एवं नीति के आधार पर किया था। पाश्चात्य देश के विचारकों के विपरीत गांधी जी ने आर्थिक क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य को अधिक महत्व दिया था। फिर उन्होंने अपने आर्थिक विचारों को कभी क्रमबद्ध संकलित करने की भी चेष्टा नहीं की। गांधी जी के विचारों के आधार पर ही गांधीवादी सम्प्रदाय (Gandhian School) की नींव पड़ी। निम्नोक्त में महात्मा गांधी जी के प्रमुख आर्थिक विचारों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

(क) अर्थशास्त्र का उद्देश्य एवं पद्धति (Aim & Method of Economics):—महात्मा गांधी की अर्थशास्त्र सम्बन्धी धारणा मार्शल अथवा रॉबिन्स की विचारधारा से सर्वथा भिन्न थी। उन्होंने मानव जीवन का अवलोकन सम्पूर्णता में किया था जिसके कारण उनका यह विश्वास नहीं था कि मानव जीवन को आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न अंगों में विभाजित करके अध्ययन किया जाए। इस तरह गांधी जी की दृष्टि में मानवीय कार्यों की परिधि

अविभाज्य रही थी।[1] यह स्मरणीय है, कि पीगू का आर्थिक दृष्टिकोण महात्मा गांधी के दृष्टिकोण से एक बड़ी सीमा में मेल खाता है, तथापि यह निश्चित है कि गांधी जी के मत की अपेक्षा प्रो० पीगू (Pigou) का मत संकीर्ण है जिसके मतानुसार "अर्थशास्त्र का विषय-क्षेत्र सामाजिक कल्याण का केवल वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से द्रव्य के मापदण्ड से मापा जा सकता है" दूसरी ओर गांधी जी का अर्थशास्त्र सम्बन्धी दृष्टिकोण अधिक विस्तृत है। उनका अर्थशास्त्र व्यक्तिवाद, समाजवाद एवं नैतिकतावाद का सुन्दर समन्वय है। गांधी जी के मतानुसार राजनैतिक अर्थव्यवस्था मानवजाति की सुरक्षा एवं उसकी सभ्यता है।

अर्थशास्त्र सम्बन्धी दृष्टिकोण की तरह गांधी जी द्वारा अपनाई गई अध्ययन प्रणाली भी अन्य सभी अध्ययन पद्धतियों (आगमन-निगमन) से भिन्न है। उन्होंने अपनी अध्ययन प्रणाली में नैतिक नियमों एवं आत्म शक्ति पर विशेष बल दिया है। उनका विश्वास था कि मनुष्य के अन्तर की वाणी एवं क्रियात्मक ज्ञान ही मानव-कल्याण में विशेष रूप से सहयोगी सिद्ध होगा। इस तरह गांधी जी ने पाश्चात्य विचारकों की तरह भौतिक प्रवृत्तियों को नहीं अपनाया। आलोचकों का कथन है कि महात्मा गांधी द्वारा अपनाई गई अर्थशास्त्र की अध्ययन प्रणाली अवैज्ञानिक एवं काल्पनिक है। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपना अध्ययन तर्क एवं प्रमाण पर आधारित करते हुए भी उसमें नैतिकता एवँ आत्मशक्ति के तत्वों का समावेश किया था। उनका विश्वास था कि तथ्यों की सत्यता की माप भौतिक उपादानों की अपेक्षा मानवीय कल्याण की कसौटी के द्वारा करनी चाहिए।

(ख) द्रव्य से सम्बन्ध (Relationship with wealth):— मनुष्य और द्रव्य के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में उसके विचार रस्किन (Ruskin) के विचारों से विशेष रूप से प्रभावित हैं जिसके विचार से मानव जीवन साध्य है, धन साधन है। गांधी जी ने कहा कि आज के भौतिकतावादी युग में मनुष्य हर एक कार्य को द्रव्य से मापता है अर्थात वह उसी कार्य को करता है जिससे उसे द्रव्य प्राप्ति की आशा होती है और जिस कार्य से उसे द्रव्य प्राप्त की कोई आशा नहीं होती उस काम को करने में उसे तनिक भी उत्साह नहीं होता। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत पूंजीपत्तियों द्वारा श्रमिकों के शोषण के पीछे यही प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है। गांधी जी ने बताया कि धन जीवन का उचित मूल्य नहीं है अपितु जीवन का उचित मूल्य नैतिकता है। ...लिए उनका कथन है कि "वह अर्थशास्त्र असत्य है जोकि नैतिक मूल्यों के ...या असत्कार करता है" (That economics is untrue which ignores

1 "The whole gamut of man's activities to-day constitutes an ...ible whole. You can not divide social, economic, political and ...religious work into water. tight compartments.

—M. K. Gandhi

or disregards moral values.)। गांधी जी ने कहा कि द्रव्य प्राप्ति की बुराइयों से बचने के हेतु भौतिक साधनों की प्राप्ति की अधिक इच्छा न करके जीवन के आध्यात्मिक स्तर को उन्नत करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(ग) आवश्यकता सम्बन्धी विचार (Ideas Relating to wants).—महात्मा गांधी का मत था कि जीवन का वास्तविक आनन्द आवश्यकताओं को बढ़ाने में नहीं अपितु उन्हें सीमित रखने या नियन्त्रित करने में है। उन्होंने बताया कि बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु जब हमारे पास साधन नहीं होते तो हमें एक तरह का मानसिक क्षोभ होता है, परन्तु सीमित आवश्यकताओं को सीमित साधनों से सुगमता पूर्वक सन्तुष्ट किया जा सकता है। उनका अभिमत था कि आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखने से उपभोग एवं उत्पत्ति के बीच सन्तुलन कायम हो सकता है जिसके अंतिम परिणाम स्वरूप अत्युत्पादन या न्यूनोत्पादन की आर्थिक समस्या का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता है।

(घ) ग्रामीण आत्मनिर्भरता (Rural Self-Sfficiency):—महात्मा गांधी ने अपने विचारों में ग्रामीण आत्मनिर्भरता को बड़ा महत्व प्रदान किया था। उसका मत था कि भारत गांवों का देश है तथा भारत की आर्थिक प्रगति ग्रामीण आत्मनिर्भरता पर आधारित है। गांधी जी ने कहा कि "मनुष्य का मस्तिष्क एक व्याकुल चिड़िया के भांति है। जितना अधिक उसे मिलता जाता है उतना ही अधिक वह चाहती है और फिर भी असन्तुष्ट रहती है" (The human mind is a restless bird, the more it gets, the more it wants and still remains unsatisfied) फिर भी उन्होंने भोजन और वस्त्र, मानवीय जीवन की दो प्रमुख आवश्यकताएं बताईं। उनका विचार था इन दोनों आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ग्रामवासियों को पूर्णतया आत्मनिर्भर होना चाहिए। गावों की अवनति के कारणों का विश्लेषण करते हुए गांधी जी ने कहा कि जब से हमारे गांव अपनी आत्मनिर्भरता की अवस्था को छोड़कर निकटवर्ती नगरों पर अपनी आवश्यकता पूर्ति के हेतु परावलम्बी बने हुए हैं, तभी से गावों की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती चली जा रही है। अतएव उन्होंने गावों को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर बनाने का सुझाव रक्खा।

(ङ) लघुस्तरी एवं कुटीर उद्योग (Small scale or Cottage Industries)—महात्मा गांधी भारत में विशालस्तरीय उद्योगों के विकास के विरुद्ध थे। उन्होंने बताया कि विशाल स्तरीय उत्पादन में मशीनों का प्रयोग होने के कारण अधिक मात्रा में सस्ता उत्पादन होता है जिससे एक ओर तो लघुस्तरीय एवं कुटीर उद्योगों का पतन हो जाता है और दूसरी ओर मनुष्य की श्रम-शक्ति बेकार हो जाती है एवं आर्थिक दासता का विकास होता है। यह स्मरणीय है कि गांधी जी उत्पादन कार्य में यन्त्रीकरण के सर्वथा विरुद्ध नहीं थे, वे उत्पादन कार्य में मशीनों के प्रयोग को महत्व देते थे परन्तु उसी सीमा तक जहाँ तक कि उनके प्रयोग में समाज में

व्यक्तिवाद पर इतना बल डालते हुये भी गाधी जी ने व्यक्ति को निरंकुश स्वच्छन्दता प्रदान नहीं की। उनका मत था कि यदि कोई व्यक्ति स्वहित की भावना से प्रेरित होकर ऐसा काम करता है जो अन्य व्यक्तियों के हेतु अहितकर हो तो उसके कार्य पर अहिंसात्मक तरीकों से नियन्त्रण रखना चाहिए।

(झ) कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics)—गांधी जी ने अपने विचारों में कृषि व्यवसाय को बडी महत्ता प्रदान की थी। उनका मत था कि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा देश की आर्थिक प्रगति के हेतु यह आवश्यक है कि इस व्यवसाय को समुन्नत बनाया जाय। कृषि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत गांधी जी ने मालगुजारी पद्धति को अधिक दोषपूर्ण बताया। उनका मत था कि भूमि एक प्रकृति दत्त वस्तु है जिस पर कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का अधिकार न होकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। गाधी जी की इच्छा थी कि मध्यवर्तियों का उन्मूलन करके किसानों को ही भूमि का वास्तविक स्वामी बना दिया जाए।

(ञ) वितरण एवं राजस्व (Distribution and Public Finance)—महात्मा गाधी के मतानुसार राष्ट्रीय आय का वितरण समानता के सिद्धान्त (Theory of Equity) के आधार पर होना चाहिये अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं सेवा के अनुसार पुरस्कार मिलना चाहिए। गाधी जी के शब्दों में, "वितरण का वास्तविक निर्धारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को इतना अवश्य उपलब्ध हो कि वह अपनी समस्त प्राकृतिक आवश्यकताओं को, इससे अधिक नहीं, पूरा कर सके। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति की संरचना कमजोर है और उसे अपनी रोटी के हेतु केवल चौथाई पौंड आटे की ही जरूरत है, जबकि दूसरे को एक पौण्ड आटे की आवश्यकता है तो दोनों ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की स्थिति में होने चाहियें।" (The real implication of equal distribution is that each man shall have the where withal to supply all his natural wants and no more. For example, if one man has a weak digestion and required only a quarter of a pound of flour for his bread and another needs a pounds both should be a position to satisfy Their wants) जहाँ तक करारोपण का सम्बन्ध है इस विषय में गांधी जी का मत था कि हर एक नागरिक से उसकी सापेक्षिक करदान योग्यता के आधार पर कर लिया जाना चाहिए। उन्होने यह भी सुझाव दिया कि करारोपण के रूप में प्राप्त की गई राशि सरकार द्वारा किसी वर्ग-विशेष के हित की अपेक्षा सभी वर्गों के हित पर खर्च की जानी चाहिए।

(ट) जनसंख्या (Population):—गाधी जी का विचार था कि देश में अनियन्त्रित गति से बढ़ती हुई जनसंख्या देश के हित में नहीं है। उन्होंने बताया कि किसी देश की जनसंख्या में वृद्धि उस देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों के अनुरूप होनी चाहिए। यदि जनसंख्या का आकार देश में प्राप्त प्राकृतिक साधनों का समुचित शोषण करने के योग्य नहीं है अर्थात् न्यूनाधिक है तो इसका प्रभाव

बेकारी तथा शोषण आदि बुराइयां जन्म नहीं लेती। विशालस्तरीय उद्योगों की अपेक्षा गांधी जी लघुस्तरीय एवं कुटीर उद्योगों के विकास के पक्ष में थे। उनका कथन था कि, "भारत का मोक्ष द्वार उसके कुटीर उद्योगों में निहित है"।

(च) विकेन्द्रीयकरण (Decentralisation):—महात्मा गांधी औद्योगिक केन्द्रीयकरण के पक्षपाती नहीं थे। उनका मत था कि औद्योगिक केन्द्रीयकरण से एक ओर तो गांवों का प्राकृतिक सौंदर्य नष्ट हो जाता है तथा दूसरी ओर नगरों का वातावरण दूषित हो जाता है अतएव गांधी जी ने उद्योगों के वैज्ञानिक एवं क्षेत्रीय स्थापन का सुझाव दिया था।

(छ) वर्ण-व्यवस्था (Varnashram System): महात्मा गाँधी वैदिक-कालीन वर्ण व्यवस्था अर्थात व्यावसायिक श्रम विभाजन (Occupational Divisional of Labour) के पक्षपाती थे। उन्होंने बताया कि वर्ण व्यवस्था का एक बड़ा लाभ यह होता है कि एक विशिष्ट व्यवसाय वाले परिवार में जन्म लेने से बच्चे को उत्तराधिकार रूप में ही पिता के व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाने की स्वतन्त्रता का समर्थन केवल इस शर्त पर किया कि यह व्यावसायिक परिवर्तन सेवा भाव से किया जाए, धनोपार्जन के भाव से नहीं जैसा कि उनके कथन से स्पष्ट है, "यदि मेरे पिता व्यापारी है और मेरे अन्दर एक सिपाही के गुण हैं तो मैं देश की सेवा सिपाही के रूप में बिना प्रतिफल की आशा लिए कर सकता हुँ, परन्तु मुझे अपनी जीविका कमाने के हेतु व्यापार से ही संतोष करना चाहिए। यह स्मरणीय है कि वर्ण-व्यवस्था से गाँधी जी का अभिप्राय जातिप्रथा से नहीं था। गांधी जी के शब्दों में, "मैं वर्ण व्यवस्था का जन्म पर आधारित स्वस्थ कार्य के विभाजन के रूप सम्मान करता हूं। मेरे ऊंच नीच का कोई प्रश्न नहीं है, यह तो विशुद्ध रूप में कर्त्तव्य का प्रश्न है" (I regard varnashram as a healthy division of work based on birth ··· there is no question with me of superiority or inferiority. It is purely a question of duty)।

(ज) व्यक्तिवाद (Individualism)—महात्मा गाँधी व्यक्तिवाद अर्थात सभी के लिये व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, सभी के लिये समान अवसर, सभी के लिये जनतंत्रीय न्याय तथा सभी के लिए उपभोग के प्रभुत्व के पक्षपाती थे। गांधी जी के शब्दों में, "व्यक्तिवाद एक ऊंची धारणा है। मुझे राज्य की बढ़ती हुई शक्ति [illegible] करती है क्योंकि यद्यपि यह शोषण को न्यूनातिन्यून करके भलाई [illegible] प्रगति के मूल में छिपी वैयक्तिता को नष्ट करके मानव जाति को [illegible] पहुंचाती है" (The individualism is the one supreme [illegible]on. I look down upon an increase in the power of the [illegible] the greatest fear because although it apparently does good [illegible] exploration, it does the greatest harm to mankind [illegible]ying indi[illegible]ualit[illegible] that lies at the root of the progress).

व्यक्तिवाद पर इतना बल डालते हुये भी गांधी जी ने व्यक्ति को निरंकुश स्वच्छन्दता प्रदान नहीं की। उनका मत था कि यदि कोई व्यक्ति स्वहित की भावना से प्रेरित होकर ऐसा काम करता है जो अन्य व्यक्तियों के हेतु अहितकर हो तो उसके कार्य पर अहिंसात्मक तरीकों से नियंत्रण रखना चाहिए।

(झ) कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics)—गांधी जी ने अपने विचारों में कृषि व्यवसाय को बड़ी महत्ता प्रदान की थी। उनका मत था कि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा देश की आर्थिक प्रगति के हेतु यह आवश्यक है कि इस व्यवसाय को समुन्नत बनाया जाय। कृषि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत गांधी जी ने मालगुजारी पद्धति को अधिक दोषपूर्ण बताया। उनका मत था कि भूमि एक प्रकृति दत्त वस्तु है जिस पर कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का अधिकार न होकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। गाधी जी की इच्छा थी कि मध्यवर्तियों का उन्मूलन करके किसानों को ही भूमि का वास्तविक स्वामी बना दिया जाए।

(ञ) वितरण एवं राजस्व (Distribution and Public Finance)—महात्मा गाधी के मतानुसार राष्ट्रीय आय का वितरण समानता के सिद्धान्त (Theory of Equity) के आधार पर होना चाहिये अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता एव सेवा के अनुसार पुरस्कार मिलना चाहिए। गांधी जी के शब्दों में, 'वितरण का वास्तविक निर्धारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को इतना अवश्य उपलब्ध हो कि वह अपनी समस्त प्राकृतिक आवश्यकताओं को, इससे अधिक नहीं, पूरा कर सके। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति की सरचना कमजोर है और उसे अपनी रोटी के हेतु केवल चौथाई पौंड आटे की ही जरूरत है, जबकि दूसरे को एक पौण्ड आटे की आवश्यकता है तो दोनों ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की स्थिति में होने चाहियें।" (The real implication of equal distribution is that each man shall have the where withal to supply all his natural wants and no more. For example, if one man has a weak digestion and required only a quarter of a pound of flour for his bread and another needs a pounds both should be a position to satisfy Their wants) जहाँ तक करारोपण का सम्बन्ध है इस विषय मे गाधी जी का मत था कि हर एक नागरिक से उसकी सापेक्षिक करदान योग्यता के आधार पर कर लिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि करारोपण के रूप में प्राप्त की गई राशि सरकार द्वारा किसी वर्ग-विशेष के हित की अपेक्षा सभी वर्गों के हित पर खर्च की जानी चाहिए।

(ट) जनसंख्या (Population):—गांधी जी का विचार था कि देश अनियंन्त्रित गति से बढ़ती हुई जनसंख्या देश के हित मे नही है। उन्होंने कि किसी देश की जनसंख्या मे वृद्धि उस देश मे उपलब्ध प्राकृतिक अनुरूप होनी चाहिए। यदि जनसंख्या का आकार देश में प्राप्य का [illegible] ने के योग्य नही है अर्थात् न्यूनाधिक है

सम्भव है। इस तरह साम्यवाद की कार्य पद्धति हिंसा पर आधारित है जबकि गांधीवाद की कार्य पद्धति अहिंसा पर आधारित है।

(iii) साम्यवाद के अन्तर्गत भौतिक साधनों को अधिक महत्व प्रदान किया गया। मार्क्सवादियों के मतानुसार समाज की समस्त क्रियाएं एक अथवा दूसरे आर्थिक सत्व (धन) के द्वारा पूरी होती हैं। गांधी जी ने मार्क्सवाद के विपरीत भौतिक उन्नति की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति पर अधिक बल डाला।

(iv) साम्यवाद विशालस्तरीय उद्योगों के विकास, उद्योगों के केन्द्रीयकरण तथा उद्योगों में आधुनिक यन्त्रों के प्रयोग का समर्थक है। इसके विपरीत गांधीवाद विशालस्तरीय उद्योगों के स्थान पर लघुस्तरीय एवं कुटीर उद्योगों का विकास चाहता है, उद्योगों का क्षेत्रीय एवं वैज्ञानिक स्थापन (विकेन्द्रीयकरण) चाहता है तथा मशीनों के प्रयोग की आज्ञा उसी सीमा तक देता है जब तक कि इससे श्रमिक वर्ग में बेकारी न फैलने पाए।

(v) साम्यवादी विचारक आवश्यकताओं को बढाने और उनको पूरा करने के हेतु भौतिक साधनों को प्राप्त करने के पक्ष में हैं। उनका मत है कि मनुष्य जाति की आवश्यकतायें जितनी ज्यादा होगी उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के हेतु अधिक साधन प्राप्त करने होगे और इस तरह देश की भौतिक उन्नति होगी। इसके विपरीत गांधी जी आवश्यकताओं को न्यूनातिन्यून करने के पक्ष में थे।

(vi) साम्यवाद श्रमिक वर्गीय आन्दोलन है, जबकि गांधीवाद सभी वर्गों का आन्दोलन है। साम्यवादी विचारक श्रमिक वर्ग के हाथों मे राज्यसत्ता सौंपकर उसे शक्तिशाली बनाने के पक्ष मे थे, जबकि गांधीवादी विचारक समाज के सभी वर्गों का समान रूप से हित चाहते हैं।

(vii) साम्यवाद के सिद्धान्त धर्म अथवा नीति से सर्वथा मुक्त हैं। साम्यवादियों का केवल मात्र एक धर्म है—साम्यवाद तथा एक ही लक्ष्य है—श्रमिक वर्ग की उन्नति। इसके विपरीत गांधी जी के सम्पूर्ण सिद्धान्त धर्म और नीति पर आधारित हैं।

(viii) वर्ग-संघर्ष साम्यवादियों का आधारभूत सिद्धान्त है। उनका मत था कि समाजवाद की स्थापना के हेतु श्रमिकों एवं पूंजीपतियों के बीच संघर्ष पाया जाना अनिवार्य है। इसके विपरीत गांधी जी समाजवाद की स्थापना शान्ति, सहयोग, प्रेम, सहानुभूति आदि मानवीय गुणों के द्वारा करना चाहते थे। वर्ग संघर्ष मे गांधी जी का विश्वास लेशमात्र भी नही था।

(ix) साम्यवाद सरकार को सर्वशक्ति सम्पन्न बनाने के पक्ष में है, जबकि गांधीवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हामी है तथा सरकार के कार्य-क्षेत्र को न्यूनातिन्यून करना चाहता है।

(x) साम्यवादी विचारधारा के सिद्धान्त एवं विचार परम्परावादी विचारों पर आधारित हैं। इसके विपरीत गांधीवादी विचार भारतीय संस्कृति पर आधारित हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि गांधी जी पर रस्किन, थोरो टालस्टॉय आदि की विचारधारा का प्रभाव पड़ा था जबकि वास्तविकता यह है, कि उनकी विचारधारा में साम्य ही अधिक है, प्रभाव बहुत कम।

संक्षेप में, साम्यवाद एवं गांधीवाद दोनों का लक्ष्य एक होते हुए भी लक्ष्य को प्राप्त करने की कार्य प्रणालियां भिन्न-भिन्न हैं। जहां मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष, श्रमिक वर्गीय तानाशाही, उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, श्रम तथा जीवन पर नियंत्रण रखने का समर्थक है, वहां गांधीवाद वर्गीय एकता, सत्याग्रह, समझौता, विकेन्द्रीयकरण, धरोहरवृत्ति, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं जनतन्त्रीय शासन पद्धति का पक्षपोषक है।

सर्वोदय प्रेस, रामनगर मेरठ। फोन नं० ४३५२

MODEL QUESTIONS

Chapter I. Meaning, Importance, Origin and Development of Economic Thought.

1. The Transition from the middle ages to the period of mercantilist thought is marked along with other things, by a fundamental change in the attitude of money. Money was regarded as neutral and interest as an unjustified charge before the mercantilists placed a great emphasis on money and the sources of procuring it. Account for this change.

(Agra M. A. Prev. 1966)

2. Distinguish economic thought from economic theory and economic history. How far do you agree with thesis that if we do not study the history of economic thought, "No amount of correctness, originality, rigour or elegance will prevent a sense of lacking direction and meaning from spreading among the student." Give reasons for your answer.

(Rajasthan M. A. 1966)

Chapter II. Mercantialism

1. How far is it correct to maintain that mercantilist doctrinese retarded the growth of capitalism ? Give reasons.

(Agra M A. 1965)

2. Examine critically the circumstances that gave rise to mercantalism and those that brought about its decay. Was mercantilism an early form of planned economy ? (Agra M. A. 1963, 58)

3. "When considered with reference to the problems of the time in which mercantalism flourished, it is difficult, if not impossible, to find fault with the system." (Scott) Explain this statement.

(Agra M. A. 1961)

4. "*Mercantilism*, in essence, was an economic policy and an economic doctrine bound up with the political doctrine of nationalism." (J. M. Ferguson) Comment (Agra M. A. 1959)

5. "This neo-mercantilism of the post-war period naturally differed in the several respects from the olden mercantilism, and especially in that it appealed to a more idealistic philosophy." Haney) Comment. (Agra M. A 1957)

6. Critically discuss the main economic contribution of mercantilists. Are there some common points in their contribution and that of Malthus and Keynes ? Illustrate your answer with examples. (Raj. M. A. 1966)

Chapter III. Physiocracy

1. Compare and contrast the doctrines of physicrats with those of the mercantilists. What permanent contribution have the former made to economic thought ? (Agra M. A. Final 1966, 1956, Vikram M. A. 1963)

2. "Physiocracy, though it meant much more might also be defined as the revolt of the Fench against mercantilism." (Haney) Explain this statement fully. (Agra M. A. 1964, 1962)

3. Enumerate the forces which gave rise to the physiocracy and their main contribution to economic thought. (Agra M. A. 1959)

4. Discuss the leading ideas of physiocrats. (Agra M. A. 1957)

Chapter IV. Adam Smith

1. Discuss briefly the ideas embodied in Adam Smith's Naturalism and optimism. (Agra M. A. 1956, 1960, Vikram M. A. 1965)

2. Discuss the contribution of Adam Smith under the following heads:—

(a) Political Philosophy,

(b) Theory of Value,

(c) Theory of Capital and distribution.

(Agra M. A. 1957, 1962)

3. "Adam Smith considered spontaneous order as the most beneficial." Explain. (Agra M. A. 1958)

4. How does Adam Smith explain the transition from feudalism to capitalism in Europe ? Do you agree with his explanation and his interpretation of Economic history ? (Agra M. A. 1965)

5. Explain why Adam Smith is regarded as the father of economic science. (Agra M. A. Final 1966, Raj. M. A. 1966)

Chapter V. Thomas Robert Malthus

1. For Malthus poverty was due to indulgence on the part of man. For Ricardo poverty was due to nature's niggarddiness. Do you agree with this view ? Give reasons for your answer.

(Agra M A. Prev 1966)

2. Examine critically the Malthusian theory of population in the light of modern economic literature. (Agra M. A. Final 1966)

3. Trace the changes the Malthusian theory has undergone during the last half-century. Account fer these changes.

(Agra M A. 1965)

4. "Malthus must be regarded as the founder of the science of demography. The influence of his book upon all economic theories both of production and distribution, was enormons." (Gide and Rist) Discuss. (Agra M. A. 1961

5. "Malthus gave the problem of population a definiteness and distinctness which made its significance Tangible." (Haney) Comment. (Agra M. A. 1959)

6. Comment on the statement—"while a good deal of Malthus's writtings were criticism of Smith and Ricardo, there were in many ways more acute and more akin to modern thinking than theirs."

(Agra M. A 1957)

7. "Whatever opposition Malthus' doctrines may have aroused his teaching has long since become a part and parcel of economic science." (Gide and Rist)

Explain the above statement, with particular reference to the Malthusian Theory of population. (Agra M. A. 1962)

Chapter VI. David Ricardo

1. "The main achievement of Ricardo is to be found in the theory of value and distribution." (Eric Roll) Discuss.

(Agra M. A. 1958. 1961, 1963)

2. "His (Ricardo's) mistake lies in the extreme and impractical abstractness of an assumptson of equality and labour, a mistake

which was later to be made the basis for a theory of value by the Socialists." (Haney) Justify. (Agrra M A. 1959)

3. Give the main contributions of Ricardo to classical economic thought. How far were his views influenced by the prevailing economic conditions ? (Agra M. A. 1964)

4. "Next to smith, Ricardo is the greatest name in economics, and fiercer controversy has centred round his name than ever ranged round the masters." (Gide and Rist) Discuss. (Vikram M. A. 1964)

Chapter VII. Sismondi

1. "Sismondi, though not a socialist, has been very much read and carefully studied by the socialist." Comment. (Agra M. A. 1963, 1959, Vikram M. A. 1965)

2. "Sismondi began his career as an ardent supporter of economic liberalism, and though he fell into some disagreement in a later period of his life with those advocating it, he did not reject the theoretical principles of the classical school to the extent of becoming a socialist." (Neff) Comment. (Agra M. A. 1961, 1958)

Chapter VIII. Saint Simon and Saint Simonians

1. On what ground did the Saint-Simonians base their criticism of private property ? To what extent do you agree with their conclnsions ? (Agra M. A. 1961)

2. What is the importance of Saint Simonism in the history of economic dodtrines ? (Vikram M. A. 1964)

IX Associative Socialists

1. What is utopian Socialism ? In what respects does it differ from Sarvodaya economics ? (Agra M. A. Prev. 1966)

2. "Robert Owen, of all socialists, has the most strinkingly original, not to say unique, personality." (Gide and Rist) Discuss the [illegible] tatement, with special reference to the practical reforms [illegible] wen. (Agra M. A. 1965, 1960)

[illegible] ine critically the economic ideas of Robert Owen. (Agra M. A. 1962)

4. "*The British Counterpart of Charles Fourier* was Robert Owen who may be called the very symbal of what latter came to be called utopian socialism." (Newman) Comment. (Agra M. A. 1958)

5. What is meant by the term "Associative Socialists" ? Give brief account of some of the important Socialistic ideas of Robert Owen. (Agra M. A. 1956, Vikram M A. 1965)

Chapter X. Nationalistic System of Political Economy

1. Discuss briefly the contribution made by List to economic thought. (Agra M A. 1956)

2. "List introduced two ideas that were new to current theory, namely, the idea of nationality as contrasted with cosmopolitanism and the idea of productive power as contrasted with that of exchange values. List's whole system depends upon these two ideas" (Gide and Rist) Discuss fully. (Agra M. A. 1957, 1959, 1963, 1965)

3. Discuss carefully the influence of List on the development of economic thought. What were the sources of List's inspiration and what new ideas were introduced by him ? Explain fully. (Agra M. A. 1961)

4 What were the important sources of inspiration to Freidrich List ? Point out the chief contribution he has made to economic thought. (Agra M. A. Prev. 1966)

Chapter XI. Proudhon and the Socialism of 1848

1 Discuss *the contribution of Proudhon to economic* science.

2. Give a brief review of socialism of 1848.

Chapter XII. Re-Statement of Classicism

1. "With Mill classical economics may be said in some way to have attained its perfection and with him begins its decay." (Gide and Rist) Justify.

(Agra M. A. 1958, 1960, 1964, Vikram M. A. 1963)

2. "Mill's Principles of Political Economy was preeminently a transitional work summing up and expounding what had been done before and opening the way for the new development of the future." (Scott) *Discuss.* (Agra M. A. 1962)

3. Indicate briefly the main contribution of John Stuart Mill to economic thought. (Agra M. A. Final 1966)

Chapter XIII. Historical School

1. Discuss the critical and positive ideas of Historical School. (Agra M. A. 1962)

2. Give a brief account of the origin and development of the Historical School How far have their critical and positive ideas influenced economic thought ? (Agra M. A. 1960)

Chapter XIV. State Socialism

1. Why is Rodbertus called the Ricardo of Socialism ? What has been his contribution to economic thought ?

(Agra M. A. 1961, Vikram M. A. 1965)

Chapter XV. Marxism

1. Explain the concepts of surplus labour and surplus value as developed by Karl Marx. What are the causes of crisis according him ? (Agra M. A. Final 1966)

2. Discuss the Marxian theory of economic crisis. What role does this theory play in Marxian macrodynamics ?

(Agra M. A. 1965)

3. Discuss critically Marx's labour theory of value and show its relation to Marx's concept of exploitation of labour as conceived and developed by him. (Agra M. H. 1964)

4. "It is safe to say that no one can study Marx as he deserves to be studied without recognizing the fact that perhaps with the exception of Ricardo, there has been no more original, no more powerful and no more acute intellect in the entire history of economic science." (Newman) Comment.

(Agra M. A. 1963, 1957)

5 "Marxism is simply a branch grafted on the classical trunk." (Gide and Rist) Explain this statement fully.

(Agra M. A. 1962, 1956, Vikram M A. 1965

6. "The greatest and the most influenential name in the the history of Socialism is Karl Marx."

Explain carefully the above statment with special reference to to the important theories advocated by Karl Marx.

(Agra M A 1960)

7. "Marx fell in with the ordinary run of the theories of his own and also of a later epoch by making a theory of value the corner store of his theoritical structure." (Schumpeter) Examine the statement. (Agra M. A 1958)

Chapter XVI. History of Post-Marxian Socialism

1. Give a brief description of the history of post-Marxian socialism.

Chapter XVII. Subjective School

1. Discuss critically the the theories of the Austrian School

(Agra M. A. 1956, Vikram M. A 1963)

2. "In the early seventies began noteworthy series of attempts to reconstruct some of the leading doctrines of political economy on a basis in many respects different from that on which the classical *economists built." (Scott)*

Explain fully the above statement with special reference to the contribution made by the Austrian School to economic thought.

(Agra M. A. 1960)

3. "The philosophy which underlines the economics of the Austrian School is highly individualistic and more particularly it is that phase of utilitarianism that is known as hedonism." (Haney) Comment. (Agra M. A. 1963)

4. Examine critically Bohm—Bawerk's views on capital and interest and consider if his problem of interest could be intersreted as amounting to the Marxian problem of surplus value.

(Agra M. A. 1964)

5. Bring out clearly the contribution to economic thought of of the Austrian School, with special reference to Menger and Bohm-Bawerk. (Agra M. A. Prev. 1966, Vikram M. A. 1965)

Chapter XVIII. Marshall

1. "Marshall succeeded in a very high degree in the pe formance of the task which he set himself, namely that of presenting a

4. "The opinion may be ventured that Keyne's approach represents a return to classical political economy and a sharp departure from the general direction of modern economics." (Eric Roll)

In the light of the above statement, examine the contribution of Keynes to economic thought (Agra M. A. 1960, 1957)

Chapter XXI. 20 Century Economic Thought in U K. & U. S. A.

1. What contribution has Mrs. Joan Robinson or Professor A. C. Pigou made in the sphare of modern economic theory. (Agra M. A. Final 1966)

Chapter XXII. Indian Economics Thought

1. "The dominant characteristsics of Hindu economic thought were its emphasis an a good, clean and moral life and the ideal of simplicity, concept of welfare, including economic welfare, was inherent in it both in ancient and medieval ages." (Bhatnagar) Discuss. (Agra M. A. Prev. 1966)

2 Discuss the ecncomic ideas of Ranade.

3. Summarize the economic ideas of Dadabhai Naorogi or R. C. Dutta.

4. Critically examine the economic ideas of G. K. Gokhale.

Chapter XXIII. Economic Thought of Mahatma Gandhi

1. Summarize briefly the economic ideas of Mahatma Gandhi and compare them with the doctrine of Communism. (Agra M. A. 1956, 1960)

2. What is the economic significance of Gandhian philosophy ? Discuss its sailent features. (Agra M. A. 1958)

3. "Once has to interpect Gandhiji's economic ideas and build up what may be described as Gandhian economic thought." (Vakil) Elucidate. (Agra M. A. 1959, 62)

4. What are the Basic ideas of Gandhian economics ? Explain critically their practicability. (Agra M. A. 1961)

5. What are the main features of Gandhirn economic thought, Which of Gandhiji's economic ideas could be traced back to Kautalya ? Illustrate your answer with examples. (Raj. M. A. 1966)

Explain fully the above statement and point out the chief contribution which Marshall has made to economic science.

(Agra M. A. 1963, 1960)

4. Give the salient features of Marshall's idea on the theory of value and distribution.

(Raj. M. A. 1965)

Chapter XIX. American Institutionalism

1. Give a brief account of the theories of the institutional economists, especially of Veblen and W. C. Mitchell.

(Agra M. A. 1957, 1961)

2. Describe the place of J. B. Clark in the development of economic thought in the twentieth century. Give a critical estimate of his contribution.

(Agra M. A. 1962)

3. What is institutional economics ? Give a brief account of the theories of the institutianal economists, especially those developed hp Veblen and Mitchell.

(Agra M. A. Prev. 1966)

Chapter XX. John Maynord Keynes

1. How is Keynesian theory of employment different from the classical theory ? Explain it clearly.

(Agra M. A. Final 1966)

2. "Though rooted in the Marshallian version of neo-classical economic doctrine, Keynes's own theories showed, almost from the begining, a strongly original, not to say heterodox tendency." (Eric Roll)

Commont, distinguishing briefly his main contribution to economic thought.

(Agra M. A. 1964)

3. "Keyne's book (General Theory) is repudiation of the foundations of laissez faire." (Dillard) Justify.

(Agra M. A. 1963, Vikram M. A. 1963)

4. "The opinion may beventured that Keyne's approach represents a return to classical political economy and a sharp departure from the general directio n of modern economics." (Eric Roll)

In the light of the above statement, examine the contribution of Keynes to economic thought' (Agra M. A. 1960, 1957)

Chapter XXI. 20 Century Economic Thought in U K. & U. S. A.

1. What contribution has Mrs. Joan Robinson or Professor A. C. Pigou made in the sphare of modern economic theory.
(Agra M. A. Final 1966)

Chapter XXII. Indian Economics Thought

1. "The dominant characteristsics of Hindu economic thought were its emphasis an a good, clean and moral life and the ideal of simplicity, concept of welfare, including economic welfare, was inherent in it both in ancient and medieval ages." (Bhatnagar) Discuss. (Agra M. A. Prev. 1966)

2 Discuss the ecncomic ideas of Ranade.

3. Summarize the economic ideas of Dadabhai Naorogi or R. C. Dutta.

4. Critically examine the economic ideas of G. K. Gokhale.

Chapter XXIII. Economic Thought of Mahatma Gandhi

1. Summarize briefly the economic ideas of Mahatma Gandhi and compare them with the doctrine of Communism.
(Agra M. A. 1956, 1960)

2. What is the economic significance of Gandhian philosophy ? Discuss its sallent features. (Agra M. A. 1958)

3. "Once has to interpect Gandhiji's economic ideas and build up what may be described as Gandhian economic thought." (Vakil) Elucidate.
(Agra M. A. 1959, 62)

4. What are the Basic ideas of Gandhian economics ? Explain critically their practicability. (Agra M. A. 1961)

5. What are the main features of Gandhirn economic thought. Which of Gandhiji's economic ideas could be traced back to Kautalya ? Illustrate your answer with examples.
(Raj. M. A. 1966)

BIBLIOGRAPHY

1. Adam Smith	Wealth of Nations
2. Aristotle	Politics
3. Abraham V. M.	History of Economic Thought
4. Adam Muller	Vom Geiste der Gemeinschaft
5. Bohm Bawerk	The positive Theory of Capital
6. Cannan	Review of Economic Theory
7. Chapman S. J.	Outline of Political Economy
8. Carver T. N.	Distribution of Wealth
9. Chamberlin E. H.	The Theory of Monopolistic Competition
10. David Ricardo	Principles of Political Economy
11. Dudley Dillard	Economics of John Maynord Keynes
12. Datta R. C.	Economic History of India
13. Dadabhai Naorogi	Poverty and Un-British Rule in India
14. Eric Roll	History of Economic Thought
15. Enfantin	Economic Politiquect Politique
16. Ely R. T.	Outline of Economics
17. Freidrich List	National System of Political Economy
18. Friedrich Von Wiser	Theory of Social Economics
19. Gide and Rist	A History of Economic Doctrines
20. Grey	The Development of Economic Thought
21. Gopal Krishna P. K.	Developments of Economic Ideas in India
22. Gupta J. N.	Life and Works of Ramesh Chandra Datta
23. Haney	History of Economic Thought
24. Hoyland	Gopal Krishna Gokhale

25. Irving Fisher : Mathematical Investigation in the Theory of Value and Prices.
26. Jevons : Theory of Poiitical Economy
27. Karl Marx : Das Kapital
28. Karl Manger : Foundations of Economic Theory
29. Keynes J. M. : General Theory of Employment, Interest and Money
30. Kale V. G. : Introduction to the Study of Indian Economics
31. Karve D. G. : Ranade, the Prophet of Liberated India
32. Leon Walras : Elements of Pure Economics
33. Malthus : An Essay on the Principle of Population
34. Mill J. S. : Principles of Political Economy
35. Marshall : Principles of Economics
36. Massani R. P. : Dadabhai Naorogi, the Gand Old Man of India
37. Newman P. C. : The Development of Economic Thought
38. Plato : Republic
39. Proudhon : What is Property ?
40. Pigou A. C. : Economics of Welfare
41. Rodbertus : Our Economic Conditions
42. Ranadey M. G. : Essays on Indian Economics
43. Sismondi : New Principles of Political Economy
44. Say J. B. : Political Economy

Senior N. W. : An Outline of the Science of the Political Economy

Scott W. A. : The Development of Economics

Seligman E. R. A. : Principles of Economics

Shahni T. K. : Gopal Krishna Gokhale

Stark W. : The Social Background of Economic thought

: Theory of Leisure Class